



**ध्यायावाद**

**काल्य तथा दर्शन**

---



# छायावाद : काव्य तथा दर्शन

डॉ० हरनारायण सिंह



ग्रन्थम्

रामबाग कानपुर

# ग्रन्थम, कानपुर

② मूल्य पात्रह रुपये

● प्रकाशक

ग्रन्थम

रामबाग कानपुर

● प्रकाशन तिथि

नवम्बर १९६४

● मुद्रक

अनुपम प्रस, कानपुर

# अभिमत

डा० हरनारायण सिंह लखनऊ विश्वविद्यालय के शोध छात्र रहे हैं। उन्होंने मेरे मित्र डा० भगीरथ मिश्र के निर्देशन में छायावादी काव्य के दार्शनिक पक्ष पर शोध-काव्य किया है। डा० मिश्र का निर्देशन स्वयं ही निर्देश्य वस्तु के सम्यक स्तर की संभावना प्रकट करता है, परन्तु डा० हरनारायण सिंह न मुझे भी अपना शोध प्रबंध दिखाया था और उस पर मेरी सम्मति मांगी थी। मैंने उनके प्रबंध को देख लिया है और मुझे उनके काव्य से सन्तोष और प्रसन्नता हुई है। छायावादी कविया के दार्शनिक पक्ष के विवेचन का यह प्राथमिक प्रयास है। अतएव इसके लेखक हमारे साधुवाद के अधिकारी हैं। उनका प्रबंध पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है, यह और भी प्रसन्नता की बात है। मैं इस पुस्तक के प्रकाशन का स्वागत करता हूँ।

नन्दुलारे वाजपेयी,  
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग  
सागर विश्वविद्यालय  
सागर (म० प्र०)

# भूमिका

साहित्य जीर दशन का क्या सम्बन्ध है ? यह सदैव एक विचारणीय प्रश्न रहा है और इसके उत्तर में अनेक प्रकार के मत प्राप्त होते हैं । आजकल के साहित्य के विशिष्ट सम्प्रभ में कुछ लोग यह कहते हैं कि दशन का साहित्य से कोई खास सम्बन्ध नहीं होना चाहिए । क्योंकि साहित्य एक रचना है—एक कला है और दशन एक विचार पद्धति है । दशन से अत्यधिक सम्बन्धित करके हम साहित्य को बाधिल बना देते हैं और ऐसा हाकर साहित्य या काव्य कला की विशिष्टताओं और रचनात्मक प्रवृत्तियों से क्षीण हो जाता है ।

परन्तु इसके विपरीत दूसरा मत यह है कि साहित्य या काव्य दशन के बिना हल्का रहता है और जीवन में उसकी उपयोगिता और महत्ता प्रायः नहीं रह जाती । उपयुक्त दोनों ही मता में वचारिकता का अतिरिक्त दशन का मिलता है । यहाँ हम यह सोचते हैं कि दशन अथवा विचार पद्धति काई जीवन और तदनसार साहित्य में अलग और बाहर की वस्तु है । जिस प्रकार जीवन की सुन्दर गतिविधि और नियन्त्रित प्रगति के लिए विचार पद्धति आवश्यक होती है उसी प्रकार साहित्य अथवा काव्य के लिए भी दशन का समावेश जीवन अथवा साहित्य में होना चाहिए । यह तात्पर्य नहीं कि वह जीवन या उस दशन के प्रचार के लिए है । प्रचार का उद्देश्य न रखते हुए भी जीवन और काव्य के अन्तर्गत दशन की अपेक्षा और महत्त्व है । कहा जा सकता है कि दशन या विचार पद्धति के बिना जीवन या साहित्य का ढाँचा बिना रीढ़ का और गिरिबिल रहगा । स्पष्ट है कि यहाँ दशन का तात्पर्य किसी सांप्रदायिक विचारधारा में न होकर युग की मुख्य वचारिक चेतना और अपनी निजी निर्णीत तथा अनुभूत विचारसरणी है जिसकी आवश्यकता जीवन और साहित्य में मरी दृष्टि में अनिवार्य है ।

जब हम यापक रूप में ससार का और विशय रूप में भारतीय काव्य का अवनादन करते हैं तो यह बात और भी अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है । जितनी भी महान कवि हैं और जितनी भी उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं उन सबमें हम एक न एक विचार पद्धति अवश्य मिलती है । कभी कभी भावों और कल्पनाओं के सुन्दर अवगठन में विचार इस प्रकार में आवृत्त रहता है कि उसका स्पष्ट अनुभव हम नहीं कर पाते । परन्तु जब उसके अस्तित्व का भाव जाना है तो हम बड़ी प्रसन्नता होती हैं । और प्रायः महान कृतियों में यह बात अवश्य मिलती है । इस स्पष्ट होना है कि दशन का जीवन और

साहित्य से अनिवाय सम्बन्ध है। वास्तव में दर्शन या विचार, साहित्य या काव्य का एक तत्व है। और जहाँ पर उसका अभाव रहता है, वहाँ पर न जीवन और न ही काव्य पूरता को प्राप्त कर सकता है।

हिन्दी साहित्य के सदर्भ में विचार करने पर हम देखते हैं कि उसके प्राचीन साहित्य के अतगत भक्तिकाव्य में और आधुनिक साहित्य के अतगत छायावादी काव्य में दार्शनिक तत्व विशेष रूप में मौजूद हैं। भक्तिकाव्य तो दर्शन की किसी न किसी पद्धति को अपनाकर चलने वाला काव्य है और अधिकांश रचनाएँ ऐसी भी हैं जिनमें उन पद्धतियों के प्रचार का आग्रह है। इस कारण से उनमें काव्य का अनापक्ष कहीं कहीं क्षीण भी हो गया है। परंतु जिन कवियों ने प्रचार का बसा उद्देश्य नहीं रखा, वरन् जीवन के सुन्दर और जादू का रूप में अभिभूत होकर उसमें केवल दार्शनिक भूमिका ही प्रदान की है उनका काव्य सवाग सुन्दर है। मूर और तुलसी का काव्य इसी प्रकार का है।

छायावादी काव्य इस दृष्टि से और भी अधिक कला के प्रति जागरूक है। परंतु उसमें दार्शनिक विचार की अतः सलिला विद्यमान है इसमें सन्देह नहीं। इस काव्य के सम्पूर्ण गौरव का स्पष्टीकरण उसके अंतर्निहित दर्शन की व्याख्या से ही हो सकता है। छायावादी काव्य के प्रमुख स्तम्भ हैं— प्रसाद निराला पंत और महादेवी वर्मा। इनकी रचनाओं में कोई न कोई दार्शनिक पूर्वभूमि मौजूद है। वरन् हम यह कह सकते हैं कि पूर्ववर्ती और समवर्ती अनेक दार्शनिक विचारधाराओं के सम्मिश्रण में जो उस समय एक नवीन दार्शनिक सृष्टि का निर्माण हुआ था वह इनकी रचनाओं की पृष्ठभूमि में मौजूद है। उसमें कोई साम्प्रदायिक आग्रह नहीं। इसके साथ ही वह एक राष्ट्रीय सृष्टि के रूप में प्रगट हुई है। समकालीन राष्ट्रीय चेतना की उसमें अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। ऐसी दृष्टि में छायावादी काव्य का वास्तविक मूल्यांकन करने के लिए तथा उसकी गरिमा को हृदयगम करने के लिए सहस्रधार होकर बहने वाली इस दार्शनिक विचारधारा को समझना आवश्यक है। इन छायावादी कवियों ने दर्शन का मथन करके उसको मृदु रसमय बना लिया। वह गुप्त चिंतन नहीं। चिंतन की विविधता उसकी स्तरगी आभा होकर प्रगट हुई है। अतः यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि इन कवियों की काव्यशक्ति भी इस स्तरगी दार्शनिक आभा से अलग करके देखी नहीं जा सकती। प्राचीन काव्य और छायावादी काव्य के अध्ययन में यह विचार अतः परचने की आवश्यकता है। इस अध्ययन के लिए विविध दार्शनिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण सर्वप्रथम अपेक्षित है। इस पृष्ठभूमि को समझने पर हम यह दृढ़ दम सकते हैं कि अनेक स्रोतों और दिशाओं में



प्राप्त वचारिक सम्पत्ति को इन कवियों ने किस प्रकार से एक युगीन राष्ट्रीय और कलाचतना के रूप में ग्रहण किया है। यह राष्ट्रीय चेतना और कला चेतना छायावादी कवियों की विशिष्ट उपरति है। इस युग का प्रगतिवादी काव्य कला चेतना के प्रति उदासीन है और परम्परागत कला को महत्व देने वाला काव्य वचारिक चेतना में विकरित है। इसीलिए छायावादी काव्य युगीन और शाश्वत दोनों ही प्रकार का गरिमा से युक्त काव्य है।

तात्कालिक और कलागत समन्वित चेतना के प्रति जागरूक रह बिना शायद हम छायावादी काव्य का समुचित मूल्यांकन नहीं कर सकते। जिन कवियों ने छायावादी काव्य संपत्ति के बभ्रव को बनाया है उन्होंने इस समन्वित चेतना को प्राप्त करने के लिए बड़ी गम्भीर साधना की है जिसे हमें आज के नये कवि और नये आलोचक का ध्यान जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो हम उन गभीर मौन सांस्कृतिक साधकों के प्रति बहुत बड़ा अन्याय करेंगे जिन्होंने बड़े धैर्य के साथ अपनी राष्ट्रीय एवं अध्यात्म दोनों ही प्रकार की चेतना में मद्धित कृतियाँ साहित्य-संसार को भेंट कीं और उसके उपलक्ष्य में किसी भी अभिमान और प्रशंसा की अपेक्षा भी न रखी। उन्होंने उम समन्वित चेतना का विकीर्ण करना अपना एक पावन काव्य समझा और उसके द्वारा जीवन के प्रति गभीरता से देखने का दृष्टिकोण प्रदान किया क्योंकि उनके लिए जीवन खिलवाड़ नहीं था। वह उद्देश्यपूर्ण एवं पावन कृत्यमय था। अपने साहित्य को ऐसा रूप प्रदान करते हुए इन कवियों ने अपने राष्ट्रीय दायित्व को भी निभाया क्योंकि उन्होंने अपने युग के उत्कृष्ट संस्कार उस साहित्य के द्वारा बनाने का प्रयत्न किया।

उपर्युक्त दृष्टिकोण के समझने पर हम छायावादी काव्य के दार्शनिक विश्लेषण की आवश्यकता का अनुभव हो जाता है। इसी आवश्यकता का अनुभव करके डा० हरनारायण सिंह ने छायावादी काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत ग्रंथ में स्पष्ट किया है। उनका परिश्रम और उनकी साधना विषय के पूर्णतया अनुरूप रही। जिसे धैर्य और अध्यवसाय ने उन्होंने काय किया है वह अभिमाननीय ही नहीं बरन अनुरूपणीय है।

डा० सिंह के इस काव्य को प्रकाशित होते देख मुझे बड़ी प्रसन्नता है। मुझे विश्वास है कि उनके द्वारा इसी प्रकार के उपयोगी और महत्वपूर्ण काव्य किये जायेंगे। मुझे पूर्ण आशा है कि हिन्दी जगत में उनका इस ग्रंथ का उचित सम्मान और स्वागत होगा।

दीपावली १९६४  
पूना विश्वविद्यालय।

}

-मगीरथ मिश्र

## प्राक्कथन

छायावाङ्मय हिन्दी साहित्य का अत्यन्त समृद्ध अंग है। जत इसवे सम्बन्ध म हिन्दी के अनेक अधिकारी विद्वानो ने चिन्तन मनन किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आचार्य नन्दलाल वाजपेयी, डा० नगेन्द्र आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी बाबू गुलाबराय डा० भगीरथ मिश्र जस हिन्दी के लक्षप्रतिष्ठ विद्वानो ने छायावाद-काव्य का स्वरूप—निर्धारण एव मूल्यांकन किया है। छायावाद के प्रमुख कवियो—प्रसाद निराला पत और महादेवी—का नेकर हिन्दी म अनेक महत्वपूर्ण शोध एव आलोचनात्मक ग्रन्थ भी लिख जा चुके हैं। उनम उक्त कवियो की कृतियो के विविध रूपो कना भाव दर्शन आदि—का गम्भीर विवेचन भी हुआ है। किन्तु जहा तक छायावाङ्मय काव्य क दाशनिक पक्ष का प्रश्न है उसका अद्यावधि अध्ययन अभी तक सम्यक् रूपेण नही हो पाया है। अत आज स आठ वष पूर्व आचार्यप्रवर डा० भगीरथ मिश्र ने मये छायावादी हिन्दी काव्य की दाशनिक पृष्ठभूमि पर शोध काय करने के लिए प्रेरित किया। निदान छायावादी काव्य और दर्शन के सम्बन्ध म अत्यल्प जानकारी रखते हुए भी छायावाद के प्रति अपनी विशय रचि के कारण मैने उनका आदेश सह्य स्वीकार कर लिया। यह शोध प्रबन्ध उन्ही की प्रेरणा का परिणाम है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध दो खण्डो म विभक्त है। पहले खण्ड म काव्य एव दर्शन का सम्बन्ध स्थापित करके तथा छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियो और समकालीन पृष्ठभूमि का विस्तृत परिचय देकर उन दर्शनो का संक्षिप्त विवेचन किया गया है जिनसे प्रेरणा प्राप्त कर छायावादी हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि निर्मित हुई है। दूसरे खण्ड मे वदात वर्णव वदात व्यावहारिक वदान्त श्री अरविङ्ग दर्शन शिव दर्शन, बौद्ध दर्शन आदि के सिद्धान्ता का छायावादी काव्य पर प्रभाव दिखाया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिखने का सुअवसर मुझे श्रद्धय डा० दीनदयालु गुप्त डीन फक्ल्टी आफ आर्ट स तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग नवम्बर विश्व विद्यालय के अनुग्रह द्वारा ही प्राप्त हुआ था। डा० साहव ने विषय की स्वीकृति स लेकर उसकी समाप्ति तक मरे माग म आन वादी समस्त कठिनाय्या

को दूर कर मुझ अपने काय मे आगे बढ़ने का प्रोत्साहन दिया है साथ ही इस प्रबन्ध को पूरा करने के लिए हर प्रकार की अपेक्षित सुविधा भी प्रदान की है। अतः मे उदारचेता श्रद्धय डा० गुप्त के प्रति विनम्र भाव से श्रद्धावनत हूँ।

इस प्रबन्ध के सुयोग्य निर्देशक श्रद्धय डा० भगीरथ मिश्र के विषय में क्या कहूँ ? प्रबन्ध के विषय निर्धारण से लेकर उसकी समाप्ति तक की सभी स्थितियों से वे परिचित रहे हैं। उन्होंने जिस उदारता, कुशलता एवं स्नेह से मेरा पथ प्रदर्शन किया है उसे शब्दों में बाँधने में मैं असमर्थ हूँ। इस सम्बन्ध में बस इतना ही कह सकता हूँ कि परम श्रद्धय डा० मिश्र जी के शोध विषयक उत्कृष्ट अनुभव गहन तत्त्वचिन्तन तथा विद्वतापूर्ण निर्देशन से पूर्ण लाभ उठा कर ही मैं इस पुस्तक काय को पूरा करने में सफल हो सका हूँ। इस प्रबन्ध में यदि कोई अज्ञान है तो उसका सबसे श्रेय डा० मिश्र जी को है नुटिया का सम्पूर्ण दायित्व मेरे ऊपर समझना चाहिए।

प्रस्तुत शोध काय में मैं अपने प्रिय मित्र डा० शम्भूनाथ चतुर्वेदी, प्राध्यापक लखनऊ विश्वविद्यालय के सत्परामर्शों में भी लाभ उठाया है अतः मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

अतः मैं उन समस्त लेखकों एवं विद्वानों के प्रति अपना आभार प्रकट करना चाहूँगा जिनकी कृतियाँ के आधारभूत इस प्रबन्ध का कर्नेवर निर्मित हुआ है।

अगस्त १९६२  
लखनऊ

—लेखक

# विषय-क्रम

## प्रथम खण्ड

### प्रथम अध्याय

पृष्ठ १८-३२

काव्य एवं दशन का सामजस्य—

दशन और काव्य के लिए उपयुक्त भूमि चिरतन सत्य की जिनासा काव्य एवं दशन का मूलाधार काव्य एवं दशन के आध्यात्मिक तत्व काव्य और दशन में भ्रष्ट श्रष्ट काव्य का मूलाधार दशन काव्य दशन की पूणता है ।

### द्वितीय अध्याय

पृष्ठ ३३-९५

छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तिया और समकालीन पठभूमि—

सांस्कृतिक जागरण की परम्परा पठभूमि सांस्कृतिक जादोलन ब्राह्म समाज प्राथना-समाज ब्रह्मविद्या समाज आय-समाज रामकृष्ण मिशन प्रवृत्ति माग बाल गगाधर तिनक गाधी टगार और अरविन्द इतिहास, साहित्य और दशन राजनीतिक आन्दोलन ।

छायावादी की मुख्य प्रवृत्तियाँ— जाध्यत्मिक प्रवृत्ति रहस्यवाद सवात्मवाद यक्तिवाद शीय भावना पलायन वृत्ति निराशावाद भोगवाद काल्पनिकता, सौन्दर्यवाद ।

### तृतीय अध्याय

पृष्ठ ६-१७३

छायावादी काव्य को प्रभावित करने वाले दशन—

वशा में दार्शनिक विचार पुरुष मूक्त सृष्टि विचार आरण्यक में ब्रह्म की भावना ब्रह्म और आत्मा का भ्रष्ट ।

उपनिषद् में दार्शनिक विचार-ब्रह्म आनन्दमय ब्रह्म भूमा आत्मा का स्वरूप जाव, उपनिषद् में सृष्टि प्रक्रिया आत्मसाक्षात्कार के उपाय आत्मज्ञान की अनुभूति प्रक्रिया ।

जद्व त दशन

शाकर वदात्त ब्रह्म, ईश्वर माया अविद्या जगत् जीव, मुक्ति जीव-मुक्ति साधन ।

वष्णव वेदान्तवाद

विशिष्टाद्व तवात् मत, ब्रह्म जीव शास्त्र का सम्प्रदाय प्रयोजन ब्रह्म ईश्वर जीव जगत मुक्ति साधन प्रपत्ति ।

भेदाभेद दशन भास्कर का सिद्धांत तत्त्वविचार ब्रह्मतत्त्व चिन्मय जगत काय कारण भाव जगत मिथ्या नहीं है जीव मुक्ति कर्म की आवश्यकता ।

अचिन्त्य भेदाभेद मत विषय प्रयोजन ब्रह्म या ईश्वर जगत गालाक जीव नाम सकीर्तन मत्ति ।

प्रावहारिक वेदान्तवाद यय ब्रह्म ईश्वर मानव ईश्वर ईश्वर जीव प्रेम ईश्वर और दुःख आत्मा जगत माया मत्ति । श्री अरविन्द-दशन परमसत्ता (ब्रह्म) तद्व जीव चेतन श्रम विकास आरोहण अवरोहण दिव्य जीवा ।

शव दशन—शव मत का आरम्भ और सम्प्रदाय विभाग नामकरण साहित्य जद्व त भूमि ब्रह्मात् त तथा ईश्वराद्वयवाद म भेत् शिव शक्ति सत्ताशिव ईश्वर शुद्धविद्या या सत्विद्या माया कर्ता विद्या राग कान नियति पुरुष प्रकृति जत करण-बुद्धितत्त्व जह्मर तत्त्व मनस्तत्त्व आत्मा जीव सत्ति चिन्मय सामरस्य की अवस्था जीव-मुक्ति ।

बौद्ध दशन—बौद्ध दशन क सामान्य सिद्धांत मध्यम मार्ग चार आय सत्य दुःख की कारण परम्परा प्रतीत्यसमुत्पाद अष्टांग मार्ग क्षणिकवाद जनात्मवाद जनीश्वरवाद निर्वाण करणा ।

## द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

पृष्ठ १७७-२७५

छायावादा का य म औपनिषत्तिक जद्व तवाद—

ब्रह्म आत्मा जीव अहंरह्यास्मि तत्त्वमसि जगत एकोह बहुस्याम अस्त और अव्यक्त जगत जगत मत्त्व है जगत परब्रह्म परमेश्वर की चीना ह ।

विज्ञान का प्रावहारिक वदान्त-ब्रह्म या ईश्वर मानव ईश्वर ईश्वर और प्रेम ईश्वर और स्व जगत मुक्ति था अरविन्द दशन भीतरी शान्ती परिस्थितिया म सामरस्य की स्थापना ।

वष्णव वेदान्तवाद

विशिष्टाद्वैत, निम्बार्क वेदान्त बल्लभ वेदान्त बलदेव वेदान्त ।

## द्वितीय अध्याय

पृष्ठ २७६-२९८

### छायावादी काव्य मे ईश्वराद्वयवाद

शिवतत्त्व विमलशक्तितत्त्व सनाशिवतत्त्व, ईश्वरतत्त्व शिव और सृष्टि शिव और जीव समरसता आनन्दवाद नियतिवाद ।

## तृतीय अध्याय

पृष्ठ २९९-३२६

### छायावादी काव्य मे सर्वात्मवाद

सर्वात्मवादा (पण्डित) भारतीय और पाश्चात्य सर्वात्मवाद मे भेद छायावादी सर्वात्मवादा का स्वरूप भारतीय सर्वात्मवादी मानवतावाद तथा पाश्चात्य मानवतावाद मे भेद छायावादी सर्वात्मवादा मूलक मानवतावादा का स्वरूप ।

## चतुर्थ अध्याय

पृष्ठ ३२७-३७५

### छायावादी काव्य मे रहस्यवाद

छायावादी रहस्यवाद का विश्लेषण रहस्यवाद और दर्शन मे भेद धर्म और रहस्यवादा रहस्यात्मक अनुभव को विवक्षितताए प्रातिभंगान छायावादी कवि का रहस्यवादी स्वरूप प्रकृति रहस्यवाद प्रेमपरक रहस्यवाद प्रकृति रहस्यवाद प्रकृति मे चेतना का आरोप प्रकृति-सादृश्य प्रकृति-संदेश अनकता मे एकता प्रकृति मे विराट का आरोप ईश्वर दर्शन ईश्वर-ज्ञान की अस्पष्टता प्रतीकात्मकता प्रेमपरक रहस्यवादा प्रेम सबव्यापी है दुःख प्रेम का अंग है जीवन उत्सव की अभिजापा आत्मसमर्पण सूफी रहस्यवाद विरट प्रियतम की निष्ठुरता मिनन मत्यु-कामना पाश्चात्य रहस्यवाद ।

## पंचम अध्याय

पृष्ठ ३७६-४१२

### छायावादी काव्य मे निराशावादी दर्शन की अभिव्यक्ति

आशावाद और निराशावादा जीवन के दो दृष्टिकोण हिन्दू दर्शन मे निराशा का दार्शनिक पक्ष निराशावाद स्यास-भाग, पारमार्थिक दृष्टि से निराशावाद का स्रष्टन जन और बौद्ध धर्मों का निराशावादी दृष्टिकोण पाश्चात्य निराशावादा, रामार्थिक निराशावादा जगत् दुःख अथवा दुःखमय है प्रकृति मे दुःख अथवा क्षणभंगुरता का आरोप जीवन मे दुःख और निराशा का आरोप पनायनवादा निराशा अथवा वेदना का विलास ।

**षष्ठ अध्याय**

पृष्ठ ४१३-४४८

छायावादी काव्य में भोगवादी दशन

उमर खय्याम

भूमिका सत्तर एव जीवन सम्बन्धी दृष्टिकाण उमर और निराशा वाद उमर और भोगवाद उमर की विद्रोह भावना, उमर और भाग्यवाद उमर और निवृत्ति माग उमर खय्याम और सूफीमत निष्कप, उमर की नियति और छायावादी भोगवाद और छायावाद ।

**सप्तम अध्याय**

पृष्ठ ४४९-४५७

छायावादी काव्य में अत्यन्त दार्शनिक विचारधाराएँ

**अष्टम अध्याय**

पृष्ठ ४५८-४६१

छायावादी दशन का स्वरूप

पृष्ठ ४६२-४७१

**परिशिष्ट**

आधार ग्रन्थों की सूची, सहायक ग्रन्थ सूची

प्रथम खण्ड







## काव्य एवं दर्शन का सामजस्य

दर्शन एवं काव्य का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। त्रिविध तप से सन्तप्त मानव की शान्ति क्लेशमय ससार की आत्यंतिक दुःख से निवृत्ति एवं मानव कल्याण के लिए ही भारत में दर्शन और काव्य का आविर्भाव हुआ।<sup>१</sup> भारतीय जीवन तथा धर्म पर प्रकृष्ट प्रभाव डालने के कारण दर्शन और काव्य की भारत भूमि में बड़ी प्रतिष्ठा है। किन्तु दर्शन और काव्य का तो मुख्य विषय ही जीवन का चरम लक्ष्य, परम तत्त्व की खोज करना है। परम तत्त्व की खोज जितनी तत्परता और तमयता से कवि और दार्शनिक करते हैं उतनी तत्परता और तमयता से दूसरा नहीं करता। उस प्रसंग में भारत भूमि अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

### दर्शन और काव्य के लिए उपयुक्त भूमि

भारत-देश की भौगोलिक स्थिति, स्वस्थ जनवायु प्राकृतिक सौन्दर्य उर्वर भूमि कर्ममूल फल फूल एवं सुस्वादु खाद्य पदार्थों का सहज ही पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाना आदि विशिष्ट सुविधाओं ने भारतवासियों को

१ वेदों को प्रमाण मानने वाले भारतीय दर्शन शास्त्रों ने उपनिषद्ओं को ही अपना आधार माना है जिससे परिशीलन से ससार की कारणभूता अविद्या का नाश हो जाता है दुःखा से मन्वथा छुटकारा मिल जाता है और परब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है उसी का नाम उपनिषद् है। तात्त्विक सबपाशापहानि क्षीण ब्रह्मज्ञानमृत्यु प्रहाणि । परमात्मदेव को जानकर सारे बन्धन बट जाते हैं क्लेशों के क्षीण होने पर जन्म और मृत्यु से छुटकारा मिल जाता है।

—श्वनाश्वनर

चिरकाल से शान्तिप्रिय और गम्भीर बना रखा है। इहाँ अनुकूल परिस्थितियाँ के फलस्वरूप भारतीय मानसिक एवं दार्शनिक शक्तियों आध्यात्मिक तत्वों तथा जीवन और जगत की गहनतम समस्याओं को समझन में आदिकाल से सफल होते आये हैं।

भारतीय जीवन में दार्शनिक तत्व—आधिभौतिक आधिदार्शनिक तथा आध्यात्मिक तत्व—इस प्रकार ओतप्रोत हैं कि वे किसी प्रकार एक दूसरे से पृथक् नहीं किये जा सकते। जीवन की स्वच्छता उच्चादर्शों में आस्था अन्तःकरण की प्रशान्त भावना सत्यनिष्ठा परम सुख अथवा आनन्द की खोज पारमार्थिक दृष्टि से जगत का मिथ्यात्व आदि गुण अथवा विशपताएँ साधारण तथा प्रत्यक्ष भारतीय के विभिन्न कार्यों में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर होगी। जीवन के झमलो से तटस्थ होकर सुख तथा जन्म-मरण सत्य असत्य पर-अपर प्रिय अप्रिय श्रेयस प्रेयस आदि का रहस्योद्घाटन भारतीय सृष्टि के आरम्भ से ही करते आये हैं। वेद से लेकर जाज तक का सम्पूर्ण साहित्य इसका साक्षी है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि भारतवर्ष की पुण्य भूमि दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक चिन्तन के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

या तो जहाँ संवेदनशील हृदय है वहाँ अनायास काव्य भूमि निकल आता है किन्तु भावनाओं के स्फुरण के लिए जिस बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा होता है वह भारत भूमि में प्रचुरता से विद्यमान है। हिमालय के उत्तम शृंगों की गरिमा शुभ्र अमरावतियों की अठपेलियाँ हिन्दसागर की गहन-गम्भीरता जाह्नवी यमुना की लोचन वनु नहरों कोकिल की स्वर नहरी सारिका का बलगान पड भृत्तुआ की नित नवीनता आदि भावना का सद्य उद्दीप्त और

कटुकीपथवच्छास्त्रमविद्या याधिनाशनम् ।

आह्लाद्यमृतवत काव्यमविवेकगदापटम् ॥

अर्थात् वेद और शास्त्र के उपदेश अविद्या रूपी याधिक निम्न गुणकारी अवश्य होते हैं पर वे कटु औपधि के समान हैं किन्तु काव्य के माध्यम से कथित वे ही उपदेश अमृत के समान सरस और मधुर होते हैं।

काव्य और साहित्य समानार्थी हैं और साहित्य की यास्या इस प्रकार की गई है—

हितेन मह सहित तस्यभाव साहित्यम् ।

सह एव सहित तस्य भाव साहित्यम् ॥

हृदय का चमत् कर देने हैं। वस्तुतः भारत भूमि स्वयं एक भव्य काव्य है जिसमें जीवन के सम्पूर्ण रसों का सुन्दर परिपाक मंत्रिविष्ट है। सम्भवतः इसी से कविता भारतीय आर्यों की अत्यन्त प्रिय वस्तु थी। केवल काव्य में सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थ ही कविता में नहीं लिखे गये अपितु ब्रह्म-ज्योतिष, व्याकरण अक्षरगणित धीजगणित आदि अनेक विषयों के ग्रन्थ भी छन्दों में ही लिखे गये। अतः ही नहीं हम देखते हैं कि गुप्तवशी राजाओं के सिक्कों पर भी कविता बद्ध लेख अंकित हैं। इतने प्राचीन काल में सत्कार के विना भी देश में सिक्का पर कविता-बद्ध लेख नहीं लिखे जाते थे।<sup>१</sup> यह ब्रह्म-कवि के प्रकृति के अत्यन्त रूप-रक्षणों के बीच निरन्तर विचरण करने का ही फल था जो उपनिषद् में एक अलौकिक सौन्दर्य और आश्चर्य पाया जाता है। उनमें विचारों को उच्चता अनुभूति की गम्भीरता मनुष्य में निहित सत्य शिव-सुन्दर्य की अनुप्रेरणा और भाषा की दिव्य व्यञ्जना शक्ति के पाये जाने का एक प्रधान कारण ब्रह्म-कवि का प्राकृत जीवन-यापन भी था। प्रकृति के प्राणन में ही उन्हें उन्मुक्त प्रेम और दिव्य ज्ञान के दशन हुए थे। उसकी चिरन्तन सत्य की खोज में प्रकृति का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यही काव्य का भी मूलधार है।

### चिरन्तन सत्य की जिज्ञासा काव्य एव दशन का मूलधार

मनुष्य की इच्छा अनन्त और जिज्ञासा असीम है। उसका जीवन प्रश्नों का जीवन है। अनेकानेक प्रश्नों के समाधान के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहता है। मूलतः मनुष्य की प्रवृत्ति बहिर्मुखी है अतः उसकी दृष्टि सब प्रथम प्रकृति के स्थूल ब्रह्म विलास पर टिकती है। उसे वह स्थूल सुख भोग की सामग्री ग्रहण करता है किन्तु प्रकृति और मानव सम्बन्ध की इतिवृत्ति नहीं हो जाती। धन धन मानव मन स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने लगता है। वह जिज्ञासा करता है—हम कौन हैं? क्या हैं? कहाँ हैं? कहाँ से आये हैं? हमारे चारों ओर फली हुई प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या है? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? उसका कर्ता कौन है? वह स्वयं चेतन है अथवा अचेतन? यह प्रश्न (लाभ विलास) किम्बन्त है? किसके नियम है? यदि ब्रह्म अथवा आत्मा (अयमात्मा ब्रह्म) ही समस्त जगत् का मूल तत्व है तो पुनः प्रश्न उठता है—वह ब्रह्म क्या है? जगत् से उसका सम्बन्ध क्या है? जीव

१ मध्यकालीन भारतीय सस्कृति—महामहापाठ्याय गौरीशंकर हीराचन्द्र

क्या है ? प्रकृति और परमात्मा के साथ उसका क्या लगाव है ?<sup>1</sup> उक्त प्रश्नों के जाघार स्वरूप बाह्य सौम्य पर टिकी हुई उसकी दृष्टि धीरे धीरे अन्तमुखी होने लगती है और वह प्रकृति के बाह्यांतर से चिरन्तन सत्य को पा लेने के लिए व्यग्र हो उठता है । यहा मनुष्य की दार्शनिक दृष्टि है ।

दार्शनिक का भाँति कवि को भी चिरन्तन सत्य की खोज अभीष्ट है । जसा कि चटन कानिंस ने कहा है—

काव्य का मुख्य उद्देश्य शैवन मनोरजन करना मानव जाति की उन्नत अथवा अनुदात्त भावनाओं को अभिव्यक्ति देना अथवा मानव स्वभाव सम्बन्धी हमारे ज्ञान की अभिवृद्धि करना नहीं है बल्कि इनके साथ साथ काव्य का एक श्रेष्ठतर उद्देश्य भी है । वह है आध्यात्मिक सत्य को व्यक्त करना उस जगत का चित्रित करना जिसकी यह जगत छाया अथवा अनुकृति मात्र है उस शाश्वत सत्य को अभिव्यक्त करना जो क्षण क्षण परिवर्तनशील रूप नाम दृपात्मक जगत में निहित है ।<sup>2</sup> चिरन्तन सत्य की दृष्टि मही शलीन काव्य को 'Heaven's light on earth Truths brightest beam' भूतल पर स्वर्ग का प्रकाश (एव) सत्य की उज्ज्वलतम किरण कहा है । गेटे का यह कथन कि प्रकृति की समस्त परिवर्तनशीलता के मध्य भी एक अपरिवर्तनशील

१ कि कारण ब्रह्म वृत्त रूप जाता जीवाम वन वद च समप्रतिष्ठा ।

अधिष्ठना केन सुमेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम ॥१॥

जगत का मुख्य कारण ब्रह्म कौन है? किससे उत्पन्न हुआ है ? किससे हम जी रहे हैं ? किसमें हमारी सम्पूर्ण प्रकारसे स्थिति है? किसके अधीन रहकर सुख और दुःख में निश्चित व्यवस्था के अनुसार बत रहे है ? श्वताश्वतर, प्रथम अध्याय ।१। ऋग्वेद १०।८१।२

२ The chief office of poetry is not merely to give amusement not merely to be the expression of feelings good or bad of mankind or to increase our knowledge of human nature and of human life but that if it includes this mission it also includes a mission far higher the revelation namely, of ideal truth, the revelation of that world of which this world is but the shadow or the drossy copy the revelation of the eternal which underlies the unsubstantial and the ever dissolving phenomena of earths, empire of matter and time

Churton collins, The true function of poetry, quoted by Radha Krishnan in his 'The Philosophy of Tagore p 128

शक्ति विद्यमान है वही सत्य किंवा शाश्वत सत्ता है जो सौन्द्य के परिवेश में व्यक्त हो रही है<sup>1</sup> काव्य के उक्त पक्ष को ही पुष्ट करता है। सक्षप म कवि परम सत्ता (ईश्वर) की आराधना परम सुन्दर के रूप में जीर दाशनिक परम सत्य के रूप में करता है। यदि दशन सत्य का मन्दिर है तो काव्य सौन्द्य का शिवालय है। दोनों परस्पर अविरोधी हैं क्योंकि 'Truth is beauty and beauty is truth' के आधारभूत दोनों में अभेद है। दाशानिक वस्तुओं में निहित सत्य को व्यक्त करके बाह्य रूपों को नगण्य ठहराता है और कवि उनके आभ्यन्तर में प्रवेश कर आध्यात्मिक सौन्द्य की प्राप्ति देखता है।

जिस प्रकार जगत का बाह्याकार या दाशनिक जिनासा का प्रथम आधार है उस समय विलीन हो जाता है जब दाशनिक जागतिक पदार्थों में सामजस्य स्थापित करने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार कवि की कल्पना जगत के बाह्यरूपों से खेलते-खेलते उनके आभ्यन्तर में पहुँच कर परम सत्य को अभिव्यक्त करने लगती है।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि और दाशनिक दोनों को चिरन्तन सत्य की खोज समान रूप से अभीष्ट हाती है। अतः हम चिरन्तन सत्य की जिनासा को काव्य एव दशन का मूलाधार मान सकते हैं।

### काव्य एव दशन के आध्यात्मिक तत्व

इस प्रकार शाश्वत सत्य को पा लेना मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। काव्य और दशन दोनों उसी पथ के पथिक हैं। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होगा कि दोनों नित्य तत्व पर आधारित हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से उनके मूलाधार तत्व है—आत्मा, परमात्मा और प्रकृति। आत्मा परमात्मा की नित्यता निर्विवाद है। रही प्रकृति की नित्यता की बात तो उपनिषद् उस पूण और नित्य घोषित करती है—

ओ३म पूणमद पूणमिन् पूणतपूणमुच्यते ।

पूणस्य पूणमादाय पूणमेवावशिष्यते ॥<sup>१</sup>

सास्य दशन भी प्रकृति की नित्यता स्वीकार करता है। शंकर न भी प्रकृति को पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की है। उनका अनुसार विषय सत नहा

1 As all natures myriad changes still one changeless Power proclaim — This is truth Eternal Reason That in beauty takes its dress Ibid P 140

कहे जा सकते। कारण वे विनोय और विकासशील हैं। चिन्तु वे वायुपुत्र की तरह सबका जसत अथवा तुच्छ नहीं कहे जा सकते। उनमें भी सत्ता है जो आभामित ही रही है। जत व न तो सत कह जा सकत हैं १ असत—वे अनिवचनीय ह। यह समस्त विषय समार और उसकी जननी माया या अविद्या भी सत असत से विवक्षण अनिवचनीय है। सत्ता की तीा कोटियाँ हैं—(१) प्रातिभासिक (२) व्यावहारिक (३) पारमार्थिक। इस प्रकार समार एक रूप नहीं है। चिन्तु यदि समार को व्यावहारिक सत्ता के जय म दिया जाय तो शकर भी यत् नर कहते है कि यह जगत अवश्य ही सत्य है। उनके अनुसार वारणरूपी ब्रह्म की सत्ता निवाल म (भूा भविष्य और वत मान म) रहता है अतएव काय रूपी जगत म उसका (सत्ता का) कभी अभाव नहीं रह सकता। दशन क अनुसार ब्रह्म ही अपने को दो रूपा-आत्मा और प्रकृति पुष्प और प्रकृति ईश्वर और माया म विभक्त किय हुए है। इसी आधार पर शव दशन ईश्वर की माया प्रकृति को सत्य मानता है। सर राधाकृष्णन के शब्दा म भारतीय विचारधारा न आत्म शक्ति विहीन प्रकृति की कभी चिन्ता नहा की। उसके निकट प्रकृति आत्म शक्ति का अभिव्यक्त करने के कारण सत्य है। दूसरे शब्दा म भारतीय दृष्टि से प्रकृति आध्यात्मिक शक्ति की अभिव्यक्ति का साधन ह। अत इनके मत म कवि का उद्देश्य मृतसमुदाय म निहित आत्मा को अभिव्यक्त करना है। इस प्रकार सत्वाव्य का सिद्धान्त स्पून प्रकृति का जतिव्रमण कर उसमें अनुस्यूत आत्मा से तादात्म्य स्थापित करना ह। और दशन तो प्रकृति म निहित चिरन्तन सत्य की खोज करता ही है। इस प्रकार आत्मा परमात्मा और नित्य प्रकृति ही काय एव जगत व जा यात्मिक तत्व सिद्ध होत हैं।

१ ब्रह्मसूत्र २/१/१६

२ उमश मित्र-भारतीय शन प्रथम संस्करण पृ २८

३ Indian thought never cared for nature divorced from spirit It is real as revealing the divine essence of spirit Radha Krishnan The Philosophy of Tagore P 135

४ The aim of the poet is to reveal the life within things the soul within matter

Ibid P 134

५ Fidelity not to nature but to the real soul in it, is the principle of true poetry

Ibid, P 136

## काव्य और दशन मे भेद

यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि यदि कवि और दाशनिक दोना जीवन भर विचार और चिरतन सत्य की खोज करते रहत है तो फिर काव्य और दशन म भेद क्या है दशन शास्त्र को काव्य स पृथक् करने वाली वस्तु कौन सी है इसके उत्तर म डा० राधाकृष्णन के शब्दो म इतना कहना अलम है कि दशन और काव्य दोना का लक्ष्य एक ही है किन्तु उनके प्ररणा प्रोत भिन्न भिन्न है । भिन्न भिन्न दष्टिकोणो से वे सत्य तक पहुचते ह ।<sup>1</sup> अर्थात् जहाँ दशन बुद्धि द्वारा विश्व के वषम्य म सामजस्य स्थापित कर सत्य तक पहुचने का प्रयास करता है वहा काव्य अन्तदष्टि अथवा अनुभूति द्वारा विश्व के नाना रूपो म परम सु र का खोज करता है । छायावाद का कवि काव्य और दशन क इसी भेद को स्वीकृति देना है । उसका कथन है कि जहा तक सत्य के मून रूप म सम्बन्ध ह व दोनो (कवि और दाशनिक) एक दूसरे के अधिक निकट ह अवश्य पर साधन और प्रयाग की दष्टि मे उनका एक होना सहज नहा । दाशनिक बुद्धि के निम्न स्तर स अपनी खोज आरम्भ करके उस सूक्ष्म बिन्दु तक पहुचा कर सन्तुष्ट हो जाता है । अन्तजगत का सारा वभव परख कर सत्य का मूल्य आवन का उसे अवकाश नही भाव की गहराई म डूबकर जीवन की धाह लेन का उमे अधिकार नही । वह ता चितन जगत का अधिकारी ह । (किन्तु) काव्य म बुद्धि हृत्त्य से अनुशासित रह कर ही सक्रियता पाती है वसी स उसका दशन न बौद्धिक तक प्रणाली है और न सूक्ष्म बिन्दु तक पहुचने वाली विशप विचार-मदति । वह तो जीवन का चेतना अनुभूति के समस्त वभव के साथ स्वीकार करता है । अत कवि का दशन जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है । दशन म चेतना के प्रति नास्तिक की स्थिति भी सम्भव है परन्तु काव्य म अनुभूति के प्रति अविश्वासी कवि की स्थिति असम्भव ही रहेगी । जीवन के अस्तित्व को गून्य प्रमाणित करके भी दाशनिक बुद्धि के सूक्ष्म बिन्दु पर विश्राम कर सकता है परन्तु यह अस्वीकृति कवि के अस्तित्व को डाल स टूट पत्त की स्थिति दे देती ह ।<sup>2</sup> आशय यह है कि बुद्धि द्वारा विश्व को समचने का प्रयत्न दशन है और प्रतिभा अथवा

1 While both philosophy and poetry aim at the same end their starting points are different They approach reality from different angles Ibid p 163

२ महादेवी वर्मा—जीपशिखा १९४५ चिन्तन के कुछ दशन पृ० ६



अनुभूति द्वारा विश्व के रहस्य को हृदयगम करने का नाम कविता है। दशन विश्व के सत्यभूत वास्तविक स्वरूप को देखता है काय उस मूर्तित करता है। दशन हमारी बुद्धि को सतुष्ट करता है और काव्य हमारी कल्पना और आत्मा के निये मधुमय भोजन प्रस्तुत करता है। दशन तक प्रणाली का अवलम्बन करता है और उपदेश पर बल देता है किन्तु काव्य की परिणति आनन्द में हाती है तब तथा उपदेश से उसका सीधा सम्बन्ध नहीं है। काय संहृदय को उदात्त भावी की आर अनामास ही उमुख कर देता है।

काय और दशन में एक और भेद किया जा सकता है। दार्शनिक चिन्तन व्यवस्थित होता है। जीवन पर विधिपूर्वक किसी विशद पद्धति से विचार करना दशन है। यथार्थिक अध्ययन उसकी प्रशस्ति है। किन्तु कवि जीवन पर विचार करते समय प्रायः किसी नियम अथवा परिपाटी का अनुगमन नहीं करता सम्भवतः इसीलिए उस निरकुश कहते हैं।

काव्य और दशन में भेद जानने के उपरांत यह स्मरण रखना आवश्यक है कि दोनों का लक्ष्य एक है अर्थात् सृष्टि के रहस्य को समझना। सृष्टि का रहस्य समझने के लिए दशन विश्व को सिद्धान्तों के भीतर गणना है। और जब वे ही सिद्धान्त भावना और प्रतिभा का अंग बनकर हमारे सामने आते हैं तब वे काव्य का स्वरूप धारण कर लेते हैं। किन्तु जब तक वे बौद्धिक धरातल पर रहते हैं तब तक दशन और काय में अन्तर बना रहता है। अतः दशन का काव्य में दीक्षित होने के लिए अपनी विभाजक रेखाओं को काय के समीप और कल्पना में विनीत कर देना होता है। इस प्रकार काव्य की भावभूमि में दशन अपनी विशदताओं को छोड़कर सजीव हो उठता है। इसी से डॉ० राधाकृष्णन ने कहा है कि काय में दशन प्राणवान बन जाता है।<sup>१</sup> कहना न होगा कि विश्व का समूचा भक्ति एवं रहस्यवादी काव्य दार्शनिक सिद्धान्तों एवं धार्मिक भावनाओं की भावमयी अभिव्यक्ति ही है। इसमें यह निष्पन्न निकलता है कि श्रेष्ठ काव्य का मूल दशन में निहित है। थोड़ा विस्तारपूर्वक विचार कर लेना अनुचित न होगा।

### श्रेष्ठ काव्य का मूलाधार—दशन

काव्य के विधायक तत्वा में यद्यपि भाव-तत्त्व का प्रधान स्थान है

तथापि उसमें ज्ञान का पूणत बहिष्कार नहीं किया जाता। सच तो यह है कि ज्ञान (सत्य) ही काव्य एवं दर्शन का आधार बिन्दु है। ज्ञान के साथ हमारे भाव लगे रहते हैं जैसे मित्रा के दुःख में कष्टभाव और अत्याचारी को देखकर क्रोध का उदय होना स्वाभाविक है। भावों के साथ क्रिया का भी निवृत्तस्थ सम्बन्ध है जस प्रेम में स्वागत और घृणा में दुत्कारने की क्रिया दर्शन का मिलती है। यद्यपि हमारा ज्ञान भी अभिव्यक्ति चाहता है और उसका परिणाम किसी न किसी क्रिया में होता रहता है किन्तु भावों में अभिव्यक्ति और क्रिया की जितनी तीव्र प्रेरणा रहती है उतनी कोरे ज्ञान में नहीं। शुद्ध ज्ञान का अव्यय दर्शन का क्षेत्र है, किन्तु वाच्यगत ज्ञान शुद्ध ज्ञान के रूप में उपस्थित नहीं किया जाता वरन् उसमें भावना का रस मिला कर उसे ग्राह्य एवं सवेदनशील बनाया जाता है।

साहित्य में विचार की निरपेक्षता जसी कोई वस्तु नहीं होती। उसे तो भाव और विचार के योग से मधुर रसायन तयार करना ही इष्ट होता है।<sup>1</sup> गास्वामी तुलसीदास जी ने निमल काव्य सृष्टि के लिए भाव के साथ साथ विचार के हेतु भी अपनी तीव्रवाक्या प्रकट की है—

हृदय सिन्धु मति सीप समाना । स्वाती सारद कर्हिहि मुजाना ।

जा बरसइ वर वारि विचार । हाहि कवित मुक्तामणि चारु ॥

यहाँ पर 'मति सीप समाना' और 'वर वारि विचार' द्वारा हृदय सिन्धु में सुंदर मुक्तामणि रूपी कविता का सज्जन दिखाकर काव्य में ज्ञान-तत्व की आवश्यकता अथवा महत्ता स्थापित की गई है। हमारे हृदय की भावनाएँ प्रायः अव्यवस्थित रहती हैं। बुद्धि उनमें व्यवस्था स्थापित करने में सफल होती है। अतः कवि बुद्धि तत्व की अव्यवस्था को वर सकता है। वास्तव में सत्वाव्य भावनाओं और विचारों का सम्मिश्रण है। केवल भाव भूत हैं। विचार द्वारा जब तक भाव भ्रष्ट न होंगे तब तक सच्ची अनुभूति नहीं हो सकती अतः सच्चा काव्य भी नहीं हो सकता।

इस प्रकार काव्य में हृदय पक्ष और बुद्धि पक्ष का सन्तुलन आवश्यक है। ज्ञान मूल्य भाव अर्थात् और भाव मूल्य ज्ञान पक्षों के समान हैं। बाबू गुणावराय के अनुसार सांख्य शास्त्र के प्रकृति और पुरुष के अर्थात् पुरुष-न्याय में

1 In literature there is no such thing as pure thought thought is always the handmaid of emotion

काव्य गतिशील होता है। वेद की ऋचाएँ इसका प्रमाण हैं। वे ज्ञान और भाव के युगपत् संयोजन के कारण दशन और काय दोनों को अपनी परिधि में परिवेष्टित कर लेती हैं। कालान्तर में (ज्ञान) को ही एकमात्र प्रधानता देने के कारण दशन काय से पृथक् हो गया किन्तु काय के लिए ज्ञान का आमूल बहिष्कार न तो सम्भव था और न आवश्यक।

काव्य एक कला है अतः इसका उद्देश्य दशन की गुत्थियाँ सुलझाना नहीं हो सकता। किन्तु बिना दार्शनिक दृष्टिकोण के काय का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। काय के लिए सत्य का सम्यक् स्पष्टीकरण आवश्यक है। डा० राधाकृष्णन के शब्दों में काय ज्ञान की सृष्टि में सफल नहीं हो सकता यदि वह अपने स्वरूप द्वारा शाश्वत की अभिव्यक्ति नहीं करता।<sup>1</sup> अरस्तू का कथन है कि काय समस्त विषयों में सबसे अधिक दार्शनिकता लिए हुए है क्योंकि उसका उद्देश्य सत्य को पानना है।<sup>2</sup> इस प्रकार श्रेष्ठ कवि वह है जो प्रत्येक अंश में पूर्ण को देखता है और अपने काव्य को पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति का साधन बनाता है। अतः यह कहने के बजाय कि दर्शन और काय परस्पर विरोधी है यह कहना अधिक समीचीन होगा कि काव्य को अपनी नित्यता के लिए अनिवार्यतः दार्शनिकता लिए जाना चाहिए।

सादे तौर पर काय के दो वर्गीकरण किये जा सकते हैं—(१) यथायवानी (२) आदर्शवादी। काव्य का यथायवानी दृष्टिकोण जो ब्राह्मरूपा से सम्बन्धित है और आदर्शवादी दृष्टिकोण जो सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति पर बल देता है दशन के दो छोरों—(१) प्राकृतिक यथायवाद (Naturalist Realism) और (२) विश्वातीत आदर्शवाद (Transcendental Idealism) का घातन करते हैं।<sup>3</sup> आचार शास्त्र में एक को सुखवाद (Hedonism) और दूसरे को संन्यास (Asceticism) कहेंगे।<sup>4</sup> किन्तु जीवन के लिए ये दोनों दृष्टिकोण अलग-अलग हैं। अध्यात्म दशन हम यह बतनाता है कि आदर्श यथायव में ही निहित है—*The real is the rational* जो सत्य है वह बुद्धि गम्य है। अतः दोनों में से एक को सत्य कहना और दूसरे को निरर्थक मानना गड़बड़ में डालना है। केवल यथायव की चाट ही नहीं बल्कि आदर्श की कामना

1 The Philosophy of Tagore p 127 Radha Krishnan

2 Ibid p 127

3 Ibid p 139

4 Ibid p 139

भी जीवन को कल्याण माग की ओर ले जाने में समर्थ होती है। यथाथ का चित्रण यदि काय में स्वाभाविकता और संवेदना उत्पन्न करता है तो आदर्श का संकेत उसे मंगलमय बनाता है। वास्तव में यथाथ आदर्श को और जड़ चेतन को छिपाए हुए है और कवि कर्म की कुशलता उसी आध्यात्मिक सत्य का उदघाटन करने में है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार भी ( भौतिकवाद ) और आदर्शवाद (अध्यात्म) दोनों अलग-अलग हैं। उनके विचार में समस्त भूमण्डल परम चेतन में आवृत है— एक ऐसा परम चेतन जो केवल कल्पना की उपज नहीं है अपितु जिसकी ओर सभी वस्तुएँ गतिशील हैं। उस परम चेतन को मूल्य व प्रकाश पृथ्वी की हरीतिमा वसन्त की सुपमा और शीतकाल के प्रातःकालीन निस्वन में देखा जा सकता है। विश्व में सबकुछ परम चेतन विद्यमान है और अपना आभास दे रहा है<sup>1</sup>। इस प्रकार सच्चा कवि वह है जो यथाथ को आदर्श की ओर ले जाने<sup>1</sup> अथवा वस्तु में निहित आत्मा को व्यक्त करने में व्यस्त है। किन्तु ऐसा उसी समय सम्भव है जब कवि आध्यात्मिक भावना से अभिभूत हो। आध्यात्मिक भावना से अनुप्रेरित होकर जब कवि वस्तु को स्पष्ट करता है तब वस्तु अपनी भौतिकता छोड़ देती है और जो सनीम और अपूर्ण है वह असीम और पूर्ण बन जाता है। उस विरोध मनोदशा में आध्यात्मिकता से अभिभूत कवि का हृदय वस्तुओं में निहित सत्य को पा लेता है। हार्बर्ट के अनुसार यही आध्यात्मिक दृष्टि कवि कर्म की सर्वोत्तम कसौटी है। कवि को उसी पर निर्भर रहना चाहिए इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान पर नहीं<sup>1</sup>। यही पर कवि और दार्शनिक का दृष्टिकोण भौतिकवादी अथवा वचनानुसारी से भिन्न हो

1 I believe that the vision of Paradise is to be seen in the sunlight and the green of the earth in the following streams in the beauty of spring time and the repose of a winter morning Every where in this earth the spirit of Paradise is awake and sending forth its voice  
(Shantiniketan, by W W Pearson Epilogue by Rabindranath Tagore)

2 The spiritual vision is the best and truest standard for him He should depend upon it and not at all upon the visible objects perceived by external senses Harvell's Indian sculpture and Painting, P 54

जाना है। भौतिकवादी विश्व को खण्ड खण्ड करके देखता है अतः उस भिन्न भिन्न वस्तुओं में भिन्न भिन्न गुण दिखाई देते हैं। किन्तु कवि और दार्शनिक के निकट वस्तुओं का पारस्परिक अथवा अविरोध वास्तविक नहीं होता। प्रकृति का सौंदर्य और नियम कवि की अन्तर्दृष्टि और दार्शनिक के मस्तिष्क में समान रूप में जाते हैं। दार्शनिक तक के आधार पर सिद्ध करता है कि विश्व की समस्त विभिन्नताएं आन्तरिक एकता से अभिभूत हैं और कवि उसी आन्तरिक एकता विश्वात्मा को सौंदर्य के माध्यम से हृदयगम करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार काव्य मानवात्मा द्वारा प्रकृति को रूप-व्यापारों में निहित आध्यात्मिक सत्य एवं सौंदर्य को हृदयगम करने का महान प्रयत्न है। इसी से डा० राधाकृष्णन ने कहा है जो कवि विश्वात्मा में विश्वास नहीं रखता या वह व्यक्ति जो समझता है कि ईश्वर समारंभ नहीं है क्योंकि उसका अधिवास स्वर्ग है महान कवि नहीं हो सकता।<sup>1</sup> अतः उनका मत है कि सर्वकाव्य का आधार वह दर्शन है जिसके अनुसार ईश्वर सृष्टि में सर्वत्र व्यापक है।<sup>2</sup> भारतीय कवि के लिए सृष्टि में परम सत्ता की स्थिति दार्शनिक कल्पना मात्र नहीं है अपितु वह उसके लिए उत्तरी ही सत्य है जितना कि सूर्य का प्रकाश अथवा उसके पगतल की पृथ्वी।<sup>3</sup>

साधारणतया बुद्धि द्वारा सत्य की खोज करने वालों को दार्शनिक कहा जाता है। किन्तु केवल बौद्धिक धारणाओं द्वारा दार्शनिक सत्य को पालना सम्भव नहीं है। इसके लिए प्रातिभान और साधना अपेक्षित है। अतः यदि दार्शनिक से अभिप्राय बौद्धिक मदारी से है तो दर्शन का काव्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। किन्तु यदि दार्शनिक से अभिप्राय है वह व्यक्ति जो प्रतिभा द्वारा आत्मा की गहराइयों में उतर चुका है तो अवश्य ही वह कवि का सहधर्मो है जो आत्मा का सन्दर्शाहक है। उपनिषदों के प्रणता ऐसे ही दार्शनिक कवि थे। फारसी के श्रेष्ठ कवि सूफी और रहस्यवादी थे जिनके जीवन का लक्ष्य आत्मानन्द की प्राप्ति था। हिन्दी के भक्त एवं सन्त कवियों कबीर दाद गूर मीरा आदि का अभीष्ट भी आत्मानन्द की ही प्राप्ति है। अतः डा० राधाकृष्णन

1 Radha Krishnan The Philosophy of Tagore P 142

2 It is a philosophy of divine immanence that should be at the basis of true and great poetry Ibid, P 142

3 Rabindra Nath Tagore Personality, P 27

का यह कथन यथाथ है कि 'यन्त्रि कवि दाशनिक नहीं तो वह कुछ भी नहा है। एक सच्चा कवि दाशनिक और एव सच्चा दाशनिक कवि अवश्य होगा।<sup>2</sup> एक बात और है काव्य का विषय जीवन और जगत है। जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति उसी समय सम्भव है जब हमारा हृदय विशाल उदार एव पवित्र हो। हृदय के ये गुण आदर्शों के सहारे ही विकसित किय जा सकते हैं और आदर्शों की अभिव्यक्ति दशन म होती है। अत हमारे विचारो तथा भावा को उदात्त बनाने का बहुत कुछ ऋय दशन का है। विचारो और भावा को उदारता पर ही काव्य का सौदय निभर करता है। जिस काव्य म विचार और भाव जितने ही श्रेष्ठ और उदात्त होंगे वह काव्य उतना ही श्रेष्ठ समथा जायेगा। अतएव काय का अपनी श्रेष्ठता स्थिर करने के लिए दाशनिक आदर्शों का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है। इसी सं जब काय दाशनिक किंवा आध्यात्मिक स्फूर्ति का साधन न रह कर साधारण मनोरजन की सामग्री बन जाता है तब वह काय की दष्टि स अपना वास्तविक स्वभाव खो देता है। इस सम्बन्ध म राधाकृष्णन का निम्न कथा दष्टव्य है -

सत्काव्य मे यथाथ को आदर्श और आदर्श का यथाथ रूप म चित्रित किया जाता है इस प्रकार कवि को एक लोकोत्तर मौलिक सत्य की उपनधि हो जानी है। जसा कि टेनिसन ने कहा है काव्य यथाथ मे अधिक सत्य है। अत महान काय के लिए आध्यात्मिक अथवा दाशनिक दष्टिकाण अपनाता आवश्यक है। इस दाशनिक दष्टिकोण के अभाव म महान काय की सृष्टि नहीं हो सकती। काव्य उत्तिया द्वारा हम मुग्ध कर सकता है अपने कौशल स हम चकित कर सकता है अपनी गरिमा स हमारे हृदय को उद्वलित कर सकता है अपने विभिन्न रूपो स हमारा मनोरजन कर सकता है किन्तु उसम अन्तद ट्टि अथवा आध्यात्मिक दष्टि का अभाव है ता वह काव्य-युग स च्युत होकर मात्र तुक्वन्दी रह जायगा।<sup>1</sup>

1 The Philosophy of Tagore P 165

2 In true poetry the real is idealised, and the ideal realised, and we have quite a genuine but a higher kind of real object. As Tennyson puts it, poetry is truer than fact. So the greatest poetry must embody an ideal vision or a true philosophy. Without this philosophic vision no great poetry can exist. Poetry may charm us by its wit surprise us by its

## काव्य दर्शन की पूर्णता है

दर्शन जगत का बुद्धि वन से समझने का प्रयत्न करता है और वाच्य भावना की भव्य भित्ति पर खड़ा होकर उमका (जगत का) रहस्यादघाटन करता है। किन्तु यह कवना कि दर्शन जो चिन्तन करके निश्चित कर देता है उस निश्चय को साहित्यकार जनता के हृदय में उतारने का प्रयत्न करता है<sup>१</sup> केवल अशत ही ठीक हा सकता है। हम मन से तो वाच्य का स्वतंत्र चिन्तन ही सकट में पड़ जायगा और कविमनीषी परिभू स्वयंभू की मर्मादा जाती रहेगी। वास्तव में तो यह आवश्यक है और न सम्भव है कि कवि जिस निरकुश कहा जाता है दाशनिक् का अनुगामी बना रहे। वस्तुतः दाशनिक् और कवि दोनों अपने-अपने क्षेत्र में स्वायत्त चिन्तक हैं। कवना अवश्य है कि जिस सत्य का निरूपण दाशनिक् तक से करता है उसी सत्य को कवि भावना के तार से सहज ही हृदय में उतार देता है। तुलसी का मानस कवना प्रमाण है। मानस सत्वाच्य के साथ-साथ दर्शन की अपूर्व निधि भी है। इस कथन में सम्भवतः अत्युक्ति न होगी कि जिस तथ्य में दाशनिक् अपने तर्क जाल से बड़-बड़ पौधे तयार करने के पश्चात् भी स्थायित्व नहीं पाता उममें कवि अपने भावयोग में स्थायित्व लाने में सद्यः सफल हो जाता है। भक्ति का प्रतिपादन बड़-बड़ मेधावी व्यक्तियां न किया किन्तु जो सफलता तुलसी को मिली वह अप्रतिम है। कारण तुलसी ने बुद्धि का नहीं हृदय का पकड़ने का प्रयास किया। भावानुबूझ ही वह कह उठ—

मोह न नारि नारि के रूप। पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥

पुनि रघुवीरहि भगति पियारी। माया सनु नतकी विगारी ॥

भगति सानुवन रघराया। तारि निहि डरपन अनि माया ॥

स्पष्ट है कि उक्त तर्क एक भावुक कवि का है दाशनिक् का नहीं।

कारे ज्ञान को केवल अपनी समझकर कवि भावना और अनुभूति के सन्तारे

skill thrill us by its variety full us into sleep by its rhythm and satisfy our craving for extra ordinary incident, but let it lack the vision it sinks to the level of verse and ceases to be poetry

The Philosophy of Tagore P 145

१ विश्वम्भर नाथ उपाध्याय हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पद्धतुमि प्रथमवार पृ० २

उसे (ज्ञान) अत्यन्त मार्मिक और हृदयग्राही बनाकर सामाजिक क्षेत्र में उपस्थित करता है। तसंबुध जिस परम सत्ता का स्पष्टीकरण बुद्धि द्वारा नहीं कर सका उसे जायसी ने अपने मधुर सकेतो द्वारा सहज ही हृदयगम बना दिया।<sup>१</sup> रहस्यवाद में यदि आत्मा और परमात्मा का निरूपण दाशनिक पद्धति पर किया जाता तो कबीर और रवीन्द्र की क्या गति होती कहा नहीं जा सकता। दाशनिक कहते-कहते थक गया कि आत्मशुद्धि से हृदय में परम तत्व का साक्षात्कार होता है और आत्मा परमात्मा से मिलकर परमानन्द का अनुभव करती है। किंतु उसका यह याख्यान कितनो को रचा? परन्तु जब इसी पक्ष को सन्त कबीर न कविता के माध्यम से व्यक्त किया तब हमारा मानस मयूर नाच उठा। किस प्रकार विरहिणी आत्मा अपने आराध्य से मिल कर आनन्दानुभव करती है देखते ही बनता है—

दुलहिनी गावहु मगलचार ।

हम घरि जाये हो राजाराम भरतार ॥

तन रति करिहौं, मन रति करिहौं पाचौ तत्व बराती ।

रामदेव मारे पाहुन आय मैं जोबन मदमाती ॥<sup>१</sup>

कहने की आवश्यकता नहीं कि रहस्यवादी कवियों ने दशन द्वारा निरूपित आत्मा परमात्मा की एकता को स्त्री पुरुष के रूपक द्वारा अभिव्यक्त कर दाशनिक का काम पूरा तथा बुद्धिगत तथ्य को स्वानुभूत रूप में प्रकट कर दिया है। रहस्यवाद की गुत्थियों को न समझने वाले और आत्मा-परमात्मा के प्रति अविश्वासी भी जीवन के माध्यम से व्यक्त होने वाले मीरा और

१ बहुत जोनि जोति ओहि भई ।

रवि ससि नखत दिपाहि ओहि जोगी । रतन पदारथ मानिक भोती ॥

जह जह बिहसि सुभावहि हसी । तह तह छिटकि जोति परगसी ॥

× × ×

नयन जो देखा कवल भा निरमन नीर सरिर ।

हसत जो देखा हम भा दसन जोति नग हीर ॥

× × ×

अनु-धनि । तू निसिअर निमि माहा । हौं निनिअर जेहि क तू छाहा ॥

चांहि कहाँ जोति ओ करा । सुरज क जोति चाँ निरमरा ॥

—रामचन्द्र गुवन जायसी ग्रन्थावली पदभाषित पृ० ४४ २५ १३५ ।

२ श्यामसुन्दर दास कबीर ग्रन्थावली पृ० ८७



महान्वी के रहस्य गीता को बनी लगन से पढत हैं। बात यह है कि कवि का व्यापार हृदय का व्यापार है। उसके भाव अन्तस से उन्भूत हाते हैं और जो हृदय म नि मृत है उसकी पहुच हृदय तक अवश्य होती है। एक हृदय का स्पन्दन दूसर को स्पन्दित किय बिना नही रह सकता। यदि तक् तक् का जनक है तो आवेग भी आवेग का उदगम है। तक् जब भावयोग से सबल ग्रहण कर हमारे सामने आता है तब वह अत्यन्त कोमल और सरस हो उठता है। अत हम काव्य द्वारा जगत के सत्म का सहज ही हृदयगम कर लेते हैं। काव्य के वस गुण को राधाकृष्णन ने इस प्रकार यकन किया है—If the truth of the world cannot be hammered into a mans head by the engines of argument and proof the beauty of the poet's verse may yet win a way to the heart and succeed where reasoning has failed <sup>1</sup>

दशन म कवल धारणाओ को निश्चित करने की शक्ति होती है। वह जीवन जगत ब्रह्म और उसकी शक्ति माया आदि पर अपना तक् सम्मत मत व्यक्त कर तिरोहित हा जाता है। कवि आग बत्कर उही धारणाआ का जीवन म साक्षात्कार कराता है। दशन को यदि हम बुद्धि का विलास कहे तो काव्य को हृदय का उल्लास कहना समीचीन हागा। वस्तुत काव्य अपनी पीयूषवर्षों घनमाला के मध्य नान की विद्युत छिपाये रहता है जो तमस के आवरण (अज्ञान) को सद्य चीर दती है। इस दष्टि से काव्य दशन की पूणता भी है। अगरज आनाचक मथ्यू अर्नाल्ड<sup>2</sup> और योगी अरविन्द<sup>3</sup> ने स्पष्ट शब्दो म यह घोषणा की है कि आज जा घम और दशन क रूप म भाय है कल उसना स्थान काव्य ग्रहण कर लेगा।

1 The philosophy of Tagore P 168

2 More and more mankind will discover that we have to turn to poetry to interpret life for us to console us to sustain us Without poetry our science will appear incomplete and most of what now pas es with us for religion and philosophy will be replaced by poetry  
Mathew Arnold Essays in criticism second series 1935, Ch I

3 The future poetry will be the voice and rhythmic utterance of our greater our total our infinite existence and will give us the strong and infinite sense the piritual and vital joy the exalting power of a greater breath of life  
Sri Anrobindo The future Poetry First Edition, 1953, P 329-30

# छोयावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ और समकालीन पृष्ठभूमि

## सांस्कृतिक जागरण की परम्परा

भारतवर्ष का इतिहास इस तथ्य की घोषणा करता है कि भारतीय सस्कृति अपनी जीवन शक्ति के क्षीण होने पर जब-जब विदेशी किन्तु बलवती सभ्यताओं के सम्पर्क में आई है तब-तब उसने स्फूर्ति ग्रहण कर अपने को सशक्त सक्षम और प्रगतिगामी बनाने का प्रयत्न किया है। भारतीयों के साथ मुसलमानों और अंगरेजों के सम्पर्क-सघर्ष का इतिहास इसी की कथा कह रहा है।

विजय की आठवीं शताब्दी में यवना के आगमन के समय भारत की प्राचीन सस्कृति का तेजोमय घुँघला पड़ने लग गया था। वैदिक और पौराणिक धर्म के विविध रूपों के साथ बौद्ध और जन धर्म अपने वास्तविक आदर्शों और सिद्धान्ता से बहुत दूर हट गये थे। तान्त्रिक प्रवृत्ति बौद्धधर्म में एक मनोरञ्जक ढंग से प्रविष्ट कर गई थी। बौद्ध तान्त्रिका का विश्वास था कि वामनाएँ देवानों से मरती नहीं। अपित्त और भी अन्तस्त्रल में जाकर दिग्गज जाती हैं। अक्सर पाते ही वे उदबुद्ध हो जाती हैं और साधकों को दबोच लेती हैं। \*सोलिए उनको दबाना ठीक नहीं। उचित पथा यह है कि समस्त कामनाओं का उपयोग किया जाय तभी शीघ्र वित्त का सक्षोभ दूर होगा और सच्ची मिद्धि होगी।<sup>1</sup> इस प्रकार बौद्ध धर्म का साधना-क्षेत्र में कामोपयोग

का प्रवेश हुआ। सिद्धि के लिए गुप्त मन्त्रों का जप आचार विहीन गुप्त क्रियाओं विनापकर निम्न जातियों की स्त्रियों के सग सम्भोग आदि को स्थान मिला। यागिनियों मनुष्य की स्वभावगत कामुकता ब्रह्मण म सहायक होने लगी और धार्मिक चेतना पारमार्थिक उद्देश्य से विमुख हो गई। विश्व की नवी शताब्दी के लगभग तन्त्रविद्या की गोपनीयता हटाकर सुलभममुल्ला मन्त्रयान तन्त्रयान और ब्रह्मयान का अध्ययन होने लगा और प्राय सभी तान्त्रिक देवताओं के मन्दिर बन गए। ब्रह्मयान का प्रचार भी जनता की भाषा (प्राकृत) में होने लगा। इस तरह अनधिकारियों में रहस्य की बातें फैलाई जाने लगी। तन्त्र का सामेतिक भाषा के प्रयोग का प्रचार जनता में होने लगा जिससे झलकर तान्त्रिक सिद्धियों का दुरुपयोग और पंचमकार का दूषित प्रचार हुआ। दुराचार फैलने लगा।<sup>१</sup> बौद्धों के अतिरिक्त चण्डिका व पाचरात्र शक्ति व पाशुपत कालमुख कार्यान्वित रसेश्वर आदि सम्प्रदाय इसी वय के हैं। इन सब में साधना का उक्त बौद्ध प्रणयियों का कुछ हद तक के साथ चलन हुआ। समाज का बहुत बड़ा तग इन कामाचारियों का शोडा क्षय बना। वह अपनी अपनी रीति और परम्परा से अपनाये सम्प्रदाय के इन विकृत भागों पर चलने लगा।<sup>२</sup> शाक्त (सकट या सारवत) मद्य-मासादि व व्यवहार के लिए और मिथ तान्त्रिक आदि स्था सम्बन्धी आचारों के कारण घणा की दृष्टि से लक्ष्य जान लगे। इन अनाचारों के साथ ही इन सिद्धा और साधकों की धार्मिक क्रियाओं भी दूब रही थी। इन धार्मिक क्रियाओं के उद्धार के लिए ही उस समय नाथ-सम्प्रदाय की सृष्टि हुई।<sup>३</sup> सिद्ध सम्प्रदाय के महान गुरु शारङ्गनाथ का आविर्भाव विश्वम सवत की दशवी शताब्दी में हुआ।<sup>४</sup> उस काल की धार्मिक लशा के विषय में डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं —

उन दिनों भारतीय धर्म-साधना की अवस्था विचित्र थी। गुद जीवन साहित्य बलि और अज्ञान ब्रह्मचय की भावना उन दिनों अपनी निम्नतम सीमा तक पहुच चली थी।<sup>५</sup> विश्व की ग्यारहवी शताब्दी तथा उसके आग बौद्ध धर्म

१—रामानुज गौड हिन्दुत्व पृ० ७०४

२—गो० भगीरथ मिश्र-हिन्दू साहित्य का उत्थम और विकास पृ० १६ ५७

३—रामानुज गौड-हिन्दुत्व पृ० ७०१

४—गो० हजारीप्रसाद द्विवेदी-नाथ-सम्प्रदाय पृ० १८८

५—वही

के हिन्दू धर्म में अतर्भाव हो जाने के साथ ही शकराचार्य के मामावादा, सन्यास चान तथा योग के मार्गों का देश के धार्मिक क्षेत्र में इतना प्रचार हुआ कि जनता लोक धर्म और लोक जीवन से उदासीन हो लगी। ससार का याव हारिक पक्ष छोड़ कर लोग परोक्ष चिन्तन में मग्न हो गये। अधिकारी साधवा की देखा-देखी साधारण पुरुषार्थ और बुद्धि वाले लोग भी जो बुद्धि के परिष्कार और चान के साधन के लिए बहुत अशांति अयाम्यथ अपन को ब्रह्म समझने और परम तत्व को पहचानने का राग रचन चग गये। इस प्रवृत्ति के कारण समाज में दम्भ और अकमण्यता वेग से फल रही थी।<sup>१</sup> सामाजिक मर्यादाओं के पालन में भी शिथिलता आ गई थी जिससे लोक चारित्रिक दुबलताओं के शिकार हो रहे थे। इसी समय इसलाम ने धक्का दिया। यद्यपि यह धक्का नवीन नहीं था किन्तु इसका वेग प्रबल से प्रबलतर होता गया। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में जब अरबों के साथ से तुर्कों के हाथ में इसलामी दुनिया का नेतृत्व आया तब इसलाम ने बड़ी तजी से पश्चिम और पूरब की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया। उस समय भारतवर्ष छोटे छोटे ( दिल्ली कन्नौज कालिंजर ग्वाजियर चदेरी उज्जैन बिहार बगान आदि ) राज्या में बंटा हुआ था। लोग आपस की फूट और भिन्न्याभिमान में चूर थे। ऐसे अवसर से लाभ उठाकर अकेले महमूद गजनवी ने हिन्द पर लगातार सत्तरह हमल किये। उसने बड़े-बड़े मन्दिर ( जिसमें सबसे प्रसिद्ध काठियावाड में सोमनाथ का मन्दिर था ) लूटे मूर्तियाँ ताडी और अपार धन राशि समेट कर बतन की राह ली। किसी ने डटकर उसका प्रतिरोध नहीं किया। बुजदिली का यह हाल था कि लुटेरा का सघटित विरोध करने के स्थान पर देवी-देवताओं से रक्षा की याचना की गई। इसमें उस समय की राजनीतिक और धार्मिक स्थिति का खोललापन विन्ति होता है। ऐसी परिस्थिति में मुसलमान भारत में शीघ्र ही सत्ताह्व हाकर बत प्रयोग तथा प्रलोभन से हिन्दू जनता का इसलाम धर्म में दीक्षित करने लगे। इतना ही नहीं हिन्दुओं के शोषण तथा उत्पीडन के लिए उन पर जजिया का कर भी लगाया गया और उसे शान्तिपूर्वक अपन धार्मिक उत्सव समारोह मण्यन्न करने की मुविधा छीन ली गई। फलतः शान्ति मन्नाप और मुक्त के नितान्त और निरन्तर अभाव के बीच हिन्दू-जनता में निराशा का साम्राज्य हो गया। किन्तु जसा कि रामधारी सिंह तिनकर ने कहा है कि

१—डा० दीन दयानु गुप्त अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० ३५

२—डा० ईश्वरीप्रसाद, हिस्ट्री आड मडिवन इण्डिया पृ० ४६५ ४७१

हिंदत्व का स्वभाव रहा है कि वह कठिनाइयों के अभाव में तो जाता है और निगा उसकी तब टूटती है जब उसके अग पर बच्चापात किया जाय।<sup>1</sup> निदान इसनाम के भयकर आपात से हिन्दू धर्म और सस्कृति के महासिन्धु में फिर से ज्वार आया और भारतीय धार्मिक आन्दोलन मुमलमान धर्म प्रचार की प्रतिक्रिया रूप में उससे प्रहारों से बचने के लिए बहुलता के साथ खट होगये। इस प्रकार सामाजिक मर्यादाओं के उन्मूलन के उम हीन युग में मनस्वी सन्ता ने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा सामाजिक और धार्मिक मूल्यों की रक्षा का व्रत लिया। आगे चलकर जब हिन्दुओं और मुसलमानों ने यह यथाय अनुभव किया कि दोनों को एक ही देश में रहना है तब धीरे धीरे इसनामी और भारतीय सस्कृतियों का समन्वय प्रारम्भ हुआ जिससे कला और साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण आदान प्रदान हुआ। इसी से मध्ययुग में निगुणिय सन और सूफी हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता स्थापित करते दृष्टिगत होते हैं। नानक बशीर दादू आदि ऐसे ही वातावरण विवा दो महान धर्मों तथा सस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न परिस्थितियों की उपज हैं। ये सुधारवादी आन्दोलन १४वीं शती से १७वां शती तक चलते रहे। उनके द्वारा देश के सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन में पवित्रता और दृढ़ता आई। किन्तु १८वीं शती के समाप्त होते-हाते मध्यकालीन सम्मता के विरुद्ध सम्बन्ध सधप में उनकी शक्ति सप चुकी थी और विरोधी राजनीतिक परिस्थितियाँ का भी उन पर बुरा प्रभाव पड़ा था अतः भारतीय सस्कृति और धर्मों के लिए दूसरा सस्कृतकाल १९वीं शती में भारत में अंग्रेजों के पूंजाल से सत्ताहङ्क हो जाने पर प्रारम्भ हुआ। जिसके साथ ही आधुनिक काल की पृष्ठभूमि का बनना प्रारम्भ होता है।

### पृष्ठभूमि

सन १७५७ ई० में प्लासी युद्ध की विजय से बंगाल में अंगरेजों की प्रभुता का सूत्रपात हुआ और सन १७६५ ई० में बकमर की विजय ने इस काय को पूरा किया। इस युद्ध में केवल मीरकासिम ही की नहीं प्रत्युत अवध के

१—रामधारी सिंह शिन्कर—सस्कृत के चार अध्याय प० ४३५

२—डा० विजयेन्द्र स्नातक—राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य

डा० दीनानाथ गुप्त द्वारा लिखित भूमिका प० ४

३—A C Majumdar—An Advanced History of India

नवाब और मुगल सम्राट की भी पराजय हुई जिससे उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग में अंग्रेजों की धाक जम गई। बक्सर के युद्ध के पश्चात् अवध का नवाब फिर कभी अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ने का साहस न कर सका। सन १७६१ ई० में बर्माटक युद्ध में अंगरेजों ने फ्रांसीसियों को पराजित किया और सन १७७० ई० में फ्रांस की ईस्ट इंडिया कंपनी विघटित कर दी गई। इसके बाद कोई योग्य राष्ट्र अंगरेजों का प्रतिद्वंदी के रूप में नहीं रह गया। अब अंगरेजों का बल भारतीय शक्तियों से ही निपटना था। १७९८ ई० में वल्लेजला ने निजाम को अंगरेजी सरकार के साथ सहायक संधि की शर्तों को स्वीकार करने पर बाध्य किया जिसके अनुसार यह निश्चित हुआ कि निजाम अपनी वदेशिक नीति में अंगरेजों की आधीनता स्वीकार करेगा। १८०० ई० के बाद अंगरेजों और निजाम के बीच जो संधियाँ हुईं उनके परिणाम स्वरूप हैदराबाद के राज्य पर अंगरेजों की सत्ता स्थापित हो गई। १७९९ ई० में वेनेजुएला ने टीपू को परास्त कर मसूर राज्य पर आधिपत्य कर लिया। इस प्रकार दक्षिण भारत में भी अंगरेज प्रभुत्वशाली हो गए।

लाड हर्स्टिंग (१८१३-२३) के गवर्नर जनरल होने पर राजपूत राज्यों के प्रति एक निश्चित नीति अपनाई गई। हर्स्टिंग के आगमन के समय राजस्थान विभिन्न राज्यों के पुराने बरत तथा शासन-सम्बन्धी अव्यवस्थाओं के कारण जजर हो गया था। १८१७ ई० में दिल्ली में ब्रिटिश रेजीमंट मास्टर भटवाफ को गवर्नर जनरल से यह आदेश मिला कि वह राजपूत नरेशों के साथ रक्षात्मक संधि मित्रतापूर्ण संरक्षण और स्वाधीनतापूर्ण सहयोग की बातें चलाये। इस नीति के अनुसार कोटा बूंदी किशनगढ़ (अजमेर के निकट) बीकानेर जयपुर प्रतापगढ़ बांसवाड़ा तथा दुर्गापुर के तीन राज्यों जिन पर उदयपुर के राजवंश के नरेशों का अधिकार था और जो गुजरात की सीमा पर अवस्थित थे तथा जसलमेर और सिरोही इन सभी राज्यों के शासकों ने अंगरेजों की कंपनी के साथ संधि कर ली और अपनी स्वतंत्रता बच कर ब्रिटिश प्रभुत्व स्वीकार कर लिया।

जो हाल राजस्थान का हुआ वही मध्यभारत का भी हुआ था। मध्य भारत के दश राजाओं ने भी ब्रिटिश प्रभुत्व स्वीकार किया। सर्वप्रथम भोपाळ के नवाब ने कंपनी के साथ 'रक्षात्मक' और अधिनातापूर्ण संधि की और जज्जाडा तथा टाक के नवाबों ने भी उनका अनुसरण किया। मानवा

और बुन्देलखण्ड के छोटे छोटे राज्यों न भी अंग्रेजी कम्पनी की अधीनता स्वीकार कर ली। इस प्रकार उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ तक प्रायः सभी भारतीय शक्तियाँ का पतन हो गया जिनका उदय मुगल साम्राज्य के हासो-मुहो होने पर हुआ था। इन शक्तियों में मसूर, हजाराबाद, अवध, रहेला, अफगान आदि उल्लेखनीय हैं। मराठों से प्रथम यह किन्तु अंग्रेजों के सामने उनका भी न चली। सन् १८५७ के पश्चात् नरेशा और नवाबों का कोई ऊँचा आदेश नही रहा इतिहास इसका साक्षी है। राज्य अथवा भूमि हथिया कर केवल भाग विनाश के बीच में दिन रात सने रहने का यत्न ही शेष रह गया था। प्रजा के प्रति भी राजा या शासक का कुछ कर्तव्य है इस ओर सभी विलासी राजाओं और प्रायः उनके अच्छे शासकों का भी ध्यान नहीं गया। राजाओं और नवाबों का यह घोर पतन नीति कुशल अंग्रेजों से द्वेषा नही था। इसी से लाभ उठा कर वे भारत के बिगड़ गए बौद्ध शासकों को एक एक करके आचरणहीन और उनके राज्यों को हस्तगत कर लिया।<sup>1</sup> किन्तु १८५७ की शान्ति के उपरान्त अंग्रेजी नीति में विचित्र परिवर्तन हुआ। कुशासित भारतीय रियासतों का हट्ट कर ब्रिटिश भारत में मित्रा लेने की नीति का परि त्याग कर उन्हें कठपुतली राज्यों के रूप में अवसर आन पर अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिए सुरक्षित रखा गया।<sup>2</sup> इस प्रकार जनक सैनिक कार्यों चानो तथा राजनीतिक सम्प्रदाय द्वारा अंग्रेजों ने अपना अधिकार हिमायत से लबर किया कुमारी और सततज से लबर ब्रह्मपुत्र नदी तक स्थापित कर लिया।

जरा-जस अंग्रेजी राज्य का विस्तार भारत में हाता गया वैसे वैसे अंग्रेजों को जसा कि उनके लिए स्वाभाविक ही था अंग्रेजी शासन की नींव को सुदृढ़ करने और भारतीयों के घाव का भरन के लिए जनता के सुख शान्ति और मन बहाना के उपकरण प्रस्तुत करने की चिन्ता भी हुई। निम्न नाथ कानवानिस (१७८६-१७९३) ने भारत के शासन राजस्व और पाय व्यवस्था में बड़ महत्वपूर्ण सुधार किये। कानवानिस में कर्तव्य भावना काय पुरायणता सचार्ई दृष्टता और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा पराकाष्ठा का पहुँची हुई थी। उमने अपन स्वतन्त्रकारी के गैबस्त के द्वारा जमीनदारों के साथ मान गुजारी निश्चित करते हुए राज्य का भाग नियत कर लिया और भूमि के

1 A. C. Majumdar—An advanced History of India p 766

2 R. Palme Dutt—India Today and Tomorrow p 111

स्वामित्व के प्रश्न पर जमींदारों को कानूना स्थापित दे दी। जमींदार भूमि का स्वामित्व प्राप्त हो जाने के कारण राजभक्त हो गए जिनसे भारत में ब्रिटिश सत्ता का एक शक्तिशाली बग का पूरा महवाग तथा समर्थन प्राप्त हो गया जो १५ अगस्त १९४७ में अंग्रेजों के भारत छोड़ने के समय तक किसी न किसी रूप में बना रहा। लाड कानवालिस की आधुनिक न्याय-व्यवस्था तथा भारतीय जुवाहरी और अन्य कारीगरों के साथ उचित व्यवहार न भी बम्पनी सरकार के पक्ष में सबल लोकमत का निर्माण किया। १८१३ ई० के चाटर ऐक्ट द्वारा यह निर्दिष्ट हुआ कि बम्पनी-सरकार भारतीयों के हितों का ध्यान रखेगी और उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त करेगी। इस चाटर द्वारा भारतीय विद्याया के प्रोत्साहन एवं वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार के लिए एक लाख रुपया वार्षिक अनुदान की व्यवस्था की गई। नाड हार्डिज (१८१३-२३) के शासन-काल में शिक्षा के क्षेत्र में भारतीयों की प्रगति की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उसी के कार्य-काल में कलकत्ता में हिन्दू-बालक खोला गया हिन्दू युवकों का पारायण और एशिया की भाषाओं तथा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग प्राप्त हो गया। सन् १८३३ ई० में जो कानून बना उसका महत्व का वाड आफ डारिरेक्टमें ने इस प्रकार समझाया—

‘ इस धारा का आशय यह मानना है कि ब्रिटिश भारत में कोई शासन करने वाली जाति न रहेगी। उनकी योग्यता की दृष्टि से कुछ भी बसो दिया नहीं जाय जाति या धर्म का कोई भेद नहीं रखा जायेगा। सम्राट के प्रजाजन में सँ किसी का व सनदा नौकरिया सँ बचित नया रखा जायगा और न व सनदा नौकरिया सँ हा बचित रखे जायेंगे, यदि दूसरी बातों में उनके योग्य हो।<sup>१</sup> इस चाटर में सबसे महत्व की बात यह थी कि जब यूरोपीय और देशी प्रजाओं के हितों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न होगा तब देशी प्रजाओं के हितों का मायता दी जायेगी। लाड हार्डिज ने अपने कार्य-काल के आरम्भ में ही अपनी शान्तिपूर्ण नीति का परिचय दिया। उड़ीसा पर्वतीय जिला में लोगों में यह भ्रमपूर्ण धारणा फैली थी कि नरमपस भूमि का उबरता बनाई जा सकती है अतः वे प्रायः मनुष्यों का बंध कर उनकी बलि चढ़ा देने थे। हार्डिज ने समझा-बुझाकर तथा प्रचार-वाय द्वारा इन कुप्रथा का अन्त किया। नाड डनहोडी के समय में भारत में रत्न खानें बनी लोगों को तार की सुविधा प्राप्त हुई तथा डाक की सुविधा और सवमुत्तम व्यवस्था प्रच



वित्त हुई। उसने सिचाई के लिए नहरें खुवाई। यानामाल का सविधा के लिए सड़का का निर्माण कराया और बंगाल मद्रास तथा बम्बई के अहातो में इंजीनियरिंग कायज भी खुलवाय।

भारत में पाश्चात्य शिक्षा की दृष्टि से विनियम बेंटिंग का काय-नाल स्मरणीय है। शिक्षा के सम्बन्ध में विचारणीय प्रश्न यह था कि सरकार प्राच्य शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए हिन्दू पाठशालाओं और मुसलिम मकतबों को वार्षिक अनुदान दे अथवा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दश में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार की व्यवस्था करे। दाता प्रकार की शिक्षा पद्धतियाँ के समयका के बीच प्रखण्ड शास्त्राथ छिन्न गयी। किन्तु सना प्रथा उन्मूलन के विचार की भाँति पाश्चात्य शिक्षा प्रचलन की विचारधारा का अन्तर्गत भाग तीया न समझन किया। अन्ततगतवा मन्वाये और राममोहन राय के प्रयत्न से भारतीय भाषाओं और माहित्य के स्थान पर अंग्रेजी भाषा के पक्ष में नियय हुआ और उस शिक्षा पद्धति की नौव पडी जा भारत में आज तक प्रचलित है। किन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा जाना के लिए मुक्त मण्डलि और सुव्यवस्था के इन आनोजना में ब्रिटिश राष्ट्र अथवा स्वाथ चिमटा हुआ था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वनियो का मधुरतम स्वप्न यह था कि बन्ने में बुद्ध न्यि बिना ही भारत का धन सूत्र लटा जाय।<sup>1</sup> मावम के शासन में इंग्लैंड का भारत में दो उद्देश्य थे। पहला ध्वसात्मक और दूसरा विकासत्मक-प्राचीन एशियायी समाज का सयानाश करना और एशिया में पाश्चात्य समाज की भौतिक बुनियाद बनना।<sup>2</sup> ब्रिजन की स्वाथ-माधना के लिए ब्रिटिश मन्त्रि मण्डल को भारतीयों के हितों का हनन करना पडता था। अतः भारतीयों के स्नेह माजन बनने के लिए अंग्रेजों को बाध्य होकर भारत में काय और शान्ति की सन्तुष्ट व्यवस्था करनी पडी। उनका इस प्रयत्न से पश्चिम के उत्तर

1 The dearest dream of the merchants of the East India Company was to draw the wealth out of India without having to send wealth in return

R. Palme Dutt—India To-day and Tomorrow, p 13

2 England in Marx's view had a double mission in India one destructive, the other regenerating—the annihilation of the old Asiatic Society, and the laying of the material foundations of Western society in Asia

R. Palme Dutt—India to-day and Tomorrow, p 39

मानवतावादी यत्तिस्वातन्त्र्य समानता आदि सिद्धान्तों का भारत में प्रवेश तथा देश की भौतिक समृद्धि की वृद्धि के लिए पाश्चात्य वनानिक आविष्कारों का भी प्रचलन हुआ।<sup>1</sup> इससे स्पष्ट है कि भारतीयों की सच्ची सेवा-सहायता करना अंग्रेजों को इष्ट न था। उनके सुख शान्ति और सहयोग की तह में भयकर कूटनीति काम कर रही थी। वास्तव में १८५७ ई० के पूर्व का अंग्रेजी शासन पूर्णतया स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश था। लाड डनहोर्जी न कई लावारिस राजाओं की रियासतें जून कर ली थी और अवध की रियासत को भी कुशासन का बहाना बनाकर ब्रिटिश भारत में मिला लिया था। इसके अनिरीक्त आर्थिक शोषण भी जारी था जिससे लोग दिन दिन कगल होते जा रहे थे। रियासतों के छिनने और उनके स्थान पर विदेशी शासन स्थापित होने के कारण लोग मन ही मन कुपित हो रहे थे। परिणाम यह हुआ कि १८५७ में उन्होंने विशेषी हुकूमत के जुए को उखाड़ फेंकना का अन्तिम सशस्त्र प्रयत्न किया। इस विद्रोह का धार्मिक कारण भी था। ताड टलहौजा ने १८५० ई० में एक कानून पास कर दिया कि यदि कोई ईसाई धर्म स्वीकार कर लेगा तो सम्मिलित परिवार की सम्पत्ति पर उसका अधिकार बना रहेगा। इससे हिन्दुओं के भीतर ब्रिटिश सरकार के प्रति गहरी आशंका के भाव उत्पन्न हो गए। सना की टुकड़ियों में भी ईसाई धर्म फैलाने का प्रयास किया जाता था। ईसाइयों द्वारा स्थापित स्कूलों और कालेजों में हिन्दू और मुसलमान धर्मों की निन्दा की जाती थी और वे इन ईसाई धर्म को ही सच्चा धर्म बताया जाता था। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता ब्रिटिश सरकार को सदेह की दृष्टि से देखने लगी। निम्न लोगों ने ब्रिटिश सत्ता को उलट देने का निश्चय किया। हालांकि विद्रोह बेकार गया किन्तु उसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी तिरौटिन हो गई और भारत सरकार का शासन-भूत सीधे ब्रिटिश ताज अर्थात् पार्लियामेंट के हाथों में आ गया। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा प्रकाशित की जिससे शान्ति और विश्वास का वातावरण उत्पन्न हुआ। जो कुछ भी अशान्ति बच रही उसका कोई सहारा बाकी न रह गया था। राजा और मुख्यरूप में नवाब तहस-नहस हो चके थे। कोई नामधारी पराधीन व्यक्ति ऐसा नहीं रह गया था जिसके आस-पास लोग एकत्र हाने और पुनः कोई विप्लव खड़ा करते। निम्न लोग यह समझते लगे कि भारत में

[ छायावाद काव्य तथा दशन  
अगरेजी राज्य ईश्वर की एक देन है और लोग उसी उदासीन और अलिप्त  
भाव से अपने काम-नाज म लग गये जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक  
विशेषता है । १

शान्ति असफल तो रही किन्तु उसने भारतीयों का एक नये स्तर पर  
सोचने की प्रेरणा दी । शान्ति ने भारतीयों पर विज्ञान के चमत्कार और  
महत्व को प्रकट कर दिया । भारतवासी हड़िवादी थे और उनका दृष्टिकोण  
प्रधानत आध्यात्मिक और आदशवादी था । अतः वे विज्ञान से अभिभूत  
ऐहिकता का स्वागत करने के लिए उद्यत न थे । अतएव प्राचीन और नवीन  
विचारधाराओं में संघर्ष अनिवाप था । यह दृढ़ सन ५७ की शान्ति में प्रसृ  
टित हो गया । अन्तिम परिणाम यह हुआ कि प्राचीनता की पराजय हुई और  
जयलक्ष्मी आधुनिकता को प्राप्त हुई । सन ५७ की शान्ति ने काले बान्धो  
के बीच यही एक रजत रेखा परिलक्षित होती है । शान्ति के पश्चात् अगरेजी  
शासन की नींव दृष्टर होने के साथ ही पाश्चात्य सभ्यता के मूल्यों का समादर  
हाना प्रारम्भ हुआ । भारत में सवत्र विज्ञान के सुनभ उपकरणों का उपयोग  
होने लगा । गमनागमन के साधना में अप्रत्याशित वृद्धि आरम्भ हुई शासन में  
एकरूपता उत्पन्न हो गई व्यापार में उत्तरोत्तर उन्नति होने लगी पाश्चात्य  
शिक्षा की ओर लोग विरोध रूप से आकृष्ट होने लगे और निःसंकोच समुद्र  
यात्रा करने लग । इससे भारतीयों की उन्नति का माग प्रशस्त हो गया ।  
सक्षम में शान्ति ने मध्यकालीन व्यवस्थाओं तथा मायताओं का उन्मूलन कर  
आधुनिक बाल की व्यवस्थाओं तथा धाराओं का आराप किया । निःसन्देह  
इस शान्ति में भारतीयों को अघवार से प्रकाश में पत्तापण कराया और उनके  
समग राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन का एक नवीन  
चित्र उपस्थित किया जिससे वे सवया अपरिचित थे परन्तु वह इतना चित्ता  
बधक था कि उसका आनिगन करने के लिए सभी आतुर हो उठ ।  
वास्तव में यह एक विरोधानास है कि एक विदेशी शासन और शिक्षा  
प्रणाली भारत की मौलिक अथवा परम्परागत संस्कृति के नवोत्थान अथवा  
जागरण का हतु बनी । अगरेजी शिक्षा का प्रचलन अगरेज अधिकारियों ने शब्द  
हृदय में नहीं किया । साम्राज्यवादी की ओर से जब मकान न अगरेजी शिक्षा  
का बाध भारत पर लागू ठक उसका उद्देश्य भारत में राष्ट्रीय चेतना को जन्म  
१ पट्टानि सीतारमण-कायस का इतिहास भाग १ पृ० ५

देना नहीं था अपितु उसे आमूल नष्ट कर देने का था ।<sup>1</sup> मकाले ने स्पष्ट कहा है— 'हम ऐसे वग के निर्माण का भरपूर प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे और लाखों शासितों के बीच दुभाषिये का काम करे—लोगों का एक ऐसा वग जो खन और रग में तो भारतीय हो किन्तु अभिर्षि विचार आचार और ज्ञान में अंगरेजों का-सा हो ।'<sup>2</sup> अंगरेजी शिक्षा का हयकण्ण कम्पनी के सरकारी कार्यों के लिए बलक उत्पन्न करने के साथ-साथ भारतीयों को अपनी सस्कृति से विमुख और पथभ्रष्ट करने के लिए भी अपनाया गया था । किन्तु इसके द्वारा शिक्षित भारतीयों को मिल बक मकाले स्पेन्सर आदि के प्रगतिशील विचारों के सम्पर्क में आने का अवसर प्राप्त हुआ जिससे उनके भीतर राज नीतिक स्वतंत्रता के भावों का उदय हुआ । जिस समय भारत में पश्चिमी शिक्षा का प्रचलन हुआ उस समय इंग्लण्ड तथा योरोप के अय देशों में उदारवाद व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा राष्ट्रीयता की लहर बड़ वेग से फन रही थी । वही समय इंग्लण्ड में कथोलिक इम्पिसेशन ऐक्ट (१८२९) रिफॉर्म ऐक्ट (१८३२) दासता उन्मूलन (दि अदालिशन आफ स्लवरी) (१८३२) तथा वू पूअर ला (१८३४) के पारित होने का था । अतः अंगरेजी भाषा के माध्यम से भारतीयों का जो अपनी स्वतंत्रता के लिए जोर मार रहे थे, पाश्चात्य जनतात्रिक विचारधाराओं और सधर्षों से अनायास सम्पर्क हो गया, जिससे भारतीय समाज में पुनर्निमाण और नव विकास के बीज अकुरित हो उठ और पराधीनता से पीडित अनेक भारतीय विदेशी शासकों द्वारा अपन दश के आर्थिक शोषण का अन्त कर देने के लिए मदान में उतर आये ।<sup>3</sup>

1 R. Palme Dutt—India Today and Tomorrow, p 108

2 Modern Indian Culture by D P Mukerji, P 109

3 The fact that the system of education imposed in the interests of imperialist administration opened the avenues at the same time to the great stream of English democratic and popular inspiration and struggle of the Miltons the Shelley and the Byrons fighting against the self same figures of the ruling class oligarchy the Pitts and the Hastings and the Wellingtons as were enslaving and exploiting India was a characteristic contradiction of the whole system of imperialism conducted by the ruling class of a country in which simultaneously the people were themselves pressing forward to their freedom

R. Palme Dutt -India Today and Tomorrow, P 100

इस प्रकार अंगरेजी शासन के न अधीन भारतीयों की राजनीतिक स्वतंत्रता का अपहरण ता हुआ और दलकर उनके देश का आर्थिक शोषण भी हुआ किन्तु अंगरेज जाति के नवीन और शक्तिमय जीवन ने भारत की कई शताब्दियों की कुम्भकर्णी निद्रा को भंग किया और उस पृथक्ता के कारण कर नव चेतना के पथ पर डाल दिया । १९वां शती के पतनामसु भारत के लिए कदाचित् इस प्रकार का भीषण आघात आवश्यक था । यदि अंगरेज इन देश में न आते तो यहाँ सांस्कृतिक जागरण न होता ऐसा कहना अनुचित होगा । किन्तु अंगरेजों ने भारत के हितप्रिय और गतानुगतिक जीवन को खरदस्त धरना कर उसमें उस गति का संचार किया जिससे अबिलम्ब सांस्कृतिक जागरण सम्भव हुआ और उसका स्वरूप अत्यन्त व्यापक हो गया । कमठ अंगरेज जाति के सस्पश से भारतीयों ने इस बात का अनुभव किया कि यदि उह जीवित रहता है तो योग्य की वैज्ञानिक विचारधारा तथा प्रगतिशील औद्योगिक सम्पत्ता से लाभ उठाकर अपना जीवन नम बनाना और अपनी मस्तिष्क को पौषक तत्वा के रसायन पाश्चात्य सभ्यता के हितकर तत्वा को अपनाता होगा । इस प्रकार इस नये आघात से मध्ययुगीन सभ्यता की आचार विचार नीति नीति और प्रथा-परम्परा की भित्ति टूट गई । शक्ति का निश्चय और रूपमयता दूर हुई । भारतीय मानस के द्वार और वातायन नये भावों और गतिशील प्रगतिशील विचारों के लिए उमक्त हो गए । पुरातन श्रद्धा और आस्था के म्यान पर तक और विद्वान् प्रतिष्ठित हुए अथ विश्वास और अस्मत्पत्ता पर बुद्धि और कायगानता ने विजय पाई और पराधीनता और आतङ्क के मध्य में भी स्वतंत्रता और मति का अभिनय हुआ ।<sup>१</sup> इस प्रकार जसा कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा है— अंगरेज अन्ततः म ही अपनी आप भारत में नवजागरण के प्रतिनिधि और अग्रदूत बने ।<sup>२</sup>

१—जुवा का बन्धन करे या मुक्त अमीर करे ।

मर ह्यान को बही पिहा नहा सकत ॥ —चरमस्त

2—The British became the dominant in India and the foremost power in the world, because they were the heralds of the new big machine industrial civilization. They represented a new historic force which was going to change world and were thus unknown to themselves the fore runners and representatives of change and revolution.

Pt. Nehru—The Discovery of India, p 263—269

हिन्दुआ की पौराणिक परम्परा वर्तमान युग को 'वनियुग' बताती है जो जीवन के ह्रास का द्योतक है किन्तु पश्चिम में कल-युग का दौरदौरा था जो विकासवाद का सूचक है। अतः यात्रिक सम्मता के प्रकाश में लोगों के मन मस्तिष्क से धर्म का अनुचित प्रभाव हटने लगा। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगा लेना चाहिए कि पाश्चात्य सम्पत्क और शिक्षा का कोई कुप्रभाव भारतीय संस्कृति अथवा धर्म पर नहीं पड़ा। सच तो यह है कि प्रारम्भ में लोग अंगरेजी शिक्षा की मूल भावना को ठीक-ठीक हृदयगमन न कर सके। उसकी विचारवादिता तथा स्वतन्त्रतानुरागिता का अर्थ वे बिलकुल ही गत समझ बैठे। आचार विचार की प्राचीन मायताओं का विरोध करना तो उन्होंने सीख लिया किन्तु उनके स्थान पर तक पर आश्रित उन नियमों का अपनाने की ओर सब वे उदासीन रहे जिन नियमों के द्वारा उनका व्यक्तिगत आचरण सुनियंत्रित रह सकता। अंगरेजी शिक्षा की वैज्ञानिक भावना ने शिक्षित भारतीयों को अंधविश्वासपूर्ण रूढ़ियों से अपने को मुक्त करने के लिए प्रेरित तो किया किन्तु इस मुक्ति का उसने यह अर्थ भी अपन आप लगा लिया कि उसके लिए आचरण सम्बन्धी किसी नियंत्रण को स्वीकार करना निरर्थक है। उसने स्वतन्त्रता का आशय यह समझा कि वह स्वेच्छानुसार सुरा सेवन कर सकता है और जसा चाहे वसा जीवन बिता सकता है। बात यहाँ नहीं रुकी भारतीय परम्पराओं विश्वासा और मर्यादाओं का मखौल उड़ाया जाने लगा। अनेक उच्छल युवकों ने हिंदू नामधारी प्रत्येक वस्तु के प्रति घृणापूर्ण दृष्टि कोण अपना लिया और अपने धर्म के सिद्धान्तों को निस्सार बता कर त्याग दिया। स्वर्गीय नाला लाजपतराय के शब्दों में प्रत्येक वस्तु उनकी दृष्टि में घणित थी। यदि उनके अंगरेज साहज चर्च जाते थे तो वे भी वसा ही करते थे। यदि उनके साहज स्वतन्त्र विचार रखते तो वे भी वसा ही करते थे। उनकी दृष्टि सदा साहवा की वशभूषा मन्त्रि-सेवन और मांस भक्षण की ओर लगी रहती थी।<sup>1</sup> इस प्रकार अंगरेजों का नियम ही औचित्य और अनौचित्य की कसौटी बन गया था। निदान दौर्दिक और सांस्कृतिक दासता और अधःपतन के उस काल युग में कलकत्ता हिंदू कालज के अनेक विद्यार्थियों ने ईसाई

1 Everything Indian was odious in their eyes. If their English masters went to church they did the same. If their English masters indulged in free thinking they did the same. They looked to their dress their drinks their beef

धम ग्रहण कर लिया जिससे भक्ताने को यह धारणा कि पाश्चात्य शिक्षा के कारण हिन्दू धर्म नष्ट हो जायगा और ईसाई धर्म का प्रचार होगा सत्य प्रतीत हान्त लगी ।<sup>1</sup> शिक्षित वर्ग का यह अध पतन पराकाष्ठा का पहुच चुका था । उपनिषदा के युग में और बौद्ध-काय में भारत के मनापिया न जा सूक्ष्म चिन्तन किया था जिस प्रकार शास्त्रों प्रश्ना और बौद्धिक सम्मयाओं का मामना किया था उसका कहानी अब किसी को याद नहीं थी । निम्न और निम्नोणिय सन्ता ने शान्ति की जिस मशाल को जीवित रखा था मुगल कालीन विलास से वह भा चुप चकी थी । कबीर के बाद न तो भारत में विचारों का कोई शान्तिनारी सन जन्मा था न तुनसी और वृष्ण चतय के बाद इनक ममान कोई भक्त हिन्दुत्व सिमट कर पौराणिक हा गया था ।<sup>2</sup> भारतीय समाज के समान बहू विषय समस्या उपस्थित थी । वह देख रहा था कि समाज का भविष्य जिन युवकों के हाथों में है वे मिशनरियों के प्रचार और अगरेजा का शिक्षा-श्रीता के कारण अपन समाज के विरोधी बने जा रहे हैं । उनका मस्तिष्क बुद्धिवादी तरीकों से भरा हुआ था वे मनुष्य मनुष्य में कोई भक्त नहीं मानना चाहते थे तीर्थों और मन्त्रों के पीछे किसी आध्यात्मिक सत्य का पता उन्हें नहीं चलता था न वे धर्म के हिन्दू अनुष्ठानों को बुद्धि से समझते थे ।<sup>3</sup> ऐसी परिस्थिति में समाज की स्थिति रक्षा और दानता के लिए किसी नये कबीर किन्ता नये नानक और किसी नये टाडू की आवश्यकता पड़ी । अब योरोप और भारतवर्ष का टकरावट से एक बार फिर वह भाव माने से जाग पड़ा जो बुद्ध के समय प्रकट था जो कबीर के समय प्रत्यक्ष हुआ था और लाग गम्भीरता में धर्म और समाज के लिये एक बार फिर उसके मूल में ही साधन था ।<sup>4</sup> प्राचीन शास्त्रों का व्याख्या आलोचनात्मक ढंग से का जान लगी और उमरी आध्यात्मिकता पर युग की बानगी हुई परिस्थितियों के अनुसार धार्मिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन में उज्वलतर अनागत के निर्माण का प्रवृत्ति बानवती हा उनी । परिणामस्वरूप वर्ग जाति सम्प्रदाय,

1 It is my firm belief that if our plans of education are followed up there will not be a single idolator among the respectable classes in Bengal in thirty years hence

—Macaulay, 18 6 in a letter to his father

१—सामधारी सिंह चिन्तन—सम्पत्ति के चार अध्याय पृ० ४३३

३—वही पृ० ८४

४—वही पृ० ६२०

अस्पृश्यता आदि से पीड़ित भारतीय समाज मध्ययुगीन जड़ता से छूटकर सामाजिक एकता धार्मिक समन्वय और राष्ट्रीय चेतना से प्रबुद्ध हो उठा। चेतना की लहर उच्च स्तर में प्रारम्भ हुई और उसका कम्पन धीरे धीरे तिमन-स्तर तक पहुँचा जिसके स्पष्ट संसकीणता से अभिभूत भारतीय जीवन में यगातर उपस्थित हुआ। इस नवास्थान में जिन प्रक्रियाओं द्वारा अपने को प्रकट किया उसका थोड़ा परिचय यहाँ पर प्राप्त कर लेना समीचीन होगा।

### साँस्कृतिक आन्दोलन

आधुनिक भारत में पुनर्जागरण की ज्याति सबसे प्रथम सांस्कृतिक आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुई। वर्तमान युग में जीवन के पार्श्व में जो ऋद्धता विश्वास और अध्ववसाय की गति दिखाई पड़ रही है उसका सूत्रपात सांस्कृतिक आन्दोलनों द्वारा ही हुआ था। इन आन्दोलनों के प्रत्येक कारण ब्रिटिश शासन से उत्पन्न व परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने भारत में ईसाई धर्म के अनिष्टकारी प्रचार मिशनरियों द्वारा भारतीय धर्मों का भ्रमना पने तिस अंगरजी वावुआ द्वारा हिन्दुत्व के निराकरण एवं पश्चिमी सभ्यता की श्रांतिकारी विचारधाराओं आदि को प्रभ्रय अथवा उत्तजन दिया।

१९वीं शती का भारत अपने धर्म प्रवृत्तियों के मूल सिद्धान्तों को भुला कर तरह-तरह के अध्वविश्वासा और रूढ़ियों निगलित प्रथा परम्पराओं आदि के भँवरजाल में फँस गया था। पश्चात्य सम्पर्क में भारत के समर्थ मनीषियों को जब इस विषम स्थिति का भान हुआ तब उन्होंने भारतीय जीवन और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की आवश्यकता समझी। उसी का परिणाम उत्तरीसवी शताब्दी के ब्राह्म-समाज प्राथना-समाज ब्रह्मविद्या-समाज आदि आन्दोलन हैं। इन सभी आन्दोलनों की प्रतिक्रिया का कारण एक था तथा इनके दार्शनिक पक्ष का प्रभाव हमारे आलोच्य काल की कविता पर किसी न किसी रूप में पड़ा है अतः यहाँ पर संक्षेप में इनके विशिष्ट तत्त्वा का परिचय प्राप्त कर लेना ठीक होगा।

### ब्राह्म-समाज

सन १७७७ ई० में एक बालोपाध्याय ब्राह्मण कुल में बंगाल के प्रकाण्ड पण्डित मुद्गारक और ब्राह्म समाज के आदि संस्थापक राजा राममोहनराय का जन्म हुआ। उनकी शिक्षा फारसी अरबी में प्रारम्भ हुई जिसके द्वारा उन्होंने इस्लाम धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया। बाद में काली में बंगाल दशन और सूफीमत का गहन अध्ययन किया जिसमें ब्रह्मवात् उनका रंग रंग में



भिद गया। वार्डम वष की अवस्था में अगरेजी का ओर शके और ईसाईमा क सम्पक म आये। ईसाई धर्म क मूल निष्ठाता का समवन क लिए उहान ईरानी और यूनानी भाषायें पना किन्तु औपनिषदिक ब्रह्म क सामने ईसाइया का अवतारवात् हल्का लगा, अत उमका दण्डन किया। हिन्दू धर्म शास्त्रा म प्राति-पाति अस्पृश्यता सती जाति गीति रिवाज का वार्ड शास्त्रीय विधान न देखकर उहोने उनका मूनाच्छेदन करने का उपक्रम किया और हिन्दू समाज म ब्रह्मजान का मन्त्र फूका। राजा राममोहनराय विश्व मानवतावात् क समथक थ और भारतीय ससृति का समन्वय पश्चिम क नरीय अनुसंधानो क साथ करना चाहते थे। मोनियर विलियम्स क शास्त्रो म थे तुननात्मक धर्म विधान मे ससार म क्वाचित प्रथम त्रिचामु मस्तिष्क थे।<sup>१</sup>

राजा राममोहनराय एक उदारचेता भावप्रवण व्यक्ति थे। उनका दार्शनिक चान उच्चकोटि का था। उहोने सन १८२८ ई० म एक ब्रह्म की उपामना सबधम-समन्वय और विश्व बन्धुत्व के लिए ब्राह्म समाज की स्थापना की जिसम क एव साधारण सन्स्य के रूप म सम्मिलित हुए किन्तु उसके वर्ता घना क ही थे।

ब्राह्म-समाज की प्रथम बठक १० अगस्त १८२८ म हुई। उपनिषदो के ब्रह्म को आधार मानकर ब्राह्म समाज के अधिवेशनो म वेत् के मन्त्रा का उच्चार उपनिषदा क बगना अनुवाद का वाचन और बेंगला म उपनेग प्रारम्भ हुआ। ब्राह्म-समाज म इस बात की मायनाती गर्कि मन्दिर मस्जिद गिरजा सब म ब्रह्म स्थित है। ब्रह्म की सबयापकता के आचार पर सभी धर्मों अथवा मतवाग के प्रति उदारता की भावना जगाई जाने लगा। इस प्रकार ब्राह्म-समाज म वेद कुरान इन्जीव आदि सभी धर्म-ग्रन्थो को सम्मान मिला और ससार के सभी धर्म गिणका का समान्तर हुआ। राजा राममोहनराय के जीवन-काल म ही उते विश्व-व्यापी बनाने क लिए इगनण और अमरिका म यूनिटेरियन चर्च की स्थापना हुई। इस प्रकार ब्राह्म-समाज ने हिन्दू धर्म की बंधो-बपाई मर्यादा को शतना विस्तृत कर दिया कि उमक सन्स्य मुसलमान और ईसाई भी हो सकते हैं। मुसलमानों पर ब्राह्म-समाज का प्रभाव

१--गरकार तथा दत्त-आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास भाग २ (१०५६)  
पृ० ४९९

२--रामनाथ गौड-हिन्दुत्व, पृ० ७४५

कान्ठियांनी सम्प्रदाय की स्थापना में दिखाई पड़ता है। इस प्रकार राजा राममोहनराय ने बुद्ध के पश्चात् भारतवर्ष का इस अवस्था में रक्खा ताकि वह समूचा मानव जाति को आध्यात्मिक सदेश दे सक और निणयकारी राष्ट्रीय इतिहास की दौरे आरम्भ कर सके।<sup>१</sup>

सन १८३३ ई० में राजा राममोहनराय ज्वर-ग्रस्त होकर बिस्बल में दिवंगत हुए। १० वर्ष बाद १८४३ में महर्षि दत्तेन्द्रनाथ ठाकुर ब्राह्म-समाज के प्रधान नेता हुए। उन्होंने ब्राह्म समाज को साम्प्रदायिक ढंग पर संघटित किया। उसकी सिद्धान्तों के प्रचार के लिए उन्होंने तत्त्वबोधिनी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया और इस काय के लिए कुछ धर्म शिक्षक भी नियुक्त किये। तत्त्वबोधिनी पत्रिका में यह स्पष्ट कहा गया कि वेद अपौरुषेय हैं और ब्राह्म समाज के सिद्धांतों के मूलाचार वेद ही हैं।<sup>२</sup>

सन १८५७ ई० में ब्राह्म-समाज में पश्चात्य संस्कृति में प्रभावित एक १९ वर्षीय अत्यन्त भावुक तथा वाग्मा व्यक्तिकेशवचन्द्र मन का प्रवेश हुआ। वे बड़े ही उत्साही भक्तिपरायण और वरुण वक्ता थे। उनके अथक प्रयत्न से १८६५ के अन्त तक देश में ब्राह्म समाज की ५४ शाखाएँ खुल गयीं। केशवचन्द्र सन में ब्राह्म-समाज में भक्ति का समावेश किया और ब्रह्मवा की सजीवन प्रणाली का अपनाया। वे स्वयं गोलक पाल के साथ कीर्तन गाते हुए सड़सों पर निकलते थे। विश्व धर्म का स्वप्न द्रष्टा हान के कारण उन्होंने सभी धर्मों की उपामना आरम्भ की। अतः उनके प्राथमिक-ग्रन्थ में हिन्दू, बौद्ध, यहुदी, ईसाई, मुसलमान और चीनी सभी धर्मों की प्रायशः सम्मिलित थी। इस प्रकार राममोहनराय दत्तेन्द्रनाथ और केशवचन्द्र के प्रयत्न द्वारा हिन्दू धर्म एक समाज में बुद्धिवादी और चेतना का आविर्भाव हुआ। ब्राह्म-समाज के प्रभाव से हिन्दुओं में अपने धर्मशास्त्र के प्रति आस्था उत्पन्न हुई। जो शिक्षित वर्ग पहले हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों और अनुष्ठानों की सिल्ली उठाता था वह उसका वैज्ञानिक समर्थन करने लगा। ब्राह्म-समाज के प्रशस्त प्रयत्न में हिन्दू समाज में विधवा विवाह और अतर्जनीय विवाह को मान्यता मिली। उनमें पत्नी प्रथा बन्धु विवाह और दान विवाह की कुप्रथाओं का मिटान तथा स्त्रियों की उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। ब्राह्म-समाज द्वारा जनता में इस बात का पर्याप्त प्रचार हुआ कि हिन्दू धर्म मूलतः एकेश्वरवादी (अद्वैतवादी)

१—सरदार तथा दत्त-आयुनिभ भारतवर्ष का इतिहास भाग २, पृ० ५००

२ R C Majumdar—An Advanced History of India, p 878

है और देवा म निहित सत्य मसीही मृत के सिद्धान्ता स अधिक पूण और शाश्वत है । ब्राह्म समाज ईश्वरोपासना क लिए मठ मंदिर गहत्याग आदि को आवश्यक बताता है । उसक अनुसार ईश्वरोपासना म समस्त प्राणियो का समानाधिकार है । धार्मिक और सामाजिक सुधार की दृष्टि म ब्राह्म समाज का सवाए महत्वपूर्ण है । किन्तु इसका प्रभाव-क्षेत्र अत्यन्त ही सीमित रहा । पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अनुसार ब्राह्म-समाज ने बंगाल के उदबुद्ध मध्य वग को प्रभावित तो किया परन्तु एक धार्मिक मतवाद के रूप म यह चल लोगा तक जिनम कुछ विशिष्ट वक्ति और कटम्ब भी शामिल थे सीमित रहा । किन्तु सामाजिक और धार्मिक सुधार म विशय अभिरुचि रखने वाले ये कटम्ब भी वेदान्त के प्राचीन भारतीय दार्शनिक आत्माओं (अथवा स्थापनाओं) की गार प्रवृत्त रहते थे ।<sup>1</sup> इस प्रकार राजा राममोहन राय की दूरदर्शिता न राष्ट्र एक सस्कृति की रक्षा क एक महान उद्देश्य को पूण किया । अपने पिता स्वप्ननाथ ठाकुर और ब्राह्म-समाज से ही कबीर रवीन्द्र ने जन मन म सवधम समन्वय विश्व-बन्धुत्व ब्रह्मवाद तथा बुद्धिवादा के भाव भरने की प्रेरणा ग्रहण की । ब्राह्म समाज ने ही उन्हें बहुत कुछ अशा म एक महान सांस्कृतिक जागरण का अप्रदूत बनाया जिसकी किरणें बंगाल के सीमान्ती का अतिप्रमण कर दूर दूर के प्रान्तों में पहुंची । छायावाद के युवक कविया पर भी उत्तरी सवतोमुखी प्रतिभा एक काय प्रणाली का बहुत प्रभाव पडा । निम्ना छायावादी काव्य ब्राह्म-समाज के चेतनावादी भक्तिपरक एक रहस्य वाली मूल्या म प्रत्यक्षत तो कम किन्तु अप्रत्यक्ष में कबीर क कारण विशय प्रभावित हुआ ।

### प्रायना-समाज

केशवचन्द्र के प्रभाव से ब्राह्म-समाज का आन्दोलन धीरे धीरे बंगाल क बाहर पतन लगा था । किन्तु महाराष्ट्र को छोड़कर भारत के विगी और भाग म इसकी जड़ें न जम सका । सन १८६४ ई० म केशवचन्द्र के प्रपत्ता द्वारा कम्बई म प्रायना समाज की स्थापना हुई । प्रायना समाज सिद्ध धर्म क अन्तुगत ही एक सुधारवादी आन्दोलन था । उसका मुख्य उद्देश्य एक ब्रह्म की उपामना और सामाजिक सुधार था । यदि ब्राह्म-समाज द्वारा बंगालिया के भावप्रवण चारित्र्य की शक मिनी तो प्रायना समाज म महाराष्ट्रिया की

1 Jawaharlal Nehru—The Discovery of India p 290

व्यवहार कुशनता प्रतिबिम्बित हुई । प्रायना-समाज न सहमाज अन्तर्जातीय विवाह विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया । वह जमना एव मनुष्य को श्रेष्ठ और दूसरे का अधम मानने की प्रथा का विरोधी था । किंतु ब्राह्म-समाज की भांति मूर्ति-पूजा और परम्परागत धार्मिक अनुष्ठानों का परित्याग का आग्रह उमम नहा था । प्रायना-समाज के सदस्य मराठी सन्ता-नामनेव तुकाराम और रामान-के अनुयायी थे । उसकी पूण मफनता का श्रेय जम्बिस महाशय गोविन्द रानाडे का है । प्रायना समाज के उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपना सबस्व निद्धावर कर दिया था । रानाडे के परम शिष्य गोपान कृष्ण गाखन न त्रिखा है—रानाडे न प्राय तीम वष तक भारतवर्ष क ऊँचे से ऊँचे विचारा तथा ऊँची स ऊँची आर्का क्षाया का प्रतिनिधित्व किया था ।<sup>१</sup> स्वर्गीय मी० एफ एड्ज क शान्त म अनेक दृष्टिया स भारतवर्ष के नय सुधार आन्दोलन का आविर्भाव बम्बई अहाना म हुआ और उसका अत्यन्त निकट का सगुपन रानाडे के नाम क साय रहा है ।<sup>२</sup> रानाडे ने प्रायना समाज द्वारा दा मौलिक सिद्धान्ता का ह्ययगम करन का आदेश किया । प्रथम उहाने इस बात पर विशेष वन दिया कि सुधार का लक्ष्य मनुष्य के पूण यक्तिव का विकास हाना चाहिए । व धम को सामाजिक सुधार स उसी प्रकार अविच्छिन्न मानत थ जिस प्रकार मानवीय प्रम इश्वरीय प्रम स ।<sup>३</sup> वे राजनीतिक अधिकारा क उचित प्रयाग क लिए समाजिक व्यवस्था को याम और सत्य पर आधारित करन क पनपाती थ । उनका यह दब विश्वास था कि अपूण सामाजिक व्यवस्था द्वारा सुय आर्थिक व्यवस्था का निमाण असम्भव है । धम के क्षय म व उच्चाशों क प्रमी थ । उनका कहना था कि यदि हमारी धार्मिक भावनाएँ निम्नकाटि की हागी ता हम सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रा म कदापि सफन नहा हो सकेंगे । इस प्रकार की अन्तर्निभरता को व आकस्मिक न मानकर मानव मात्र

१ रामधारीसिंह त्रिंकर—मस्ठनि के चार अध्याय पृ ४५७ ।

2 The last and in many ways the most enduring aspect of the new reformation in India has had its rise in Bombay Presidency and is linked most closely with the name of Justice J Ranade

R C Majumdar—An Advanced History of India, p 881

3 R C Majumder—An Advanced History of India p 882

की स्वभावानुविधायिता बतलाते थे ।<sup>1</sup>

दुमरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त उद्घाटित यह प्रतिपादित किया कि सुधारक वाच्य को उठावलाभ में अतीत से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद नहीं कर लेना चाहिए । उनकी समय की नस को पहचानने का अनुमान उनके कथन इस वाच्य से लगाया जा सकता है कि सच्चे सुधारक का काम दारुण स्तर पर निरूपण न होकर अथ निरूपित वाच्य का पूर्ण करना है ।<sup>2</sup> इस प्रकार रानाड ने अपने प्राथना-समाज द्वारा ब्रह्म का उपासना और प्राचीन धार्मिक मूल्यों तथा आत्मीयता का आधुनिक युग में मूल्यों का भूमिका में अपनाएँ का महान सन्देश अपने देशवासियों को दिया । प्राथना समाज न देश में आध्यात्मिक और पवित्र वातावरण उत्पन्न करने में यथेष्ट योग दिया ।

### ब्रह्मविद्या-समाज

एक सती महिमा मदाम हेतना पेनाफना आवात्सकी विद्वान् म बीड मन की मन्थना शाखा में दीक्षित होकर अमरिका गई । वहाँ उन्होंने व्याकुल मन से १८७५ ई० में आनन्द की सहायता से धियोसोफिस्ट समाज की स्थापना की । महर्षि दयानन्द सरस्वती का आमन्त्रण पाकर व १८७९ ई० में भारत आय और अन्धकार (मन्थना) में रहने लगे । वहाँ दिना तक स्वामी दयानन्द का साथ उनका समागम रहा । किन्तु महर्षि दयानन्द प्राचीन आय सस्कृति और बदा में बनाए गए भाग पर चपने का निश्चय कर चुके थे । वे सत्कार के सभी धर्मों का खण्डन करते वृत्ति धर्म का स्थापना करना चाहते थे । सम्पूर्ण विश्व को आय बनाना उनका ध्येय था । किन्तु श्रीमती आवात्सकी और कनक जानना भिन्न भिन्न धर्मों में भ्रम मानते हुए भी उनमें गमन्वय द्वारा विद्वान् बच्चुव स्थापित करना चाहते थे । दाना धर्म का ध्रुव की भाँति दूरस्थ में अत दाना पत्नी में मेन अमम्भव था । निम्न दोना ने अपना काम में प्रपक्व-प्रपक्व रखा । आमतो लापायकी और बन्दल बालवाट न सन १८८९ में अन्धकार (मन्थना) में धियोसोफिस्ट समाज की स्थापना की और उस (अन्धकार को) हाँक कर बनाकर अपने धार्मिक विचारों का भारत में फैलाना प्रारम्भ किया । अपने व्याख्याता में व हिन्दूधर्म का भूरि भूरि

1 R. C. Majumdar—An Advanced History of India, p 882

2 "The true reformer has not to write on a clean slate His work is more often to complete the half written sentence Ibid, p 882

प्रशंसा करते थे। वे हिन्दुओं की उन वृत्तियों का भी उन्मुख करते थे जिनसे लाभ उठाकर अथ धर्मों का प्रचारक हिन्दू धर्म को नीचा दिखाते थे। उनका उद्देश्य परोक्ष नियमों का अनुसंधान विज्ञान की प्रगति के साथ बढ़ने वाली अति भौतिकता पर रोक, उच्च नैतिकतापूर्ण पवित्र जीवन-यापन और प्राच्य उच्च धर्मों के तत्वों का प्रचार एवं धार्मिक कटुता का शमन था। सन १८८९ ई. में जायरिज महिना श्रीमती एनीबेसेट का ब्रह्मविद्या समाज में प्रवेश हुआ। उनके सक्रिय सहयोग में ब्रह्मविद्या समाज का बड़ी स्फूर्ति मिली। उन्होंने बड़ी धूम धाम और लगन से उससे सिद्धान्तों का प्रचार प्रारम्भ किया। धामता एनाबसेट का हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार में बड़ा विश्वास था अतः वहाँ जहाँ जाती—हिन्दू धर्म को सब्रूढ़ बनाता और हिन्दू धर्म पर ईसाई धर्म प्रचारकों के मिथ्यागोपा का खण्डन करता। उनके प्रभावात्पादक व्यक्तित्व द्वारा हिन्दू-संस्कृति की प्राचीन परम्परा और कम-काण्ड का बड़ा ही विशाल और वनानिक समर्थन हुआ। भारतीय जादूओं एवं प्रशान्तियों को पुनरुज्जीवित करने में उन्होंने कोई कोर-बमर उठा नहीं रखा। उन्होंने ब्रह्मविद्या समाज के लक्ष्य की पूर्ति के लिए बनारस में सन्दुल हिन्दू-स्कूल की स्थापना की जिसमें सन १९१६) हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया।

ब्रह्मविद्या-समाज में ब्राह्मण-समाज की भाँति एक ब्रह्म की उपासना आवश्यक नहीं थी, और न जाति पंक्ति या प्रतिमा-पूजन का खण्डन ही अनिवार्य था। धार्मिक वाद विवाद से उसका कोई सरोकार नहीं था। उसका एकमात्र ध्येय था विश्ववधुत्व सर्वधर्म समन्वय और गुप्त क्रियाओं का अनुसंधान। ब्रह्मविद्या-समाज इस ध्यान का मानता है कि सभी ईश्वर की मन्तान हैं, अतः सभी समान हैं और ईश्वर सब पर समान रूप से कृपालु है। ब्रह्मविद्या समाज का द्वार भी सभी सम्प्रदायों, वर्णों और वर्गों के लिए उन्मुख था अतः उसमें हर प्रकार के स्त्री और पुरुष सम्मिलित हुए।

जन्मांतरवाद, कमवाट अवतारवाद जो हिन्दुत्व की विशेषताएँ हैं आरम्भ में ब्रह्मविद्या-समाज में विद्यमान थे। गुरु की उपासना और मातृ साधना उसमें रहस्या में सन्निविष्ट थी। तप जप व्रत आदि का भी उसमें विधान था। इस प्रकार उसकी नाव हिन्दू-संस्कृति थी। धामती एनीबेसेट अपने को पूज्यत्व की हिन्दू बनाती थी। उनकी उत्तर क्रिया हिन्दू धर्म के अनुसार की गई थी।

की स्वभावगत विशपना बताना था ।<sup>2</sup>

दूसरा महत्त्वपूर्ण सिद्धांत उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि सुधारक बग को उत्तमनी में अतीत से पूर्णतया सम्बन्ध विच्छेद करना चाहिए । उनकी समझ की नस को पहचानने का अनुमान उनके वेबन से वाक्य से लगाया जा सकता है कि मैंने सुधारक का काम कर रहा था किन्तु न होकर अब लिखित वाक्य का पूरा करना है ।<sup>3</sup> इस प्रकार रानाडे ने अपने प्रायना-समाज द्वारा ब्रह्म की उपासना और प्राज्ञान धार्मिक मूल्यातथा आत्मों की धार्मिक युग के मूल्या का भूमिका में अपनाए गए महान सत्य अपने देशवासियों का लिया । प्रायना-समाज ने देश में आध्यात्मिक और पवित्र वातावरण उत्पन्न करने में यथार्थ योग दिया ।

### ब्रह्मविद्या-समाज

एक रूसी महिला मदाम हनना पत्रोफना रावागरी निधन में बीड़ मठ का महायान शाखा में दीर्घांत होकर अमरिका गई । वहाँ उन्होंने प्रयाग में सन १८७५ ई० में आलकाट की सहायता से वियोजाफिकल सोसायटी की स्थापना की । महर्षि दयानन्द सरस्वती का आमन्त्रण पाकर व १८७७ ई० में भारत आये और अण्यार (मणस) में रहने लगे । कुछ दिनों तक स्वामी दयानन्द के साथ उनका समागम रहा । किन्तु श्रद्धि दयानन्द प्राचीन आय सस्कृति और वेदा के बनाव हुए भाग पर चलने का निश्चय कर चुके थे । वे मयार के सभी धर्मों का खण्डन करते बहिन धर्म की स्थापना करना चाहते थे । सम्पूर्ण विश्व को आय बनाना उनका प्रयत्न था ; किन्तु सीमाई धर्मावात्सकी और बनन जालकाट भिन्न भिन्न धर्मों में अद मानत हुए भा उतम समन्वय द्वारा विश्व बंधुत्व स्थापित करना चाहते थे । दोनों धर्म दो ध्रुवों की भाँति दूरस्थ थे अतः दोनों पक्षा में मन असम्भव था । किन्तु दोनों ने अपना कार्य क्रम पृथक्-पृथक् रखा । धीमता राजात्मकी और बनल आनकाट ने सन १८८९ में अण्यार (मणस) में वियोजाफिकल सोसायटी की स्थापना की और उस (अण्यार की) ही केंद्र बनाकर अपने धार्मिक विचारों का भारत में कदम प्रारम्भ किया । अपने व्याकरणों में वे हिन्दुधर्म की भूरि भूरि

1 R C Majumdar—An Advanced History of India p 882

2 The true reformer has not to write on a clean slate His work is more often to complete the half written sentence Ibid, p 882

प्रशंसा करते थे। वे हिन्दुआ की उन त्रुटिया का भी उल्लेख करते थे जिनसे लाभ उठाकर अथ धर्मों के प्रचारक हिन्दू धर्म को नीचा दिखाते थे। उनका उद्देश्य पराक्ष नियमों का अनुसन्धान विज्ञान की प्रगति के साथ बढ़ने वाली अति भौतिकता पर रोक उच्च नतिकतापूर्ण पवित्र जीवन-यापन और प्राच्य उच्च धर्मों के तत्त्वा का प्रचार एवं धार्मिक कटटरता का शमन था। सन १८८९ ई० में आयरिश महिला श्रीमती एनीबेसेट का ब्रह्मविद्या-समाज में प्रवेश हुआ। उनके सक्रिय सहयोग से ब्रह्मविद्या समाज को बड़ी स्फूर्ति मिली। उन्होंने धूम धाम और जगत से उसके सिद्धान्तों का प्रचार प्रारम्भ किया। श्रीमती एनीबेसेट का हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान में एक विश्वास था अतः वह जहाँ जाती जाती—हिन्दू धर्म को मत्वस्थ बतानी और हिन्दू धर्म पर ईसाई धर्म प्रचारकों के मिथ्याचारों का खण्डन करती। उनके प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व द्वारा हिन्दू-संस्कृति का प्राचीन परम्परा और कम-बाण्ड का बड़ा ही विशद और वनानिक समर्थन हुआ। भारतीय आदर्शों एवं प्रशस्तियों का पुनरुज्जीवन करने में उन्होंने कोई कोर-कसर उठा नहीं रखी। उन्होंने ब्रह्मविद्या समाज के लक्ष्य की पूर्ति के लिए बनारस में सद्गुरु हिन्दू-स्कूल की स्थापना की जिसमें बाद में (१९१६) हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप धारण कर लिया।

ब्रह्मविद्या-समाज में ब्रह्म-समाज की भाँति एक ब्रह्म की उपामना आवश्यक नहीं थी और न जाति पानि या प्रतिभा-मूजन का खण्डन ही अनिवार्य था। धार्मिक वाद विवाद में उसका कोई सराकार नहीं था। उसका एतन्मात्र ध्येय था विश्ववन्द्यत्व सर्वधर्म समन्वय और गुप्त क्रियाओं का अनुसन्धान। ब्रह्मविद्या समाज इस बात को मानता है कि सभी ईश्वर की मन्तान हैं अतः सभी समान हैं और ईश्वर सब पर समान रूप में कृपानु है। ब्रह्मविद्या समाज का द्वार भी सभी सम्प्रदायों वणों और वर्गों के लिए उन्मुक्त था अतः उसमें हर प्रकार के स्त्री और पुरुष सम्मिलित हुए।

जन्मांतरवाद कमबाण्ड अवतारवाद जा हिन्दुत्व की विशेषताएँ हैं आरम्भ में ब्रह्मविद्या-समाज में विद्यमान था। गुरु की उपामना और योग साधना उसमें रहस्या में मग्नविष्ट थी। तप जप व्रत आदि का भी उसमें विधान था। इन प्रकार उनकी नींव हिन्दू-संस्कृति थी। श्रीमती एनीबेसेट अपने का पूर्वजन्म की हिन्दू बतानी थी। उनकी उत्तर क्रिया हिन्दू धर्म का अनुसार की गई थी।



ब्रह्मविद्या समाज की शाखाएँ आज भी ससार के भिन्न भिन्न भागों में पाई जाती हैं। भारतवर्ष में इसका प्रधान केंद्र अय्यार है। इसका सदस्यो में सबसे अधिक संख्या हिन्दुओं की ही है। पश्चात्त्य शिक्षा के प्रभाव से जिनका मन में सदेह उत्पन्न हो गया था परन्तु अपने विचारों के कारण न तो ब्रह्म समाजी हो सकते थे क्योंकि पुनर्जन्म वर्णाश्रम विभाग आदि को ठीक मानते थे और न जाय समाजी हो सकते थे क्योंकि और भेदा का सम्मान उन्हें पसन्द न था। ऐसे हिन्दुओं की एक भारी संख्या थी जिसमें व्यासापिकन सासायटी को अपनाया और उसमें अपना सत्ता बिना खाले हुए शामिल हो गये।<sup>१</sup>

ब्रह्मविद्या समाज की प्रारम्भिक सफलताओं के उपरान्त भी उसकी जड़ें भारत में न जमाई जा सकीं कारण प्राचीन सभ्यता के पुनरुत्थान के जोम में उसने हिन्दू धर्म की पुरानी रीतियाँ और विश्वासों जैसे रहस्यमय कर्मकाण्ड और तन्त्रवाद का भी समर्थन किया जो शिक्षित समुदाय की दृष्टि में प्रगति पथ में अत्यन्त बाधक थे जहाँ उनमें ब्रह्मविद्या समाज के प्रति जाकषण घट गया। भारतीय समाज में ब्रह्मविद्या समाज का जो भी महत्व था उसके मूल में धीमती एनीवेसेट का अस्तित्व था अतः उनकी मृत्यु के पश्चात् उसका प्रचार शिथिल पड़ गया। फिर भी उन्नीसवाँ शताब्दी के नवीन सांस्कृतिक जागरण में योग देने की दृष्टि से ब्रह्मविद्या समाज का महत्वपूर्ण स्थान है। राष्ट्रीयता का विकास और भारतीय आध्यात्मिकता का नवोत्थान इस ब्रह्म विद्या-समाज के द्वारा निश्चय रूप से हुआ यद्यपि इस समाज का नाम और उत्पत्ति विदेशी है।<sup>२</sup> भारतीयों में आत्मसम्मान अनीत के प्रति स्वाभिमान और भविष्य में विश्वास उत्पन्न करने में ब्रह्मविद्या-समाज का विशेष हाथ रहा है।

१ रामदास गोड—हिन्दुत्व पृष्ठ ७५१।

२ डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास

पृ १३० १-१।

3 In her autobiography (1893) she writes The Indian work is first of all the revival strengthening and uplifting of ancient religions This has brought with it a new self respect a pride in the past a belief in the future and as an inseparable result a great wave of patriotic life the beginning of the rebuilding of a nation  
R. C. Majumdar—An Advanced History of India, p 886

### आयसमाज

रोम्या रोलाँ के शब्दों में यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस समय दयानन्द के मानस का विकास हो रहा था भारतवर्ष की महान आत्मा इतनी दुबल हो गई थी कि योरोपीय धार्मिक प्रवृत्ति उसकी मन्द ज्योति को बुझाने ही बानी थी, यद्यपि उसका स्थापना देने में वह असमर्थ थी।<sup>१</sup> उन्नीसवीं शती के हिन्दू-जागरण के प्रत्येक पृष्ठ से यह विदित होता है कि योरोपीयना के भारत में जाने के समय भारतीय धर्म और सस्कृति में ह्लासो-मुख प्रवृत्तियाँ धर कर गई थीं। अतः यह अनिवाय हो गया था कि इन प्रवृत्तियों को हटा कर हिन्दुत्व का वास्तविक विमल और बुद्धिगम्य स्वरूप प्रकट किया जाय। बर्दिक युग के पश्चात् सहस्रा वर्षों के दीर्घकाल में हिन्दुओं ने जो रूढ़ियाँ अर्जित कीं उनसे हिन्दू सस्कृति का वास्तविक स्वरूप तिरोहित होने लगा था। उषर शिक्षित वर्ग पश्चिम की वनानिक उन्नति के प्रभाव में उसका अधभक्त बनकर आत्मगौरव खो बैठा था। उसमें अपनी प्राचीन सास्कृतिक मर्यादा तथा राष्ट्रीय अभिमान का लोप होता जा रहा था। राजा राममोहन राय ने अपनी सास्कृतिक सुधार सम्बन्धी याजनामा का प्रायः बर्गान तक ही सीमित रखा। उनके अनुयायी केशवचन्द्र सेन अपनी वाग्मिता के लिए सुप्रसिद्ध अवश्य थे परन्तु उनकी वाग्धारा प्रायः अग्रजी भाषा के समुद्र में ही बहती थी। वे उसी में अपना बडप्पन मानते थे। सही अर्थ में वे भारतीय सस्कृति के पोषक न थे। अतः उनका प्रभाव अग्रजी शिक्षा प्राप्त समुदाय को छोड़कर सामान्य जन-वर्ग में नहीं के बराबर था। ऐसे अधकचरे उपायों से हिन्दू-सस्कृति की रक्षा नहीं हो सकती थी। भारत भाग्य विधाता को यह स्वीकार न था कि भारतीय सस्कृति अरब के समुद्र में अथवा भूमध्यसागर में एकदम डूब जाय। अस्तु

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सजाम्यहम् ॥<sup>२</sup>

- 1 It is a historical fact that when Dayanand's mind was in process of being formed the highest religious spirit of India had been so weakened that the religious spirit of Europe threatened to extinguish its feeble flame without the satisfaction of substituting its own

Life of Ram Krishna by Rolland

२ रामदास गौड़-हिन्दुत्व पृ० ७४८ ।

३ श्रीमद्भगवद्गीता ४।७ ।

ने अनुसार कमभूमि भारत म भगवान दयानन्द का जाविर्भाव हुआ। सन १८६९ ई० म हरिद्वार के कुम्भ म हिन्दू धम की हीनावस्था देखकर महर्षि दयानन्द न उसके महान पापण के विरुद्ध पापण खिन्नी पताना गाडकर अपन जीवन का महत्वपूर्ण काय आरम्भ किया। स्वामी जी ने हिन्दू आ को व्यय क भ्रमाल और आम्बरो स मुक्त कर अपन पुरातन धम म निष्ठावान होना सिखाया।। स्त्रिया और गतानुगतिकता म फम हण भारतवासिया की उठाने भत्सना की और उनके सस्कारा की भही मोटी पनों का तोडकर सच बदिब धम पर आम्ह हाने का उपदेश स्त्रिया तात्रि व पन विश्व मस्त्रुति के जगहन बन सक। स्वामी जी न सत्याथ प्रकाश म केवन पौराणिन हिन्दू धम तथा हिन्दू ममात्र के जधविश्वासा का ही रणन नहा किया प्रत्युन इस्लाम और ईसाई धम के अनक सिद्धाता की खरी आनाचना भी प्रस्तुत की। मुसलमानो मुल्लाआ का मुनाई जो निधन्क हिन्दूत्व की अनगन निन्ता म अनाप शनाप बका करते थे। इसी पन का सामने रखकर पणित नह्म न लिखा है—आय समात्र इस्लाम और ईसाई धम के प्रभाव की प्रतिनियात्मक शक्ति था। वह हिन्दू धम के भीतर एव धार्मिक युद्ध एव सुधार पिपयक आदोलन तथा बाह्य आक्रमणो से बचाने के लिए एव रक्षात्मक मारका था।<sup>१</sup> महर्षि दयानन्द ने मसीहियो और मुसलमाना के ससमाचारा और मजहबी कित्तारो म स बसे ही दोष अथवा त्रटियाँ निकाल दिय जिनके आधार पर वे हिन्दुत्व की हीनता का बवान खडा करते थ। इस पर्त फाश स दो प्रत्यक्ष जानकर कुछ ढात्स बधा कि पौराणिकता क विषय म ईसाइयत और इस्लाम भी हिन्दुत्व से अद्वे नही हैं। दूसरा यह कि हिन्दुआ का ध्यान अपने धम क मून रूप की जोर आम्हट हुआ और उनम अपनी प्राचीन परम्परा क प्रति अनुराग और स्वाभिमान जाग उठा।

स्वामी दयानन्द की आत्मा की यह पुकार थी कि सभी लोग वेद का अध्ययन करें। उनका अणि विश्वास था कि यद अपौरुषय है और ससार की समस्त विद्याए उनम बीज रूप म निहित है। उनके इस प्रचार से भार तीया म आत्म विश्वास आया और राष्ट्रीयता की भावना पुष्ट हुई साथ ही पाश्चात्य सस्त्रुति के बवणर स हिन्दू राष्ट्र आक्रान्त होने से बच गया। स्वामी

जी के समीप जायों का वास्तविक धम बंदिक धम था। अत वे सुधार के कार्यों में ब्राह्म समाज ब्रह्मविद्या-समाज आदि से सहमत होते हुए भी धार्मिक सिद्धान्ता में उनके विरोधी थे। उनका सिहनाद था— 'बद की शरण लो'। बदों के अतिरिक्त किसी अय धम पुस्तक को वे ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते थे। वेदाध्ययन में किसी ऋग का एकाधिकार उह स्वीकार न था। वेद समस्त हिंदू राष्ट्र की सामूहिक सम्पत्ति है अतएव उनके निकट प्रत्येक हिंदू वेद के श्रवण और मनन तथा निदिध्यासन का अधिकारी था। यद्यपि वे गुजराती थे और उनकी शिक्षा दीक्षा संस्कृत में हुई थी तथापि कलकत्ता में केशवचंद्र सन 'सुज्ञाव रो उहोने हिंदी में जो सामाय जनता के मध्य राष्ट्र भाषा या अतर्प्रान्तीय भाषा का काम कर रही थी अपना प्रचार काम आरम्भ किया। वेद को सब सुलभ बनाने के लिए उहोने परम्पराप्राप्त टीकाओं को ताल पर रखकर हिंदी में वेदों की मौलिक एवं सारसंग्रहित व्याख्या की। यह बड़ा बटिया काम हुआ। संस्कृत की विशाल ज्ञान राशि की कुंजी जो अब तक परिमित द्विगो के हाथों में थी वह वेदों के हिंदी में अनूत्तित हो जाने से सब साधारण को सुगम हो गई। इसमें हिंदुआ को बलिक समाज और संस्कृति का ज्ञान हुआ और आय साहित्य की उच्च एवं उदार भावनाओं का परिचय मिला। लोगों में यह विश्वास अटल हा गया कि बंदिक संस्कृति विश्व संस्कृति का सर्वोच्च शिखर है जिसमें उनके भीतर अतीत के प्रति असीम श्रद्धा और ममता के भाव जाग्रत हो उठे।<sup>१</sup>

वेदा में मूर्तिपूजा अवतारवाद तीर्थों तथा अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था अतएव स्वामी दयानन्द ने उह अप्रामाणिक, अत त्याग घोषित किया। अस्पृश्यता के विचार को अवलिक बताकर उहोंने अनजानक अरथजा को पवित्र यज्ञोपवीत देकर हिंदू समाज के भीतर आन्दर का स्थाप किया।

राजा राममोहन राय और रानाडे ने ईसाइयत और ज्ञानम के विरुद्ध रक्षात्मक मोर्चे पर लड़ाई लड़ा थी। स्वामी जी ने आक्रमण का श्री गणेश किया यथाकि वास्तविक रक्षा का उपाय तो आक्रमण की ही नीति है। स्वामी जी के समय में हिंदुआ में एक विशाल जन-वृग एसा था जो अति शास्त्र यदि मुमनमान या ईसाई न हा जाना ता कम-ग कम अपनी संस्कृति से

१ डा० केनरी नारायण गुप्त, आधुनिक कायधारा का सामूहिक स्रोत, पृ० ५०

हाथ धोकर भारत में रहते हुए भी अभारतीय हो जाता। स्वामी जी ने उग्र पथ भ्रष्ट होने से बचाया। परन्तु यह गौरव तो कबीर नानक दादू और राजा राममाहन राय को भी प्राप्त है। स्वामी जी एक बात में उनसे भी आगे बढ़ गये। उन्होंने करोड़ों धमच्युत अथवा जाति-बहिष्कृत हिन्दुओं का प्रत्येक अवस्था में अपने धर्म में पुनर्जात कर आजात का निमन्त्रण किया। इस प्रकार उन्होंने हिन्दू धर्म और राष्ट्र को विनाश के गत में गिरने से बचा लिया और गिरे हुआ को उठाकर सीन से लगा लिया।

अपने उद्देश्यों की पूर्ति के हेतु स्वामी दयानन्द ने १८७५ ई. में बम्बई में आय समाज की स्थापना की। आय समाज ने भारतीय सभ्यता के उन उल्लंघित निदर्शनों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया जिनके स्मरण मात्र से वे गदगद हो उठें और सजीवनी शक्ति का अनुभव करने लगें। आय-समाज ने ब्रह्मचर्य व्रत पालन सामाजिक एकता निम्नवर्ग के उत्थान और नारी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। किन्तु उसकी अग्रमता की कठोर आलोचना की नीति अनेक उदार दृष्टिकोण रखने वाले हिन्दुओं को पसन्द नहीं आई। आय समाजियों द्वारा पुराणा का विरोध किये जाने तथा वेदा के अतिरिक्त हिन्दुओं के अग्र धर्मग्रन्थों को स्वीकार नहीं किये जाने के कारण साम्प्रदायिक स्तर पर उसका प्रचार अधिकतर पंजाब जहाँ प्रान्तात्मा में हुआ जहाँ हिन्दू सभ्यता की ज्योति मन्द पड़ गई थी। किन्तु उसमें सन्देह नहीं कि सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र में स्वामी दयानन्द और उनके आय-समाज द्वारा बड़ा ही ठोस कार्य हुआ। आग चलकर जो कागस के लिए तपे तपाये कर्मठ सेनानी मिल सकें वे आय-समाज के ही मजे मजाये काम कर्ता अथवा थोड़ा थे। स्वामी जी ने धार्मिक अंधविश्वास और जडता को हटाकर बड़ ही प्रबल एवं सशक्त धर्म का रूप प्रकट किया और अनेक युक्तियाँ और प्रमाणाँ से वैदिक धर्म को सबल सिद्ध कर दिखाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि रत्नाकृत हिन्दुत्व के जन्म निर्भर नेता स्वामी दयानन्द हुए बस दूसरा कोई नहीं हुआ।

दार्शनिक स्तर पर आय-समाज ईश्वर जीव और प्रकृति को नित्य मानता है तथा व्रतवाद का समर्थन करता है। आय-समाज के द्वारा आधुनिक हिन्दी-काव्य में पवित्रतावाद का प्रचार हुआ और शृङ्गारिकता तथा रसिकता का स्थान बुद्धिवाद और विवेक सयम और सदाचार ने ले लिया। प्राचीन वैदिक सभ्यता के प्रति भी साहित्यकारों का अनुराग जाग उठा जिसकी बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी कृतियों में हुई।

## रामकृष्ण मिशन

जिस समय महर्षि दयानन्द वृत्तिक धर्म की पताका उत्तरभारत में सघन पहरा रहे व उसी समय बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस अपने अपूर्व व्यक्तित्व और नये भक्ति से शिक्षित वर्ग का प्रभावित कर रहे थे। वे अत्यन्त सहृदय भावुक और पहुँचे हुए सन्त थे। आत्म साक्षात्कार के लिए उन्होंने ईसाई सन्तों और मुसलमान फकीरों तक का सत्संग किया था। अनेक वर्षों की साधना के उपरांत कलकत्ता के निकट दक्षिणेश्वर में वे आश्रम बनाकर रहने लगे थे। उनके साधु जीवन में अपूर्व दवी शक्ति थी। जो कोई उनके सम्पर्क में आता अत्यन्त प्रभावित होता। उनमें हिन्दू धर्म और दशन के सभी रूप समाहित थे। धार्मिक कट्टरता और सकीणता से वे त्रिलकुल परे थे। जिस किसी ने उनको देखा उस पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पडी और अनेकानेक जिहाने उन्हें कभी नहीं देखा था उनकी जीवन-कथा में प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी दुद्ध प साधना द्वारा यह प्रमाणित कर दिखाया कि सत्कार के सभी धर्म एक ही ईश्वर को प्राप्त करने के अलग अलग माग हैं। उनके महाप्रयाण के पश्चात् उनके महामहिम शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने उनके उपदेशों का देश विदेश में प्रबल प्रचार किया।

स्वामी विवेकानन्द अपने प्रारम्भिक जीवन में घोर प्रतिश्रियावादी के रूप में प्रकट हुए। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सम्पर्क में आने के पूर्व वे नास्तिकता की भाँति शास्त्राथ करते थे। किन्तु उनमें सत्यान्वेषण की ज्वाला प्रज्वलित थी अतः रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव से नास्तिकता का बाना फेंक कर धार आस्तिकवादी हो गए। उनके शक्तिशाली व्यक्तित्व तप पूत चारित्र्य और आजस्विनी प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक उनीयमान युवकों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। १८९३ ई० में उन्होंने शिवागा के सवधम-सम्मेलन में भाग लिया और वहाँ पर उपस्थित समस्त श्रोताओं और प्रतिनिधियों का अपनी गम्भीरता तजस्विता और वक्त्रता से मंत्र-मुग्ध कर लिया। उनकी अप्रतिम प्रखर प्रतिभा से चमत्कृत होकर हावड विश्वविद्यालय के सुविख्यात प्रा० मि० ज० एच० रायट ने कहा था कि आपमें परिचय पत्र के लिए पूछना मानो सूय में यह पूछना है कि तुम्हारा चमकने का क्या अधिकार है।<sup>१</sup> उन्होंने यह भी कहा है कि मेरा विश्वास है कि यह आगत हिन्दू सन्यासी हमारे सभी

विद्वाना को एवत्र करने पर जा बह्य हा सनता है उसम भी अधिक विद्वान है ।<sup>१</sup> स्वामी विवेकानन्द की विद्वत्ता उनके विचारा की गहनता विवेकीलता एव निर्भीकता व कारण अमरिता म उनका चारा जार महान स्वागत और सम्मान हुआ । वहा वे एक तूफानी हिन्दू (Cyclonic Hindu) के नाम से विख्यात थे । परित्र नन्द न लिखा है कि इन हिन्दू सत्तासी का एक बार दस सने पर उम और उसके सत्तेशा को भूल जाना कठिन था ।<sup>२</sup> यागी अरवि का कथन है कि पश्चिमी जगन म विद्वान का जा गहनता मिनी वही इस बात का प्रमाण है कि भारत केवल मृत्य से बचने व निए नटा जगा है चलन विश्व विजय करके दम लगा ।<sup>३</sup> स्वामी विवेकानन्द न शताश्रियो स निश्चेष्टता और पराधीनता व पर म पची हुई हिन्दू जनता का कमयोग भतियाग और ज्ञानयोग का अमर सत्तेश किया । अपने देशवासियो का सचत करते हुए तथा भारतीय स्वतंत्रता का अपहरण करन वाले विदेशियो का चेतावनी देते हुए उहान कहा- दीध रजनी अब समाप्त हुई जान पत्ती है । मत्तादु ख का प्राय अत्र ही प्रनीत होता है । महानिद्रा म निद्रित शव माना जायत हा रहा है । जो बंध हैं वे देख नहीं सकते और ता पागल है वे समय नहीं सकते कि हमारी मातभूमि अपनी गम्भीर निद्रा म अब जाग रही है । अब कोई उसकी उन्नति का रोक नहीं सकता । यह अब और नहीं सोचगी । कोई बाह्य शक्ति इस समय इस दबा नहीं सकती ।<sup>४</sup>

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की कुरीतियो और कप्रवाओ का जोरदार स्रणन किया अथविश्वास को आध्यात्मिक जीवन की सबसे बडी बाधा बताई और धार्मिक सिद्धांतो का तार्किकता की कमौटी पर कसने का आग्रह किया ।<sup>५</sup> हिन्दू धर्म के वास्याम्बरा की उ होने खनकर जाओचना की। हिन्दुआ की छुई मुई प्रवृत्ति और सामाजिक व्यवस्था की तयाश्रित पवित्रता

१ स्वामी विवेकानन्द—विविध प्रसंग दो श = पृष्ठ १  
 २ Jawaharlal Nehru—The Discovery of India p 291  
 ३ रामवारी सिंह त्रिनकर—संस्कृति के चार अध्याय प० ४९७ ।

४ स्वामी विवेकानन्द—स्वाधीन भारत । जय हो । प० १ ।  
 ५ 'I would rather see everyone of you rank atheists than superstitious fools for the atheist is alive and you can make something of him But if superstition enter the brain is gone degradation has seized upon the life  
 Pt Jawaharlal Nehru The Discovery of India p 293

पर व्यग बसते हुए उहोने कहा—‘हमारा धर्म चूल्हे चौके में है । भोजन बनाने का बतन हमारा ईश्वर है और हमारा धर्म है मुझ स्पृश न करो मैं पवित्र हूँ ।’<sup>१</sup> पण्डित नेहरू के शब्दों में— निरुत्साहित तथा अशक्त हिन्दू मस्तिष्क के लिए उहोने टानिक का काम किया और उसमें आत्म विश्वास तथा अतीत के प्रति आस्था उत्पन्न की ।

स्वामी विवेकानन्द को अपनी मातृभूमि भारत पर विशेष रव था । उनका कहना था कि हमारी मातृभूमि दशम धर्म नीति विनाश मधुरता कामलता अथवा मानव जाति के प्रति जकपट प्रेम रूपी सदगुणा की प्रसविनी है । ये सब बातें अभी भी भारत में विद्यमान हैं । मुझे इस सम्बन्ध में जो जानकारी है उसके बल पर दृष्टापूर्वक कह सकता हूँ कि भारत इन सब बातों में पृथ्वी के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।<sup>२</sup>

स्वामी विवेकानन्द भारतभूमि का मरुण्ड मूलभित्ति अथवा जीवन केन्द्र एकमात्र धर्म ही को मानते थे । उनका यह दृढ़ विश्वास था कि भारत की जलवायुविद्या और धर्म की बाढ़ समस्त जगत को बुवाकर राजनीतिक महत्त्वान्ना एव प्रतिष्ठित नये रूप से समाज संगठित करने की चेष्टा में प्रायः अधमत तथा हीन दशापन्न पारचात्य एव दूसरी जातियों में नव जीवन का संचार करेगी ।<sup>३</sup> उनका नापन था कि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है भारत में वह धर्म है ।<sup>४</sup> उनकी समझ में प्रकृति के मुह का धू घट हटाकर कम से कम एक बार उस देवकानातीत सत्ता के दर्शन का यत्न करना ही हिन्दू जाति का स्वाभाविक गुण था ।<sup>५</sup> उनके अनुसार हिन्दू जाति के जीवन का प्रधान उद्देश्य धर्म और वराग्य है जिसका एकमात्र मूलमंत्र यह है कि जगत क्षण म्यायी भ्रममान और मिथ्या है और धर्म के अनिरिक्त पान विनाश भाग एश्वय नाम यश धन-शौर्य जो कुछ भी है सभी का धर्म का अधीन रहना होगा । एक सच्चे हिन्दू के चरित्र का रहस्य यह है कि वह अपनी पारचात्य विद्या धर्म मान पद मर्यादा सभी को धर्म के सहायक

1 Pt Jawaharlal Nehru 'The Discovery of India' p 292

2 Ibid p 291

३ विवेकानन्द—स्वाधीन भारत । जय हो । प० ५ ।

४ , , , , ७ ।

५ , , , , ३३ ३० ।



विद्वाना का एकत्र करन पर जो युद्ध हो सनता है उसमे भी अधिन विद्वान है।<sup>१</sup> स्वामी विवकानन्द की विद्वत्ता उनमे विचारा की गहनता विवेकशीलता एवं निर्भीकता व वारण अमरिवा म उवा चारा आर महान स्वागत और सम्मान हुआ। वहाँ वे एक तूफानी हिन्दू (Clonic Hindu) के नाम से विख्यात थे। पण्डित नहरू ने लिखा है कि इस हिन्दू स्वामी का एक बार दब सने पर उस और उसका सन्देश का भूत जाना कठिन था।<sup>२</sup> पागी अरवि का कथन है कि पश्चिमी जगत में विद्वानों का जा सफरता मिनी वही इस बात का प्रमाण है कि भारत केवल मृत्यु से बचन व निरए नहा जगा है बरत विषय विजय करके दम लेगा।<sup>३</sup> स्वामी विवेकानन्द न शताब्दिया में निश्चयता और पराधीनता के पर म पडो हुई हिन्दू जनता का कमयोग भक्तियोग और पानयोग का अमर सन्देश दिया। अपन देशवासिया का सचन करत हुए तथा भारतीय स्वतंत्रता का अपहरण करन वाल विद्वगिया को चेतावनी दत हुए उहाने कहा- दीध रजनी जब समाप्त हुई जान पडती है। मगटु ल का प्राय अन ही प्रनीत होता है। महानिद्रा में निहित शव माना जाग्रत हा रहा है। जो श्च है व देख नही सनते और जो पागत है व समझ नही सनते कि हमारी मातभूमि अपनी गम्भीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसकी उग्रति को रोक नही सकता। यह अब और नही सायगी। वई बाह्य शक्ति बस समय बस दबा नही सनती।<sup>४</sup>

स्वामी विवकानन्द ने हिन्दू धर्म की करीतिया और वप्रयाजा का जारदार सणन किया अविश्वास को आध्यात्मिक जीवन की सबसे बडी बाधा बताई और धार्मिक सिद्धांतों का ताकिकता की कसौटी पर कमाने का आग्रह किया।<sup>५</sup> हिन्दू धर्म के बाह्याडम्बरो की उ होने खुलकर आलोचना की। हिन्दुओं की छई मुई प्रवृत्ति और सामाजिक यत्रस्था की तथा र्मिन परिव्रता

- १ स्वामी विवकानन्द—निविक प्रसंग दो श = पृष्ठ १
- २ Jawaharlal Nehru—The Discovery of India p 291
- ३ रामभारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय प० ४९७।
- ४ स्वामी विवकानन्द—स्वाधीन भारत। जय हा। प० १।
- ५ I would rather see everyone of you rank ath ists than superstitious fools for the atheist is alive and you can make something of him But if superstition enter the brain is gone degradation has seized upon the life  
Pt Jawaharlal Nehru The Discovery of India p 293

पर 'यग कसते हुए उहोने कहा—'हमारा धर्म चूल्ह चोके में है । भोजन बनाने का बतन हमारा ईश्वर है और हमारा धर्म है मुझ स्पृश न करो, मैं पवित्र हूँ ।<sup>१</sup> पण्डित नेहरू के शब्दों में— निरस्तसाहित तथा अशक्त हिन्दू मस्तिष्क के लिए उहोने टानिक का काम किया और उसमें जात्म विश्वास तथा अतीत के प्रति जास्था उत्पन्न की ।<sup>२</sup>

स्वामी विवेकानन्द की अपनी मातृभूमि भारत पर विशेष रव था । उनका कहना था कि हमारी मातृभूमि दशन धर्म नीति विज्ञान मधुरता, कोमलता अथवा मानव जाति के प्रति अकपट प्रेम रूपी सदगुणों की प्रसविनी है । ये सब बात अभी भी भारत में विद्यमान है । मुझे इस सम्भव में जो जानकारी है उसके बल पर दत्तापूर्वक कह सकता हूँ कि भारत इन सब बातों में पृथ्वी के अन्य प्रदेशों की अपेक्षा श्रेष्ठ है ।<sup>३</sup>

स्वामी विवेकानन्द भारतभूमि का मस्दण्ड मूनभित्ति अथवा जीवन केन्द्र एकमात्र धर्म ही को मानते थे । उनका यह दृढ विश्वास था कि भारत की अध्यात्मविद्या और धर्म की बाढ़ समस्त जगत को डुबोकर राजनीतिक महत्वाकांक्षा एवं प्रतिदिन नये रूप से समाज सगठित करने की चेष्टा में प्रायः अधमत तथा हीन दशापन्न पार्श्वचात्य एवं दूसरी जातियों में नव जीवन का संचार करेगी ।<sup>४</sup> उनका ज्ञापन था कि प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक मुख्य प्रवाह रहता है भारत में वह धर्म है ।<sup>५</sup> उनकी समझ में प्रकृति के मुह का धू धट हटाकर कम से-कम एक बार उस देशकालातीत सत्ता के दशन का यत्न करना ही हिन्दू जाति का स्वाभाविक गुण था ।<sup>६</sup> उनके अनुसार हिन्दू-जाति के जीवन का प्रधान उद्देश्य धर्म और वराग्य है जिसका एकमात्र मूलमंत्र यह है कि जगत क्षण-स्थायी भ्रममान और मिथ्या है और धर्म के अतिरिक्त पान विना भोग ऐश्वर्य नाम यश धन शैलत जो कुछ भी है सभी को धर्म के अधीन रखना होगा । एक सच्चे हिन्दू के चरित्र का रहस्य यह है कि वह अपनी पार्श्वचात्य विद्या धन मान पद मर्यादा सभी को धर्म के सहायक

१ Pt Jawaharlal Nehru The Discovery of India , p 292

२ Ibid p 291

३ विवेकानन्द—स्वाधीन भारत । जय हो । प० ५ ।

४ , , , " ७ ।

५ " , , ३३ ३९ ।

६ " , , ६ ।

रूप में देखें।<sup>१</sup> उन्होंने भाग्य भारतीया का यह बताया कि भारत विश्व का धर्मगुरु है। मयाय ईश्वर ज्ञान केवल भारत में ही हुआ था।<sup>२</sup> अयाय जातियाँ एक-एक जातीय ईश्वर या देवता के उस यज्ञियों के ईश्वर शरववानो के ईश्वर आदि और ये ईश्वर दूसरी जातियाँ के ईश्वर के साथ लड़ाई मगडा किया करते थे। किन्तु यह तत्व कि ईश्वर परम दमानु है वह अपने माना पिता मित्र प्राणा के प्राण और आत्मा की अंतरामा है केवल भारत ही जानता था।<sup>३</sup> ब्रह्मा के शिव वष्णवा के विष्णु यज्ञियाँ के जिहोवा, मुसलमानों के अल्लाह और बदान्तियाँ के ब्रह्म को एक ही प्रभु के भिन्न भिन्न नाम बताते थे।<sup>४</sup> दूसरे शब्दों में वे सब धर्मों की मूलिन एकता के प्रति विश्वासी थे।

स्वामी विवेकानन्द के सामने एक ओर प्राचीन हिन्दू-समाज और दूसरी ओर अवाचान यूरोपीय सभ्यता थी। इन दोनों में से उन्होंने प्राचीन हिन्दू-समाज को ही चुना इसलिए कि अज्ञ और असंस्कार से घिरा हुआ परमा परम्परा प्रती हिन्दुओं का हृदय में एक विश्वास था जिसके चल पर वे अपने परा पर खड़े हो सकते थे। किन्तु विलासिता रग में रंगे सबथा मरुदण्डविहीन धातु लोग अपरिपक्व भ्रूखनाशून्य विभिन्न वस्त्र भाषा में भरे होते थे। अतः उन्होंने बड़ बड़ से कहा है कि आजकल हम पश्चात्त शिष्टा में शिक्षित जितने लोगो को देखने हैं उनमें से एक का भी जीवन आशाप्रद नहीं है। अपने परो पर वे खड नहीं हो सकते—उनका मिर हमेशा चक्कर काटा करता है। अग्रेजो से थाडा शावाशी पा जाना ही उनका सब कामों का मूल कारण है। वे लोग जो समाज संस्कार करने के लिए अग्रसर होते हैं हमारी मामाजिष् प्रथाओं पर तीव्र आघात करते हैं—सबका कारण कवन यह है कि हमारे ये सब आचार साहवा की प्रथा के विरुद्ध हैं। हमारी कितनी ही प्रथाएँ कवन इसलिए दापण है कि साहव लोग उन्हें दापण कहते हैं।<sup>५</sup> हिन्दुओं का बोच उक्त साहवी-त्न का आचरण उन्नत अत्यन्त आपत्तिजनक लगा। अतः उन्होंने हिन्दुओं को यह सामयिक सूझ दी कि जो कुछ तुम्हारा अपना है उसे लकर अपने बल पर खड रहो। यदि अगत में कोई पाप है तो

१ विवेकानन्द—स्वाधीन भारत । जय हा । पृ० १३ १४

२ ३ ' १६

४ ' १६ १७

५ ' ११

वह दुबलता है। दुबलता मृत्यु है दुबलता ही पाप है इसलिए सब प्रकार स दुबलता का त्याग करो।<sup>१</sup> वे सबसाधारण की शिक्षा के पक्षपाती थे क्योंकि शिक्षा से आत्मविश्वास आता है और आत्मविश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्मभाव जाग उठता है।<sup>२</sup> जिससे इच्छा शक्ति का प्रवाह एव उसकी अभिपक्ति सयत हाकर दोना सायक हो जाय<sup>३</sup> वही सच्ची शिक्षा है ऐसी उनकी धारणा थी।

स्वामी विवेकानन्द देश के अतीत के प्रति श्रद्धावान थे किन्तु भारतीय जीवन की समस्याओं का हल ढूढने के लिए वे नवीन शिक्षाओं और प्रवृत्तियों के प्रति भी जागरूक थे। अन्तर्राष्ट्रीय आदान प्रदान में उनका विश्वास था। उन्होंने लिखा है— लन देन ही सत्कार का नियम है और यदि भारत फिर से उठना चाहता यह परमावश्यक है कि वह अपने खजाने को बाहर लाकर पृथ्वी की जातियों में बिखेर दे और इसके बटने में वे जो कुछ दें उसे ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत रहे। विस्तार ही जीवन है और सकीणता मृत्यु। प्रभु ही जीवन है और घणा मृत्यु। हमारा नाश उसी दिन स आरम्भ हो गया जब हम जयाय जानिया से घणा करने लग और जब तक हम पुन इस जीवन-स्वरूप विस्तार का नहीं अपनाते हम किसी भी तरह अपनी इस मृत्यु का रोक नहीं सकते।<sup>४</sup> उनकी यह इच्छा थी कि भारतीय आध्यात्मिक भूमिका के साथ पाश्चात्य भौतिक उन्नति का अपनाया जाय। अतः अपने देशवासियों से उन्होंने कहा भारत के धर्म का साथ लत हुए एक यारोपीय समाज का निर्माण करो।<sup>५</sup> स्वामी जी की व्यावहारिकता यह थी कि भौतिकवाद में आकण्ठमग्न याराप और अमरिका को उन्होंने अध्यात्म का सदेश दिया और भौतिकता की उपक्षा करने वाल भारतवासियों का ध्यान भारतीय समाज की दुरवस्था की ओर आकृष्ट किया एव धर्म को उनके समक्ष इस रूप में प्रस्तुत किया कि वह मनुष्य की आधिभौतिक उन्नति में बाधा न डाल सक।

१—विवेकानन्द—स्वाधीन भारत। जय हो। पृ० १२

२—वही पृ० ६३

३—वही पृ० ८०

४—वही पृ० ११०

स्वामी विवेकानन्द सच्चासी थे, अतः जीवन में अनुभव को सिद्धान्तों में अधिक महत्त्व देने थे। उनका कहना था कि मर्यादाओं का कोई मत या सम्प्रदाय नहीं हो सकता क्योंकि उसका जीवन स्वतन्त्र विचार का होता है और वह सभी मत मन्वान्तरों से उमकी आच्छादनों ग्रहण करता है। उसका जीवन अनुभव का होता है न कि केवल सिद्धान्तों अथवा रूढ़ियों का।<sup>१</sup> सच्चासी होने के नाते वे निवृत्तिमार्गी भी थे। एतन्मय उन्होंने कहा कि मन रूढ़ियों की आश्रय माना चक्रवर्त अग्रसर हो रहा है उस फिर अचरित पीछे लौटना होगा। प्रवृत्ति माग या त्याग कर उस निवृत्ति माग का आश्रय ग्रहण करना होगा यही शिष्टुओं का आदेश है।<sup>२</sup> किन्तु वे प्रवृत्ति माग जयवा स्वामी कम के विरोधी नहीं थे। उन्हें वे शान्ति में स्वामी कम ही निष्काम काम का आश्रय जाता है। यदि पहल पामाग ही न रहे तो उसका त्याग सम्भव कम होगा और उस त्याग का भय ही क्या होगा? यदि अचरित ही न हो तो प्रकाश का अर्थ ही क्या? इस प्रकार वे प्रवृत्ति को जीवन का प्रथम और निवृत्ति को उमका अन्तिम मोघान मानते थे। वे उपदेश करते थे कि कामना और आत्मनियुक्त भक्ति पहली सीढ़ी है। अन्त की पूजास आरम्भ कीजिए भूमि या महान स्वयं ही आ जायेगा।<sup>३</sup>

स्वामी विवेकानन्द ससार को दुःख का आगार मानते थे। किन्तु उनका दृष्टिकोण निराशासूनक न था। दुःख को वे आत्म गुण्डित एवं आत्म विकास का साधन मानते थे। अतः उन्होंने समझाया कि वह ससार दुःख का आगार तो है पर यही महापुरुषों के लिए शिक्षानय-स्वरूप है। उस दुःख में ही सहा नुभूति सहिष्णुता और सबसे ऊपर उस अन्तम दृष्टि इत्यादि शक्ति का विकास हाता है जिसके बल से मनुष्य सारे जगत के चूर चर हो जाने पर भी रत्नाभर भी नहीं हिलता।

एक वेदान्ती होने के नाते वे सभी विषयों का निणय आध्यात्मिक दृष्टि से करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि वेदान्त ही प्रबुद्ध भावी मानव जाति

१—विवेकानन्द—विविध प्रसंग पृ० ४३

२—विवेकानन्द—स्वाधीन भारत। जय हा। पृ० १०

३—वही पृ० ८२

४—वही पृ० ८३

५—वही पृ० ११६

का धम हो सकता है। धम धम के बीच जो क्षुद्र मतभेद है उसका वैशाक्तिक और अथहीन बताते थे। अद्वैत दर्शन की ही वे नीति शास्त्र का जन्मदाता मानते थे। क्योंकि अद्वैत कहता है कि अस्तित्व रखने वाली सभी वस्तुओं की समष्टि ही का नाम ईश्वर है। जिसे हम यष्टि कहते हैं वह समष्टि ही की अभिव्यक्ति मात्र है। प्रकट रूप में हम भले ही अलग अलग प्रतीत होते हैं पर यथाथ में हैं एक ही। हम जितना ही अपने को इन समष्टि से अलग समझते हैं उतना ही अधिक दुःखी होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि अद्वैत ही नीति शास्त्र का आधार है।<sup>१</sup> व्यापक और सारग्राहिणी दृष्टि रखने के कारण ही वे हबट स्पेन्सर के प्रमी थे शेली के सर्वात्मवाद का कायल थे और हीगल के वस्तुनिष्ठ प्रत्ययवाद पर अनुरक्त थे।

दाशनिक स्तर पर उन्होंने यह प्रचार किया कि आत्मा के स्तर का जीवन ही सच्चा जीवन है अथ सब स्तरों का जीवन मर्त्य स्वरूप है।<sup>२</sup>

जड़ पदार्थ मन और आत्मा में सचमुच कोई अन्तर नहीं। व उस एक की अनुभूति के विभिन्न पहलू हैं।<sup>३</sup> विश्व में पाये जाने वाले समस्त चतयों की समष्टि ही वह अयक्त विश्व चतय है जो उन विभिन्न रूपा में प्रकाशित हो रहा है और जिसे शास्त्रों ने ईश्वर की सत्ता दी है।<sup>४</sup>

अपने गुरु के नाम पर स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की तथा दाशनिक और धार्मिक भित्ति पर प्राणिमात्र की सेवा का सूत्रपात किया। रामकृष्ण मिशन का मुख्य उद्देश्य धार्मिक और सामाजिक सुधार है वह प्राचीन भारतीय संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण करता है वेदान्त के सिद्धान्तों को व्यापक स्वरूप स्वीकार करता है और मनुष्य में निहित ईश्वरत्व को जगाना चाहता है। किन्तु वह वर्तमानघर्मों के हिन्दुत्व के विनाश को अब हेतना नहीं करता। यथा—प्रतिमापूजन को भी वह मान्यता देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द की दार्शनिक खाजा और उपदेशों द्वारा भारतीय जनता को सचप्रथम यह पात हुआ कि अद्वैत वेदान्त अत्यन्त व्यावहारिक और प्राणप्र है। उनकी भारतीय धर्म-भाषना का सबसे समय से पाश्चात्य वैज्ञानिक उन्नति की चकाची में सम्भ्रान्त हिन्दू

१—विवेकानन्द—विविध प्रश्न पृ० १

२—वही पृ० ५५

३,४—वही पृ० ६५ तथा ३२

जाति को यह विश्वास होगया कि 'यावहारिक' वेदान्त और रहस्यवाद की तुलना में निरा भौतिकवाद अति बुद्ध तथा एवागी है। हिन्दुओं के मन में यह बात अच्छी तरह बठ गई कि भारत का अतीत सृष्टन सम्पन्न सृष्टत एव समस्त विभूतियों का छविघाम है। विवेकानन्द के विशेष भ्रमण से पाश्चात्य जगत में भारत की स्थाति के साथ-साथ उसकी प्राचीन सृष्टि की थष्टता भी प्रतिष्ठित हुई तथा भारत को एक राष्ट्र मान नये जाने की माँग को मायता मिली।<sup>1</sup> विज्ञान में भारतीय सृष्टि और सम्यता के इस सम्मान से भारतीय रहन-सहन का उपहास करने वाला मेरुष्ण विहीन शिक्ति वग सदा के लिए पराजित हो गया। विवेकानन्द के धर्मोपदेशों से भारतीयों को यह भतीभीति पात हो गया कि भारतीय चिन्तन प्रणाली सृष्टि और सम्यता बड़ी ही भावपूण शाश्वत एव सावभौम है। एतदथ विश्व कल्याण अथवा लौक-मगन के लिए उस अपनाना अनिवाय है। स्वामी जी द्वारा भारतियों को अपने आधिभौतिक विनाश आप्यात्मिक हास किया विमुखता अनुभव हीनता तथा राजनीतिक पराभव के कारण का ठीक ठीक पता लगा जिसे दूर करने के लिए भारतीय राजनीतिक जीवन में उदार सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। तत्कालीन भारतीय साहित्य में जो अव्यक्त चिन्तन रहस्य भावना सूक्ष्म राष्ट्रीयता एवं कमठ गाहस्थ्य जीवन की त्हर दीड पडी उसे बहुत कुछ विवेकानन्द को विचार एवं भावधारा का ही प्रतिफल समझना चाहिए।

### प्रवृत्तिमाग--वाल गगाधर तिलक

वदिक काल में प्रवृत्ति माग का प्राधान्य था। किन्तु उपनिषदों के यग में पानी पुर्यो का श्वाव सयास माग की ओर अधिक होने लगा और वह प्रवृत्ति माग से ऋष्टतर माना जाने गया। परन्तु प्रवृत्ति माग सबथा निषिद्ध नहीं घोषित किया गया यह बात तेन त्यक्त न भजीया मागध कस्यन्विद्धनम स स्वत सिद्ध है।

1 He was the quote the word of Sir E. Valentire Chisol 'the first Hindu whose personality won demonstrative recognition a broad for India's ancient civilisation and for her new born claim to nationhood

A C Majumdar—An Advanced History of India p 886

२—ईशावास्योपनिषद् ?

जागे चक्रवर्ती बौद्ध धर्माचार्या ने बौद्ध धर्म के आत्मवाद का खण्डन करके उसके केवल मन को निर्विरोध करने वाले निवृत्ति माग का अनुसरण किया। बौद्ध और जन धर्मा न स्यास का इतना गुणगान किया कि एक दीर्घकाल तक वे लिए हिन्दू-समाज निवृत्ति की भावना से ग्रसित हो गया जिससे हिन्दुओं के बीच प्रवृत्ति माग का पक्ष दुबल पड़ गया। भक्ति काल में परवर्ती से अभिभूत भारतीय समाज ने प्रवृत्ति माग अथवा कमयोग की महत्ता का कुछ अनुभव किया। यहाँ तक कि कबीर तानक और बल्लभाचार्य आदि सत और भक्त कवियों ने गहस्थी जोड़कर ससार को महत्व दिया जिससे यतिधर्म का प्रभाव कुछ घटा। किन्तु उक्त सन्ता अथवा भक्तों के सुपदेश प्रकारांतर से निवृत्ति को ही बचावा देने वाल था। सहस्रों वर्षों से क्षणभंगुरवाद अथवा क्षणिकवाद के निरन्तर प्रचार से भारतीयों में ऐहिकता का अभाव बढ़ता ही गया और योग दार्शनिक स्तर पर ससार को अनित्य कहते कहते सचमुच ही यावहारिक जीवन में भी सबत्र असत का अनुभव करने और कम का त्याग कर सुख दुख को समभाव से अपनाने का प्रयत्न करने लगे जिससे जाधिभौतिक जीवन में उनकी रुचि घटने लगी। वे धर्म को दुख का हेतु ग्राहस्थ्य को मोक्ष माग में बाधक और स्यास को सबसिद्धि का साधन समझ बैठे। जन और बौद्ध विचारधारा के प्रभाव से प्रस्थानत्रयी की टीका टिप्पणी यतिमाग की पुष्पि के त्रिण होने लगी। इस प्रकार हिन्दू समाज का यातावरण सन्यास की भावना से आच्छन्न हो उठा और भारत के कमनिष्ठ गहस्थ भी कम-से-कम विचारा में तो स्यासी हो ही गए।

उन्नीसवा शताब्दी के नवावधान के प्रकाश में जब भारतीयों की आँखें खली तब उन्हें प्रवृत्ति माग की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। जल प्रवृत्ति-माग बौद्धिक वाच्य का आधार लेकर ब्राह्म-समाज प्रायतन-समाज आदि-समाज राम वृष्ण मिशन आदि के रूप में समाज में प्रकट हा गया। इस शिक्षा में दार्शनिक स्तर पर सबसे महत्वपूर्ण काम लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के द्वारा हुआ। राजा राममोहन राय से लेकर स्वामी विवेकानन्द तक जा भारतीय दर्शन में मयन हुआ था उसी के परिणाम स्वरूप लोकमान्य तिलक द्वारा प्रणीत कमयोगशास्त्र नामक अमूल्य रत्न हिन्दू समाज का उपलब्ध हुआ। इसी से दार्शनिक स्तर पर कमयोगशास्त्र में प्रवृत्ति माग का अभूतपूर्व प्रतिपादन हम देखने का मितता है।



स्वामी विवेकानन्द एक बमठ सचासी और विश्वमानवतावात् के प्रमी थे । परतु बाल गगाधर तिलक प्रधानत समाजशास्त्री और राजनीति क पन्ति थे अत अपन गीता रहस्य द्वारा उहाने हिंुजो म वह प्ररणा भर दी जिससे दाशनिक सूक्ष्मनाए बतन्याकत्त य क निणय म गतिराव उपस्थित न कर सक । यग युगातर स चनी आती हुई निर्जीव परम्पराआ के विरुद्ध लाक माय तिलक न अपने गीतारहस्य म अत्यन्त बानानिक पद्धति पर मह घोषित किया कि प्रवृत्ति धम ही का पान गीता का प्रधान विषय है अतएव गीताधम का रहस्य भी प्रवृत्ति विषयक अर्थात् मविषयक ही होना चाहिए ।<sup>१</sup> ससार को छुडा देन की तयारी के लिए गीता नही बही गई है । गीताशास्त्र की प्रवृत्ति तो इसलिए हुई है कि वह इसकी विधि बतावे कि मो र दष्टि से ससार के कम किस प्रकार त्रिय जावें और तात्विन दष्टि स इस बात का उपदेश करें कि ससार म मनुष्य मात्र का सत्ता क्तय क्या है ।<sup>२</sup> गीता म अजुन को जो उपदेश किया गया है वह विशेष करने मनु इश्वारु इत्यादि परम्परा स चल हए प्रवृत्ति विषयक भागवत धम ही का है और उसम निवृत्ति विषयक यतिधम का जो निरूपण पाया जाता है वह केवल आनुपगिक है ।<sup>३</sup>

स प्रकार नोकमाय ने सम्पूर्ण भारतीय दशन का मथन करके गीता रहस्य की रचना इस उद्देश्य से की कि चन्ती हुई उन्न म ही प्रत्यक मनष्य गृहस्थाधम के अथवा ससार के उस प्राचीन शास्त्र को जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी समझ बिना न रहे ।<sup>४</sup>

बाल गगाधर तिलक क विशाल व्यक्तित्व एव प्रमाण पाणिन्य के कारण तत्कालीन समाज के ऊपर गीता रहस्य का अत्यधिक प्रभाव पडा और नोकमाय की कामना पूरी हुई । देश के सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक राज नीतिक सभी क्षयो म कमवाद की महिमा गई जान लगी जिससे योगा म सासारिक बभब के उपभोग की प्रवृत्ति और स्वतन्त्रता की भावना जागत हो उठी और कमवाद अथवा गाहृष्य जीवन पारलौकिक जीवन का पूरक माना जाने लगा । स प्रकार जीवन के सभी पार्श्वो म चहल पहन दिखाई देने लगी ।

- १—तिलक—गीता रहस्य विषय प्रवेश पृ० २७  
 २—वही प्रस्तावना प० २४  
 ३—वही विषय प्रवेश पृ १०  
 ४—वही प्रस्तावना पृ० २४

किन्तु भौतिक जोर राजनीतिक परिस्थितियाँ हर प्रकार के रोगों के अनुकूल न थीं। अतः अनेक दशों विदेशी विरोधी शक्तियाँ उनके विकास के प्रयत्न को विफल करने में जुट गईं जिससे लोकमान्य तिलक द्वारा प्रतिपादित प्रवृत्ति भाग से प्रभावित हिन्दू समाज में जहाँ एक ओर आशावाद का संचार हुआ वहाँ दूसरी ओर पार्थिव पराभव जनित निराशावाद भी चलक मारने लगा।

### गाँधी, टगोर और अरविन्द

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शती के पूर्वाध के प्रायः सभी विचारक शास्त्रीय अथवा व्यावहारिक रूप में प्राचीन भारतीय साहित्य एवं भारतीय दर्शन की व्याख्या करते पाये जाते हैं। दर्शन की नवीन व्याख्या में ही उनकी मौलिकता निहित है। उस काल में वेद उपनिषद् गीता और पटञ्जली की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप नवीन व्याख्याएँ प्रस्तुत की गईं। इसके अतिरिक्त पुराणों तथा अन्य धार्मिक मतवादों का भी नये ढंग से निरूपण किया गया। उस समय के दार्शनिकों में राममहान राय दत्तनाथ और विवेकानन्द के अतिरिक्त गाँधी, रवीन्द्र और अरविन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त विशाल और प्रभावपूर्ण है। गाँधी, रवीन्द्र और अरविन्द धर्मोपदेशक नहीं हैं किन्तु उनके उपदेशों की आत्मा धर्म ही है। तीनों युग पुराने प्राचीन भारतीय ज्ञान राशि अथवा धर्मशास्त्रों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं।

महात्मा गाँधी अन्ततः उसी सन्त-परम्परा की एक कड़ा में पिसम महावीर और गौतम आदि थे। वे दैनिक जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में मनुष्य मात्र को एकता का स्वीकार करते थे जो हिन्दू-संस्कृति का उत्कृष्ट पहलू है। उन्होंने अपने त्यागमय एवं वासनारहित जीवन में उपवास तप तथा ब्रह्मचर्य के नियमों को लाकमगन की साधना का अंग बनाया। सांसारिक कष्टों और यातनाओं से अस्तमानव का उन्होंने अपना भगवान माना और दरिद्रनारायण का मन्त्र को इष्टदेव की पूजा समर्थी। वे अपने हृदय में करुणा का अपार पारोक्षिक लेकर आये थे और उसके हर एक कण से दुःखी जनता का कष्टमाचन करना चाहते थे। सत्यमेव जयते और अहिंसा परमाधम का उन्होंने अपनी जीवन-साधना एवं भारतीय राजनीति का महामन्त्र बनाया। चरित्र निर्माण को राष्ट्रनिर्माण का मूल माना और एकात्मवाद के आधार पर जीवन के दाना धारा—पार्थिव और पारमार्थिक—पर समन्वयिता समता अथवा समरसता के सिद्धान्त का अनुसरण किया। सर्वोत्तम की भावना द्वारा संचार में

त्याग के आदर्श को सस्थापित करना चाहता और सबका इस बात की सीख दी कि सर्वसाधारण की सेवा ही जीवन का महान लक्ष्य है। उच्च मानवीय आदर्शों से ही प्रेरित होकर उन्होंने अपने अध्यक्षसमय और सचिवसमय अपना आन्दोलन द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य की स्वेच्छाचारिणी सत्ता तथा नीति का जन कर देने का उपक्रम किया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि गांधीजी की दिव्य वाणी भारत के वायुमण्डल में व्याप्त हो गई और दिग्मण्डल में सत्य और अहिंसा का मनो-चार होने लगा।

टगोर के पूवजों में आध्यात्मिक भावना का प्राधान्य था। उनके कुल में अच्छे नखक और कलाकार होते आये थे। किन्तु टगोर उनमें सबसे अधिक प्रतिभाशाली और 'युत्पन्नमति' निकले। बीसवां शताब्दी के प्रथम दशक में स्वदेशी आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया और अमृतसर हत्याकाण्ड से धुंध हो कर सरकारी नाइटहुड (सर की उपाधि) को उतार फेंका। रबीन्द्रनाथ ठाकुर कला के क्षेत्र में उत्तम ही महान हैं जितने कि महात्मा गांधी राजनीति के क्षेत्र में। वे एक दूसरे के परक होते हुए भी एक दूसरे से सबंधा भिन्न थे।

गांधी जीर टगोर ने भारतवर्ष की दो भिन्न स्तरों पर सेवाएँ की हैं। टगोर सामन्तवादी कलाकार थे किन्तु दक्षिणवर्ग से सहानुभूति रखने के कारण जनवादी थे। वे भारत की उस प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा के प्रतिनिधि थे जो जीवन की सरांगीणता से पुष्ट है और जिनमें आमाद प्रमोद का महत्वपूर्ण स्थान है। गांधी जो भारतीय किसान के प्रतीक व भारत की दूसरी प्राचीन परम्परा अर्थात् त्याग और तपस्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु दोनों का अन्त्य एक था। दोनों विश्वमानवतावादी और सात्विक जीवन के पुजारी थे। वे भारतीय जीवन के उभय पक्षों (प्रवृत्ति निवृत्ति) के प्रतिनिधि थे जो एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों ही जीवन में गौरीरिक्त बौद्धिक और जात्मिक शक्तियों के सम्यक उपयोग के पक्षपाती थे।

उस समय की तीसरी महान शक्ति अथवा विभूति यागिराज अरविन्द था। गांधी और टगोर जहाँ मुख्यतः मानवतावादी व वहाँ अरविन्द मुख्यतया अध्यात्मवादी थे। गांधी जीर टगोर मानव को ईश्वर तक पहुँचाना चाहते थे यागिराज अरविन्द ईश्वर को अबनी पर उतार कर उसे मानव मानने में निहित कर देने के अभिलाषी थे। गांधी जीर टगोर आचार शास्त्र की मिति पर स्वयं का सोपान तयार करते हैं परन्तु अरविन्द आध्यात्मिक अथवा

परा शक्ति के स्तर पर मुक्ति की खोज करता है। उनके अतिमानव म आध्यात्मिक शक्ति निहित है। अतिमानव आचार के स्तर से ऊपर उठकर योगिक क्रिया द्वारा अपनी प्रवृत्ति में आध्यात्मिक शक्ति अथवा भागवत स्थिति का समावेश कर लेता है। अरविन्द दशन अतिचेतना की ज्योति से अन्तमन को प्रकाशित करने का आदेश करता है। वह अतिमानव की उपनिधि के साथ अन्तमन की सृष्टि करना चाहता है। आनन्द अरविन्द-दशन का मूलधार है।

इन महान प्रतिभाओं से उस काल का साहित्य प्रभावित है। टगोर के विषय में परिष्कृत नेहरू ने लिखा है—

भारत के मस्तिष्क विशपकर आगे आने वाली पीढ़ी पर उनका बड़ा ही प्रबल प्रभाव पड़ा। केवल बंगाल ही नहीं जिसमें वे स्वयं निवृत्त थे प्रत्युत भारतभर की सम्पूर्ण भाषा-विभाजन किसी रूप में उनसे प्रभावित हुई है।<sup>1</sup>

गांधी दशन का भी साहित्य पर प्रत्यक्ष रूप से ही प्रभाव पड़ा है किन्तु अरविन्द दशन का प्रभाव परात्म रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है। आगे चलकर छायावादी के उदयकाल में अरविन्द-दशन का गम्भीर प्रभाव अविचार सुमित्रानन्दन पन्त पर पड़ा जिसने उनके काव्य में नवचेतनावाद का जन्म हुआ।

### इतिहास, साहित्य और दशन

अतीत की आरंभिक प्रवृत्ति का प्राचीन साहित्य इतिहास और दशन के अध्ययन से विशेष स्फूर्ति मिली। भारतीय विश्वविद्यालयों में भारतीय इतिहास और संस्कृति-विभाग खुल जाने पर प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में सौजस्यपूर्ण ग्रन्थ और लेख लिखे जाने लगे। ऐन विद्याना में स्वर्गीय डा० आर० व० भण्णारकर डा० इमचन्द्र डा० आर० सी० दत्त और डा० अनन्त सहायशिव अलतकर आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके प्रयत्न से वेदांग का अभिरुचि प्राचीन इतिहास के अध्ययन में हुई और जिज्ञासु एवं उत्साही युवकों का ध्यान अनात की ओर विशेष रूप में खिंच गया।

ऐतिहासिक मोक्ष में पटना काल की रायचण्डिका सासा पटी ने उगाया। इस मोक्षपटी के तत्वावधान में भारत के प्राचीन ग्रन्थों के

अगरेजी अनुवाङ्मय प्रस्तुत किय गय जिसस लागी म प्राचीन भारत क प्रति असीम न्दो उत्पन्न हुई । आर० एन० मित्रा सर आर जी भण्णारकर तथा वाशी प्रसाद जायसवाल न एस लिशा म महत्त्वपूर्ण काय किय है । इअ क्षत्र म पाश्चात्य विज्ञानी जम विलियम जोस मजममूलर सिलवान लवी विल्सन ओल्डनवग आदि की सेवाय चिरस्मरणीय हैं । बीसवा शती म जब इस प्रवृत्ति म विशय वेग आया तब प्राचीन भारत की सांस्कृतिक एव दाश निक विचारधाराआ जादि क विभिन्न पक्षो पर मौलिक एव वाजपूर्ण प्रय लिसे गये ।

जतीत की ओर सन्तोपपूर्ण और आशाभरी दष्टि म देखन म परातत्व विभाग का योगदान अत्यन्त श्लाघ्य है । परातत्व विभाग क तत्वावधान म वचानिक ढग पर उत्खनन-काय प्रारम्भ हुआ । सि व म मोहनगाडा पञ्जाब म तथाक्षिणा और हरप्पा बिहार म नाला तथा वाराणसी क निकट सारनाप म महत्वपूर्ण उत्खनन काय हुआ जिसस भारत की प्राचीन सस्कृति की महत्ता और अधिन वृत्त गई ।

उहा लिो भारतीय विश्वविद्यालया म पाश्चात्य दशन के साथ साथ भारतीय दशन के पठन पाठन की समचित व्यवस्था की गई जिमने भारतीय दशन की बड पमाने पर छान-बीन प्रारम्भ हुई और उस पर वृत्त-वृत्त और गवयणापूर्ण प्रय और इतिहास लिखे गये । डा० दास गुप्ता डा० भगवान दास और सवपल्ली ग राधाकृष्णन के काय इस लिशा म अत्यन्त सराहनीय ह । उहाने पाश्चात्य और पौरात्य दशन प्रणानियो की तुलनात्मक समीक्षाआ द्वारा लोगो को भारत के धार्मिक पान की समद्ध परम्परा स जवगत कराया । बीसवी शताब्दी के दाशनिक क्षत्र म सबसे मौलिक प्रयास योगिराज श्री अरविन्द द्वारा हुआ । अरविन्द ने अभिनव दाशनिक सिद्धांता का प्रतिपादन किया गीताधम की व्याख्या नये ढग स की और वेग म निहित दाशनिक विचारा का अपूर्व विश्लेषण किया । योगी अरविन्द को वर्तमान यग का महत्तम दाशनिक कहा जा सकता है । इस प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप भारतीय साहित्य म नया मोड आया और उसम प्राचीन सांस्कृतिक मा यताओ गाभीय विन्तन अनुभूति एव तत्वदशन का उन्मुक्त अभिनदन हुआ ।

### राजनीतिक आन्दोलन

जतीसवी शताब्दी म जो विभिन्न आन्दोलन देश के विभिन्न भागो म चले थे उनका मुख्य उद्देश्य हिन्दू धम और सस्कृति की मटियो को दूर करके

उसे सशक्त बनाना था, किन्तु प्रभाव की दृष्टि से इन आन्दोलनों का काय क्षत्र केवल धार्मिक सांस्कृतिक और सामाजिक सुधार तक ही सीमित नही रहा प्रयुक्त उनके द्वारा भारतीयों को राजनीतिक जागरण की प्रेरणा भी मिली । छायावाद-काव्य पर इन राजनीतिक आन्दोलनों के उतार चढ़ाव का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है अतः यहाँ पर उनका थोड़ा परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा ।

उत्तीसवा शताब्दी के अन्तिम दो दशका में अंगरेजा शासन के भ्रष्टाचार से जनता उस्त थी और धीरे धीरे उसमें विद्रोह का भावना जड़ पकड़ रही थी । निदान अंगरेजी सरकार को जनता की इस बन्ती हुई अशान्ति को रोकने की चिन्ता हुई । इसी के परिणाम स्वरूप मि० ह्यूम ने ब्रिटिश साम्राज्य का भारतीय विद्रोहक संकट से बचाने के लिए, कुछ भारतीयों के सहयोग से १८८५ ई० में इण्डियन नेशनल काँग्रेस का स्थापना की । प्रारम्भ में यह काँग्रेस मध्यम श्रेणी के लोगों की संस्था रही । किन्तु धीरे धीरे उसमें उच्च वर्ग का उदय हुआ । बाल गंगाधर तिलक लाला लाजपत राय तथा विपिन चन्द्र पाल उस दल के प्रमुख नेता हुए । लोकमान्य ने यह सिद्ध गजना की कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे प्राप्त करके ही रहेंगे । उक्त राष्ट्रीय जागृति ने भारतीय साहित्य भूमि में भी राष्ट्रीय भावना तथा स्वाभिमान के बीज डाले । राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर बंगाल के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिमचन्द्र ने 'वन्देमातरम' गान लिखा जो १९०५ ई० में बंग भंग के अवसर पर भारत का राष्ट्रीय गान बना । किन्तु राष्ट्रीय भावना के इस विकास के साथ साथ सरकार का दमन चक्र भी घटना गया । सरकार की इस निमन नीति ने ही पान्थिकारी दल को जन्म दिया जिसने विदेशी सरकार को उन्मत्त करने के लिए हिंसात्मक उपायों का सहारा दिया । यह आन्दोलन सन् १९०५ ई० आरम्भ हुआ और सन् १९१७ ई० तक किसी भी रूप में चलता रहा । इस आन्दोलन के फलस्वरूप राष्ट्रीय जीवन में सम्पन्नता आया किन्तु सरकार के आतंक के कारण उसका अभिव्यक्ति साहित्य में न हो सकी उसका तीक्ष्ण स्वर बबन साक गीता में प्रस्फुटित होकर रह गया ।

सरकार की ओर से राष्ट्रीय आन्दोलन को बुचबना का प्रयत्न निरन्तर चलता रहा, किन्तु धीरे धीरे सरकार ने यह भी अनुभव किया कि केवल दमन चक्र से ही राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाया नहीं जा सकता । अतः उसने भारतीयों

का कुछ राजनीतिक अधिकार देकर सतुष्ट करने का निश्चय किया। मिटो मार्ले रिफॉर्म (१९०९) सरकार की इसी नीति का परिणाम था। कांग्रेस के नरम दल ने इसका स्वागत किया और ब्रिटिश सरकार का यह मतन्य कि भारतीय राष्ट्रीयता का उठता हुआ ज्वार मन्द पड़ जाय कम से कम कुछ समय के लिए पूरा होता हुआ दिखाई पड़ा। सन १९०९ और १९१४ के बीच कांग्रेस की काय पद्धति प्रायः वही रही जो १९०५ से पहले थी। किसी प्रमुख नगर में प्रति वर्ष बड़े स्त्रिका की छटियों में कांग्रेस-अधिवेशन होता था और उसमें सभी महत्वपूर्ण राजनीतिक एवं आर्थिक प्रश्नों पर सामान्य प्रस्तावों का पारण किया जाता था। यही कारण है कि जिस समय १९१४ ई. में माराप में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा उस समय देश में कोई सत्रिय राजनीतिक जीवन नहीं था। किंतु विश्वयुद्ध (१९१४) के छिड़ जाने पर भारतवासियों में एक नई चेतना का आविर्भाव हुआ। इस युद्ध में भारत न सरकार का धन जन की प्रचुर सहायता प्रदान की जिससे लोगों में यह जागरण कि शक्तिशाली साम्राज्य को भी भारत की सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है आत्माभिमान और आत्मनिभरता के भाव जाग उठे। कांग्रेस के गरम तथा नरम दोनों दलों ने जो १९०७ में सूरत के अधिवेशन में अलग अलग हाथ मारें थे एक समान राजनीतिक कायक्रम अपनाने के उद्देश्य से अपने पारस्परिक मतभेदों को मिटा लिया। मुसलमानों का भी सहयोग प्राप्त हुआ। फरवरी १९१६ ई. में कांग्रेस और लीग ने मिलकर लखनऊ में शासन सुधार की माँग रखी। उससे भारत के राजनीतिक वातावरण में सवत्र उत्साह तथा उमंग की लहर दिखाई पड़ने लगी। अतः तत्कालीन भारतीय साहित्य में भी आशावाद एवं सजग चेतना का समावेश हुआ। सन १९१८ ई. में युद्ध समाप्त हुआ। युद्ध में भारत के सहयोग तथा सहायता के उपहार स्वरूप अंगरेजी सरकार ने १९१० ई. का शासन सुधार उपस्थित किया किन्तु उसमें जनता को सतोष न हुआ। उसी वर्ष सरकार ने रौलेट ऐक्ट लागू किया जिससे भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं और अधिकारों पर कठाराघात होता था। जन रौलेट ऐक्ट का सारे देश में तीव्र विरोध हुआ। लोगों ने सरकार से रौलेट ऐक्ट को अविनाश वापस ले लेने की जमीन की। किंतु सरकार पर उसका किंचित प्रभाव नहीं पड़ा। भारत में तब तक जागरण अथवा स्वातंत्र्य की लहर काफी फल चकी थी। जर्मनी आस्ट्रिया तथा रूस की जन शक्तियों के विवरण को पढ़ कर देश का मनोबल जाग उठा था, अतः चारों ओर सरकार के विरोध में

हस्ताला और प्रदर्शनो का ताता नग गया । सामान्यत आन्दोलन सफल रहा । किन्तु जमनसर म सरकार की ज्यादानी स जनता खिन तथा स्प्ट हो गई जिसमे उसने कुछ उपद्रव भा क्रिय । इस पर पजाब सरकार न सम्पूर्ण नगर म सनिक शासन (Martial Law) स्थापित कर लिया । जनरल थपर न तन्वियानवाला बाग म शांतिपूर्ण ढंग से सभा करते हुए निहत्थे लोगो को सनास्त्र सनिको क साथ चारो ओर स धर लिया और उन पर उन्हें किसी प्रकार की पूव चेतना त्थिमे विना ही गोनी का वधा प्रारम्भ करदी । जत्याचार का यही अन्न नही हुआ । जमतसर की सडका पर यदि कोई मिल जाना ता उमे जमीन पर रेंगन के लिए बाध्य क्रिया जाना । दश भर म तन्वियानवाला बाग की दुख्त घटना से गोव और क्षाभ की नहर दौड गई । कदीन्द्र खीन्द्र न इस निमम हत्याकाण्ड के प्रति अपना तीव्र रोष प्रकट क्रिया और सम्मान म सरकार द्वारा प्राप्त सर के खिताब को उतार फेंका । ब्रिटिश सरकार के उक्त पाश विक्रयवहारा के उपरान्त भी राष्ट्रीय आन्देवन दवाभा न जा सका । किन्तु क्षुव परिस्थिति म दश की राजनीतिक और सामाजिक भूमिमा को निराशा से अभिभूत हान स बिलकुल बचाया न जा सका । यह कान छायावाद का शशवसान था । अत छायावादी काव्य म निराशा का स्वर प्रारम्भ स ही मुखर हो उठा ।

सन १९२० ई० म गांधी जी के भारतीय राजनीति म प्रवेश करत ही उसकी धारा एर दूसरी निशा की ओर मुड गई । महात्मा गांधी दरिन्द्रनारायण के सच्चे प्रतिनिधि के रूप म आए । अत उहाने स्पष्ट कहा कि जा असहाय निधन विनाना तथा मजदूरा का ऊपर उठान का प्रयत्न नग करता बह उनके धापण का पनापानी है । इस प्रकार गांधी जी न स्वतंत्रता आन्देवन म अभिनव स्पर्ण उत्पन्न कर दो । गतिया स साइ हुई भारतीय जनता का उहाने निर्भिकता और सत्यनिष्ठा का पाठ प ाया । शम्प्रहीन भारत का उहाने अहिंसात्मक सत्याग्रह का अमाध गस्त्र प्रदान क्रिया । उनके सत्याग्रह असह योग तथा ध्यक्तिगत एव सविनय अवना आन्देवनान भारत क स्वागिनता-मद्यम म अभूतपूर्व दग्ना और गक्ति पदा कर दा ।

अपन विचारा के अनुसार महात्मा गांधी ने देश म पानक रूप स असहयोग आन्देवन चनान का निरवय क्रिया । १९२० ई० म अगिन भारतीय बाग्रम न जपन बलबत्ता अधिवेशन म गांधी जी की अहिंसात्मक अनहयोग



आन्दोलन की नीति को स्वीकार भी कर लिया। गांधी जी की अपील पर १९२० ई. में कॉमिल के चुनावों में दो तिहाई मतदाताओं ने भाग नहीं लिया। जनक विद्यार्थियों ने सरकारी स्कूलों से अपना नाम कटा लिये। बहुत मक्कीना ने अपनी कवालन छोड़ दी जिनमें देशबन्धु चितरजन दास तथा माती लाल मन्सू के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। लोग ने बड़ ही उत्साह से विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। देश के काने-काने में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग का प्रचार किया जाना लगा और विदेशी सरकार के विरुद्ध शान्तिपूर्ण विद्रोह की भावना स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी। इस असहयोग आन्दोलन में देश के काने-काने में आशा और आत्म-बल का संचार तो हुआ ही साहित्य के विकास का भी उससे बड़ी प्रेरणा मिली। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत जुवाऊ साहित्य का भी प्रचुर मात्रा में निमाण हुआ।

दिसम्बर १९२१ ई. में कांग्रेस ने अपने अहमदाबाद अधिवेशन में न केवल पहल की अपेक्षा अधिक उत्साह और शक्ति के साथ आन्दोलन का जारी रखने का निश्चय किया बल्कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सगठित करने के लिए महत्त्वपूर्ण कदम भी उठाया। लोग का उत्साह बहुत बढ़ गया। किन्तु उसी समय गारखपुर में चौरीचौरा नामक स्थान के पुलिस थाने में कुछ उत्तम जित लोगों की भीड़ ने आग लगा दी जिससे १२ सिपाही जलकर मर गए। इस हिंसात्मक काण्ड का समाचार सुनकर गांधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया। इसका परिणाम प्रत्यक्ष दृष्टि से अच्छा नहीं हुआ। सत्याग्रहियों का उत्साह भग्न हो गया और वे शोक और नराशय का अनुभव करने लगे। पण्डित मोतीलाल नेहरू लाला लाजपतराय और देशबन्धु चितरजन दास को भी आन्दोलन स्थगित कर दिया जान से बड़ा असन्तोष हुआ और उन्होंने जन स गांधी जी के पास एक पत्र लिखकर उनके निणय के विरुद्ध अपना असन्तोष व्यक्त किया। इस राष्ट्रीय निराशा असन्तोष और अवसाद की अनुगुण तत्कालीन छायावादी काव्य में भी सुनाई पड़ती है।

असहयोग आन्दोलन का स्थगित कर देने से कांग्रेस के तरुण सदस्यों में विशेष असन्तोष उत्पन्न हुआ गया। कांग्रेस के भीतर समाजवादी तथा साम्यवादी वर्गों का प्रभाव बढ़ने लगा। रूस में समाजवादी शान्ति की सफलता तथा वहाँ पर एक समाजवादी राज्य की स्थापना से भारत के उग्र राष्ट्रवादियों में समाजवाद के प्रति विशेष उत्साह उत्पन्न हो गया। ऐसी परिस्थिति में लोग को यह अनुभव होने लगा कि महात्मा गांधी के रचनात्मक काय में अथवा

स्वराज्य पार्टी के बधानिक आन्दोलन से स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव है अतः अधिक शक्त प्रयत्न की आवश्यकता है। फलतः युवकों के बीच समाजवाणी विचारधारा का द्रुतगति से प्रचार होना और भजदूर किसानों को संघटित करने के उपाय किये जाने लगे। १९२७ में मद्रास के कांग्रेस अधिवेशन में राजनीतिक असन्तुष्टि का उग्र रूप धारण कर लिया। कांग्रेस में वामपंथी दल का उत्थन हो चुका था और वह औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग से असन्तुष्ट होकर पूर्ण स्वतंत्रता की मांग कर रहा था। १९२८ में कलकत्ता में तरण संस्थान में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। १ दिसम्बर को १९२९ ई० में कांग्रेस के सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत की राष्ट्रीय पताका फहराते हुए अपने भाषण में कहा कि स्वतंत्रता से तात्पर्य हमारे लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद में पूर्णतया स्वतंत्र हो जाना है। १९३० की २६ जनवरी को कांग्रेस ने अपना प्रथम स्वतंत्रता दिवस मनाया। दशक बाने-बाने में विशाल सांस्कृतिक सभाएँ हुईं और जनता ने सामूहिक रूप से अपने उत्साह का प्रदर्शन किया। इस प्रकार सन १९२० और १९३० के बीच राष्ट्रीय आन्दोलन ने एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप धारण किया, जिससे देश के प्रत्येक वर्ग—पूजापति व्यापारी अध्यापक वकील जमींदार किसान आदि में उत्साह और चेतना का एक अपूर्व लहर दौड़ गयी। अनेक प्रकार के राष्ट्रीय गान, कर्ण गान तथा प्रयाण-गान लिखे गये जो उन दिनों जुनसो के निकलते समय तथा पर्वों उत्सवों अथवा जनसभा के अवसर पर गाय जाते थे। उन गानों में विहित भारतीय स्वातंत्र्य का आग और कल्पना ने लोगों में बड़े सहिष्णुता साहस त्याग तथा बलिदान की अदभुत शक्ति भर दी। अनेक हिन्दू-मुसलमान राष्ट्रभक्ता द्वारा निर्मित ये गान थे जिनका आज कोई लक्षा नहीं और जिनमें से अधिकांश के रचयिताओं का आज पता नहीं है।

फरवरी सन १९० ई० में कांग्रेस की काय-समिति ने महात्मा गांधी को इस ध्यान का अधिकार प्रदान किया कि वे अपनी इच्छानुसार जब चाह सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर सकते हैं। अतः गांधी जी ने सद्यः नमक सत्याग्रह प्रारम्भ कर लिया। किन्तु मार्च १९३१ में गांधी इरविन समझौता हो गया और सरकार के द्वारा दमनात्मक प्रतिबंधों का हटाने के फलस्वरूप कांग्रेस में अपने आन्दोलन को समाप्त कर लिया। पूर्ण स्वतंत्रता का प्रयत्न चल ही रहा था कि वही बीच सरकार ने १९३५ के बधानिक एक्ट की घोषणा की। इस एक्ट में सन्तुष्टि ने हात डूँगे भी १९३७ के प्रान्तीय निर्वाचनों में कांग्रेस ने

भाग लिया। मद्रास संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) बिहार उड़ीसा बम्बई और मध्यप्रान्त में काँग्रेस के मन्त्रिमण्डल बन। काँग्रेसी सरकारों ने अभी शासन भार उठाया ही था कि यारोप में तृतीय महासमर छिड़ गया और अंग्रेजी सरकार ने बिना काँग्रेस के सहयोग के भारत से धन जन की सहायता भेजना प्रारम्भ कर दिया। अतः काँग्रेस मन्त्रिमण्डल ने त्यागपत्र दे दिया। प्रान्तों का शासन १०३५ के ऐक्ट के अनुसार गवर्नरों के अधिकार में जा गया। १९४० में काँग्रेस नाथ समिति ने यह प्रस्ताव पास किया कि यदि सरकार उसकी राजनीतिक मांग स्वीकार कर ले तो वह उन युद्ध में सहयोग प्रदान करेगी। अंग्रेजी सरकार ने काँग्रेस की इस मांग को कि भारत सरकार को केन्द्रीय विधान मण्डल के प्रति उत्तरदायी बना दिया जाय ठकरा दिया। अतः महात्मा गाँधी ने व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन का सूत्रपात सत्त बिनाया भाव में किया। सरकार ने देश के नेताओं को जेल में बंद कर दिया। स्वतन्त्रता सङ्घ निरन्तर चलता रहा। अतः में १९४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन आया। देश की यह मकाम बड़ी परीक्षा थी। इस परीक्षा में वह सफल रहा। परिणामस्वरूप १५ अगस्त १९४७ में भारतीय राष्ट्र स्वतन्त्र हो गया।

तत्कालीन हिन्दी काव्य ने इस नव जागरण और राष्ट्रीय चेतना का अनुसरण तो किया ही साथ ही उस प्रेरित और उसका पथ प्रदर्शन भी किया।

### छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ

छायावाद काव्य की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक सामाजिक और राजनीतिक जागरण का अवनोदन करने के उपरान्त अब हमें यह जान लेना चाहिए कि उक्त आन्दोलनों के कौन कौन से तत्त्व छायावाद युग में जीवन के विविध कक्षों में युगान्तर उपस्थित कर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में छायावाद काव्य की दार्शनिक प्रवृत्तियाँ के लिए प्रेरणा स्रोत बन।

### आध्यात्मिक प्रवृत्ति

१९वीं शताब्दी के मध्य में योरोप की भौतिकवादी संस्कृति के संपर्क से बर्दिक वाड्मय का जाघार देकर भारत में जो सांस्कृतिक जागरण का स्रोत फूटा उसका वेग बीसवीं शताब्दी तक आते-आते अत्यन्त प्रबल हो गया। अतः लोग का ध्यान अपनी संस्कृति के मूल स्रोतों की ओर विशेष रूपसे खिंच गया।

प्रायः ममस्त सांस्कृतिक आन्दोलन का ध्येय पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान की भूमिका में प्राचीन भारत की आध्यात्मिक सृष्टि का पुनरुद्धार करन अथवा आध्यात्मिकता की नीतिकता के साथ मगति बढान का था । सांस्कृतिक जागरण के कणधारा में स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व अत्यन्त अोजस्वी और प्रभावपूर्ण था । उनके विशाल व्यक्तित्व में प्रायः समस्त आन्दोलन के स्वर तत्व समाहित हैं । विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म और दर्शन की तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल नवीन व्याख्या कर भारतीय सृष्टि और सभ्यता को शाश्वत एवं सावभौम सिद्ध कर दिखाया जिससे लोगों में कमयाग ज्ञानयाग और भक्तियाग में प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई । उनकी अद्भुतवादी की भूमि पर भारतीय धर्म-नीति समाज नीति राष्ट्र-नीति सबधम समन्वय तथा अन्तराष्ट्रीय भावना की स्थापना का प्रबुद्ध भारतीयों पर प्रबुद्ध प्रभाव पडा । पाश्चात्य मानवतावादी भारतीय अद्भुतवादी का ही प्रतिरूप था अतः उनके विशिष्ट गुणा-बुद्धिवादी समन्वयवादी उदारता स्वाधीनता समानता आदि-को भी उन्होंने भारत के स्थिति मानवतावादी में सम्मिलित कर लिया । इस प्रकार भारतीय समाज में एक नवीन अध्यात्मवादी मानवता का जन्म हुआ जिसकी नवप्रतिष्ठा का सक्रिय प्रयत्न छायावादी वाद्य में भी किया गया । अध्यात्मवादी मानवतावादी के अपनापन में ही छायावादी-युग में मानवीय अनुभूति की परिधि अत्यन्त विस्तृत हुई जिसकी अभिव्यजना छायावादी में सर्वात्मवादी के रूप में की गई ।

छायावाद-युग के सामाजिक और राजनीतिक नेता लोकमान्य तिलक योगी अरविन्द महात्मा गांधी और कबीर रबीन्द्र किशोर किशोरी रूप में साम्प्रतिक आन्दोलन में प्रभावित रहे । उक्त महापुरुषों पर बड़ा उपनिष्ठा गीता सन्तमत्त तथा बष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव था । अतएव उन्होंने देश को जो नवीन चेतना नवीन दृष्टि तथा नवीन भाव स्थिति उमका आधार भारत का परम्परागत अध्यात्मवादी ही रखा । यहाँ तक कि महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन भी आध्यात्मिकता का महान आदेश लेकर ही सामन आया । जिसमें भागनीय राजनीति में साथ और अहिंसा का सिद्धान्त सर्वमाय हुआ । इस प्रकार भारतीय जीवन के प्रत्येक कक्ष में आध्यात्मवादी का प्रवेश हुआ जिसकी प्रकिर्षित माहियत में भी मुनाई पना ।

सांस्कृतिक आन्दोलनों की सुधारवादी विरुद्धताओं के साथ पाश्चात्य सांस्कृतिक मानस का भी महात्मा गांधी ने महत्व दिया था । रबीन्द्रनाथ ठाकुर

त भी भारतीय अध्यात्म के प्रभाव का यत्रयुग के सौन्दर्य में वक्षित कर उस पूर्व तथा पश्चिम दोनों के लिए समान रूप में आवृत्त बना दिया था। इस प्रकार नवीन युग की आत्मा के अनुकूल स्वर झट्टि प्रस्तुत कर कवीन्द्र रवीन्द्र ने एक सौन्दर्य बोध का झरोखा कल्पनागील युवक कवियाँ व हृदय में खान दिया था।<sup>१</sup> अतः महात्मा गाँधी और टगोर के प्रभाव से त्विन्नी-युग की पौराणिक भावना राष्ट्रीय एवं सुधारवादी प्रवृत्ति छायावादात्मक युग में आध्यात्मिक चेतना का रूप में विश्ववाद तथा समन्वयवाद की भावना के रूप में परिणत हो गई।

छायावाद की आध्यात्मिक प्रवृत्ति का एक कारण प्रथम विश्व युद्ध (१९१४-१८) भी बना। महायुद्ध के प्रभाव से देश की विण्डी हुई आर्थिक दशा और विकट हो गई और युद्ध समाप्त होने के बाद तो जगज्जो द्वारा भारतीयों का राजनीतिक सुविधाएँ प्राप्त होने का स्वप्न भी टूट गया जिसमें देश में सवत्र निराशा का साम्राज्य छा गया। अतः आर्थिक विपन्नता एवं राजनीतिक निराशा के कारण छायावादात्मक युग के आध्यात्मिक वातावरण में छायावाद के कवि का जातमानन्द की खोज में उलझ जाना जसन्त स्वाभाविक था। किन्तु जसा कि स्पष्ट है महायुद्ध सङ्कुचित राष्ट्रवाद का कुपरिणाम था अतः उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप तीग आफ नेशनस का जन्म हुआ। परिणाम स्वरूप यारोपीय सान्धिय के समानांतर छायावाद में भी प्रम विश्वास सत्य-न्याय सहयोग समत्व आदि आध्यात्मिक गुणा के अम्युदय की आकांक्षा प्रकट की गई। इस प्रकार सांस्कृतिक और राजनीतिक आन्दोलना के कारण छायावाद-युग में जो आध्यात्मिक प्रवृत्ति उत्पन्न हुई उससे प्रभावित होकर छायावाद में अद्वैतवादात्मक समन्वयवादात्मक मानवतावाद विश्वबन्धुत्व एवं प्रवृत्ति निर्वृत्ति की भावना का प्रादुर्भाव हुआ।

### रहस्यवाद

वेदो उपनिषदो गीता और पुराणा में रहस्योदघाटन की प्रवृत्ति विद्यमान है। जात्मा परमात्मा जीव और जगत के सम्बन्ध में उनमें रहस्यात्मक सवेत मौजूद हैं। प्राकृतिक शक्ति पुञ्जो में किसी एक सव-यापी चेतन सत्ता से अनुप्राणित होने का भाव वेदो और उपनिषदो की विशिष्टता है। अतः उनसे सीध प्रेरणा ग्रहण करने के कारण छायावाद अपरिमेय सूक्ष्मदर्शिता

एक लिय रहस्यानुभूतिया का ज्योति-मुञ्ज बन गया। उपनिषदों की छत्रछाया में ही छायावादी के कवि ने विश्व सुन्दरों प्रकृति में विराट क दशन की शिक्षा ग्रहण की।

स्वामी विवेकानन्द का वेदातवाद भागो रहस्यवाद की पृष्ठभूमि बनने के लिए ही उपस्थित हुआ था। विवेकानन्द का मुख्य ध्येय मनुष्य में अन्तर्निहित ब्रह्मभाव को जगाना था।<sup>१</sup> उनके प्रभाव से छायावादी-युग का दिग्मण्डल अयमस्मि सव, 'अयमात्मा ब्रह्म अहम ब्रह्मास्मि, —सोम तत्त्वमसि सवमात्विद ब्रह्म, इण्वास्मिपिद सव की भाषणा से गज उठा था। इसी उपनिषद वाक्यों के आधारभूत छायावाद में रहस्यवाद अथवा ब्रह्मवाद का स्वर निनाम्नि हुआ। साम्प्रतिक जागरण के अग्रदूत क्वाट्र रवीन्द्र ने भी उपनिषद और ऋग्वेद के सत्यां का अपन रहस्य गीता में बड़ा ही भावकता के साथ प्रकट किया था। इसका भी प्रभाव छायावाद की रहस्यात्मक धारा पर पड़ा।

नवचेतना से युक्त आध्यात्मिक साधना की अत्यन्त उच्चभूमि में जाने वाले तथा रहस्यभावना को वनानिक रूप में स्पष्ट करने वाले महायोगी परम चेतन अर्थात् अरविन्द से। व कवि थे और उनके महाकाव्यों गाना और प्रार्थना में उच्च रहस्यात्मक अनुभूति प्रकट हुई थी। उनके महान् व्यक्तित्व और कविता द्वारा भी छायावाद का रहस्यात्मक बलि का उत्तेजन मिला। किन्तु रहस्यात्मक प्रेम सवेदना तथा भक्ति हिन्दी कविता के लिए नई वस्तु नहीं थी। उसकी परम्परा हिन्दी साहित्य में बहुत लम्बा से चला आ रही थी। हिन्दी साहित्य के आधिकारिक में ही विद्यापति की 'जनम अवधि हम रूप निहारन' जमी पत्तियों में रहस्यात्मक प्रेम-सवेदना का धुधवी जाँकी हम मिल जाती है। मध्यकाल में कबीर आपसी तथा भीरा का रचनाएँ रहस्यात्मक प्रेम-सवेदना से भरी पड़ी हैं रहस्यात्मक प्रेम सवेदना वहाँ पूवराग की साधना के साथ काली रूप-लावण्य की छाया में और काली विरहिणियाँ के उगागों में निरन्तर प्रकट होनी आई हैं। छायावाद का रहस्यात्मक प्रेम सवेदना उस परम्परा की एक सुन्दर कड़ी है। इससे छायावादी कवि के रागात्मिक बलि द्वारा चरम भाव लोक तक पहुँचने के प्रयत्न में प्रेममार्गों मूषी कविता का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। छायावादी का रहस्य-लाक कबीर जानती, नुतवन आदि पानमार्गों तथा प्रेम

मार्गी कविया के उस रहस्य-लोक से मिलता जुलता है जहाँ प्रेम सौंदर्य और हृदय का चिरन्तन राज्य है और जिसमें निरन्तर अनहन्त नाम होता रहता है। आत्मा परमात्मा का मधुर मिलन संयोग की मानकता और विरह का ताप ससीम का असीम के प्रति कतूहल तादात्म्य-अनुभव विस्मय की भावना तथा जिज्ञासा आदि जो रहस्यवाद की विशेषताएँ हैं छायावाद में पर्याप्त मात्रा में ढूँढी जा सकती हैं। यहाँ पर यह टाक लेना आवश्यक है कि ऋषियाँ और साम्प्रदायिक रहस्यवातियों की रहस्य भावना जहाँ साधन प्रसूत है वहाँ छायावादी रहस्य भावना मूलतः भावना अथवा कल्पना की सृष्टि है।

छायावाद का कवि अछूते सौंदर्य स्वच्छन्द प्रेम तथा नित नवीनता का उपानयन था। इस दृष्टि से यदि हिन्दी का कोई एक कवि छायावादी कवियों का आत्मीय बंधु हो सकता है तो वह रीति काल के नेही महाब्रजभाषा प्रवीण तथा मुन्तरतानि के भेद को जानने वाले कवि घनानन्द है। घनानन्द वह मनु है जिस पर चर्चा कर पुरानी हिन्दी कविता ने नवयुग में पन्थापण किया। शिवेती युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिश्रिया स्वरूप कल्पनाओं और स्वप्नों की रंगीन कुहेलिका निगूण हुए जो नई काव्य शली हिन्दी में आई उसने अग्रदूत घनानन्द ही थे। घनानन्द का एक चरण रीति काल में है तो दूसरा बिनाकन छायावाद के समीप पहुँचता है। घनानन्द के काव्य से ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हिन्दी कविता की भाषा ब्रजभाषा से बन्धन कर खड़ी बोनी न हा गई होती तो छायावाद के समान कोई रोमांटिक आन्दोलन ब्रजभाषा में ही आया होता और हिन्दी कविता उस भगिमा को प्रचुर मात्रा में उपस्थित करती जो बोधा घनानन्द और भारतेन्दु में संकेतित हुई थी।<sup>१</sup> तात्पर्य यह कि काव्य भाषा का रूप बन्धन जाने के उपरान्त भी कुछ समय बाद हिन्दी के छायावादी कवियों ने रीतिकाल के स्वच्छन्द कवियों की भाँति ही अगत के प्रेम की चर्चा परम भाव या महाभाव के रूप में लाक्षणिक शली में की। इस प्रकार छायावाद रीतिकालीन कविता की स्वच्छन्द धारा का विकास माना जा सकता है।

विन्त रहस्यात्मक प्रेम संवेदना के इस परम्परागत विवाह के उपरान्त छायावाद ने प्रेमपरक रहस्यवाद का एक और महान कारण है। प्रेम मानव हृदय की एक चिर निगूण वृत्ति है। प्रत्येक साहित्य में देग कान के अनुरूप

उसकी अभिव्यक्ति हुई है। हिन्दी साहित्य के वीरगाथा काल में कवियों की दृष्टि सामन्ता के शीघ्र व अतिरिक्त उनकी रूप लिप्सा तथा विलास-वासना की ओर भी लगी रहती थी। अतः उनकी भागवत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए उद्दान कहानों का आधार लेकर नायक नायिका के रूप में मानव प्रेम तथा सौन्दर्य की सृष्टि की। इस प्रकार नायक नायिका के आवरण में उद्दान अपनी प्रेम वासना को भी बिना पकड़ में आवे ही व्यक्त कर दिया। इन काल में विद्यापति की कविता अत्यन्त शृङ्गारिक है। उनकी शृङ्गारिकता में वृत्त वासनात्मक प्रेम उपस्थित है जो पुरुष में नारी के प्रति और नारी में पुरुष के प्रति स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहता है। किन्तु विद्यापति ने भी अपने उक्त वासनात्मक प्रेम का राधा वृष्ण के परिवेश में ही व्यक्त किया है। इन उनके काव्य में भी शारीरिक सौन्दर्य और लौकिक प्रेम का सुन्दर वर्णन हुआ है। भक्ति-काल में प्रेम सूफी साधकों के लिए साधना का अंग बनकर आया। अतः परम सत्ता के प्रति व्यक्त होने वाले प्रेम में उह घुमाव फिगव की आवश्यकता नहीं पड़ी। रीतिकाल का साहित्य प्रेम की नाना भंगिमाओं और चोटियों से भरा पड़ा है। रूप सौन्दर्य हाव भाव अथवा सना-धना का विशाल चित्रण उसमें हुआ है। किन्तु रीति युगान् कवियों ने अपनी शृङ्गारिक भावनाओं की तुष्टि के लिए वृष्ण और राधा का नायक और नायिका की भूमि पर स्था विठायी जिसमें उह अपनी लौकिक प्रणयानुभूतियों का चित्रित करने के लिए एक अलौकिक पर्ण मिल गया।

हिन्दी साहित्य में यह पहला अवसर था जबकि छायावादी कवि ने अपनी अतिरिक्त लौकिक प्रमानुभूति का सुन्दर व्यक्त करने का साहस किया। वयक्तिक प्रणयानुभूति का जसा हम अप्युक्त वक्तव्या में दिखा पाय है अपना कह कर पकड़ करने की परम्परा हिन्दी व पूर्ववर्ती साहित्य में नहीं मिलती। और यदि क। मिलती भी है तो कवन भक्ति अथवा दन्व करण आदि भावों के प्रकाशन के रूप में। रीति युग के स्वच्छन्द कवियों-धनान् बाधा ठाकुर जालम आदि को भी अपनी लौकिक प्रमानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए अपने प्रमपात्र में परम भाव अथवा ईश्वरीयता का आरोप या मन्त्र करना पना था। ठीक ऐसा ही दना छायावादी कवि की था। अपनी वयक्तिक भावनाओं को अपने निजी लौकिक रूप में व्यक्त करने के प्रयास में उम अस्पष्टता का चानावरण तयार करना पड़ा।<sup>१</sup> राजनीतिक सामाजिक तथा साहित्यिक

१ हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास डा भगीरथ मिश्र, पृ० २००-१०



परिस्थितियां न भी उस अपनी प्रभाभिव्यक्ति में अस्पष्ट रहने के लिए बाध्य किया। तिलक तथा महात्मा गाँधी जैसे राजनीतिक नेताओं का आचार विचार सांस्कृतिक आन्दोलनों के परिवर्तनावादी प्रचार तथा ५० महावीरप्रसाद त्रिवेणी और रामचन्द्र गुवन जैसे साहित्यिक आलोचकों के मर्यादावादी दृष्टिकोण के कारण छायावाद का आदर्शवादी कवि अपने व्यक्तिगत प्रमत्त पर शाश्वत ही ठिठक गया जिससे वह सतत अपनी मधु चया जयवा प्रगयानुभूति का पत कराने का साहस न कर सका। अतएव उसने उस प्रवृत्ति और आध्यात्मिकता के गुनहरे आवरण में गुंथा छिपा कर रख दिया। इसी से छायावाद में ऐसी कविताएँ अनेक हैं जिनका आचार लौकिक प्रमत्त भी हो सकता है और व्यक्तता से उसका एक अथ आध्यात्मिक प्रमत्त भी किया जा सकता है। इस प्रकार जब छायावाद के कुछ प्रमत्तों का अलौकिकता का स्वागत भरा जान लगा तो इनमें रहस्यवाद का आभास मिलने लगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवि की रहस्यात्मकता का मुख्य प्रेरणा स्रोत उपनिषद् मान ही रहा जिसकी शक्ति और सांस्कृतिक आन्दोलनों के प्रभाव से उन्मुख हुआ था और उसकी रहस्यात्मक कृति के मूल में उसका वह स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण था जिसके कारण वह प्रत्येक वस्तु को आदर्श रूप में देखना चाहता था।

### सर्वात्मवाद

सर्वात्मवाद रहस्यवाद अथवा व्यावहारिक वेदान्त का ही एक रूप है। युग प्रवृत्ति का उपनिषद् की ओर मुड़ जाने के कारण सब तनु ईश्वर ब्रह्म<sup>१</sup> ब्रह्म वेद विश्वमिदं वरिष्ठम्<sup>२</sup> आदि उपनिषद् वाक्यों के आधार पर छायावाद में प्रवृत्ति में चेतना का आराप का जो प्रवृत्ति जगी उसकी अभिव्यक्ति सर्वात्मवाद की कविताओं में हुई। उपनिषद् से प्रेरणा प्राप्त कर ही छायावाद का कवि आत्मा और सत्तन प्रकृति के बीच साम्य स्थापित करने में दक्षिण आया। शवागम का उपनिषद् से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है। भारतीय दर्शन का वह धारा जो ब्रह्म में समस्त दृश्य जगत का ब्रह्म से अभिन्न मान कर चला है त्रिमश शवागम ग्रन्थों में प्रतिष्ठित हुई।<sup>३</sup> अतः छायावाद के प्रवृत्त कवि जयशंकर प्रसाद का शवागम ग्रन्थों पर आधारित सर्वात्मवाद मूलक

१ छा० उ० १४।१

२ मु० उ० २।२।११

३ आचार्य नन्दसारे वाजपेयी— आधुनिक साहित्य पृ ६४

आनन्दवाद भी औपनिषदिक सर्वात्मवाद की ही परम्परा में है।

छायावादी के कवियों पर कबीर आदि निगुण सन्त कवियों का भी प्रभाव पड़ा है। किन्तु निगुण सन्ता के सिद्धान्तों के आधार भी उपनिषद ही है। बीजक की एक रमती में कबीर ने स्वयं उपनिषद उनके सम्वादों और सिद्धांतों का तथा योग वाशिष्ठ आदि का श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है।<sup>१</sup> गुनाल न ददतापूषक कहा है कि निगुण मत वेदान्त ही है। सन्त लोग इसी ब्रह्मरूप अध्यात्म का ग्रहण करते हैं जहाँ दुविधा का भाव न रहे वही अध्यात्म या वेदान्त मत है। जो निगुण मत को इसके अनिरक्त कुछ और बतावे उसे सद्गुरु का मत आता ही नहीं।<sup>२</sup> इस प्रकार निगुण मत से प्रभावित छायावाद की सर्वात्मवादी भावना का औपनिषदिक सर्वात्मवाद की ही छाया माना जा सकता है।

आधुनिक युग में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टगोर का काव्य भी वेदान्त के सद्वाद का ही वलित करने उपस्थित हुआ। असीम के प्रति अभूतपूर्व जिज्ञासा का भाव उनके काव्य का मौलिक स्वर है। अतः उनके काव्य से भी छायावादी की औपनिषदिक सर्वात्मवादी धारा का विशेष बल मिला। इसके अतिरिक्त यारोपीय सम्पक और अगरेजी शिक्षा द्वारा काव्य हीनता स्पिनोज़ा

१ तत्त्वमसी इत्ये उपदसा । ई उपनिषत् कहे संदेसा ॥

ई निसचय इनक बड भारी । बाहिक वरण कर अधिकारी ॥

परम तत्त का त्रिज परमाना । सनवादिक् नारद सुप माना ॥

जागवलिक और जनक सँबादा । दत्तात्रेय यहै रस-स्वादा ॥

यहै राम बसिष्ट मिन गाई । यहै शृष्ण ऊधो समझाई ॥

यहै घानक जो जनक दडाई । दह धरे धीनेह कहाई ॥—बीजक रमती ८

डा० बडध्वान द्वारा लिखित हिन्दी काव्य में निगुण सम्प्रदाय' में

उद्धृत पृ० १५९

२ निरगुण मत सोई बड को अन्ता । ब्रह्म सरूप अध्यात्म सन्ता ।

जहँवा दुविधा भाव न कोई । अध्यात्म वेदान्त मन मोई ॥

यहि सिवाय कोई और बताव । ताको सनगुरु मत नहि आव ॥

—म० आ० पृ० २१४ ।

डा० बडध्वान द्वारा लिखित हिन्दी काव्य में निगुण सम्प्रदाय' में

उद्धृत पृ० १५९

बकले आदि दाशनिना तथा बडसवय शली कीटस थाणि रोमाण्टिक कविमो के आध्यात्मिक एव भावना प्रधान सववाद स प्रभावित हाकर भी छायावाड म सर्वात्मवाड का राग अलापा गया । इस प्रकार छायावाड नवात्मवाद की भारतीय और पाश्चात्य दाना धाराआ का अपूव सगम बन गया । किन्तु अपन मून म यह औपनिपदिक किंवा भारतीय सर्वात्मवाड का ही पापक रहा । जत उस पाश्चात्य रहस्यवाद जथवा सववाद की अनुकृति मात्र नहा माना जा सकता जसा हिन्दी के कतिपय समीक्षका की धारणा सी बन गई है ।<sup>१</sup>

### व्यक्तिवाद

दशन के अहप्रह्लासिम अयमात्मा ब्रह्म तथा साटम क सिद्धान्त न छायावाड के भावक कवि का व्यक्तित्वाणी दष्टिकाण भी णिया । हीगल का दशन भारतीय अद्वत तथा "यक्तिवाड के भन म था अत उमक प्रभाव ने कवि की व्यक्तित्वादिता को गीर घनीभूत कर णिया । पराधीन जाति अथवा राष्ट्र के लिए अपन उत्कप के हतु अपनी सत्ता तथा उज्ज्वल जनीत क प्रति जागरूक हाना जति आवश्यक हाता है अत हिन्दू-नवातथा के कर्णधारो न जहाँ तक बन पडा "यक्ति म निहित अह को जगान का प्रयत्न किया । इसी प्रयत्न के परिणाम स्वरूप युग क साथ साथ छायावाड के कवि का भी अह जग उठा जिससे वह स्वय का विराट-रूप म चित्रित करन तथा ळस पचभून की रचना म एक तत्व बनकर रमण करन का प्रयत्न करन लगा । छायावाद की अतिगय वयक्तित्वा जथवा अह भाव का यही दाशनिक आधार अथवा रहस्य है । छायावाड म आत्मरति आत्म प्रकाशन अथवा रचि स्नातत्र्य की वलता का मून उसका अनिश्चय वयक्तित्वा म सन्निहित ह । वयक्तिरता क ळसी अनिरेक ने छायावाद क कवि का बहिजगत् म मुक्त कर दिया जिसम वह निर्भ्रात होकर अतजगत के निषल और निगूण काने झाकने णगा । इस प्रकार छायावाद क अतगत जन्तमुखी प्रवृत्ति की प्रधानता का एक प्रमुख

१ (क) हिन्दी रहस्यवाद का वतमान-स्वरूप पश्चिमीय प्रतिष्ठिति है यह अब सभी मानते ह । शुक्ल जी का भी यही मत है ।

सन्तगहरण अवस्थी साहित्य-नरग (१९५६) पृ० २५

(ख) वस्तुत वह (छायावाद) पश्चिम से आन वाली रोमाण्टिक काव्य धारा का भारतीय स्वरूप है ।

केसरीकुमार पन्त और उनका गुञ्जन (१९५ ) पृ० ११२

कारण उमका विशाल व्यक्तिवादी बना। इस ओर व्यक्तिवाद में ही स्वच्छन्दता की स्वर्णिम आभा फूल निकली। स्वच्छन्द भावना व कारण ही छायावाद के विद्रोही कवि न व्यक्तिवाद उमरसम्माम और अगरज गमानी कवियों— बड़ सबय गरी कीर्त्त आदि का ममात्तर किया।

### शौर्य-भावना

अतिशय व्यक्तिवता अथवा स्वच्छन्दता कथना जोर कवियों की विराधिनी सिद्ध होती है। अतः स्वच्छन्दता प्रेमी छायावाद व उत्साही कवि ने गतिरोपन कवियों की शृङ्खला का टिन्न करन का उपक्रम किया। छायावाद युग में मासकृतिक और सामाजिक जीवन में प्राचीन जगनिशान परम्पराओं के तोड़न का जागृतन उन् खड़ा हुआ था। पाश्चात्य यानिक मन्वता के सघात से शिथिल बग में पतनशील कवियों व प्रति अश्रद्धा अथवा वर भाव उत्पन्न हो गया था। समाज की यह स्थिति छायावाद व कवि की विद्रोही अथवा स्वच्छन्दतावादी भावना को उत्तजित करने में और सहायक हुई। यही कारण है कि सामाजिक स्तर पर छायावाद के कवि ने नारी स्वतन्त्र आन्दोलन में खुनकर भाग लिया। उसने उन् सामन्ती और पौराणिक सस्कृति का दासता से मुक्त कर प्रबद्ध मानवी के आसन पर अधिष्ठित किया। इसी में छायावाद की नारी पगु नहीं प्रगतिशील है। पकिन नहीं पावन है और है वह मुक्त हृदय के शतन पर समासीन। छायावाद के कवि ने युग प्रवक्तक राष्ट्रीय नेता की भाँति लनकार कर कहा है कि नारी जगत की मान है वह श्रद्धामय अथान गया माया भमना मधुरिमा और अगाय विश्वास की खान तथा देवि, मा महेश्वरि प्राण है कुछ तात्न की अधिकारी नहीं। नमी आदश नारी के पीयूष-ज्योन अथवा पावन गगाधार में छायावादी कवि ने अवगाहन किया और अपने मन का मन घोसा। नारी उसके समन सबन ऐश्वर्यों की सन्तान बनकर आई कुछ अप की खान बनकर नहीं। छायावाद की नारी वीरगाथावात अथवा रीतिकान की नारी की भाँति भोग अथवा श्राडा की सामग्री भर नती है—वह अपने नसर्गिक सत्ता अथवा गुणों के प्रति जागरूक है। नारी के इस पावन पण में छायावाद के स्वच्छन्दतावादी कवि की शौर्य मयवा वीर भावना जो रोमान्टिक कविता का एक विशेष गुण है शतन नितर पढी है। वीर भावना (Chivalry) में उत्तान तरंगों का ज्योन तथा उत्सव का मद होता है। वीरभावना के कृष्ट दो महान गुणों के परिणाम स्वरूप छायावाद का कवि एक ओर (शक्ति प्रथमन में) साहित्य की प्राचीन

मर्यादाओं का भंग कर नवीन मर्यादा का पथगामी बना और दूसरी ओर (उत्सव की भूमि में) काव्यिक सुखा को त्याग कर लोकोत्तर अथवा अतीविक्रम जानने का खोजी बना। शक्ति प्रदर्शन के लिए ही छायावाङ्मयी कवि नवीन वाङ्मय से नव भाव नव रस नव तथ नव स्वर रव ताज आदि प्रदान करने की प्रायश्चित्त की जोर मक्ति के नाम पर मुक्त छन्द का आविष्कार कर उसने अपना वीर भाव प्रकट किया। विनाश या वीर भाव की उमंग में ही उसने नष्ट भङ्ग का जीण परातन' और कलान जान जग म फल का नारा गाया। और प्राणा की ममर में पन मामल जीवन की हरियाली के फूलन की आकाश प्रकट की। इस प्रकार छायावाङ्मय का रोमांटिक कवि स्वस और सजा दाना का अधिष्ठाता बना।

शौर्य भावना के इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत देश की राजनीतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ में जस-जसे परिवर्तन आना गया है वैसे वैसे हिन्दी साहित्य की परम्परागत शौर्य भावना का स्वरूप भी विकसित होता चला गया है। इस दृष्टि में आधुनिक काल में जानीयता तथा राष्ट्रीयता के परिवेश में व्यक्त होने वाली शौर्य भावना का परम्परागत जातीय अथवा राष्ट्रीय शौर्य भावना का स्वाभाविक विकास माना जा सकता है।

वीरगाथा काल में भारत का पश्चिमी भूभाग जहाँ हिन्दुओं के बड़ बड़ राज्य जन्मिष्ठान थे भारतीय सम्यता बल बभव तथा हिन्दी भाषा का केन्द्र था मुसलमान आक्रमण से आक्रान्त होने के कारण वहाँ के राजाओं को मुसलमानों से युद्ध करना पड़ता था। इससे अतिरिक्त वे अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए भी आपस में लड़ा करते थे। कभी कभी तो मात्र शौर्य प्रदर्शन के लिए ही उनमें युद्ध टन जाता था। अतयुद्धों का उत्त शौर्य ही उस समय के काव्य का उपजीव्य बना। फलतः राजाजित कवियों ने अपने जाश्रयदाताओं के पराक्रम प्रताप विजय आदि का अपनी वीरगाथाओं में अनूठी उक्तियों के साथ अत्युक्तिपूर्ण वर्णन किया तथा रणभूमि में जाकर अपनी वीरोत्साह भरी कविताओं द्वारा वीरों के हृदयों में उत्साह का भाव भरा। इस प्रकार वीरगाथा काल में युग प्रवृत्ति के अनुरूप सामन्तवाणी शौर्य की उत्कृष्ट यजना हुई।

वीरगाथा काल के उपरान्त भक्तिमान में भारत में मुस्लिम शासन के स्थिर हो जाने से हिन्दू राजाओं में न तो आपस में और न मुसलमानों से युद्ध

का उत्साह रहा। अतः युद्ध द्वारा अपन धर्म तथा देश का रक्षा का वार प्रयत्न समाप्त होत ही युग के मनस्वी विन्तकों का ध्यान अपन कम के उस व्यापक और हृत्प्राप्त रूप के प्रचार की ओर गया जा धार्मिक तथा सांस्कृतिक एकता की रक्षा करने में समर्थ था। धर्म तथा राष्ट्रीय एकता की रक्षा के इम आशवाणी प्रयत्न में मध्ययुग में वीर-काव्या का खोल बीमा पट गया। परन्तु मुगल शासक विरोधक और गजब की धार्मिक कट्टरता की नीति से रोति-युग में हिन्दुत्व की रक्षा का प्रश्न नये सिरे में उपस्थित हो गया। अतः धार्मिक जल्पाचार और अनौचित्य के विरोध में रोतिकान की अति शृंगारिक भूमि में भी वीर भावा का स्फुरण हुआ। भूषण लाल सूदन आदि कवियों ने शिवाजी छत्रसाल आदि जातीय महावीरों के प्रशस्ति-गान द्वारा हिन्दू राष्ट्रीयता का शक्तना किया। यह राष्ट्रीयता हिन्दू मुसलिम विरोध की भूमि में अव्यक्ति हुई थी अतः भूषण ने जापस की फूल ही तै सार हिन्दुआन टूटे जसी पत्तियाँ द्वारा हिन्दू राष्ट्र की एकता स्थिर रखने की सामयिक चलावनी दी। आज के 'जापस राष्ट्रवा' का तुलना में भूषण की शौर्य भावना अथवा भाव चेतना जातीय अथवा साम्प्रदायिक भन ही नये किन्तु उन समय के मुनमान शासक का हिन्दुआ के साथ विरोधिया का मा निमम व्यवहार दखते ए वह सर्वांगन राष्ट्रीय प्रतीत हाती है।

जाधुनिक काल में अंगरेजों के भारत में मत्ताहूँ हो जाने पर जब हिन्दू और मुनमान दोनों भारतीय राष्ट्र अभिन्न अंग हो गये तब अंगरेजी सत्ता के विरोध में शौर्य भावना का स्वल्प जातीय में विशुद्ध राष्ट्रीय हो गया। भारत-युग में जनता के हृदय में देश भक्ति की भावना पलकित हो चुकी थी। अतः उस समय की कविता में राष्ट्रीय शौर्य देश भक्ति के प्रमग में प्रकट हुआ। द्विकाली-युग में जब राष्ट्रीय-जीवन में स्वतन्त्रता की ताप आकाशा प्रकट हुई तब राष्ट्रिय चेतना के आरोह प्रवराह के अनुस्प राष्ट्रीय काव्य-वीणा में भी वीर भाव विपणन कश्श मधुर स्वरो की चकार उगी। द्विकाली-युग में महावीरों के प्रशस्ति गान द्वारा वीर भावना उत्पन्न करने की परम्परा चलती रही। रत्नाकर नाग भगवान्गीत रामायण उपाध्याय, बन्दीनाथ भट्ट कामनाप्रसाद गुप्त सिपाराम शरण गुप्त आदि कवियों ने शिवाजी महाराणा प्रताप चन्द्रगुप्त मौर्य आदि राष्ट्र-वारा की प्रशस्तिया लिखकर लाला में आत्म-बन, आत्म विश्वास दृढ-मन्त्र्य त्याग तथा प्राणोत्सग की भावना उत्पन्न की। लाला लालपतराय तिलक तथा महामना मानवीर जम कमवीर

इस युग के राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक नेता थे। अतः उनकी चिन्ताधारा में प्रभावित होकर द्विवेदी-युग के कवियों ने दासता तथा विदेशी सत्ता के प्रति तीव्र आक्रोश प्रकट किया। स्वातन्त्र्य-आन्दोलन का भोज उत्साह और दशम युग की राष्ट्रीय कविताओं में सुलकर व्यक्त हुआ। हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में विशेषकर कानपुर से निकलने वाले गणशशकरी विद्यार्थी के राष्ट्रीय पत्र-पत्रों में उस समय वीर भावना से पूर्ण शत-शत राष्ट्रीय कविताएँ प्रकाशित हुईं। छायावाद-युग में भी महावीरों के प्रशस्ति-गान द्वारा शौर्य भावना उत्पन्न करने की परम्परा जयशंकर प्रसाद, सुभद्रा कुमारी चौहान, श्याम नारायण पाण्डेय आदि कवियों की मन्तराणा प्रताप यामी की रावी हृत्पीठानी से सम्बन्धित रचनाओं में देखी जा सकती है। छायावाद-युग में कमयोग तथा अहिंसा की दीक्षा देने वाले लोकमान्य तिलक तथा महात्मा गांधी जैसे राष्ट्र-नायक थे। उनकी प्रेरणा से उस समय के सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक राजनीतिक आदि सभी पक्षों में कम-योग एवं अहिंसा का प्रादुर्भाव हुआ। गीता का कमयोग ही उस समय राष्ट्र-वीरों के लिए मुक्ति का साधन बन गया। अतः छायावाद-युग की कविता में भी कमयोग की प्रतिष्ठा हुई। महात्मा गांधी ने निष्क्रिय प्रतिरोध अथवा अहिंसात्मक सत्याग्रह को स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अमोघ अस्त्र के रूप में अपनाया। अतः छायावाद-युग की शौर्य भावना ने अहिंसात्मक श्रान्ति का रूप धारण किया। भारतीय राष्ट्र की शौर्य भावना का यह अदभुत विकास था। पूर्ववर्ती युगों में शौर्य भावना का स्वरूप मुख्यतया व्यक्तिवादी अथवा हिंसात्मक था। जिन इतिहास-प्रसिद्ध महावीरों की प्रशस्ति पूर्ववर्ती काव्य में गाई गई थी उनके प्राणोत्सव का हेतु व्यक्तिगत मान-प्रतिष्ठा अथवा जातीय गौरव था। परन्तु गांधी-युग के कमवीर विशद राष्ट्रवाद तथा कमयोग की भावना से ही प्रेरित होकर अपने प्राणों की बाजी लगाने के लिए कटिबद्ध हुए। ये राष्ट्रीय कमवीर रण-कौशल में तनवार लेकर मदान में उतरने वाले महावीरों से बिल्कुल भिन्न थे। वे मानसिक योद्धा थे और उनकी आत्मा पीलादी थी अतः उन्हे तलवार की चिन्ता अथवा आवश्यकता नहीं थी। अहिंसा आत्म-बल तथा निष्क्रिय प्रतिरोध उनके अस्त्र थे। उन्हीं अस्त्रों द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करना उनका लक्ष्य था। इस प्रकार छायावाद-युग में अभिनव अहिंसात्मक क्षात्रधर्म की प्रतिष्ठा हुई। इसी से प्रभावित होकर छायावाद-युग में अहिंसात्मक श्रान्ति की पूर्ण मुद्रा लिए हुए अनेक राष्ट्र-गान लिखे गए। मथिली शरण गुप्त, माखानाल चतुर्वेदी, गया

प्रसाद शुकल सनेही बालकृष्ण रामा नवीन, रामनरेश त्रिपाठी साहनभाल विवेदी आदि अनेक कविया ने इस अहिंसाव्रती सत्याग्रही वीरा पर सुन्दर कविताय लिखी। साहस तथा शौर्य की दृष्टि से ये सत्याग्रही वीर रण-क्षेत्र में जूझने वाले वीरा से कहीं अधिक महान तथा भावना की दृष्टि से मध्यकालीन भक्ता के समान अथवा सन्निकट थे। कम याग तथा सत्य अहिंसा से अनुप्राणित हान के कारण इस युग की राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप दाशनिक्ता लिए हुआ था। अतः छायावाद काव्य का कम प्रधान अहिंसात्मक शौर्य भावना का स्वरूप भी बहुत कुछ दाशनिक अथवा आध्यात्मिक ही उठा।

### पलायन वृत्ति

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों ने भारतीय जनता का ध्यान स्वतंत्रता एवं अतीत के बन्धन की ओर ताखा था किन्तु वर्तमान और अतीत की विपत्तियों के कारण स्वतंत्रता विह्वल युवक पराधीन सुख सपने में ही नष्ट अनुभव करने लगा। वर्तमान के पराभव और अतीत के बन्धन के विपत्तियों से चोट खाकर उसका हृदय तड़प उठा। अतः आशा के स्वप्ना बूट जाने से छायावाद अपनी निकट वास्तविकता का उपेक्षा की दृष्टि से श्रेष्ठ लगाने लगा। इस प्रकार वास्तविक जीवन में पराजित होकर छायावाद का कवि अन्तर्गत का द्रष्टा बन गया। छायावाद की यही अन्तर्मुखी प्रवृत्ति पलायनवाद के नाम से प्रसिद्ध हुई।

### निराशावाद

युग चेतना के कारण छायावाद में उत्साह स्फूर्ति और उमंग की कमी नहीं रहा। किन्तु छायावाद-युग के सामने अंगरेजी राज्य की दमन-नीति थी। उधर ब्रिटिश राज्य के अत्याचारा से पीड़ित भारत अपनी स्वतंत्रता के लिए कृतसंकल्प था। किन्तु १९१९ तथा १९३० के असफल आन्दोलनों के कारण उसका राष्ट्रीय अथवा स्वातन्त्र्य भावना का गहरी चोट पहुँचा था। विदेशी सरकार की शासन-नीति ने उनकी पराजय का भावना का और घनी भूत कर दिया। इसक अतिरिक्त युद्धोत्तर काल में जनता विभ्रमकर शिक्षिता की बकारा और बराजगारी उत्तरात्तर बढ़ती ही गई। जिससे सागर का पार्थिव जगत् से विरक्त-सी ज्ञान लगी थी। मध्यम वर्ग का शक्ति युवक अपना प्रतियोगा उच्च वर्ग का समझता था अतः मनावादिन सुविधाओं के अभाव में उमका निराशा से अभिभूत हाना स्वाभाविक था। तत्कालीन पूँजी



वादी विचारधारा ने उनमें विद्रोह की भावना जगाई जबकि किन्तु अपनी जटिल परिस्थितियों के कारण वह नवनिमाण का कोई प्रगल्भ माग नहीं निकाल सका। जगदीश शिखा से उसमें आतिशायी भावना का जन्म हुआ जिससे वह अपनी सांस्कृतिक रूढ़ियों को छिन्न भिन्न करने के लिए उत्सुक जानुर हुआ। किन्तु दश की सुधारवादी प्रवृत्ति एवं नविकृता के जातक ने उसे अपने विचारों का स्वतंत्र रूप में व्यक्त करने का साहस नहीं दिला। इस प्रकार एक ही साथ राजनीतिक पराधीनता, पारिवारिक संकट, जजर स्वास्थ्य, यतिगन प्रेम की असफलता आदि न छायावाद के कवि को अत्यन्त क्षय कर दिया। निदान उसकी मर्दिन अभिलाषाएँ बर्दिनी हाकर एक साथ चीरफार कर उठीं। दार्शनिक स्तर पर बदान्त के प्रभाव ने उसमें घोर जहवाली बना लिया था अतः जैसे-जैसे उसका जह पराजित होता गया उसमें अवसाद का रंग और गहरा होता गया। इन सबके उपरान्त छायावाद का कवि स्वप्ना का प्रेमी अथवा स्वच्छन्दतावादी या और स्वच्छन्दतावादी कवि सततन की स्थिति में प्रायः कम रहता है। छायावाद के स्वच्छन्दतावादी कवि ने यथाथ जीवन में ऐहिक आशा आकांक्षाओं की पूर्ति का अवसर नहीं मिलने पर समाज के प्रत्येक घटक पर अपने मानसिक स्वतंत्र्य का काल्पनिक आवरण डालकर निराशा का ही मनोन्मत्त और साध्य तथा विसर्जन का अपना उद्धारक मान लिया।

### भोगवाद

छायावाद युग के कवि में व्यक्तिक अनुभूति की तीव्रता थी। अतः कालांतर में उसमें निराशा के प्रति भी धार प्रतिधिया हुई। निदान निराशा अथवा आत्मग्लानि को दूर करने के लिए उसने भागद्वार अथवा हातावाद का समर्थन किया। इस प्रकार छायावादी कवि ही जाध्यारिमरु-कान्ति जन्त

- १ एक कथन अभाव में धिर-तृप्ति का सत्कार सचित पा लिया भने किस इस वेदना के मधुर क्रम में  
—महात्मा बर्मा यामा तृतीय संस्करण पृ० १३५
- २ विरह बना आराध्य इत कया कसी बाधा।  
—महादेवी बर्मा आधुनिक कवि (१) पृ ८३
- ४ विसर्जन ही है धर्णाधार वही पहुँचा देगा उस धार।  
—वही पृ० १

अभावात्मकता को भावात्मकता का एक आधार मिल गया । आध्यात्मिक विद्रोह पर अवनम्बित छायावादी की इस भोगवादी प्रवृत्ति को उमर-वध्याम के जीवन-दशन से विशेष उत्तजन मिला ।

### काल्पनिकता

छायावाद के कवि को व्यक्तिगत जीवन में निराशा हाना पना था । अतः उसने निराशा और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप भोगवाद के गीत गाये । किन्तु छायावाद के कवि में आदर्श प्रियता कूट-कूट कर भरा हुई थी अतः अपने काव्य में चारा चार निराशा और भोगवाद का ताना बाना बुनना उम्र अभीष्ट नहीं हो सकता था । अतएव अपनी आदर्श प्रियता के प्रशान्त क लिए उसने कल्पना का सहारा लिया । कल्पना की सहायता से उसने एक ऐसा अनायास नया ससार निर्मित किया जिसमें किसी प्रकार की झुट्टि अथवा कमी नहीं थी । उस काल्पनिक साक्ष में उसने नित नवीनता नित्य सुख नित्य जीवन और अपरिमित ऋद्धि सिद्धि का अनुभव किया । अतः कल्पना को उनमें सगन्त और जीवन प्राप्ति की सना दा और आम विनाश हाकर गाया—

आह ! कल्पना का सुन्दर यह  
जगत मधुर कितना हाना ।  
मुख स्वप्ना का दन छाया में  
पुलकित हो जगता-साता ।<sup>१</sup>

कल्पना व उक्त दृष्टिकोण के कारण छायावाद काव्य में निवास्यन्त का सहूलता है । छायावाद का कवि कल्पना द्वारा साधना द्वारा नहीं आध्यात्मिक राक में पहुँचा था, अतः उसने कल्पना को भी आध्यात्मिक गुणा से मण्डित कर लिया । जस ब्रह्म का बस ही कल्पना को भी उसने अगम अगाधर के नाम से सम्बोधित किया ।<sup>२</sup> कल्पना वस्तु के वाह्य रूप अथवा यथाय का अति

१ है कल्पना सुखदान  
तुम मनुज जीवन प्रात ।  
तुम विगम ध्याम समान  
तव अन्त नर नहीं जान ॥१॥

(दृष्ट कता १ चिरण ५)

त्रमण कर उसके अन्तर्गत सचरण करती है। इसा में छायावाद में बाह्य अंगों में प्रतिबिम्बित और तरंगित सुपना का प्राधान्य है। कल्पना का योगदान स छायावादी कवि प्रत्यक्ष वस्तु में अपनी जातिरिक्त अनुभूति की छाया देखता है। प्रकृति के बाह्य रूपों अथवा यथाथ पर अपने अन्तर की यथानिवा डाल कर उस कल्पना के बेल-बूटा स जगमगा दना छायावादी के कवि काम की विशिष्टता है। कल्पना और अनुभूति रोमांटिक कविता के दो मूल तत्व हैं। अतः छायावाद काय में नहा अनुभूति और कल्पना दोनों का सुन्दर सम्बन्ध हुआ है वही उसमें मासल चित्रा का बड़ी ही सुष्ठु सृष्टि हुई है। छायावादी में सत्य की साधना शिवत्व की स्थापना तथा सौन्दर्य की उपामना का बहुत कुछ धर्म उसकी अन्तर्गत कल्पना को है। अधिकांश छायावादी का ये सौन्दर्य परक कल्पना का ही उपजीवी है।

### सौन्दर्यवाद

सौन्दर्य परक कल्पना के कारण छायावादी की अन्तश्चरना सौन्दर्य के शुभ्र प्रकाश से उद्दीप्त है। वस्तुतः छायावाद का मूल दशन सौन्दर्य दशन में निहित है अतः उसका मुख्य ध्येय है— सौन्दर्य साधना। अन्तर्जगत के सौन्दर्य को रागाएण हृदय की भूमिका में व्यक्त करना छायावाद की मूल प्रवृत्ति है। अस्तु हम उक्त व्यष्टिनिष्ठ सौन्दर्य काव्य कह सकते हैं। व्यक्तिवाद और कल्पनावाद के कारण छायावाद सूक्ष्म अतः सौन्दर्य की ओर प्रवृत्त होता है।

छायावाद की कल्पना अरूप और वुरूप में भीतररूप का आराधन करती चरती है। छायावादी का कवि शाश्वत सा दय की सृजना करता है। अतः वह सौन्दर्य की व्याख्या इस प्रकार करता है—

रूप नहीं है नश्वर !

मत्ता का वह पण प्रकृत स्वर

सुन्दर है वह अमर ।<sup>१</sup>

सौन्दर्य का सौन्दर्य के आधारभूत वह अतीन्द्रिय और जाध्यात्मिक सौन्दर्य का टाह में रहता है काविक सुख की उपधा करता है और कल्पना के मन्दिर में लौकिक सौन्दर्य की प्रतिमा स्थापित कर अजायब साध्य की शक्ति देखता है। चिर सुन्दर की तलाश में वह पल पल परिवर्तित हान वान रूप जगत को त्याग कर उसमें निहित अपरिवर्तनशील अव्यक्त सौन्दर्य के उत्प्रेषण करता है।

इसी से छायावाद की सौंदर्य भावना अशरीरी और अस्पष्ट है। अन्तमु ख हान के कारण छायावादी के कलाकार का दृष्टि बाह्य रूपा पर बहुत दूर तक नहीं टिकती अतः वह उही रूपा के बीच अपने अन्तर की एक अभिनव मूर्ति खड़ी कर देता है। ऐसी मूर्तियाँ म नारी के रूप गुण और व्यापार की प्रधानता हैं। छायावाद का कवि प्रकृति के लिये रूपा के प्रति घनी आसक्ति तो रखता है किन्तु उनकी तस्वीर वह अकमर अपन मन के मधु में लपेट कर उतारता है। प्रसन्न प्रकृति के रूप और आभा के स्वतन्त्र और मनमाने चित्र उसमें विरल हैं। अम शक्ति में निरपन्न जयवा तन्मय लेकर प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण छायावादी में बहुत कम हुआ है।

किस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी का भवन मुख्यतः दो भूमियाँ यथाशक्ति और जातिवाद पर निर्मित हुआ। यथाशक्ति की भूमि पर उसमें जीवन के रूप विपाद आशा निराशा तथा जावतन विवतन का अभिव्यक्ति हुई और जादश की भूमि पर उसमें निरपेक्ष शाश्वत एवं चिरनवीन का पार्थिव उपादाना द्वारा अवतारणा हुई। इन्हीं दो भूमियों का अपनापन से छायावाद के निराश किन्तु जहवादी एवं स्वप्नदर्शी कवि की वाणी विभिन्न वाता-अद्वैतवादी रहस्यवाद सर्वात्मवादी निराशावाद भोगवाद आदि का भार समान सकी।

छायावाद की पृष्ठभूमि में पनपन वाली उक्त दार्शनिक प्रवृत्तियों तथा उन्हें प्रभावित करने वाले दर्शन का सम्यक विवेचन हम आगे आने वाले अध्यायों में करेंगे।



## छायावादी काव्य को प्रभावित करने वाले दर्शन

पिछले अध्याय में छायावाद की प्रवृत्ति का स्थापना में हम कह आए हैं कि सांस्कृतिक जादूना के प्रभाव से छायावाद प्राचीन भारत के नाना नान विज्ञान की ओर विंग रूप से प्रवृत्त हुआ। भारत का प्राचीन नान बने और उपनिषदों में सचिन है। वे और उपनिषद ही समस्त भारतीय दार्शनिक मनवाना के धात्रि स्रोत हैं। भारत का सांख्य और शिल्प विधान और दशन कुन धम जाति धम राष्ट्र नीति स्वास्थ्य नीति तथा यवहार नीति इन सबका निर्माण विकास और प्रसार वेदा और उपनिषदों में निहित नान को मानव जीवन के परम आदश रूप में मानकर हुआ है। आदिकाल से अब तक वदिक साहित्य ही सम्पूर्ण भारतीय साहित्य का उपजीव्य रहा है। छायावाद काव्य की दार्शनिक अभिव्यक्तियाँ बहुत कुछ वदिक विचारधारा से सम्बद्ध हैं। अतः यहाँ हर वदिक साहित्य के दार्शनिक ण्भ का सक्षय में परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा।

### वेदों में दार्शनिकविचार

भारतीय चिन्ता में अद्वैत की अनुभूति अत्यन्त प्राचीन है। वदिक का में ही ऋषियों की जतीन्द्रिय और अतिमानस चेतना ने यह पात कर लिया था कि इस ब्रह्माण्ड के मूल में एक ही शक्ति जिसे ईश्वर कहा जाता है विद्यमान है। उसी मूल शक्ति को ऋषिया ने अभय ज्योतिः<sup>१</sup> परम पद<sup>२</sup> परम

१—ऋग्वेद २ २७ ११ २ २७ १४

२—ऋग्वेद १ २२ २० २१

व्योम<sup>१</sup> तथा अग्नि आदित्य वायु चन्द्रमा, शुक्र ब्रह्म अप प्रजापति आदि नामों से पुकारा है।<sup>२</sup> बल्कि कवि ने देवताओं का वर्णन सबशक्तिमान के रूप में किया है। ऋग्वेद म इंद्र को सबमे ऊँचा महान,<sup>३</sup> अजेय<sup>४</sup> जगत का विशिष्ट द्रष्टा<sup>५</sup> आकाश पृथ्वी जल और पर्वत आदि शक्तियों का स्वामी<sup>६</sup> यहाँ तक कि सप्तिकर्ताओं का भी कर्ता<sup>७</sup> तथा अपन तज स सारे ससार का पूण कर देने वाला<sup>८</sup> कहा गया है। इसी तरह वरुण की स्तुति समस्त सप्तिक के निर्माता तथा व्यक्त ससार के नासक रूप में की गई है।<sup>९</sup> किन्तु बल्कि देवताओं में सबशक्ति-मत्ता का आरोप पथक पथक शक्तियों के रूप में नही हुआ है। वास्तव में व एक ही सब-यापक सबरूपक ईश्वर के रूप हैं जमा कि ऋग्वेद के-

इन्द्र मित्र वरुणमग्नि माहु-

रथा दिव्य स सुपर्णो गरुतमान ।

एकसद्विप्रा बहुधा वदन्ति

अग्नि यम मातरिष्वान माहु<sup>१०</sup>-मत्र से स्पष्ट है ।

१-ऋग्वेद १ १४ ३ २

२-तदेवमग्निस्तान्दित्यस्तद्ब्रामुस्तु चन्द्रमा ।

तत्रेव शुक्र तत्र ब्रह्म ता आप स प्रजापति ॥ (यजुर्वेद ३२।१)

३-विश्वमान्द्रि उत्तर-इन्द्र ही सबमे ऊँचा और महान है ।

(ऋग्वेद १० ८६ १५)

४-अहमिन्द्रो न पराजिग्ये-मैं इन्द्र हूँ मरा पराजय नही हो सकता ।

(ऋग्वेद १० ४८ ५)

५-स इन्द्र विश्व भुवन विचष्टे-वही इस समस्त जगत को विभाप रूप से देखता है ।

(ऋग्वेद १० ११४ ४)

६-इन्द्रो त्विन्द्र ईशे पयिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्यवताम ।

(ऋग्वेद १० ८९ १०)

७-घाता घातण भुवनस्य यस्पनिर्देव प्रानारमभिमीनि हम् । जो इन्द्र सप्तिक कर्ताओं के भी कर्ता हैं भुवना के भी अधिपति हैं रूपक और शत्रु विजेता हैं उनकी मैं स्तुति करता हूँ । (ऋग्वेद १० १२ ८७)

८-आ य पप्रो चपणीयुद्धरोभि प्रसिद्भ्योरिन्द्रिवानो महिवा ।

(ऋ० १० ८९ १)

९-सता अस्य राजा-ऋ० ७ ८७ ६

१०-ऋ० म० अष्ट० २ अ० ३ व० २३ म० ४६

इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय एकेश्वरवादी एक परमेश्वर में विश्वास रखने के लिए अनेक देवताओं का अस्वीकार करने की अपेक्षा नहीं रखता। छायावादी में मेष भरत सविता आदि प्राचीन शक्तियों में विश्वत्व अथवा दिव्य शक्ति के आरोप की प्रवृत्ति में ब्रह्मिक एकेश्वरवादी अथवा आत्मवाद का प्रभाव परिरक्षित होता है।

### पुरुष सूक्त

ऋग्वेद का यह विचार कि सभी देवताएँ एक ही ईश्वर के रूप हैं इस व्यापक सिद्धान्त पर आश्रित है कि मूल सत्ता एक ही है। इस सिद्धान्त का स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मिलता है। इस सूक्त में ब्रह्मिक ऋषि ने सम्पूर्ण जगत का एक ही रूप में देखा है। विद्वानों के अनुसार मानवीय शक्तियों में अन्त की यही प्रथम अनुभूति है।<sup>१</sup> इस सूक्त में पृथ्वी स्वर्गलोक ग्रन्थ-नक्षत्र देवता जडचेतन सभी पदार्थ एक ऐसे पुरुष के अंश माने गये हैं जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।<sup>२</sup> इसके अनुसार जो कुछ है था और हागा सब उसमें मनिहित है।<sup>३</sup> उसमें बँधन विश्व की एकता का ही कवित्वपूर्ण वर्णन नया मिलता प्रत्युत उस परम पुरुष की शक्त भी मिलती है जो विश्व के अणु अणु में व्याप्त होते हुए उसमें परे भी है।<sup>४</sup> वेदों से प्रेरणा ग्रहण करने वाला छायावादी कवि ब्रह्मिक पुरुष से अवश्य प्रभावित हुआ होगा ऐसा कहा जा सकता है। अतः उसका आध्यात्मिक प्रणय अथवा विरह निवेदन इस परम पुरुष के प्रति भी माना जा सकता है। कम-से कम महादेवी वर्मा के प्रणय व्यापार का सम्बन्ध इस परम पुरुष के साथ अत्यन्त स्वाभाविक रूप में जोड़ा जा सकता है। इसके अतिरिक्त छायावादी में प्राकृत शक्तियों को ईश्वर के अंश रूप में चित्रित करने की भावना को भी इस सूक्त से यथेष्ट प्रेरणा मिली होगी इसमें सन्देह नहीं।

१ चटर्जी एण्ड दत्त—एन इण्ट्रोडक्शन टु इण्डियन फिलॉसोफी  
प्रथम संस्करण पृष्ठ ३५९

२ सभूमिं सवत वत्वा । ऋग्वेद १०।१०।१

३ पुरुष एवम सब यदभूत यच्च भाव्यम् । ऋग्वेद १०।१।२

४ त्रिपादूष्व उत्पुरुष पादोऽस्येहा भवत्पत्न ।

तता विध्वं व्यन्नामत्सामानावशान अभि ॥ ऋग्वेद १०।१०।४

## सृष्टि-विचार

वेदा में जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई तरह के विचार मिलते हैं। उनमें कभी इंद्र, कभी वरुण कभी विश्वकर्मा आदि को सृष्टि का कर्ता कहा गया है।<sup>१</sup> किन्तु नासदीय सूक्त का विशद वर्णन दाशनिष्क दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उसमें हम उस निगुण ब्रह्म का वर्णन मिलता है जिससे सम्पूर्ण पदार्थ उद्भूत होते हैं और जो विश्व के कण कण में व्याप्त है। इस सूक्त से यह ज्ञात होता है कि इस जगत् की उत्पत्ति से पहले न अस्त था और न सत। उस समय रजस भी नहीं था।<sup>२</sup> उस समय प्रथमावस्था में मयु नहीं थी रात और दिन का भी भेद नहीं था। वायु गूय तथा आत्मबल से गूय श्वास प्रश्वास-युक्त केवल एक ब्रह्म था। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं था।<sup>३</sup> सृष्टि-काल में जगत् के बीज रूप मन में उत्पन्न होने वाली चञ्छा के समान सब कुछ एक कामना विद्यमान थी इसलिए परमात्मा के मन में प्रथम सिसक्षा (लीला विस्तार की कामना) उत्पन्न हुई।<sup>४</sup> इसमें स्पष्ट होता है कि सृष्टि के आरम्भ में एक अव्यक्त चेतन था, जिसमें कालान्तर में सृष्टि प्रपञ्च उत्पन्न हुआ। छायावाणी में नासदीय सूक्त के इस तथ्य का कि ब्रह्म न अपन एकाकीपन का अन्तर्भव कर गूय में विश्व की रचना कर डाली जिनासापूर्ण अभिव्यक्ति मिल जाती है।<sup>५</sup>

१ ङा० उमश मित्र भारतीय दशन (एच।ए) पृ० ३४

२ नासदीयसूक्तो सप्तसोत्तदाना नासदीयो नो नामा परोयत ।

ऋग्वेद १०।१२९।१

३ न मृत्युरासात्मृत न तर्हि न रास्या अह्न आसात् प्रवत ।

आनीदवात् स्वधया तद्वक् तत्माद्धियन्न पर कि चनाम ॥

ऋग्वेद १०।१२९।४

४ कामस्तदप्र समवतताधि मनसा रत प्रथम यत्सासीत । ऋग्वेद १०।१२९।४

५ न यं जब परिवर्तन दिन रात, नहा आनाक तिमिर थ नात

व्याप्त क्या सून में सब आर एक कम्पन थी एक हिनार ।

न जिसमें स्पन्द था न विकार, न जिसका आग्नि उपसहार ।

× × × ×

हुआ था सूनपन का भाव प्रथम त्रिमूर्ति उर में अस्तान

और किस शिपी ने अन्यान विश्व प्रतिमा कर ली निर्माण

महान्धी वर्मा रश्मि, १९३८, पृ० ६५ ।



## आरण्यक मे ब्रह्म की भावना

आरण्यका मे ब्रह्मन के तीरा स्वरूप कह गय है । पृथ्वी जाति के रूप मे स्थूल मनस आति के रूप मे सूक्ष्म तथा प्रणव क रूप मे शब्द ।<sup>१</sup> जानियो के निण यह ब्रह्म सत और अनानिया के निण असत है ।<sup>२</sup> प्रणव स्वरूप ब्रह्म मे समस्त जगत नय हो जाता है और उसी स पुन स्यावर और जगम रूप मे समस्त जगत उत्पन्न हाता ह ।<sup>३</sup> यह सत्य चान और अनत है ।<sup>४</sup> परम जाकाश मे यह अभियक्त होता है और इसी के दशन स मुक्ति मिनती है ।<sup>५</sup> छायावाद क कवि न जिस ब्रह्म के प्रति आसक्ति दिखाई है वह आरण्यका क ब्रह्म मे नितान अभिन्न है ।

## ब्रह्म और आत्मा का भेद

आरण्यक मे जात्मा को विज्ञानमय तथा आनन्दमय कहा गया है ।<sup>६</sup> इसके अनन्तर अत मे जात्मा का आनन्द ही कहकर आरण्यक न आत्मा के परम स्वरूप का परिचय णिया है । ऐतरेय ब्राह्मण मे छावा पृथ्वी के बीच क आकाश के साथ आत्मा का अभिन्न कहा गया है ।<sup>७</sup> ऐतरेय आरण्यक मे जात्मा के स्वरूप का पूण परिचय णिया गया है । आत्मा स ही लोका की सृष्टि बताई गई है और उसके निष्पाधि तथा उपाधि सहित स्वरूप का भी वणन किया गया है ।<sup>८</sup> वात् मे विद रूप पुरुष या ब्रह्मन के साथ वस आत्मा का अभिन्न भी ऐतरेय आरण्यक मे कहा गया है ।<sup>९</sup> इस आरण्यक मे स्पष्ट कहा गया है कि शब्द चतय का छोडकर अन्य कोई भी पदाश जगत मे नही है । यही आत्मा सभी दवता हैं तथा स्यावर और जगम जो कुछ भी इस जगन मे है सभी आत्मा हा ह । वसी जात्मा स नृगिट होती है इसी मे सभी पन्थाय स्थित है तथा इसी मे अत मे लीन भा हा जाते हैं ।<sup>१०</sup> आरण्यक ग्रथा मे वर्णित आत्मा और ब्रह्म के अभन्न क इस

१ तत्तिरीय आरण्यक ७-६-८

२ तत्तिरीय आरण्यक ७-८।

३ तत्तिरीय आरण्यक ८-६।

४ तत्तिरीय आरण्यक ९-१।

५ तत्तिरीय आरण्यक ८-२।

६ तत्तिरीय आरण्यक ९-१।

७ तत्तिरीय आरण्यक ९-१।

८ वही १-३-८

९ डा उमेश मिश्र भारतीय

१ वही २-४१ ३।

दशन पृ० ४५

११ ऐतरेय आरण्यक २-६-१

सिद्धान्त को छायावाद का कवि भी अपनी कृतिया म वाणी देता हुआ पाया जाता है ।

### उपनिषदों में दार्शनिक विचार

उपनिषत्काल में आकर ब्रह्म चिन्तन की शली में अत्यधिक विकास हो जाता है । सूक्ष्म ब्रह्म की भीमासा उपनिषदा में ही मिलती है । ब्रह्म विचार आत्म-साक्षात्कार अथवा ब्रह्म और आत्मा में अभेद की साक्षात् अनुभूति ही उपनिषदों का चरम लक्ष्य है ।

### ब्रह्म

उपनिषद का ब्रह्म इता सूक्ष्म है कि उसका लक्षण बताना एक प्रकार से असम्भव है ; फिर भी ऋषियों ने उपनिषदा में अनेक प्रकार से उसने स्वरूप का वर्णन किया है । उन्होंने उसे एक बार अगात्तर अद्वाह्य अगात्र अवण अचक्षु अस्मान<sup>१</sup> अश<sup>२</sup> अस्पश अरूप जरस अग<sup>३</sup> आदि कहकर सूक्ष्म-स-सक्ष्म घापित किया है और दूसरा ओर उस विश्वरूप सबत्र पूण व्यापक<sup>४</sup> अव्यय नित्य अनानि अतन्त परम महत्<sup>५</sup> आकाश के स<sup>६</sup> व्यापक<sup>६</sup> आदि बताकर विरटरूप चित्रित किया है । वहीं पर उस सत्य सत्त्व वाणीरहित सम्भ्रम<sup>७</sup> सब का साक्षी चता गुणातीत<sup>८</sup> आनि कहकर निगुण घापित किया है और कहा पर मनोमय प्राण-रूप नवरस सबग<sup>९</sup> जादि कहकर उसमें गुणों का आराप कर लिया गया है । कहा पर उस ज्ञानरूप बताकर उस अनकरूपारमक जगत का कता कहा गया है<sup>१०</sup> और कहा पर अकर्ता<sup>११</sup> इन प्रकार उपनिषद् का ब्रह्म सम्पूण जगत् का कर्ता होत हुए भी अकर्ता<sup>१२</sup> है सबशक्तिमान एव सब रूप में समय हाकर भी सबसे सबथा अतीत और असग है सबगुण सम्पन्न हात हुए भी निगुण है तथा समस्त विशयणा से युक्त हात हुए भी निर्विशय है । बर्दिक कवि एसे

- |                           |                             |
|---------------------------|-----------------------------|
| १ मु० उ० १।१।६            | २ क्ठापनिषद १।३।१५          |
| ३ श्वेताश्वतर उपनिषद् १।९ | ४ मु० उ० १।१।६              |
| ५ क्ठापनिषद १।३।१५        | ६ छा० उ० ३।१।४।२            |
| ७ छा० उ० ३।१।४।२          | ८ श्वेताश्वतर उपनिषद् ६।१।१ |
| ९ छा० उ०, ३।१।४।          | १० मु० उ० १।१।९             |
| ११ श्वेताश्वतर उपनिषद १।९ | १२ गीता ५।१३                |

शब्द और अशब्द अगध और सवगध यत्त और अयत्त<sup>१</sup> ब्रह्म का लक्षण बताने में कठिनाइयाँ का अनुभव करता हुआ प्रतीत होता है। इसीमें उसकी वणन शली स्थान स्थान पर रहस्यमय हो गई है। यथा ईशोपनिषद् के एतन्मन्त्रे—  
तदेजति तन्नजति तन्दूरे तद्वित्ते ।

तदन्तरम्य सवस्य तदु सवस्यास्य ग्राहान् ॥<sup>२</sup>

इसी प्रकार ब्रह्म के निर्विशेष रूप का वणन करने में भी वदिक कवि रहस्यपूर्ण शक्ती का अवलम्बन करता हुआ पाया जाता है। यथा—

‘वह न भीतर की ओर प्रज्ञावाला है न बाहर की ओर प्रनामाना है न दोनों ओर प्रनामाना है न प्रनामघन है न जानने वाला है न नहीं जानने वाला आदि।<sup>३</sup> वदिक कवि एसी अद्वितीय रहस्यपूर्ण ब्रह्म को जानने का आदेश करता है क्योंकि उसका जानकर मनुष्य समस्त मासारिक बन्धना में मुक्त हो जाता है।<sup>४</sup> किन्तु वह मन वाणी आदि समस्त इन्द्रियाँ की पहुँच से बाहर है।<sup>५</sup> वह प्रवचन और बुद्धि से भी प्राप्त नहीं हो सकता।<sup>६</sup> वह जानने योग्य ब्रह्म मनुष्य के हृदय में ही अत्यन्त ही रूप में स्थित है।<sup>७</sup> जो साधक उसे सत्य के द्वारा सयमरूप तप से देखता रहता है—चिन्तन करता रहता है वह उसका साक्षात्कार कर लेता है।<sup>८</sup>

उपनिषदों का उक्त अनिवचनीय सगुण निगुण सूक्ष्म विराट् ब्रह्म छायावादी कवि के भी चिन्तन का विषय रहा है। छायावाद के कवि ने बार बार अपनी कृतियाँ में अदृश्य अस्पृश्य अचित्य अयत्त अरूप तथा मन वचन-अगोचर ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा का भाव प्रकट किया है। निगुण और निर्विशेष ब्रह्म को चित्रित करने के इस प्रयास में उसकी भावाभिव्यक्ति भी स्थान स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म हो गई है। उपनिषदों में त्रयमूलक अपारिध्व

१ श्वेताश्वतरोपनिषद् १।८

२ ईशोपनिषद् ५

३ मा० उ० ७

४ श्वेताश्वतरोपनिषद् ५।१५

५ तत्तिरीयापनिषद् नवम अनुवाक

६ कठोपनिषद् १।२।२३

७ श्वेताश्वतरापनिषद् १।१०

कठोपनिषद् २।१।११

८ श्वेताश्वतर उपनिषद् १।१५

नान की प्रचुरता है, अतः उसके प्रभाव से छायावादी में पारिवर्तता के प्रति उपेक्षा का भाव भी जागरित हो उठा है। एकमात्र ब्रह्म ही जानने योग्य है उपनिषद् के इस आदेश की छाया छायावाद में अव्यक्त सत्ता के प्रति किए गए आग्रह जनुग्रह अथवा किसी असीम प्रियतम के निमित्त अभूतपूर्व प्रणय निवेदन के मूल में देखा जा सकता है। इस प्रकार से उपनिषदों का ब्रह्म ही छायावाद की निरपेक्ष साधना का आधार रहा है। इसीसे छायावाद का कवि निरपेक्ष सत्य किंवा परम सुन्दर का उदगीथ गाता है और कविता को ब्रह्म की सन्देश वाहिका के रूप में चित्रित करता है।<sup>१</sup>

उपनिषद्-मन्त्रों में प्रभावित होकर छायावाद के कवि न प्रकृति के रम्य रूपों में विराट की भी कल्पना की है। छोटी से छोटी वस्तु को भी विराट रूप में चित्रित करने का उत्साह उसने दिखाया है। इस सम्बन्ध में उसका स्वयं पापन है—

छायावादियों में भागवत या विराट चेतना के प्रति एक क्षीण दुबल आग्रह आनुलता या बौद्धिक जिज्ञासा की भावना रही है।<sup>२</sup> इसीसे अपनी काव्य-साधना के सम्बन्ध में उसने उदात्त स्वर में कहा है—

काव्य में साहित्य के हृदय को निगल-व्याप्त करने के लिए विराट रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। रूप की साधक लघु विराट कल्पनाएँ सप्तर के सुन्दरतम रंगों से जिस तरह अंकित हो उसी तरह रूप तथा भावनाओं का अरूप में साधक अवसान भी आवश्यक है। कला की यही परिणति है और काव्य का सबसे अच्छा निष्कप। इस तरह काव्य के भीतर से अपने जीवन के सख्त शुद्धमय चित्रों को प्रदर्शित करते हुए परिसमाप्ति पूणता में होगी।<sup>३</sup> इसी उदात्त प्रवृत्ति के आधारभूत छायावाद के कवि ने

१ भरा हुआ था हृदय प्यार से उसका

उस कविता का

वह थी निश्चय अविचार

अग अग से उठी तरंगों उसके

वे पहुँची कवि के पास कहा—

तुम चलो बुलाया है उसने जल्नी तुमको उस पार।

निराला-परिमल पृ० ११३ १४

२ पन्न गद्य-पद्य प्रथम संस्करण पृ० १३५ ३६

३ निराला प्रबंध पद्य न्तिथावलि २०१९ वि०, पृ० १४४ ५५

गण और अशब्द, जगध और सवगध - यत्त और अव्यक्त<sup>१</sup> ब्रह्म का लक्षण बताने में कठिनायियों का अनुभव करता हुआ प्रतीत होना है। इसीसे उसकी वणन शली स्थान स्थान पर रहस्यमय हो गई है। यथा ईशोपनिषद के इस मंत्र में—  
तदेजति तन्नजनि तददूरे तद्वन्तिके ।

तदन्तरस्य सवस्य तदु सवस्यास्य बाह्यत ॥<sup>२</sup>

इसी प्रकार ब्रह्म के निर्विशेष रूप का वणन करने में भी बौद्धिक कवि रहस्यपूर्ण शरी का अवलम्बन करता हुआ पाया जाता है। यथा—

वह न भीतर की ओर प्रभावाना है न बाहर की ओर प्रभावाना है न दोनों ओर प्रभावाना है न प्रभावान है न जाने वाला है न नहीं जानने वाला आदि।<sup>३</sup> बौद्धिक कवि इसी अद्वितीय रहस्यपूर्ण ब्रह्म को जानने का आदेश करता है क्योंकि उसका जानकर मनष्य समस्त सासारिक बाधना से मुक्त हो जाता है।<sup>४</sup> किन्तु वह मन वाणी आदि समस्त इन्द्रिया की पहुँच से बाहर है।<sup>५</sup> वह प्रवचन और बुद्धि से भी प्राप्त नहीं हो सकता।<sup>६</sup> वह जानने योग्य ब्रह्म मनष्य के हृदय में ही अन्तर्यामी रूप में स्थित है।<sup>७</sup> जो साधक उसे सत्य के द्वारा समयरूप तप से देखता रहता है—चित्तन करता रहता है वह उसका साक्षात्कार कर लेता है।<sup>८</sup>

उपनिषदों का उक्त अनिबचनीय सगुण निगुण सूक्ष्म विराट ब्रह्म छायावादी कवि के भी चित्तन का विषय रहा है। छायावाद के कवि ने बार बार अपनी कृतियों में अदृश्य अस्पृश्य अचित्य अयत्त अरूप तथा मन वचन अगोचर ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा का भाव प्रकट किया है। निगुण और निर्विशेष ब्रह्म को चित्रित करने के इस प्रयास में उसकी भावाभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर अत्यन्त सूक्ष्म हो गई है। उपनिषदों में त्रयमूलक अपार्षिद

१ श्वेताश्वतरोपनिषद १।८

२ ईशोपनिषद ५

३ मा उ ७

४ श्वेताश्वतरोपनिषद ५।१३

५ तत्तिरीयापनिषद नवम अनुवाक

६ कठोपनिषद १।२।२३

७ श्वेताश्वतरोपनिषद १।१०

कठोपनिषद २।१।११

८ श्वेताश्वतर उपनिषद १।१५

नान की प्रचुरता है अतः उसके प्रभाव में छायावादी में पार्थिवता के प्रति उपेक्षा का भाव भी जागरित हो उठा है। एकमात्र ब्रह्म ही जानने योग्य है उपनिषद् के इस आदेश की छाया छायावाद में ज्योत्स्न सत्ता के प्रति किए गए आग्रह जनग्रह अथवा किसी असीम प्रियतम के निमित्त अभूतपूर्व प्रणय निवेदन के मूल में देखा जा सकता है। इस प्रकार से उपनिषद् का ब्रह्म ही छायावाद की निरपेक्ष साधना का आधार रहा है। इसीसे छायावाद का कवि निरपेक्ष सत्य किंवा परम सुन्दर का उदगीथ गाता है और कविता को ब्रह्म की सन्देश वाटिका के रूप में चित्रित करता है।<sup>१</sup>

उपनिषद् मन्त्रों में प्रभावित होकर छायावाद के कवि न प्रवृत्ति के रम्य रूपों में विराट की भी कल्पना की है। छोटी से छोटी वस्तु को भी विराट रूप में चित्रित करने का उत्साह उसने दिखाया है। 'म सम्बन्ध में उसका स्वयं पापन है —

श्यामावादियों में भागवत या विराट चेतना के प्रति एक क्षीण दुबल आग्रह आकुलता या बौद्धिक जिज्ञासा की भावना रही है।<sup>२</sup> इसीसे अपनी काव्य साधना के सम्बन्ध में उसने उदात्त स्वर में कहा है—

काव्य में साहित्य के हृदय को दिग्गत-व्याप्त करने के लिए विराट रूपों की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। रूप की साथ-साथ लघु विराट कल्पनाएँ ससार के सुन्दरतम रंगों से जिस तरह अंकित हो उसी तरह रूप तथा भावनाओं का अरूप में साधक अवसान भी आवश्यक है। कला की यही परिणति है और काव्य का सबसे अच्छा निष्पत्त। इस तरह काव्य के भीतर से अपने जीवन के सख्त दुःखमय चित्रों को प्रदर्शित करते हुए परिसमाप्ति पूणता में होगी।<sup>३</sup> इसी उदात्त प्रवृत्ति के आधारभूत छायावाद के कवि न

१ भरा हुआ था हृदय ध्यार से उमका

उम कविता का

वह थी निश्चयन अविकार

अग अग से उठी तरंगों उसके

वे पहुँची कवि के पास कहा—

तुम चलो बुनाया है उसने जल्नी तुमको उम पार।

निराला-परिमल पृ० ११३ १४

२ पल्ल गद्य-पद्य प्रथम मस्वरण पृ० १३५ ३६

३ निराला प्रद-य पद्य शितीयावति २०१९ वि०, पृ० १४४ ४१

रूप म अरूप सीम म असीम मय म अमय सात्त्वं म अनादि सान्त म अनन्त दुःख म सुख तथा अपूण म पूण की खोज की ।

### आनन्दमय ब्रह्म

उपनिषदों का ब्रह्म सच्चिदानन्द है । उसी रस रूप अथवा आनन्दमय ब्रह्म को प्राप्त कर जीव आनन्दित होता है ।<sup>१</sup> बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार सभी प्राणी ब्रह्मानन्द के किसी अंश को ली लेकर जीते हैं ।<sup>२</sup> तत्तिरीयोपनिषद कहती है कि यदि वह आकाश की भाँति परिपूण आनन्दस्वरूप ब्रह्म नहीं होता तो कौन जीवित रह सनता कौन प्राणा की क्रिया कर सकता । सचमुच यन् ब्रह्म ही सबको आनन्द प्रदान करता है ।<sup>३</sup> इस प्रकार उपनिषद का ब्रह्म समस्त आनन्द का उत्स है । उपनिषद का स्पष्ट मत है कि आनन्द ही ब्रह्म है उमी स समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं उत्पन्न होकर आनन्द म ही जीते हैं और इस लोक से प्रयाण करते हुए आनन्द म ही प्रविष्ट हो जाते हैं ।<sup>४</sup> जो ब्रह्म के इस आनन्दमय रूप को जानता है वह किसी स भयभीत नहीं होता ।<sup>५</sup> यह आनन्द भोगों म कामना रहित वेदन की स्वभावतः प्राप्त है ।<sup>६</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषदों के अनुसार मानव जीवन का एक मात्र उद्देश्य ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है ।

छायावाद के आनन्दवात् का एक सुदृढ आधार उपनिषदों का यह आनन्दमय ब्रह्म भी बना । ब्रह्मानन्द के लोभ से ही छायावाद का कवि अतीन्द्रिय आनन्द अथवा आत्मानन्द की ओर प्रवृत्त हुआ ।

### भूमा

वेदात्त दर्शन का मत है कि जो भूमा के धम बतलाये गये हैं वे भी ब्रह्म म ही सुसगत हो सकते हैं अतः भूमा भी ब्रह्म ही है ।<sup>७</sup> छादोग्य

१ रसो वस । रस ह्येवाय न च्चाऽऽनन्दी भवति ।

—तत्तिरीयोपनिषद—२।७

२ बृहदारण्यक उपनिषद ४।३।३२

३ तत्तिरीयोपनिषद २।७

४ तत्तिरीयोपनिषद भगुवल्ली पष्ठ अनुवाक

५ आनन्द ब्रह्मणो विद्वान न बिभेति कुतश्चेति ।

तत्तिरीय उपनिषद २।९

६ वही २।८

७ धर्मोपपत्तश्च (ब्रह्मसूत्र १।३।९)

उपनिषद म भूमा प्रकरण म सनत्कुमार ने नारद से कहा है कि जहा पढुचकर न अय किसी को देखता है न अय को सुनता है न अय को जानता है वह भूमा है। जहाँ अय को देखता सुनता और जानता है वह अल्प है। जो भूमा है वह अमत है और जो अल्प है वह नाशवान है। इस पर (जब) नारद ने पूछा— भगवन ! वह भूमा किसम प्रतिष्ठित है। (तब) उत्तर म सनत्कुमार ने कहा— अपनी महिमा म। और आगे फिर कहा कि धन सम्पत्ति मकान आदि जो महिमा के नाम से प्रसिद्ध है ऐसी महिमा म वह भूमा प्रतिष्ठित नहीं है।<sup>१</sup> किन्तु वही नीचे ऊपर आगे पीछे दायें और बायें है तथा वही यह सब कुछ है।<sup>२</sup> इसके बाद उस भूमा को ही आत्मा के नाम से कहा गया है और यह भी बताया है कि आत्मा ही नीचे ऊपर आगे पीछे दायें और बायें है तथा वही सब कुछ है। जो इस प्रकार देखने मानने तथा विशय रूप से जानने वाला है आत्मा म ही शीडा करने वाला आत्मा मे ही रति वाला आत्मा मे ही जुडा हुआ तथा आत्मा मे ही आनन्द वाला है।<sup>३</sup> इन सब धर्मों की सगति परब्रह्म परमात्मा म ही लग सकती है अत वह इस प्रकरण म भूमा के नाम से कहा गया है। ब्रह्म ही भूमा है अत उप निषद आदेश करती है कि निश्चय जो भूमा है वही सुख है अल्प म सुख नहीं है। सुख भूमा ही है। भूमा की ही विशय रूप से जिनासा करनी चाहिए।<sup>४</sup> कामायनीकार जयशंकर प्रसाद ने विषमता की पीडा (अल्पता) को उपनिषद के उक्त विराट रूप भूमा (ईश) का ही मधुमय दान कहा है।<sup>५</sup>

### आत्मा का चरूप

उपनिषदो मे ब्रह्म को कभी सत और कभी आत्मा कहकर आत्मा और ब्रह्म म अभिन्नता स्थापित की गई है। ऐतरेय<sup>६</sup> और बृहदारण्यक म कहा

१ छा० उ० ७।२४

२ वही ७।२५

३ वही ७।२५

४ वही ७।२३

५ विषमता की पीडा से व्यस्त हो रहा स्पन्ति विश्व महान यही सुख दुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान। कामायनी प० ६२

६ आत्मा वा इमैक एवाग्र आसीत् । ऐतरेय उपनिषत् १।१

७ बृहदारण्यक उपनिषद १।४।१



गया है कि पहले आत्मा यह केवल आत्मा मात्र था। छान्दोग्य में कहा गया है कि यह सब कछ आत्मा ही है।<sup>१</sup> इसी को जान लेने से सब कुछ जान हो जाता है।<sup>२</sup> इसी तरह ब्रह्म के सम्बन्ध में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है।<sup>३</sup> इन सब स्थलों में ब्रह्म और आत्मा एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। कही कही ता स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि यह आत्मा ही ब्रह्म है।<sup>४</sup> मैं ब्रह्म हूँ।<sup>५</sup> उपनिषद् के अनुसार आत्मा का ज्ञान अन्तःकरण की परिशुद्धि ही के द्वारा प्राप्त होता है।<sup>६</sup>

उपनिषदों के आत्मा और ब्रह्म के जन्म के सिद्धान्त से प्रेरणा प्राप्त कर छायावाद के जन्मवादी कवि का ब्रह्मभाव जाग उठा जिससे वह ब्रह्म की भाँति ही इस पंचभूत की रचना में एक तत्व बनकर रमण करने का अभिलाषी बन गया।<sup>७</sup> किन्तु इस अहंभाव के साथ साथ आत्म ज्ञान प्राप्त करने की लालसा के कारण उसमें आत्म शक्ति की पवित्र भावना का भी उदय हुआ।

### जीव

जीव के सम्बन्ध में उपनिषद् का मत है कि जैसे जलती हुई जाग से उसी के समान रूपवानी सृष्टियों चिनगारिया निकलती रहती है उसी प्रकार ज्विनाशी ब्रह्म से नाना प्रकार के भाव (जीव) उत्पन्न होने और उन्हीं में लीन होते रहते हैं।<sup>८</sup> इस प्रकार जीव ब्रह्म का अंश है। एक दूसरे मात्र में कहा गया है कि यह मारी प्रजा सत् रूपी कारण से उत्पन्न हुई है और सत् में ही निवास करती है और अन्त में भी सत् में ही प्रतिष्ठित होती है। यह सब कछ ब्रह्मरूप है। वह ब्रह्म ही सत्य है वही आत्मा है। वह ब्रह्म तू है।<sup>९</sup>

१ आत्मा एव इत् सर्वम् । छा० उ० ७।२।१२

२ आत्मानि खल अरे दष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितम् ।

बृहदारण्यक उपनिषद् ४।५।६

३ मय खल इदं ब्रह्म । छा० उ० ३।१।४।१९

४ अयमात्मा ब्रह्म । बृहदारण्यक उ० २।५।१०

५ अहं ब्रह्मास्मि । बृहदारण्यक उ० १।६।१

६ बृहदारण्यक उपनिषद् ४।६।१०

७ इस पंचभूत की रचना में मैं रमण करूँ बन एक तत्व ।

—प्रसाद कामायनी प १६१

८ मु० उ० २।१।१

९ छा० उ० ६।८।७

यहाँ पर जीव और ब्रह्म में अभेद स्थापित किया गया है। छायावाद के कवि न जीव का ब्रह्म के अन्त रूप में भी अपनाया है और ब्रह्म के साथ उसका (जीव का) अभेद भी स्थापित किया है।

### उपनिषद में सृष्टि प्रक्रिया

सृष्टि की प्रक्रिया भी उपनिषद में वर्णित है। उसके अनुसार सृष्टि का आदि में कुछ भी नहीं था। केवल मृत्यु था। बाद को मन जल तेजस पृथ्वी और अन्त में प्रजापति की सृष्टि हुई। इसके पश्चात् सर और असुर हुए।<sup>१</sup> एक दूसरे स्थान पर यह भी कहा गया है कि सबसे पहले पुरुष का और बाद में स्त्री का स्वरूप उत्पन्न हुआ और इन दोनों में विश्व की सृष्टि हुई।<sup>२</sup> आकाश से सृष्टि होती है और उसी में जगत का लय भी होता है।<sup>३</sup> इस प्रकार न अनेक रूपों में सृष्टि का वर्णन है। किन्तु उन समस्त रूपों के सम्यक् अध्ययन से यही ज्ञात होता है कि सबसे पहले एक अपक्त रूप था और उसीसे व्यक्त रूप में जगत की सृष्टि हुई है। यह अपक्त रूप ही परब्रह्म है और समस्त जगत इसी से उत्पन्न होता है तथा अन्त में इसी लय को प्राप्त करता है, यही उपनिषद में कहा गया है—

मतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ।

यन् जातानि जीवन्ति । यत्प्रयत्यभिसविशन्ति ।<sup>४</sup>

अतएव ब्रह्म ही जगत का निमित्त तथा उपादान दोनों कारण है।

### आत्मसाक्षात्कार के उपाय

उपनिषदों के अनुसार आत्मा का साक्षात्कार तथा ब्रह्म ज्ञान के लिए जीव को बाह्यिक वाचिक तथा मानसिक सधर्म रखना आवश्यक है। सत्य का पालन करना, किसी वस्तु का अपहरण न करना ब्रह्मचर्य का पालन करना इन्द्रिया का निग्रह करना हिंसा से विरक्त रहना माता पिता तथा अतिथियों का देवता के समान आदर करना निन्दनीय कर्मों को न करना सत्कार के विषयों को ब्रह्म ज्ञान का शत्रु समझना, इत्यादि कर्मों के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार के लिए अपने अन्तःकरण का हर तरह से पवित्र रखना अर्थात्

१ बह्मसंहिता, १।३।१ छान्दोग्य ५।१।१९

२ बह्मसंहिता १।४।१

३ छांदोग्य, १।९।१

४ तैत्तिरीय उपनिषद् ३।१

वश्यक है।<sup>१</sup> छायावाद काय म भी आत्मसाक्षात्कार के लिए अपेक्षित उपनिषदों के उक्त उपायो अर्थात् धार्मिक, वाचिक तथा मानसिक तयम द्वारा अन्त करण की शुद्धि के प्रति विशेष आग्रह पाया जाता है।

### आत्मज्ञान की अनुभूति प्रतिक्रिया

अन्त करण शुद्ध होने के कारण अहत आर अजहत लक्षणों के द्वारा साधक को तत् (आत्मा) और त्वम (जीवात्मा) के ऐक्य का ज्ञान हो जाता है। इसने पश्चात् साधक अपने ही शरीर में अहम ब्रह्म अस्मि<sup>२</sup> या स अहम आदि उपनिषद महावाक्य के उपदेश को गुरु मुख से सुनकर स्वयं अपने ही आत्मा में ब्रह्म का अनुभव करने लगता है। इस वाक्य के द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर जीव अयम आत्मा ब्रह्म<sup>३</sup> इस महावाक्य का अनुभव करने का अभ्यास करता है। इस अवस्था में पहुँचकर साधक का क्रमशः तत् त्व अहम और अयम इन सभी भावनाओं का अपनी आत्मा के साथ अपने ही शरीर के भीतर ऐक्य का अनुभव हो जाता है। इस प्रकार जीव अपने स्वरूप का साक्षात्कार आत्मा के रूप में करने के अनन्तर एकन विना नेन सब विज्ञात भवति<sup>४</sup> इस उपनिषद महावाक्य के अनुसार वह साधक सभी वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सब सत्त्वित्व ब्रह्म<sup>५</sup> की अनुभूति स्वयं कर लेता है। यही उपनिषदों का रहस्य है उपदेश है तथा चरम लक्ष्य है। इसी की अपरोक्षा अनुभूति से साधक दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति को प्राप्त करता है। वह बाद में ससार व धन से मुक्ति पाकर जन्म मरण के पाश से सब दिनों के लिए छुटकारा पाकर उस अनामय सच्चिदानन्द परम पद को प्राप्त कर इस ससार में पुन नहीं आता।<sup>६</sup> इसी से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि तत्त्व एक ही है और उसी से तमस्त ससार की वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं और पुन जन्त में उसी में लीन हो जाती हैं। इसीलिए श्रुति ने कहा है— वाचारम्भण विवारो नामधय मृत्तिकत्यव सत्यम।<sup>७</sup>

१ डा उमश मित्र भारतीय दर्शन प० ६१

२ बृहदारण्यक उपनिषद १।४।१०

३ वही २।५।१९

४ पंचब्रह्मापनिषद २९३

५ छांदाग्य उपनिषद ३।१४।१

६ गीता ८ २१ १५ ६

७ छांदाग्य उपनिषद ६ १ ४ ६

छायावाद का कवि भी वही कवि की भाँति ही आत्मा परमात्मा तथा ब्रह्म और जगत की एकता स्थापित करता है जगत का ब्रह्मरूप चिन्तित करता है तथा ब्रह्म का इस जगत का निमित्त और उपादान दाना कारण मानता है। किन्तु उसकी उक्त अभिव्यक्तियाँ वैदिक कवि की भाँति साधना प्रसूत नहीं हैं। उपनिषद ज्ञान का अनुभव उसने तपस द्वारा प्राप्त नहीं किया है। अभिप्राय यह कि छायावाद का कवि साधक यागा अथवा तपस्वी नहीं है। किन्तु उपनिषद् ज्ञान का प्रति वह अत्यन्त श्रद्धावान तथा आस्थावान है। अतः उसने उपनिषदा का दार्शनिक विचारा का अपनी भावना अथवा अनुभूति का अंग बनाने का शतश प्रयास किया है और उस अपन इस प्रयास में—उपनिषद ज्ञान को भावात्मक अभिव्यक्ति देना—अपूर्व सफलता भी मिली है।

## अद्वैत दर्शन

### शाकर वेदान्त

अद्वितीय परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप का विचार उपनिषदा में विशेष रूप से किया गया है। अतः म दशन शास्त्रों का जितना रूप है उन सबका मूल तत्त्व उपनिषदा में निहित है। किसी शास्त्र विशेष के समान तत्त्व निर्धारण अथवा विचारा का वर्गीकरण उपनिषदा में नहीं मिलता। इस प्रकार उपनिषद ज्ञान के आदि सात हैं। उनमें चार्वाक दशन का भी मत उसी प्रकार कहा गया है जिस प्रकार वेदान्त या शूयवादी बौद्धों का। जड़वाद अथवा अनात्मवाद संतकर आत्मवाद अथवा अद्वैतवाद का प्रतिपादन करने वाले सभी विचारकों अपने मत के समर्थन में उपनिषद ज्ञान का सहारा लेते हैं। सभी उस प्रमाण मानते हैं।

वेदान्तदर्शन का अपूर्व ग्रन्थ वात्सरायण के ब्रह्मसूत्र पर अनेक भाष्य लिखे गए हैं, जिनमें भाष्यकारों ने अपने-अपने दृष्टिकोण एवं धारणाओं के अनुरूप वेदान्त का प्रतिपादन किया है। प्रत्येक भाष्यकार ने यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि उसी का भाष्य श्रुति-सम्मत है, इस प्रकार शंकर रामानुज मध्वाचार्य बल्लभाचार्य निम्बार्क आदि के नाम पर वेदान्त का विभिन्न सम्प्रदाय खड़े किए गए हैं जिनमें शाकर वेदान्त और रामानुज का विधिपिच्छाद तत्वात् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शंकर और रामानुज दोनों उपनिषद् का मूल तत्त्व ब्रह्म के आधार पर यह प्रमाणित करते हैं कि जड़ और चेतन में अलग अलग सत्ताएँ नहीं हैं अपितु वे एक ही मूल सत्ता में व्यक्तित हैं इस प्रकार शंकर और रामानुज दोनों अद्वैतवादी हैं। अर्थात् दोनों एक ही सत्ता अथवा ब्रह्म को, जो इस चराचर जगत में व्याप्त है स्वीकार करते

है। परन्तु जीव और ब्रह्म में क्या सम्बन्ध है इस विषय को लेकर दोनों में मतभेद है।

शंकराचार्य ने अपनी अकाट्य तक शली प्रतिपादन पद्धति और प्रगाढ़ पाण्डित्य द्वारा अपने समय की विज्ञान मण्डली का अपने अद्वैतवाद तथा मायावाद की ओर जाकृष्ट किया। अद्वैतवाद और मायावाद के प्रचार के हेतु उन्होंने केवल वेदान्तसूत्र उपनिषदा और गीता का अद्वैत प्रतिपादन भाष्य ही नहीं किया बरन सम्पूर्ण भारत में पयटन कर तत्कालीन समस्त दार्शनिक सम्प्रदायों के अनेक विद्वानों को शास्त्राध्यय में परास्त भी किया। इसके उपरान्त उन्होंने अपने दार्शनिक विचारों को सम्प्रदाय का रूप देकर भारत के चारों कानों में मठ स्थापित किये। इस प्रकार उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य एवं अदभुत अध्यवसाय से उनके अद्वैतवाद और मायावाद के सिद्धांतों का भारत भूमि में इतना प्रबल प्रचार हुआ कि सामान्यतः लोग शांकर अद्वैत को ही वेदान्त-दर्शन मान लेते हैं।<sup>१</sup> शंकराचार्य के उक्त अद्वैत एवं मायावाद मूलक दार्शनिक कान्ति का प्रभाव भारत के विशाल जन समूह पर निरंतर पड़ता चला आया है। अनेक व्यक्तियों ने अपने जीवन को शांकर वेदान्त के सचि में ढालने का प्रयत्न किया है। भारतीय साहित्य पर भी शांकर वेदान्त का प्रभाव किसी न किसी मात्रा तथा किसी न किसी रूप में आज तक पड़ता चला आया है। छायावाद के कवियों ने भी अपनी भक्तिवादी और भावाभिव्यक्तियों में उक्त अद्वैतवाद एवं मायावाद की जादू बरबार सेकत किया है। अतः छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि के प्रसंग में शांकर वेदान्त का यहाँ पर संक्षेप में परिचय प्राप्त करना उपयोगी सिद्ध होगा।

### ब्रह्म

माय और ब्रह्मिक न ईश्वर जीव और प्रकृति तीनों का मानकर ईश्वर को जगत का कर्ता ठहराया था। साव्य न दा ही नित्य तत्त्व-पुरुष और प्रकृति-यो मायता दी। वेदान्त न और आगे बढ़कर अद्वैतवाद विशुद्ध ब्रह्म की स्थापना की। शांकर वेदान्त में पारमार्थिक दृष्टि से सच्चिदानन्द ब्रह्म ही एक मात्र मूल तत्त्व है। वह निर्विणय और सर्वव्यापी है। उसकी सिद्धि के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयंसिद्ध और स्वयं प्रकाश है। उसमें किसी प्रकार का विकार अस्थित नहीं होता। वह सजातीय

१ चटर्जी तथा दत्ता-एन इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन फिलॉसॉफी पाँचवाँ संस्करण पृ. २६८

विजातीय तथा स्वगत सभी भन्ना म रहित और समस्त विशेषणा तथा मानत्व से परे है । जगत तत्त्व ब्रह्म का स्वरूप लक्षण नहीं केवल तटस्थ लक्षण है । अर्थात् ब्रह्म का सृष्टि कर्ता होना वास्तविक स्वरूप नहीं औपाधिक गण है । जगत म जा विविध दृश्य दिखाई पड़ते है वे परिणामी अत जतत्व और अनित्य हैं । समस्त जय पन्थाय ब्रह्म के ही सगुण सापाधि या मायात्मक रूप है । इस प्रकार शाकर वेदान्त का ब्रह्म आरोप का अधिष्ठान है । माया की विभ्यप शक्ति के कारण जो सृष्टि हाती ह वह मिथ्या अथवा भ्रान्ति ह । यह आरोप तत्व ज्ञान क द्वारा वाधित हा जाता है । एम प्रकार समस्त जगत ब्रह्म का विवत है ।

### ईश्वर

शाकर वेदान्त म ब्रह्म स माया शक्ति क द्वारा जगत का प्रथमिक विकास माना गया है । अर्थात् माया द्वारा ही सूक्ष्म स स्थूल की परिणति का आभास हाता है । ब्रह्म अपरिणामी है अत उसम किसा प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हो सकता । इस प्रकार मायावच्छिन्न ब्रह्म ही जगत का कारण है । वास्तव म क्रिया ब्रह्म न नहीं रजोगुण से युक्त माया म होती है । इय अन्यक्त माया का आश्रय होने के कारण ब्रह्म का सवशक्तिमान और सवन ईश्वर का नाम लिया जाता है । यह ब्रह्म का वह रूप है जो वास्तविक सृष्टि से पहले अन्यक्त माया के माय रहता है । जगत की अपेक्षा म व ईश्वर है निरपेक्ष रूप म वह परब्रह्म है ।

जगत का कारण होते हुए भी ईश्वर केवल लीला के लिये, बिना किसी प्रयोजन के सृष्टि करता है जैसे समस्त कामनाओं स पूरा कोई राजा केवल लीला के लिये श्रीरुद्र विहार म प्रवृत्त होता है अथवा जिस प्रकार किसी वाद्य प्रयोजन के न रहने पर भी स्वभाव से ही शरीर म श्वास प्रश्वास चलता रहता है ।

### माया

ब्रह्म का आश्रयन करने वाली शक्ति का नाम माया है । वह ईश्वर की शक्ति है । इस रूप में वह ब्रह्म म भिन्न पन्थाय नहीं है । माया ब्रह्म से उमी प्रकार अभिन्न और अविच्छेद्य है जिस प्रकार अग्नि स दाहकता अथवा मन से सकल्प । वह ईश्वर क लिये इच्छा माय है । इसी क द्वारा मायावी ईश्वर वचिन्मयगुण सृष्टि की अभ्युत लीला लिखाता है । परन्तु एम स्वय इस माया से प्रभावित नहीं हाता—उगा नहीं जाता । जब जीव अनान-वश ईश्वर की

इस मायावत लीला का सत्य समय लता है तब मनस्त दश्यवग उसे विभिन्न सा प्रतीत हाने लगता है । परन्तु जो तत्त्वदर्शी हैं उन्हें इस मायामय ससार म एकमात्र ब्रह्म ही सत्य प्रतीत होता है । शकराचार्य न इस माया को सत अथवा असत न कह कर अनिवचनीय कहा है ।

### अविद्या

शकराचार्य न अविद्या जीर माया म कोई भ्रम नहीं किया है । माया की भावि अविद्या भी त्रिगुणात्मिका है । अर्थात् वह सत्व रजस तथा तमस इन तीनों गुणा स युक्त है । प्रत्येक जीव अविद्या ग्रस्त होने के कारण ही एक ब्रह्म के स्थान पर नाना विषय और जीव देखता है । अविद्या क कारण ही निर्विण्ण ब्रह्म का ज्ञान नहान हो पाता । उस प्रकार अविद्या ज्ञान विरोधी है । तत्त्वज्ञान हा जाने पर उसका नाश हो जाता है । जीर शब्द चतय सवन एक ही रूप मे लिखाई पडने लगता है ।

### जगत

शाकर वेदान्त मे जगत माया अथवा अविद्या का खेल है । अत जगत किंवा सृष्टि के पदार्थों की अनेकता सत्य नहीं है । समस्त भूत समुदाय म एक ही शुद्ध और नित्य परब्रह्म व्याप्त है और उसी की माया स मनुष्य की इन्द्रियो की भिन्नता का भाव हुआ करता है । इस प्रकार शकराचार्य ने आभासमान स्वल्पत्व और अनेकत्व की व्याख्या माया की सहायता से की है । अत उनके अनुसार शुद्ध अनन्त सत चित आनन्द ब्रह्म ही सवशक्तिमती माया के प्रभाव से अपने को उपाधि-युक्त कर नाना विषयो वाले इस जगत के रूप म प्रकट करता है । यह माया पहने अयक्त रहती है फिर स्थूल विषयो मे तत्पश्चात् सूक्ष्म विषयो मे व्यक्त होती है । जब माया सूक्ष्म रूप म यक्त होती है तब उसका आधार हिरण्यगर्भ कहनाता है । इस रूप म ब्रह्म का जय है—समस्त सूक्ष्म विषयो की समष्टि । जब माया स्थूल रूप मे अर्थात् दश्यमान विषयों म अभिव्यक्त होती है तब उसका आधार वशवानर (विराट) कहलाता है । इस रूप म ब्रह्म का अय है सभी स्थूल विषयो की समष्टि । अर्थात् यत् जगत जिमम समस्त भूतवग स्थित हैं ।

शाकर वेदान्त म जगत के श्रमिक विक्रम की उपमा मनुष्य की तीन अवस्थाओं मे दी जाती है । (१) सुपुप्तावस्था (२) स्वप्नावस्था (३) जाग्रतावस्था । सुपुप्तावस्था का ब्रह्म ईश्वर है स्वप्नावस्था का ब्रह्म हिरण्य गर्भ है और जाग्रतावस्था का ब्रह्म वशवानर विराट है ।

## जीव

शंकराचार्य के अनुसार जीव मूलतः परब्रह्म ही है। किन्तु वह अज्ञ और क्षणिक विषया में अपने को सीमित कर लेने के कारण संकुचित हो जाता है। अविद्या के कारण उसमें अहंभाव भी बना रहता है। किन्तु जब ज्ञान द्वारा जीव को अपना यथाथ-स्वरूप ज्ञान होता है तब वह ब्रह्म रूप हो जाता है। 'नखममि' आदि उपनिषद्-वाक्यों के आधार पर शंकराचार्य ब्रह्म और जीव में एकता अथवा अभेद का पूर्णतः समर्थन करते हैं। जीव और ब्रह्म के एक हो जाने अथवा जीव के लिए माया के विलीन हो जाने में एकमवांतीय नेह नानास्ति किन्तु <sup>१</sup> यह अति वाक्य प्रमाणित हो जाता है। इसी अद्वैत तत्त्व का साक्षात्कार कर साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और दुःख से सदा के लिए छुटकारा पा जाता है।

## मुक्ति

शंकर वेदान्त में ब्रह्मसाक्षात्कार के साथ-साथ समस्त अज्ञान तथा उसके कारणों का भी नाश हो जाता है। ब्रह्म को छोड़कर और कुछ शेष नहीं रह जाता। जीव और ब्रह्म का एक हो जाता है। यही शंकर वेदान्त का मति है।

## जीव-मुक्ति

शंकर के अनुसार प्रारब्ध कर्म के क्षय के बिना मुक्ति नहीं मिल सकती अतः सचित और क्रियमाण कर्मों के नाश हो जाने पर भी तत्त्वज्ञानी शरीर धारण किये रहता है। किन्तु ससार का मिथ्या प्रपन्न उसके मामल नहीं रहता। वह फिर टगा नहीं जाता। सामाजिक विषया के हेतु उसे तप्या नहीं होनी। अतः उस कोई दुःख व्याप्त नहीं होता। वह ससार में रहते हुए भी उससे परे रहता है। प्रारब्ध कर्म के क्षय होने पर शरीर का पतन हो जाता है और तत्त्वज्ञानी सबथा मुक्त हो जाता है। शंकर का यह विचार परवर्ती वेदान्त साहित्य में जीव-मुक्ति के नाम से विख्यात है।

## साधन

शंकर के अनुसार वेदान्त की शिक्षा के लिए जिज्ञानु को काम्य और निषिद्ध कर्मों का परित्याग कर नित्य और नमित्तिक कर्म तथा प्रायश्चित्त



उपासना आदि का अनुष्ठान करते हुए अन्तःकरण को मला को दूर करना भी आवश्यक है जिससे अन्तःकरण शुद्ध और स्वच्छ हो जाय। इसके पश्चात् नित्य और अनित्य वस्तुओं में विवेक ज्ञान इन्द्रोक्त तथा परमात्मनः प्राप्त पना से विरक्ति शम दम उपरति निनिक्षा समानान तथा श्रद्धा इन अष्टांग-योगों से यत्न होना आवश्यक है।

## वैष्णव वेदान्तवाद

### विशिष्टाद्वैतवाद

शंकराचार्य का अद्वैतवाद जिसमें तानिया और तार्किक पण्डितों की ब्रह्म विषयक जिज्ञासा का सम्यक् तुष्टि तथा सामान्य जनता में ब्रह्म का सात्त्विक्य प्राप्त करने की साधना उत्पन्न हुई कुछ समय तक वेदान्त सम्प्रदाय के नाम से चरता रहा। उसमें किसी ने हस्तक्षेप नहीं किया। किन्तु शंकर ने बौद्धधर्म के निरीश्वरवाद का खण्डन करके जिस निर्विशेष अथवा तटस्थ ब्रह्म की स्थापना की थी वह उपासना के क्षेत्र में किसी काम का न था। माय ही बौद्ध दार्शनिकों के शयवात् का आधार लेकर उन्होंने जिस मायावाद की कल्पना की थी उसमें ससार की कोई स्थिति नहीं थी अतः गृहस्थ के लिए उसमें कोई आश्रय न था। इसके अतिरिक्त बौद्ध भिक्षुसभ के अनुकरण पर उन्होंने जिस यतिधर्म की नाव डानी वह भी व्यावहारिक जीवन में विशेष महत्त्व का न था। इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धमत के निरीश्वरवाद अथवा शून्यवाद से जनमानस में जो रिक्तता अथवा निराशा का भाव उत्पन्न हो गया था उसकी पूर्ति शंकराचार्य का अद्वैतवाद अथवा मायावाद भी न कर सका। अतः लोग पुनः प्राचीन ऐकात्मिक धर्म की ओर जिसमें ज्ञान तथा गृहस्थ्याग का विशेष आग्रह न था धीरे धीरे प्रवृत्त होने लगे। फिर तो कालान्तर में शांकर मत के प्रतिकूल ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया हुई जिसमें वैष्णव धर्माचार्यों ने शंकर को प्रच्छन्न बौद्ध<sup>१</sup> तक कहने में सकोच नहीं किया। शंकर अद्वैत की ज्ञान तीव्र प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप रामानुज ने अपने

१ वन्देजना बद्धहृतागमोज्जित

यूय च बौद्धाश्च समानससत् ।

रामानुज के वदन्त भाष्य की टीका श्रुतप्रकाशिका

गुरु यामुनाचाय के आदेश स नाथ मुनि द्वारा निर्मित वणव धम की आधार िला पर गाकर अद्व त के स्थान पर विशिष्टाद्व त तथा यतिधम क स्थान पर भक्तिमाग की अनुपम समष्टि की । रामानुज न उपनिषद गीता तथा ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखकर शकर के मायावाद का मिथ्या प्रमाणित किया और ब्रह्म म गुणा का आरोप किया । आचार ंष्टि स उन्होंने भक्ति का ही अन्तिम कृत्य माना और वासुदेव भक्ति को श्री भक्ति का सच्चा साधन बताया । इस प्रकार अपन नान्तिकारी विचारा द्वारा रामानुज न शकर क शुद्ध बुद्ध निराकार तथा तटस्थ ब्रह्म म जा भक्ता की प्राथना सुनन म तसमय था और जिस विश्व क प्रपञ्च से कोई प्रयोजन न था इश्वरत्व का आरोप करवे उसे भक्ता की प्राथना सुनन योग्य एव विश्व प्रपञ्च का कर्ता तथा उसना प्रहरी बना लिया । शकर के शुष्क अद्व तवाद स उव हए लोका का प्रम रस स पूण रामानुज का विशिष्टाद्व तवाद अत्यन्त प्रिय लगा आर उनवे भीतर यह भावना बद्धमूल हा गई कि करुणाधाम विष्णु की आराधना गारा उनकी समस्त कामनाजा की पूर्ति हा सता है ।

हिन्दुआ क विशाल जन समूह तथा परवर्ती वणव सम्प्रदाया पर रामानुज के विशिष्टाद्व तवाद का बडा प्रभाव पडा है । सन्त तथा भक्त कविया विनापकर गोस्वामी तुलसीदास न अपन समवयवादी दृष्टिकोण के कारण क उपनिषद गीता स्मृति तथा शकर और रामानुज क सिद्धान्ता का अपनी अनुभूति का अग बनाया है । इस प्रकार नान भक्ति अद्व त विशिष्टाद्व त आनि अनन सिद्धांतो का उनक काव्य म समावेश हो गया है । छायावाद दुग का प्रभावित करन वाली दो महान दिभूतियाँ—गाथी और टगार—मन्त और भक्ति परम्परा की कायन था । छायावाद क अधिकांश कवि वणव-कुल म उत्पन्न हुए थ । अत व वणव विचारधारा म पूणतया परिचित थ । सन्त और भक्त कवियो स भी उहान प्ररणा प्राप्त की था कसका भी उल्लेख उनक सखा और भूमिकात्रा म मिलता है ।<sup>१</sup> अत सन्ता तथा भक्ता क म प्रभाव म

१ (क) अपनी काव्य साधना म मन सन्त कविया तथा डा० टगार स अनु प्राणित छायावाद की आध्यात्मिकता तथा जाणशवात्ता का अन्त श्चनना रा नवीन नाकचतना का स्वरूप दन का प्रयत्न कर उसकी निष्क्रियता को सत्रियता प्रदान करन की उसकी व्यक्तिकता का नाकप्रियता म परिणत करन का चष्टा की है ।

स्थान स्थान पर उनके काय म सन्ता तथा भक्तो की वाणी गूज उठी है और करुणा कष्टसहिष्णता आत्मसमर्पण आत्म निषेदन तथा एकान्तिनिष्ठा आदि के भाव उभर जाय ह । छायावाद काय पर वष्णव भक्ति के इस प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए यहाँ पर वष्णव धर्म के प्रमुख सम्प्रदाय विशिष्टान्त का खाड़ा परिचय प्राप्त कर लेता उचित होगा ।

### मत

रामानुजाचार्य के मत म चित्त (जीव) अचित्त (अड समूह) और ईश्वर या पुरुषोत्तम ये तीन मूल तत्व है । इनम ईश्वर ता प्रधान अगी है और चित्त तथा अचित्त उसके दो विशयण या अग हैं । इसीलिए यह मत विशिष्टान्त कहताता है । सक्षय म रामानुज क विचार इस प्रकार है —

जाचार्य रामानुज के मत म स्थून सूक्ष्म चतनाचतन विशिष्ट ब्रह्म पुरुषोत्तम सगुण और सविशय है । निर्विशय वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता ।

### ब्रह्म और शास्त्र का सम्बन्ध

ब्रह्म या पुरुषोत्तम प्रतिपाद्य और शास्त्र प्रतिपादक है । शास्त्र सगुण और सविशय ब्रह्म का प्रतिपादन करता ह । निर्विशय वस्तु का प्रतिपादन असम्भव है ।

### प्रयोजन

जविद्या की निवृत्ति प्रयोजन है । जीव का अज्ञान है । उपासना द्वारा ब्रह्म-माध्याकार होने पर अज्ञान दूर हो जाता है । मुक्त जीव ईश्वर के दास के रूप म स्थित रहता है । वह ईश्वर की नित्य लीला म अपार आनन्द का उपभाग करता है ।

### ब्रह्म ईश्वर

रामानुज क मत म उपनिषदो का ब्रह्म निगुण और निर्विशय होकर सगुण और सविशय है । ब्रह्म की शक्ति माया है । ब्रह्म जगत् कल्याणकारी गुणा का जालय है । उसम निकृष्ट कुछ भी नहीं है । सर्वेश्वरत्व सवगोपित्व सवकमारार्थ्यत्व सवकृतप्रत्त्व सवाधारत्व सवकार्यात्पात्त्व आदि उसक

(ख) भक्ति भावना मेरी पवृक् सम्पत्ति है और उसना मने अपनी कवि ताजा म मरभित रक्वा है । वही मेरी प्रेमाराधना का आधार है ।  
ठा० गोपावशरण सिंह आधुनिक कवि (४) आत्म कथा पृ ४

लक्षण है। वह सूक्ष्म चिदचिद्विगेष रूप म जगत का उपादान कारण है। सत्त्वविशिष्ट रूप म निमित्त कारण है। जीव जीर जगत उसका शरीर है। ईश्वर ही आत्मा है। उसके गुण असह्य हैं। वह गुणो म अद्वितीय है। ईश्वर सृष्टिवर्ता कमफलदाता नियन्ता तथा सवातर्पामी है। नारायण विष्णु ही सबके अधीश्वर है। वही सृष्टि स्थिति सहारकर्ता है। वह शख-चक्र-गदा आदि त्रिय जायुधा स युक्त चमकते हुए किरीट मकराकृत कुण्डल गले व हार केयूर जीवत्स कौस्तुभमणि मुक्ता पीताम्बर नूपुर आदि दिव्याभूषणा स अलङ्कृत ह।

ईश्वर का स्वरूप पाँच प्रकार है —

(१) पर'—यही वासुदेव स्वरूप है। यह स्वरूप काल की गति स परे है। इसका कभी परिणाम नहीं होता। निरवधि आनन्द से यह सदा विभूषित रहता है। दवतागण इसी स्वरूप को वकुण्ठ म नयो एव ज्ञान र देखते रहते ह।

(२) ब्रूह—यह स्वरूप विश्व की लीला के निमित्त है। यह सकपण प्रद्यम्न तथा अनिरुद्ध के स्वरूप म वतमान है। यह स्वरूप सत्सारियो की रक्षा तथा मुमुक्षु एव भक्तो के प्रति अनुग्रह दिलाने के लिए है। पर स्वरूप म तो ज्ञान बल ऐश्वर्य वीय शक्ति तथा तेज य छ गुण सदैव वतमान रहते ह किन्तु ब्रूह म केवल दो दा गुण प्रकट रूप म वतमान रहत हैं अर्थात् ज्ञान तथा बल सकपण व स्वरूप म प्रकट है। प्रद्युम्न म ऐश्वर्य तथा वीय गुण तथा अनिरुद्ध म शक्ति और तेज रहत है।

(३) विभव—यह अनन्त हाने पर भी गौण और मुख्य भद स दा प्रकार का होता है। मुख्य विभव भगवान का अण तथा अप्राकृत दहयुक्त है यही स्वरूप मुमुक्षुजा के लिए उपास्य ह। भगवान व साक्षात् अवतार को मुख्य तथा स्वरूपावश एव शक्त्यावग अवतार को गौण कहत है।

(४) अन्तर्पामी—एस स्वरूप स भगवान जीवा क अन्त करण म प्रवेश कर जीवा की सकल प्रवृत्तिया का नियमन करते है। इसी रूप स भगवान स्वग नरक आदि स्थाना म सभी अवस्थाभा म सभी जीवा की सहायता करते है।

(५) अचञ्चिनार—य' भक्त की रचि व अनसार मूर्ति म रहन वाली भगवान की उपास्य मूर्ति ह।

भगवान की देह के स्वरूप का वर्णन करते हुए लोकाचार्य ने कहा है—

यह उसके अपने स्वरूप तथा गुण के अनुरूप नित्य एकरूप शुद्ध सत्त्वमय अत्यंत तेजामय सुकुमार लावण्ययुक्त सुगन्धियुक्त यौवनावस्था को धारण करने वाला दिव्य रूपवान् तथा योगिया का एकमात्र ध्येय है। भगवान का शरीर उसके असीम स्वरूप को जीव की देह व समान कभी भी नहीं दिया सकता है। भगवान का शरीर सबल जगत को मोहन वाला है। इस रूप के दर्शन से सासारिक समस्त भोग्य पदार्थों व प्रति विरक्ति उत्पन्न हो जाता है। भगवान के रूप का दर्शन तीनों तापों को नाश करने वाला है। नित्यमुक्ता व द्वारा सतत यात्र करने योग्य यह भगवान का स्वरूप है। दिव्य भूषणा से तथा दिव्य अस्त्रों से सदैव यह शरीर युक्त रहता है।<sup>१</sup>

छायावाङ्गी कविया की ईश्वर के विराट रूप को जगत के दिव्य उप करणा से अनवृत्त करने दम्बन की प्रवृत्ति में रामानुज के उक्त ब्रह्म जयवा ईश्वर का प्रभाव परिरक्षित होता है।

## जीव

विशिष्टाद्वैत मत में चित्त-तत्त्व ही जीवात्मा है जो देह द्रव्यमय मन प्राण तथा बुद्धि से भिन्न है। यह स्वप्रकाश आनन्दरूप या सुखरूप नित्य अणु अचि त्व निरवयव निर्विकार है तथा ज्ञान का आश्रय है। ईश्वर उसका नियामक है अर्थात् ईश्वर की बुद्धि के अधीन उसका सब व्यापार होता है। ईश्वर ही इसका धारक है और यह ईश्वर का जगभूत भी है।<sup>२</sup> ईश्वर और जीव में सजानीय और विजानीय भेद नहीं है स्वगत भेद है। जीव में जो स्वानन्द है वह ईश्वर प्रसूत है। जो दाना में सब्य सेवक भाव है। जीव जो कुछ करता है सब ईश्वर प्रति हाकर ही करता है।<sup>३</sup>

जीवात्मा के तीन भेद हैं—बद्ध मुक्त तथा नित्य।

छायावाङ् का कवि भी जीव का नित्य स्वप्रकाश तथा आनन्दमय मानता हुआ ईश्वर और जीव में स्वगत भेद का ही मान्यता करता है किन्तु भक्ति कक्षेत्र में वह दास्य की अपेक्षा प्रमाभक्ति का ही प्रबल पापक है।

१ तत्त्वत्रय पृ० ११८ ११९ तत्त्वत्रयभाष्य पृ ११९ १०१

२ तत्त्वत्रय पृ ५ २४

३ तत्त्वत्रय पृ० २ २१

## जगत

रामानुज के मत में ब्रह्म ही जगत का रूप में परिणत हुआ है। जगत अचित्त अथवा जड है। वह ब्रह्म का शरीर तथा ब्रह्म उसकी आत्मा है। ब्रह्म और जगत अभिन्न है, अतः जगत वास्तव रूप है। ब्रह्म का ही स्वगत भेद होने के कारण जगत अनादि और सत्य है। शंकर वेदान्त की भाँति वह मायावृत्त प्रपञ्च या मद्ब्रजाल में उपलब्ध मिथ्या पदार्थ नहीं है।

द्रायावाद का कवि जगत के सम्बन्ध में शंकर और रामानुज दोनों के मतों को अपनाना हुआ पाया जाता है। अर्थात् कहीं पर उसने जगत को माया रूप और कहीं पर सत् रूप विहित किया है। उसकी जगत की सत्यता की भावना पर शंकर दशन का भी प्रभाव है जिसके अनुसार जगत मिथ्या न होकर सत्य है।

## मुक्ति

भगवान् का दासत्व का प्राप्ति ही मुक्ति है। बकुण्ठ में श्री भू लीला श्रवियों के साथ नारायण की सेवा करना ही परम पुरुषार्थ है। प्राकृत बंध विन्युत हो जाने पर अप्राकृत देह में नारायण के समान भोग प्राप्त करना मुक्ति है। भगवान् के साथ अभिन्नता प्राप्त करना कभी सम्भव नहीं क्योंकि जीव स्वस्वतन्त्र नित्य है। मुक्त जीव बकुण्ठ में भगवान् के चिरन्तन के रूप में रहकर आनन्द का अनुभव करता है। वह ईश्वर के इच्छाधीन होने पर भाग्य संचरण करता है। भक्ति उपासना द्वारा प्राप्त होती है। उपासनात्मक भक्ति ही मुक्ति का श्रेष्ठ साधन है।

द्रायावाद का भक्तिपरायण कवि ईश्वरोपासना में विश्वास करता है, किन्तु रामानुज के समान वह इस बात में विश्वास नहीं करता कि जीव के लिये भगवान् से अभिन्नता प्राप्त करना असम्भव है। उपनिषदा तथा शंकर के प्रभाव में वह जीव और ब्रह्म आत्मा परमात्मा में अभिन्नता अथवा ऐक्य भी स्थापित करता है।

## साधन

विशिष्टाद्वैत मत में भक्ति का स्थान बहुत ऊँचा है। कामयोग और ज्ञानयोग आदि भी भक्ति ही के द्वारा मोक्ष साधक हैं अथवा नहीं।<sup>१</sup> भक्ति

१ यतिप्रतिपत्तदीपिका, पृ० २९।

मे भगवान प्रमत्त होकर मुक्ति प्रदान करते हैं। वन्दन ध्यान उपासना आदि मे भक्ति सूचित होती है। छायावाद का कवि ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करने के लिए ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का ही समर्थन करता है। वन्दन ध्यान उपासना आदि के प्रति भी वह दृढ़ आस्थावान है।

### प्रपत्ति

ज्ञान कम तथा भक्ति में भक्ति को श्रेष्ठ बताते हुए भी रामानुज न भक्ति में सज्जम सुगम मार्ग प्रपत्ति का कहा है। सब प्रकार से भगवान की शरण हो जाना प्रपत्ति है। इसके लिए न तो ज्ञान की आवश्यकता है न विद्या भ्यास की और न याग साधना की। जो मनुष्य सबतोभावेन भगवान की शरण में आ जाता है उसे भगवान सद्य अपना लते है। प्रपत्ति के सहारे ही श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन को उपदेश दिया था जसा गीता में कहा गया है—

यच्छय स्यान्निश्चित ब्रूहि तमे ।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मा त्वा प्रपन्नम् ॥<sup>१</sup>

छायावाद की कविता में भगवान के चरणों में सम्पूर्ण आत्मसमर्पण द्वारा शांति प्राप्त करने का प्रयास मिलता है। उसमें समस्त विषयों का त्याग कर भगवान की शरण लेने का बार बार उपदेश दिया गया है। छायावाद का कवि हर प्रकार—वन्दन अनुनय विनय आदि—से अपने आराध्य को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है।

### भेदाभेद दशन

वर्णव सम्प्रदायों में एक त्रिदशनी<sup>२</sup> सम्प्रदाय भी था। उसी सम्प्रदाय के आचार्य भास्कर थे।<sup>३</sup> उन्हीं के नाम पर भेदाभेद दशन को भास्कर वेदांत भी कहते हैं। इनका एकमात्र ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र पर भाष्य है।

### भास्कर का सिद्धान्त

भास्कर ज्ञानकर्मसमुच्चयवादी थे। इनका रहना है कि केवल ज्ञान से मोक्ष नहीं होता। कर्म की भी आवश्यकता है। जिस प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए शम दम आदि योगों का अनपठान जीवन भर करना आवश्यक है

१ गीता अध्याय २ श्लोक ७

२ डा० उमेश मिश्र भारतीय दशन पृ० ४०

३ कवी

उसी प्रकार आश्रम कर्मों का अनुष्ठान करना भी आवश्यक है तभी मोक्ष मिलता है अथवा नहीं। कम का त्याग किसी भी अवस्था में नहीं हो सकता। भास्कर का कहना है कि ब्रह्म सूत्रकार का भी यही अभिप्राय है।<sup>१</sup>

इनका दूसरा सिद्धान्त है कि सत्सारावस्था में जब परमात्मा से भिन्न है किन्तु साक्षात्स्था में वह परमात्मा में मिल जाता है। इसीलिए जीव और परमात्मा में भेद और अभेद दोनों हैं। वस्तुतः जीव तथा परमात्मा में स्वभाव ही से भेद है किन्तु सत्साररूपी उपाधि के कारण भेद भी है। यही भेदाभेदात् भास्कर का सिद्धान्त है।

ये दो बातें भास्कर वेदान्त के मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं। इन्हीं को ध्यान में रखकर उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा है।

## तत्त्व-विचार

### ब्रह्मतत्त्व

भास्कर मत में एक मात्र तत्त्व ब्रह्म है। उसी को परमात्मा तथा ईश्वर भी कहते हैं।<sup>२</sup> आगम के द्वारा ही इस तत्त्व का ज्ञान हो सकता है। यह सत् और अन्तिम है। जगत का उपादान कारण भी ब्रह्म है। यह 'सत्काय' वादी है। अतएव कारण-ब्रह्म में ही 'काय-ब्रह्म' विद्यमान रहता है यह इनका कथन है।

### चित्तमय जगत

चेतन ब्रह्म से तो चेतन ही पदार्थों का परिणाम उचित है फिर यह जगत जड़ क्यों है? इसके उत्तर में भास्कर कहते हैं कि चेतन ब्रह्म का समस्त परिणाम भी 'चेतन' ही है। परन्तु वह चेतन सभी वस्तुओं में एक सा देख नहीं पड़ता। इसीलिए किसी में उसकी अभिव्यक्ति प्रयत्नगोचर है जैसे जीव किसी में सवया अगोचर है जैसे पत्थर। यही कारण है कि पत्थर आदि में स्वात्म्य नहीं है।

छायावादी का कवि भी प्रकृति के समस्त पदार्थों में चेतना का आरोप करता है।

१ अत्र हि ज्ञानकमसमूहया मोक्षप्राप्ति सूत्रकारस्याभिप्रेता।

भास्कर भाष्य पृ० २ (वागी सत्करण)

२ ब्रह्मसूत्र भाष्य पृ० ६-७



## काय कारण-भाव

कायकारण भाव के सम्बन्ध में भास्कर का कहना है कि काय सत् है। कारण ही भिन्न भिन्न अवस्था को प्राप्त कर काय का रूप धारण कर लेता है। एकमात्र तत्त्व ब्रह्म है। वही परिणाम क द्वारा जगत के रूप में परिणमित हो जाता है। प्रपञ्च ब्रह्म का धर्म या एक अवस्था है। इसलिए ब्रह्म और जगत की सत्ता में कोई भेद नहीं है।<sup>१</sup>

छायावाद का कवि भी ब्रह्म तथा जगत की सत्ता में अभेद स्थापित करता हुआ पाया जाता है।

## जगत मिथ्या नहीं है

प्रपञ्च ज्ञानी के लिए भी सत्य है क्योंकि वह उस ब्रह्म की शक्तिरूप में देखता है और अज्ञानी के लिए तो सत्य नहीं है। भास्कर का कहना है कि जगत का मिथ्याता किसी ने देखा नहीं है।<sup>२</sup>

छायावाद का कवि यदि शास्त्र वदन्त के प्रभाव से निराशा के क्षणों में जगत को मिथ्या अथवा मायारूप देखा है तो आशा के क्षणों में वह ब्रह्मवदन्त द्वारा प्रतिपादित जगत की सत्यरूप भी चित्रित करता है।

## जीव

जीव ब्रह्म की भाक्तशक्ति है। अज्ञान और कर्म के कारण जीव बंधन में पड़ता है। ससारावस्था ही में यह जीव रहता है मुक्ति में तो परमात्मा में लीन हो जाता है। यह नित्य और अणु रूप है। अणु परिमाण के होने ही के कारण मरने पर एक शरीर को छोड़कर दूसरे में प्रवेश कर सकता है।<sup>३</sup> परन्तु यह अणु व भी औपाधिक और अस्वाभाविक है। जब तक द्वन्द्वभाव रहता है तभी तक यह रहता है ब्रह्म को परमात्मा के स्वरूप का हाँसा जाता है। उसी प्रकार कर्म स्व भी जीव का स्वाभाविक धर्म नहीं है क्योंकि जीव की मुक्ति ही नहीं मिलती। मुक्ति में परमात्मा में लीन हो जाने से इसका कर्म स्व भी जाता रहता है।<sup>४</sup>

१ भाष्य २-१-१४।

२ ग. उमेश मिश्र भारतीय दशन पृ० ४०

भाष्य १२१ १ १३ ३ २२।

४ ग० उमेश मिश्र, भारतीय दशन पृ० ४०३

छायावाद का कवि भी अपना ही जीव (आत्मा) का बचन मानता है तथा ज्ञानशा जयदा मुक्तावस्था म यह जीव का परमात्मरूप घापित करता है ।<sup>१</sup>

## मुक्ति

उपाधिया स मत्त हाकर जाव व अपने स्वाभाविक स्वरूप का धारण करने का मुक्ति कहत हैं । स्वयं दा भूत हैं— सजोमुक्ति और द्रममुक्ति । जा साक्षात कारण स्वरूप ब्रह्म की उपासना करने पर मुक्ति पाते हैं उनकी मुक्ति सद्यामुक्ति ह क्यकि वह तत्प्राप्त प्राप्ति है और जो काय स्वरूप ब्रह्म व द्वारा मुक्ति पाते ह उनकी मुक्ति यममुक्ति है । भास्कर मन म शरीर के पतन होने ही स मुक्ति होती है । अतएव उनके मत म जीव-मुक्ति का अवस्था नहा ह ।<sup>२</sup> छायावाद का कवि उपनिषद शव आदि दशना व प्रभाव म जीव-मुक्ति म भी विश्वास करता ह ।

## कम की आवश्यकता

जिस प्रकार अपवग व लिए यथाय तान अपभिन है उमी प्रकार जीवन भर आधमयम करने का अपशा रहती ह ।<sup>३</sup> विद्या व द्वारा भ्रमण आदि के निरन्तर अभ्यास स अपना का नाश हाता ह । आजीवन कम व अभ्यास ही स तान का पाकर साधक के शरीर का पतन हा जाता है तभी भद तान का नाश होता है । ससारी तथा पारलौकिक कम का भी शय हा जाता है और जाव सवन्त आदि का प्राप्त कर लेता है और उमका कस त्व तान नष्ट हा जाता है ।<sup>४</sup> इस प्रकार नास्कर-मत म आजीवन कम करने की आवश्यकता है । कम व जभाव म दु ख-बीज का नाश नहा हा सकता ।

छायावाद का कवि भी यथागति कम-याग का समथन करता है ।

- १ रू निर्निमित्त नीतिक लावन  
प्रभु प्रभु नत्त गए अभिन्न वन  
माय सच्चिदानन्द चिरतन ।  
जय जगत्य का मय पयटन ।

पन्त—स्वर्णकिरण पृ० १४६

- २ भाष्य ३-४-२६ ।  
भाष्य १-१-४ ।

- ४ २।० उमा मिश्र भारतीय दशन पृ० ४०४

## अचिन्त्य भेदाभेद

रामानन्द और भास्कर के अतिरिक्त वष्णव भक्ति का विकास मध्व निम्बाक चतुस्र चतय जादि आचार्यों द्वारा द्रुत तदाद्रुत शब्दाद्रुत अचिन्त्य भेदाभेद जाति विभिन्न दार्शनिक रूपा म हुआ । किन्तु अचिन्त्य भेदाभेद क प्रवर्तन चतयदेव न अपन पूववर्ती आचार्यों की भांति स्वयं अपन मत के दार्शनिक सिद्धांता का प्रतिपादन नहा किया । एक प्रकार स उनका मत अपने पूववर्ती समस्त भक्ति सम्प्रदाया का विकसित रूप है । चतय महाप्रभु श्रीमदभागवत को ही ब्रह्मसूत्र का भाष्य मानते थे । श्री मध्व भाष्य श्रीमद भागवत के अनुरूप था जत उसे भी वह आन्तर की दृष्टि से देखते थे । इसी स चतयमत म अष्टादश दार्शनिक तत्वों का निरूपण मन्वभाष्य के आधार पर किया गया है । चतयमत म भी मन्वमत की भांति ही जगत का सत्य तथा ब्रह्म का परिणाम माना गया है । ज्ञाना मतो म जीव और ब्रह्म चिरभिन्न है— मुक्तावस्था म भी पृथक् पृथक् रहते ह । किन्तु चतयमत म गुण और गुणी भाव स जीव और ब्रह्म का अभिन्न भी कहा गया है । उसका यह विचार निम्बाकराचार्य के द्रुताद्रुत के अनुरूप है । इसा प्रकार उसकी प्रमाभक्ति पर वरनभावाय के मधुर भाव का प्रभाव परिरक्षित होता है । किन्तु प्रमाभक्ति को जितना मन्व चतयमत म प्राप्त है उतना उसे किसी अन्य वष्णव मत म प्राप्त नही हुआ । प्रमाभक्ति ही चतयमत की रीड अथवा मौनिक स्त ह । चतयदेव का भावावेश म वन्दान को गोपिया की आनन्द मयी भाव विह्वलता एव राधा की गम्भीर विरह वेदना की पूण अनुभूति हुआ करती थी । ऐसी अवस्था म व बाह्य पात शून्य हो जाते थे उनक नथो से प्रमाथ निकलन जगत थे और उनके शरीर म रोमाञ्च हा जाता था । इस प्रकार चतय द्वारा जनममात्र म रागमयी भक्ति का प्रचार हुआ और उनक सम्प्रदाय म इस सिद्धांत की स्थापना की गई कि युगनन्तत्व श्री राधा-कृष्ण की साधना से ही परम पुरपाथरूप प्रेम की प्राप्ति हो सकती ह । रूप, सनातन जीव आदि शास्त्रामिया न प्रमाभक्ति के सिद्धान्ता का बटा ही सूक्ष्म और मार्मिक विश्लेषण किया तथा गोपियों के भाव का अनुसरण करने वान श्रीकृष्ण प्रेम ही का धार्मिक जीवन का परम साध्य बताया । इस प्रकार चतय सम्प्रदाय द्वारा जिम प्रमाभक्ति अथवा कान्ताभाव का वगल आसाम और विहार म प्रचार हुआ उसका व्यापक प्रभाव परवर्ती सत्तो एव माधुय भावपरक भक्ति-सम्प्रदाया पर भी पना ।

आधुनिक युग की मास्तृत्तिक धारा का प्रभावित करने वाले समकालीन एव सामाजिक के संदेशवाहक एव प्रेम तथा भक्ति के अवतार रामकृष्ण परमहंस न अपना जीवन में विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के साधना पक्ष का अनुसरण किया था। उन्हें ब्रह्मवैवर्तिका के पांचा सावा-शांत दास्य सम्य वासत्य तथा माधुय की निधि प्राप्त थी। कहा जाता है कि कान्ताभाव की साधना करते समय उनकी मानसिक स्थिति तथा शारीरिक मुद्रा में कल्पनातीत परिवर्तन हुआ जाता था और वे राधारूप ही जाते थे। रामकृष्ण परमहंस की उक्त प्रमा भक्ति का प्रभाव विवेकानंद पर और पुन उक्त द्वारा रामकृष्णमिशन पर पड़ा। कहा जाता है कि ब्राह्मा के वागी नता केशवचंद्र सन के समय ब्रह्म-समाज में भक्ति और साधना का जो प्रचलन हुआ वह ब्रह्म समाजियों की रामकृष्ण से सक्ति का परिणाम था।<sup>१</sup> केशवचंद्र ने अपनी प्रायतः में ब्रह्मवैवर्तिका के गीत भा सम्मिलित कर लिए थे और कभी कभी गीतक पाठ के साथ मकीतन करते हुए सत्का पर भी निकत आते थे।<sup>२</sup> भक्ति विह्वल होकर वे माँ माँ कहकर छन करते थे और न्यासना-वर्गी पर गिर रखकर व्याकुल चित्त होकर मयम पृच्छा करते थे कि सच-मच वाला क्या तुमने मरी मा का रता है ?<sup>३</sup> इस प्रकार रामकृष्ण के सम्पर्क में जिस माधुय भाव का अनुसरण ब्राह्म-समाज में हुआ उसका प्रभाव ब्राह्म-समाजी रवाद्रनाथ की भक्ति-भावमूलक रचनाओं पर भी पया। स्पष्ट है कि छायावादी के कवि विवेकानंद के व्यक्तित्व एवं दशन से प्रभावित थे। निगला का ता रामकृष्ण मिशन में भी द्युत दिना तक निकट का सम्बन्ध रता। छायावादी के प्रेम गीता पर रवाद्रनाथ का प्रेम व्यजना की भी छाप है। किंतु रामकृष्ण मिशन या विवेकानंद ब्राह्म-समाज या रवाद्रनाथ की प्रेम-साधना ब्रह्मवैवर्तिका सम्प्रदाय का प्रेमा भक्ति का ही एक रूप था। अतः आधुनिक दष्टि में छायावादी की प्रेम-साधना का स्पष्ट करने के लिए यहाँ पर प्रेमा भक्ति का प्रबल प्रचार करने वाले चतुर्थ मत अथवा अविन्ययप्रेमाभेद का सम्बन्ध में परिचय प्राप्त कर लेना अनावश्यक न होगा।

### मत

चतुर्थ मत में ब्रजग नन्दन श्रीकृष्ण आराध्य हैं। ब्रजवन उनका धाम है ब्रजागना वग द्वारा का गई उपासना ही मच्चा उपासना है श्रीमत्

१ निबन्ध मस्तृत्तिक के चार अध्याय पृ० ४ १

२ वही पृ० ४१४

३ कल्याण भक्ति अन् (१०५८) पृ ६५९

भागवत विशुद्ध प्रमाण ग्रंथ है तथा प्रमा भक्ति ही परम पुरुषार्थ है । यही चतुर्थ महाप्रभु का सिद्धांत है ।

### विषय

विशुद्ध अनन्तगुणशाली अचित्त्व अनन्त शक्ति सच्चिदानन्द पुरुषोत्तम ही विषय है ।

### प्रयोजन

भक्ति अविधय है और श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति ही प्रयोजन है ।

### ब्रह्म या इश्वर

चतुर्थ मत में ब्रह्म स्वतंत्र कर्ता सत्त्व और विज्ञान स्वरूप माना गया है । ब्रह्म ही सबका आदि कारण और नियामक है । ब्रह्म विभ है और जीव अण है । वह पूरा चतुर्थ नित्य नानादि गुणा से युक्त तथा सबशक्तिमान है । ब्रह्म व्यापक है किन्तु व्यापक होते हुए भी भक्तिग्राह्य है । वह एक है किन्तु एक होने पर भी गुण गुणी भाव से नानी ली प्रतीति का विषय होता है । ब्रह्म अचित्त्व शक्ति द्वारा नाना रूप धारण करता है अर्थात् ब्रह्म ही जगत रूप में परिणत होता है ।

शंकर के समीप निगुण ब्रह्म ही सत्य था किंतु चतुर्थ मत में ब्रह्म के निगुण और सगुण दोनों रूप सत्य माने गए हैं । उसके अनुसार सबिनेप श्रीकृष्ण ही ब्रह्म-तत्त्व हैं । वे अद्वय पाप तत्व चिदानन्दमूर्ति सबके आश्रय और सर्वेश्वर हैं स्वतंत्र और सबज्ञ हैं तथा जीव का भाग एक माश्र के देनवान हैं । निगुण भी है क्योंकि उनमें कोई प्राकृत गुण नहीं है । सवित सन्धिनी और ह्लादिनी भगवान की तीन शक्तियाँ हैं । ह्लादिनी शक्ति द्वारा ही वे एक रस हाने पर भी स्वरूपभूत जानन्द का वितरण करते हैं । उनकी चित्तशक्ति जीव शक्ति और मायाशक्ति के परिणाम स्वरूप चिदचित्तरूप जीव जगत का आविभाव होता है ।

### जगत

चतुर्थमत में श्रीकृष्ण अचित्त्व शक्तिवान है । इसी शक्ति द्वारा वह जगत रूप में परिणत होने है । शंकर वदान्त की भांति चतुर्थमत में जगत मिथ्या नहीं अपितु सत्य किन्तु अनित्य माना गया है । जो वाग जगत का

श्री कृष्ण का शरीर मानकर उसमें उनकी नित्य 'छवि' का दशन करते हैं व परमानन्द के भागी होते हैं ।

## गोलोक

गाकन मथुरा और द्वारिका को गोलोक कहते हैं । इन तीन धामों में श्रीकृष्ण नित्य अवस्थान करते हैं । ये तीनों धाम उनके स्वरूपश्रवण द्वारा पूज्य हैं । अर्थात् श्रीकृष्ण के शरीर के समान सर्वपापी अनन्त और विभु हैं । श्री कृष्ण की इच्छा में वे ब्रह्माण्ड में प्रकाशित हो रहे हैं । वहाँ की भूमि चिन्ता मणि के समान तथा वन बल्पवक्षस्य है । चमचक्षुओं से देखने पर वह वदावन धाम प्रपन्न के समान दीखता है । प्रमत्त से देखने पर उसके स्वरूप का प्रकाश होता है और गोप गोपागनाओं के साथ श्रीकृष्ण की विलास नीला प्रत्यक्ष दृष्टिगात्र होती है । श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की रूप महिमा के विषय में मथुरा नगर की रमणियाँ कहती हैं कि जो लावण्य का सार है जिसकी तुलना में भी कोई दूसरा रूप नहीं रखा जा सकता । फिर उससे बटकर तो ही ही कैसे सकता है जिसकी रमणीयता स्वयं सिद्ध है तथा जो क्षण-क्षण नतन बना रहता है जो महान ऐश्वर्य शोभा और यश का एकान्त आश्रय है तथा जो जीरो के लिए दलभ है श्रीकृष्ण के उस रूप को गापिकाएँ निरन्तर नयना के द्वारा पान करती रहती हैं ।<sup>१</sup>

छायावादी का कवि भी अपने अन्तत प्रियतम में ऐसी ही अतीविक गुणा का आरोप कर गोप गोपागनाओं की भाँति अतीविक रस के पान करने का अभिलाषी प्रतीत होता है ।

## जीव

वैतन्य सम्प्रदाय के अनुसार जीव असह्य है अनन्त है । श्रीकृष्ण विमुचित है । जीव अनुचित है । स्वरूपत जीव श्रीकृष्ण का नित्यदास है

- १ गोप्यस्तप किमचरन् यदमुष्य रूप  
लावण्यसारमसमोष्वमनयसिद्धम् ।  
दग्भि विवन्त्यनसवाभिनव दुराप—  
मेवान्तधाम यन्म त्रिय ऐश्वर्यम् ॥

वह श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति ह भू और अभूत्वरूप म प्रकाशित ज्ञाना ह ।<sup>१</sup> श्री कृष्ण की तीन शक्तिया है—अन्तरगा बहिरगा तथा तटस्था । चिनशक्ति ही अन्तरगा शक्ति है । माया शक्ति बहिरगा तथा जीव शक्ति तटस्था शक्ति है । श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति उनकी अन्तरगा तथा बहिरगा शक्तिया क मध्य म स्थित है । भगवत्प्रकाश के द्वारा उनकी तटस्था शक्ति ही जीव है । अन्तरगा शक्ति के आवरण का प्राप्त कर जीव श्रीकृष्ण की जार उमल होना है तथा नियान्त नित्य सख का भाग करता है । किन्तु बहिरगा शक्ति के आवरण म वत् मायामय हाकर सासारिक कषा का भोगता है । चतय के शक्तो म अनादि जाव श्रीकृष्ण की भूतकर जब बन्मुख होना है तज माया उसको सासारिक दुख प्रदान करती है कभी ऊपर उठाकर स्वय म ले जाती है ता कभी नरक म डबा देनी है । यह अविद्या या माया भगवान की परिवारिका है । यह भगवन्मुख जीवो का अपने प्रभ के प्रति जवना का सहन नहा कर सकती । इसीलिए दण विधान करती है । इस प्रकार भगवद्विमुखता ही दुख का हतु है । इस माया से निस्तार पाने के निय एकमात्र उपाय है—भगवान के सम्मुख होना ।

### नाम सकीर्तन

चतयमन मे भगवत्प्रम ही जीव का नि ज्ञेयस मगल है । भक्ति के अभाव म अय माधनो द्वारा भगवत्प्रम की प्राप्ति नही हो सकती । अनुकूल भाव से श्रीकृष्ण की सेवा ही भक्ति है ।<sup>२</sup> भक्ति ही श्रीकृष्ण प्रम की साधिका है । भगवत्प्रम मे श्रीनाम-कीर्तन की बडी महिमा है । कलि मे नाम सकीर्तन ही युगधम है । श्रीनाम कीर्तन के प्रभाव से भगवत्प्रेम की प्राप्ति सुनभ हो

१ जीवेर स्वरूप हय कृष्णे नित्यदास ।

कृष्णर तटस्था शक्ति भेत्तभेत् प्रकाश ॥

श्री चतयचरितामृत—

० कृष्ण भलि सेइ जीव अनादि बहिमुख ।

अतएव माया तारे देय ससार दुख ॥

कभू स्वर्गे उठाय कभू नरके डुबाय ।

—श्री चतयचरितामृत—

३ आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन भक्तिरत्तमा

भक्तिरसामृतसिधु (पूव विभाग, प्रथम लहरी)

जाती है क्योंकि नाम नामी से अर्थात् श्रीकृष्ण से अभिन्न है। ऋग्वेद में कहा गया है— हे विष्णो ! तुम्हारा नाम चित्स्वरूप है अतएव मह स्व प्रकाशरूप है। इसलिए उसके विषय में अल्पज्ञान रखते हुए भी उसका उच्चारण मान करत हुए सुमति अर्थात् तद्विषयक ज्ञान हम प्राप्त करते हैं।<sup>१</sup> इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि कलियुगी जीवा की ध्यान-यज्ञ प्रवृत्ति योग्यता के अभाव से निष्पन्न हो जाती हैं। नाम-सकीर्तन से ही उनमें निश्चय प्राप्त की योग्यता आती है अन्य कोई उपाय नहीं है। श्री चतुर्वचरितामृत में महाप्रभु ने कहा है—

कलिकाल नामरूपे कृष्ण-अवतार ।

नाम हैते ह्यस्य जगत निस्तार ॥

× ×

अथवा य माने तार नाहिक निस्तार।<sup>२</sup>

अर्थात् कर्म में नाम के रूप में श्रीकृष्ण का अवतार है। नाम में सम्पूर्ण चराचर का निस्तार होता है। जिसकी ऐसी मायता नहीं है उसका निस्तार नहीं है।

इसके अतिरिक्त श्री चतुर्वचरितामृत में चतुर्वच महाप्रभु का यह भी उपदेश है कि कुबुद्धि को छोड़कर श्रवण कीर्तन करा। इनके द्वारा शीघ्र ही कृष्ण प्रेम धन प्राप्त हो जायगा। नीच वण में पदा होने से ही कोई भजन के अयोग्य नहीं होता। इनके विपरीत सत्कृत में उत्पन्न ब्राह्मण ही भजन के योग्य हो ऐसी बात भी नहीं है। जो भजन में लगा रहना है वही श्रेष्ठ है और जो अभक्त है वही हीन घृण के समान है। भगवान् दीना पर अधिक दया करते हैं। भजन में नवधा भक्ति श्रेष्ठ है। वह कृष्ण प्रेम तथा स्वयं श्रीकृष्ण को प्रदान करने में शक्तिशालिनी होती है। उनमें भी नाम-सकीर्तन सर्वश्रेष्ठ है।<sup>३</sup>

१ ॐ आस्य जानन्तौ नाम चिद्विवक्तन महस्ते ।

विष्णो मुमति भजामहे ॐ तत्सत । —ऋग्वेद १।५।६।३

२ कलेदोपनिध राजमस्ति ह्येको महान गुण ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसग पर व्रजत ॥ —श्रीमद्भागवत १२।३।५१

३ श्री चतुर्वचरितामृत, भागि लीला परिच्छेद १७

४ कुबुद्धि छोड़िया कर श्रवण-कीर्तन ।

अचिरात पाव तवे कृष्ण प्रेम धन ॥



श्री भगवान् अकिंचन को ही प्राप्त होते हैं अभिमानी को नहीं। इस सम्बन्ध में चतुर्थदेव का उपदेश है कि जो तृण से भी अधिक नम्र है वक्षस भी अधिक सहिष्णु है तथा स्वयं मान की अभिजापा से रहित होकर दूसरों को मान देता है वही सदा श्रीहरि-कीर्तन का अधिकारी है।<sup>१</sup>

छायावाद के कवियों ने भक्ति अथवा भगवत्प्रेम के सम्बन्ध में नाम के माहात्म्य का मक्तकण्ठ से बखाना किया है।

### भक्ति

चतुर्थमत में भक्ति भगवान् की कृपा से प्राप्त होती है। मक्तावस्था में भी जीव ब्रह्म से पृथक् रहता है किन्तु उसे श्रीकृष्ण का सात्त्विक प्राप्त होता है। जो जीव भगवान् की उपासना तथा उनके तत्त्व-ज्ञान के द्वारा भगवद्धाम को प्राप्त होता है उसका पुनरागमन नहीं होता।

चतुर्थमत में ज्ञान का सार भक्ति है। भक्तिमात्र की तीन अवस्थाएँ हैं—साधन भाव और प्रेम। इन्द्रियों की प्रेरणा द्वारा की जाने वाली सामान्य भक्ति का नाम साधन भक्ति है। यह जीव के हृदयस्थ प्रेम को जागृत करती है इसी से इसे साधन भक्ति कहते हैं। शुद्ध सत्त्वरूपा प्रेमसूय की विररण सदृश चित्त में स्निग्धता उत्पन्न करने वाली भक्ति विशेष का नाम भाव है। भाव प्रेम की प्रथमावस्था है। यही भाव जब धनीभूत हो जाता है तब उसे प्रेम कहते हैं। प्रेम ही प्रयत्न का चरम फल है प्रेम ही जीव का नित्यधर्म है।

नीच जाति नह कृष्ण भजने अयोग्य ।

सत्कुल विप्र नह भजनेर योग्य ॥

येई भजे मेइ बड, अभवत हीन छार ।

दीनेर अतिक दया करे भगवान ।

भजनेर मध्ये त्रेष्ठ नवविधा भक्ति ।

कृष्ण प्रेम कृष्ण दिते धरे महाशक्ति ॥

तार मध्ये सब ऋषि नाम सकीर्तन ।

—श्री चतुर्थ चरितामत अत्य नीला परिच्छेद ४

१ तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।

अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि ॥

श्री गिशाष्टकम् श्लोक ३

यही परम पुहपाथ है ।<sup>१</sup> प्रम के द्वारा श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर लेना ही जीव की मुक्ति है ।<sup>२</sup>

छायावाद काव्य म प्रम का बडा माहात्म्य ह । छायावाद का कवि प्रमाराधन के द्वारा अपन आराध्य को पान का उपक्रम करता है । उसके निकट प्रम मुक्ति का साधन ही नही प्रत्युत मूर्तिमान मुक्ति भी है ।<sup>३</sup>

### व्यावहारिक वेदात्तवाद

बौद्ध धर्म क पराभव के उपरान्त शङ्कराचार्य रामानुजाचार्य मध्वाचार्य निम्बाकाचार्य अतयदव गुरु नानक कबीर दादू आदि दार्शनिको भक्तो एव सन्ता द्वारा जिस वेदात्त दशन का भारत भूमि म विकास प्रचार तथा प्रसार कई शताब्दियो स निरंतर हाता चला आ रहा था उसी का विकास प्रचार तथा प्रसार स्वामी विवेकानन्द का भी लक्ष्य था । अपनी समर-नीति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—

मेरी नीति है—प्राचीन महान आचार्या के उपदेश का अनुसरण करना । मैं उनके कार्यों का अध्ययन किया है और जिस प्रणाली स उन्होंने काय किया है उसके आविष्कार करने का मुझ सौभाग्य मिला है । वे महान समाज सस्थापक तथा बल पवित्रता और जीवन शक्ति के अदभुत आधार थ । उनका सबसे अदभुत काय था—समाज म बल पवित्रता और जीवन शक्ति का संचार करना । हम भी वही काय करना है । किन्तु आज परिस्थिति कुछ बदली हुई ह अत काय प्रणाली म याडा परिवर्तन करना होगा । बस इतना ही हमसे अधिक कुछ नहा ।<sup>४</sup> हमने यह स्पष्ट ना जाता है कि सामाजिक सदा के लिए स्वामी विवेकानन्द न जिस भावभौम धर्म की स्थापना का निश्चय किया था वह कोई नवान धर्म नथा था । वह था उपनिषदो पर आधारित भारत का परम्परागत वेदात्तवाद । एक स्थान पर उन्होंने कहा भी है— मर उपलक्ष वेदात्त की समता जार जात्मा की विश्व-व्यापकता इन्ही सत्यो पर प्रतिष्ठित ह ।<sup>५</sup> उनकी दृष्टि म वेदान्त बह विशाल सागर है

१ रामदास गौड हिन्दुत्व पृ० ६८३ ८४

२ कल्पान हिन्दू सस्कृति अक, अचित्यभङ्गभङ्गा पृ० २८६

३ प्रम मुक्ति है प्रम ही सजन

—पन्त म्वणधूनि पृ० १८४

४ विवेकानन्द मेरी समर-नीति पृ० ४४

५ विवेकानन्द शक्ति त्रायी रिचार पृ० २०

जिसके बक्ष पर युद्ध पोत और साधारण बेडा दोनों साथ साथ रह सकते हैं। वेदात्त म योगी मर्निपूजक नास्तिक इन सभी के लिए पास पास रहने का स्थान है। इतना ही नहीं वेदान्त-सागर म हिन्दू मसलमान ईमाई या पारसी सभी एक हैं—सभी उस सबशक्तिमान परमात्मा की सन्तान ह।<sup>१</sup> वेदात्त का यही समन्वयवादी दृष्टिकोण विवेकानन्द के सर्वप्रथम समन्वय का आधार है।

एक धेनान्ती हान के नाते विवेकानन्द न समस्त चीनोपयोगी तत्वा का चयन आध्यात्मिक दृष्टि से ही किया है। उनका विश्वास था कि भारत वष म किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पन्ने धम प्रचार आवश्यक है।<sup>२</sup> अत उहोंने यह आदेश किया कि भारत को सामाजिक अथवा राजनीतिक विचारो स प्नावित करने के पहले आवश्यक है कि उसम आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ आ दी जाय। सर्वप्रथम हमारे उपनिषदा पुराणा और अन्य सब शास्त्रों म जो अपूर्व सत्य छिये हुए ह उह इन सब ग्रथा स बाहर निकालकर मठो की चहारदीवारिया भेत्कर बना की निज नता से दूर आकर दश म सबथ बिखर दिया जाय ताकि य सत्य दावानल क समान सार दग का चारो जोर स लपट ल—उत्तर स दक्षिण और पूव से पश्चिम तक सब जगह फन जाय।<sup>३</sup> त्म प्रकार हम देखत है कि भारत की सर्वांगीण उन्नति क लिए विवेकानन्द न अत्यात्म भाग का ही अवलम्बन किया। उपनिषद ही अत्यात्म दशन के आदि स्रोत ह जत स्वामी विवेकानन्द न भारत निवासियों के बीच यह प्रचारित किया कि उपनिषदो क सत्या का अव नम्बन करने स हा भारत का उद्धार हा सकता है।<sup>४</sup> उपनिषद ज्ञान क आलाव म ही उहान ससार का निभयता त्याग पवित्रता प्रेम दन्ता एकता आत्म विश्वास कमण्यता नक्षभक्ति आदि का सन्देश दिया। दश भक्ति क प्रसंग म उहान कहा है—

उपनिषदों की शिक्षा ग्रहण किए बिना कोई दश भक्त नहीं हा सकता क्योंकि त्याग ही दश भक्त हान की पहली सीढ़ी है।

१ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ० ९२

२ विवेकानन्द मरा समर नीति पृ० ४९

३ वही

४ वही पृ ६१ ६२

५ विवेकानन्द शक्तिशायी विचार प ५२

स्वामी विवेकानन्द ने इस बात का अनुभव किया कि 'जो आत्म विश्वास वेदांत की नींव है वह अब भी कायरूप में परिणत नहीं हुआ है।<sup>१</sup> अतः उन्होंने इस बात का प्रबल प्रचार किया कि महान विश्वास के बल पर ही जगत की उन्नति सम्भव है। उनके व्यावहारिक वेदान्त में नास्तिक वही है जो अपने आप पर विश्वास नहीं करता<sup>२</sup> क्योंकि ब्रह्म भाव जगत् के लिए आत्म विश्वास आवश्यक है। आत्म विश्वास ही समस्त आध्यात्मिक शक्तियाँ का मूल है। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने अपने देशवासियों को जिस कमठ किंवा व्यावहारिक वेदान्तवाद का पाठ पढ़ाया उसके प्रभाव से वे अपनी दीनता और पराधीनता को भूलकर आत्मगौरव का अनुभव करने लगे। साथ ही अपने बहिर्द्वार विनास के लिए कमरत तथा विराधी अशुभ शक्तियों से सचेत बनने के लिए उत्तम हुए।

स्वामी विवेकानन्द के उक्त व्यावहारिक वेदान्तवाद का छायावादी कवियों पर प्रचुर प्रभाव पड़ा है। अतः यहाँ पर उसके स्वरूप का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना उपयोगी सिद्ध होगा।

### ध्येय

प्रत्येक आत्मा ही अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एवं अन्त प्रकृति दोनों का नियमन कर के अन्तर्निहित ब्रह्म स्वरूप को अभिव्यक्त करना ही जीवन का ध्येय है।<sup>३</sup>

### ब्रह्म

विवेकानन्द के मत में ब्रह्म ही प्रकृत सत्ता है। वह अव्यक्त है अतः उसकी धारणा नहीं की जा सकती। वह अग्राह्य है—अवाङ्मनसागोचर है यही उसकी महिमा है।<sup>४</sup> ब्रह्म निर्विकार है और एक एसी दृकाई है जो अज्ञान का अज्ञान की समष्टि नहीं है। वह अखण्ड है तथा क्षुद्र जीवाणु से लेकर ईश्वर तक समस्त भूतों में व्याप्त है। उसका बिना किसी का अस्तित्व सम्भव नहीं और जो कुछ भी सत्य है वह ब्रह्म ही है।<sup>५</sup>

१ विवेकानन्द स्वधीन भारत ! जय हा। पृ० ६६

२ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० ७

विवेकानन्द शक्तियों विचार पृ० ३१

४ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ० ६८

५ वही पृ० ६०

छायावाद के कवि न स्वामी विवेकानन्द के उक्त सूक्ष्म अव्यक्त अवाङ्मनसागोचर तथा अखण्ड ब्रह्म को बार बार स्मरण किया है और उसकी महिमा का वर्णन किया है ।

### इश्वर

स्वामी विवेकानन्द न उपनिषद् के सत्या का ज्वलम्बन वर्णन तथा उह कायरूप म परिणत करन का आदेश किया है ।<sup>१</sup> अतएव एक प्रकार स उनका ईश्वर उपनिषदा का ही इश्वर है । अत वह समस्त सुखा का स्रोत ह सत चित आनन्द है ।<sup>२</sup> वह अकाम है वसीलिए जभय और ओजस्वरूप है क्योंकि कामना तथा स्वाथ स ही भय की उत्पत्ति होती है ।<sup>३</sup> पह प्रम स्वरूप है और जो कुछ बधनकारक है वह ईश्वर नहीं है ।<sup>४</sup> ईश्वर मुक्ति स्वरूप ह प्रकृति का नियन्ता है ।<sup>५</sup> वह अतीन्द्रिय और निरपक्ष है अत उस विचार और वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता ।<sup>६</sup> किन्तु अनिवचनीय हात हुए भी वह समस्त वस्तुआ की अपक्षा अधिक ज्ञात एव सत्य है वह कभी कल्पना प्रसूत नहीं है । वह हमारी चिन्द्रियो स भी अधिक सत्य है । वही समस्त भूतो मे अतनिहित ह ।<sup>७</sup> वह समष्टिरूप है और समष्टिरूप होने के कारण सब शक्तिमत्ता तथा सवचना ईश्वर क प्रत्यक्ष गुण है । उस सिद्ध करन के लिए किसी प्रकार क तक की आवश्यकता नहीं है ।<sup>८</sup>

विवेकानन्द के अनुसार ईश्वर एक ऐसा वत ह जिसकी परिधि कदा भी नहीं है और जिसका केन्द्र सवत्र ह । इस वत का प्रत्येक बिन्दु सजीव चतय और समान रूप म त्रिपाशाल है ।<sup>९</sup> जीवन और मर्त्यु म मुख और

- 
- १ विवेकानन्द शक्तिनादी विचार पृ ५१५
  - २ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ ८२
  - ३ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन म वृत्तान्त पृ १०
  - ४ विवेकानन्द विविध प्रसंग प ९७
  - ५ विवेकानन्द शक्तिनामा विचार प० ४
  - ६ विवेकानन्द विविध प्रसंग प ८५
  - ७ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन म वृत्तान्त पृ २४
  - ८ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ १९६
  - ९ वही पृ ६३

दुख में ईश्वर समान रूप में विद्यमान है । समस्त विश्व ईश्वर से पूर्ण है ।<sup>१</sup> ईश्वर प्रत्येक हृदय में साक्षी के रूप में विद्यमान है ।<sup>२</sup> हम उस सब कुछ देख और अनुभव कर सकते हैं ।<sup>३</sup> अतः स्वामी विवेकानन्द का आदेश है—

एकमात्र ईश्वर आत्मा और आध्यात्मिकता ही सत्य है । केवल उन्हीं का आश्रय लो ।<sup>४</sup> अपने लिए कुछ मत चाहो दूसरों के लिए ही सब कुछ करो—यही है ईश्वर में तुम्हारे जीवन की स्थिति गति तथा प्राप्ति ।<sup>५</sup>

छायावाद की कविता में विवेकानन्द के अनिवर्तनीय अकाम प्रेम त्याग तथा मुक्ति-स्वरूप ईश्वर की चार्की विषय रूप में पाई जाती है । छायावाद की मानवतावादी प्रवृत्ति पर भी जिसमें शीत शक्ति के प्रति सहानुभूति अथवा संवेदना प्रकट की गई है विवेकानन्द के प्रेम तथा त्याग रूप ईश्वर की स्पष्ट छाप है ।

### मानव ईश्वर

विवेकानन्द के मत में प्रत्येक नर-नारी ही वही प्रत्यक्ष जीवन्त आनन्द में एकमात्र ईश्वर है ।<sup>६</sup> उनका यह भी कहना है कि मनुष्य सर्व ईश्वर की पूजा मनुष्यों के द्वारा ही करता आया है और जब तक वह मनुष्य बना रहेगा तब तक इसी तरह ईश्वर का पूजा करता रहेगा ।<sup>७</sup> विवेकानन्द के समीप केवल दो वर्ग के मनुष्य ऐसे हैं जो ईश्वर की उपासना मनुष्य के रूप में नहीं करते । एक तो मानवरूपधारी पशु जिनका कोई धर्म नहीं होता और दूसरे परमहंस (पहुँचे हुए योगी) जो मनुष्यता से पर पहुँच गये हैं मन और शरीर से अलग हो चुके हैं और प्रकृति की मर्यादा से मुक्त हो गये हैं । समस्त प्रकृति उनकी आत्मा बन गई है । उनके न मन है न शरीर । वे ईसा या बुद्ध के समान ईश्वर की उपासना ईश्वर के रूप में ही कर सकते हैं । ये दोनों छोर वाले व्यक्ति जैसे एक समान दिखाई पड़ते हैं,

१ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार, पृ० ३५ ३६

२ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृ० १०४

३ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृ० ४

४ विवेकानन्द वही पृ० ४०

५ विवेकानन्द वही पृ० २८

६ विवेकानन्द ध्यावहारिक जीवन में पृ० ४६

७ विवेकानन्द प्रमयोग तृतीय संस्करण नागपुर पृ० ४९

वस ही अ यन्त जनानी और अति उच्च गानी म भी समता ह । य जेना ही किसी की उपासना नहीं करते । अत्यन्त अनानी मनुष्य को पर्याप्त विकास न होने के कारण ईश्वरापासना की आवश्यकता नहीं जान पड़ती । अतः वह ईश्वर की पूजा नहीं करता । जो मनुष्य उच्चतम ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं व भी ईश्वर की पूजा नहीं करते क्योंकि वे परमात्मा का साक्षात्कार कर चके हैं और उनका ईश्वर के साथ तदाकार हो चुका है । ईश्वर कभी ईश्वर की पूजा नहीं करता । इन दो सीमान्त अवस्थाओं का मध्यवर्ती कोटि मनुष्य यदि यह कह कि मैं मनुष्य रूप में ईश्वर की पूजा नहीं करता तो विवेकानन्द के मत में उसमें सावधान रहने की आवश्यकता है ।<sup>१</sup> अस्तु विवेकानन्द के अनुसार ईश्वर की मनुष्य रूप में उपासना करना नितान्त आवश्यक है । जिन जातियाँ एक उपास्य मानव ईश्वर है व धर्य है । मनुष्य में ईश्वर का दर्शन करना यही ईश्वर दर्शन का स्वाभाविक माग है ।<sup>२</sup> इसी प्रसंग में प्रतिमा पूजन पर विचार करते हुए स्वामी जी ने कहा है कि यदि ईश्वरापासना के लिए प्रतिमा आवश्यक है तो सजीव मानव प्रतिमा मौजूद है । यदि तम ईश्वरोपासना के लिए मंदिर निर्माण करना चाहते हो तो करो किन्तु साच ला कि उसमें भी उच्चतर उसमें भी महान मानव देह रूपी मंदिर पहले से मौजूद है ।<sup>३</sup> इस प्रकार विवेकानन्द का वेदांत यह शिक्षा देता है कि मनुष्य के सिवा दूसरा ईश्वर नहीं है । मानवात्मा जयवा मनुष्य देह ही एकमात्र उपास्य ईश्वर है ।<sup>४</sup> सूनरूप में उनके व्यावहारिक वेदांत का आदेश है— जगत में मनुष्य की उपासना ।<sup>५</sup> अतः उनका उद्घोष है कि यदि तुम यत्क ईश्वर रूप अपने भाई की उपासना नहीं करते तो वेदांत तुम्हारी उपासना में विश्वास नहीं करता ।<sup>६</sup> अतएव परमात्मा को खोजना है तो मनुष्य की सेवा करा ।<sup>७</sup> स्वामी विवेकानन्द के इसी मानव ईश्वर से

१ विवेकानन्द प्रमयोग पृ० ४९ ५०

२ वही प्रमयोग पृ ५०

३ वही व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ ३६

४ वही पृ० ४८

५ वही पृ० ५५

६ वही

७ वही मेरा जीवन तथा ध्येय, पृ० ३०

प्रभावित हाकर छायावादी कवि ने मानव में ईश्वरत्व का आरोप किया और उसे सूक्ष्म रूप में चित्रित किया ।

### ईश्वर और प्रेम

स्वामी विवेकानन्द के मत में प्रेम प्रेमी और प्रेमपात्र अर्थात् भक्ति, भक्त और भगवान् सीना एक ही हैं ।<sup>१</sup> इसी से उन्होंने कहा है कि प्रेम केवल प्रेम का ही मैं प्रचार करता हूँ ।<sup>२</sup> हम प्रेम से बच्चे बन कर किसी अथवा सुख अथवा आनन्द की कल्पना नहीं कर सकते ।<sup>३</sup> प्रेम ही विकास और स्वायत्त सकोच है । इसलिए प्रेम ही जीवन का मूलमन्त्र है । प्रेम करने वाला ही जीता है और स्वार्थी मरता है ।<sup>४</sup> विवेकानन्द का यह प्रेम सर्वसाथी सब व्यापी और सबल है ।<sup>५</sup> ससार में वही एकमात्र प्रेरक शक्ति है ।<sup>६</sup> चेतन और अचेतन में व्यष्टि और समष्टि में यही भगवत्प्रेम आकषक की तरह प्रकट होता है । इसी प्रेम की प्रेरणा से ईसा ने मानव जाति के लिए अपने प्राणा का त्याग किया, इसी प्रेम की प्रेरणा से मनुष्य अपने देश के लिए प्राण त्यागने का उद्यत रहते हैं ।<sup>७</sup> ससार के समस्त पदार्थों को एक ही वेद की ओर खींचने वाली वस्तु यही प्रेम है ।<sup>८</sup> इसके अभाव में यह ससारक्षण भर भी स्थिर नहीं रह सकता ।<sup>९</sup> यह प्रेम ही परमेश्वर है ।<sup>१०</sup> अतः ईश्वर पर प्रेम करना और उसी ईश्वर की सेवा करना इसे छोड़ और सब मिथ्या है व्यर्थ है महाब्रह्म है ।<sup>११</sup> किन्तु इस प्रेम को पाना बड़ी कठिन बात है । इसका अर्थ ससार का साधारण स्वायम्भू प्रेम नहीं है । विवेकानन्द

- १ प्रमयोग, पृ० १२६
- २ विवेकानन्द, शक्तिदायी विचार, पृ० २०
- ३ वही प्रेम योग पृ० २२
- ४ वही शक्तिदायी विचार पृ० ०६
- ५ वही प्रेम योग पृ० १२०
- ६ वही, पृ० १२१
- ७ वही, पृ० १२१
- ८ वही पृ० १२०
- ९ वही, पृ० १२१
- १० वही, पृ० १२१
- ११ वही, पृ० ९९



के मत म सासारिक प्रेम का प्रेम कहना अधम होगा, क्योंकि ससार क समस्त प्रेम प्रदर्शन म निरा दम्भ है निस्सारता है साखलापन ह।<sup>१</sup> अपन बच्चो और अपनी स्त्री के प्रति जा मनुष्य का प्रेम ह वह भी पाशविक प्रेम ह।<sup>२</sup> किंतु विवेकानन्द न इस तथ्य को स्वीकार किया ह कि इस सामारिक प्रेम के पीछे भी एक ऐसी शक्ति ह जा हम निरन्तर यथाय प्रेम की ओर प्ररित कर रही ह। यदि मनुष्य अपने का सासारिक बंधन से मुक्त करन मे समय हो ता सासारिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम का एक सुंदर सोपा सिद्ध होगा।<sup>३</sup> प्रेम के प्रथम लक्षण के विषय म विवेकानन्द का अभिमत ह कि उसम व्यापार या सौदागरी न हो। जहाँ प्रश्न त्रय विप्रय का ह वहाँ कोई प्रेम नहीं रह जाता।<sup>४</sup> प्रेम प्रचार उनके अनुसार ससार को उनकी आवश्यकता ह जिनका जीवन उत्कट प्रेम तथा नि स्वाथता स पूण ह। वह प्रेम प्रत्येक शक्त को बच्चवत शक्ति प्रदान करेगा। अत विवेकानन्द का आदेश ह— प्रेम की सवशक्तिमत्ता पर विश्वास करो<sup>५</sup> और प्रेम प्रेम ही के लिए करो क्योंकि एकमात्र प्रेम ही जीवन का ठीक बसा ही आधार ह जसा जीवन के लिए श्वास लेना। नि स्वाथ प्रेम नि स्वाथ काय आदि का यही रहस्य ह।<sup>६</sup> इसी मे उन्होंने कहा ह कि ससार को प्रकाश देन के लिए अनन्त प्रेम और अपार दयालुता सम्पन्न सकन बुद्धो की आवश्यकता ह।<sup>७</sup> प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति के विषय म विवेकानन्द का मत ह कि जिस प्रकार की याकुलता स प्रमिका स्त्री अपन मत पति का चिन्तन करती ह उसी प्रकार के प्रेम से यदि हम ईश्वर प्राप्ति के लिए याकुल हो तो हम ईश्वर की प्राप्ति अवश्य होगी।<sup>८</sup>

विवेकानन्द के उक्त आध्यात्मिक प्रेम को छायावादी कवि ने सर्वां शत अपनाने का प्रयास किया है। विवेकानन्द के प्रभाव से छायावाद का लौकिक

१ विवेकानन्द प्रेम योग पृ २२, २३

२ वही पृ १२०

३ वही पृ २२ २३

४ वही प्रेम योग पृ ११५

५ वही शक्तिदायी विचार पृ २८

वही पृ २४

७ वही, पृ २६

८ वही पृ २६

वही प्रेमयोग पृ ११

प्रम भी अलौकिक प्रम की आभा से उद्दीप्त हो उठा है । छायावाद के प्रम-नीतियों पर विवेकानन्द के प्रम मिद्वान्त का प्रचुर प्रभाव टूटा जा सकता है ।

### ईश्वर और दुःख

विवेकानन्द ने कहा है कि जिम प्रकार अग्नि का काचन न वह बार-बार प्रवृत्त हो उठती है, सप के मिर पर आघात होने से भी वह अपना फन उठाता है—इसी प्रकार जब हृदय में बदना की टीम उठता है जब दुःख का तूफान चारा दिशाओं में धहराता है, जब जान पहना है कि पकाश अब और दिखाई न देगा जब आशा और साहस नष्टप्राय हो जाते हैं तभी हम भयानक आध्यात्मिक क्षयावात के बाव अतर्निहित ब्रह्मज्याति प्रकाशित होती है । एश्वर की गाँव में पतत हुए पुष्प शय्या पर शयन करते हुए तथा कभी भी आँसू बहाय बिना कोई महान नहीं हुआ है—किसी का ब्रह्मभाव जाग्रत नहीं है ।<sup>१</sup> अतः उहाँ आँसू बहाते हुए भी निडर रहने का आदेश किया है । क्योंकि उनके मत में ऐसा करने से मनुष्य के सामने अनकता का अर्थ्य अतर्हित हो जायगा और सबत्र अनन्त ईश्वर की अनुभूति का मार्ग उन्मुक्त हो जायगा ।<sup>२</sup> इसी से उहाँने यह आकाशा प्रकट की है कि 'म बार-बार जन्म सहनना मुन पर मुसीबत पड़े जिमसे मैं उस परमेश्वर की पूजा कर सकूँ एकमात्र जिस परमेश्वर में मैं विश्वास करता हूँ और जो विश्व की समस्त आत्माओं की समष्टि है ।'<sup>३</sup> कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावादी कवि न दुःख का प्राय आध्यात्मिक स्तर पर ही अपनाया है—इसमें वह उस मानवात्मा का नित का मधुमय भाजन मानता है ।<sup>४</sup>

### आत्मा

स्वामी विवेकानन्द के मत में आत्मा ही परमात्मा है । अतः आत्म-साधारणता ही जीवन का चरम लक्ष्य है । परमात्मा का भाँति आत्मा अतः

१ विवेकानन्द स्वामीन भारत ! जय तौ ! पृ० ८

२ वही, पृ० ८२

३ विवेकानन्द मेरा जीवन तथा धर्म पृ० ११

४ तुम ही मानव आत्मा का र नित का मधुमय भाजन

तुम के तम का ही-सावर भरना प्रकाश में व मन ।

—पन्, गुरुजन पृ०

५ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन मधुमय पृ० - १

अविनाशा आनन्दमय, सबन सबशक्तिमान, नित्य और ज्योतिमय है। आत्मा क उक्त गुणा का चिन्तन करते रहने में ही मनुष्य प्रकृत कम करने में समर्थ हो सकता है।<sup>१</sup> आत्मा क सम्बन्ध में जन्म अथवा मृत्यु की बात करना बारी विडम्बना मात्र है। आत्मा का न कभी जन्म होता है न मृत्यु में मरना अथवा मरने में डर लगता है यह सब केवल कुसंसारमान है।<sup>२</sup> आत्मा ही मन तथा प्रत्येक वस्तु में प्रतिबिम्बित हो रहा है। आत्मा का प्रकाश ही मन का चतय करता है। प्रत्येक वस्तु आत्मा का ही प्रकाश है। प्रम घणा सदगुण तथा दुःख सभी आत्मा के प्रतिबिम्ब हैं। जब मन रूपी दूषण मलिन रहता है तब प्रतिबिम्ब भी धुंधला जाता है।<sup>३</sup> मनुष्य की आत्मा काय-नारण नियम से परे होने के कारण सम्मिश्रण नहीं है किसी कारण का परिणाम नहीं है अतएव वह नित्य मुक्त है और नियम के भीतर जा कुछ सीमित है उसका शासन कर्ता है।<sup>४</sup> अपनी आत्मा के भीतर से ही हम विश्व की धारणा हाती है और यह बहिर्जगत उसी अतजगत् का प्रकाश मात्र है।<sup>५</sup> उस प्रकार यक्त अथवा अयक्त दोनों दशाओं में यह आत्म शक्ति प्रत्येक में ब्रह्मा से उक्त तण तक में मौजूद है।<sup>६</sup> जैसे किसान खेत की मेड़ तोड़ देता है और एक खेत का पानी दूसरे खेत में बहाने लगता है वैसे ही आत्मा भी आवरण टूटते ही प्रकट हो जाती है।<sup>७</sup> यही आत्म ताम जीवन का लक्ष्य है। आत्म ताम अथवा आत्म प्रीति का अर्थ है सब प्राणियों से प्रीति समस्त पशु पक्षियों से प्रीति सब वस्तुओं में प्रीति क्योंकि ये आत्मा से भिन्न नहीं हैं।<sup>८</sup> विवेकानन्द के अनुसार यह जगत आत्मा का ही खेल है।<sup>९</sup> आत्मा के अतिरिक्त जगत की कोई सत्ता नहीं है। उसी क बल पर मनुष्य सब कुछ करने में समर्थ है। क्योंकि मनुष्य की आत्मा के भीतर अनन्त शक्ति भरी पड़ी है। उसे केवल जानना ही अपेक्षित है।<sup>१०</sup> अत

- १ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृष्ठ १९
- २ वही पृष्ठ ७
- ३ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृष्ठ ६७-६८
- ४ वही पृष्ठ २४
- ५ वही पृष्ठ ३५
- ६ विवेकानन्द स्वाधीन भारत ! जय हो ! पृष्ठ ७०
- ७ वही
- ८ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृष्ठ १८
- ९ वही पृष्ठ ५६
- १० वही पृष्ठ ७७

विवेकानन्द का उपदेश है कि आत्मा के स्तर का जीवन ही सच्चा जीवन है अन्य सब स्तरों का जीवन मृत्युस्वरूप है।<sup>१</sup> आत्मा की ब्रह्मस्वरूपता को जान लेना तद्रूप हो जाना—उसका साक्षात्कार करना, यही धर्म है।<sup>२</sup> ईश्वर का पूजा करना अर्तनिहित आत्मा की ही उपासना है।<sup>३</sup> स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव से छायावादी का कवि आत्मा को ब्रह्मरूप चित्रित करता है तथा उसके साक्षात्कार पर बल देता है। आत्मतत्त्व सुना कर ही वह सामान्य जनो में शक्ति का विकास अथवा संचार करता है।

### जगत्

विवेकानन्द के मत में जगत् का विस्तार ईश्वर से हुआ है। ईश्वर ही जगत् बन जाता है और फिर यह जगत् उसी में समा जाता है। पुनः उसी से निःसृत और पुनः उसी में विलीन हो जाता है। निरन्तर यही क्रम चलता रहता है।<sup>४</sup> इस प्रकार जड़ पदार्थ में जीव आत्मा में कोई वास्तविक अंतर नहीं है। ये सब एक ही ईश्वर की अनुभूति के विभिन्न पहलू माने हैं।<sup>५</sup> दूसरे शब्दों में यह समष्टि-जगत् एक निरपेक्ष अखण्ड सत्ता है जिसमें परिवर्तन हो सकता है और न हुआ है। यह सत्ता एकरस रहता है।<sup>६</sup> तात्पर्य यह कि 'यथायं में जगत् ब्रह्म निगुण पुरुष मात्र है और हम लोग की बुद्धि द्वारा उसका नाम रूप दिया गया है।'<sup>७</sup> किन्तु उसके भीतर का प्रत्येक अणु निरन्तर गतिशील है वह अपरिणामी और साथ ही साथ परिणामी भी है, सगुण है और निगुण भी है।<sup>८</sup> अर्थात् अपरिणामी जगत् पारमार्थिक सत्ता और परिणामी जगत् व्यावहारिक सत्ता है। इसी में महत् गत पंचेन्द्रिया को पंचभूतमय, दुष्टा का नरक, पुण्यात्माओं को स्वर्ग और पूण्यत्व प्राप्त जानियों का ब्रह्ममय प्रतीत होता है।<sup>९</sup>

१ विवेकानन्द विविध प्रसंग पृष्ठ ५५

२ विवेकानन्द शक्तिवादी विचार पृष्ठ ३४

३ वही, पृष्ठ २६

४ विवेकानन्द प्रमयाग पृ० ७८

५ विवेकानन्द विविध प्रसंग, पृ० ६५

६ वही, प्रमयाग पृ० ८८

७ वही व्यावहारिक जीवन में वदान्त पृ० ७४

८ वही, पृ० ७५

९ वही, विविध प्रसंग, पृ० ६५

और वह मुक्ति है परमात्मा । वह वही शान्त है जो हर वस्तु में निहित है । तब जब मनुष्य उस किसी समीप वस्तु में डूबता है तब उसका कण्ठ गान पाता है ।<sup>१</sup> इस प्रकार हमारे दाशनिका के अनुसार मुक्ति ही जीवन का अन्त लक्ष्य है । जाना लक्ष्य नहीं हो सकता क्योंकि जाना एक मिश्रण या रोगिक पदार्थ है । वह शक्ति और स्वतन्त्रता—इन दोनों का योग ही परमभौतिक केवल स्वतन्त्रता ही है । एक मात्र स्वतन्त्रता ही—मुक्ति ही—चेतन जीव का सार है ।<sup>२</sup> हम जिन देवता ईश्वर आदि का अनुसरण करते हैं बाह्य जगत में स्वाधीनता पाने के लिए हम जो प्राणप्रण में चेष्टा करते हैं वह सब गौरवुद्ध नहीं है । हम योगी की मुक्ति प्रकृति ही माना किसी-न किसी रूप में अपने को प्रकाशित करने का यत्न कर रही है ।<sup>३</sup> विवेकानन्द के इस मुक्ति सिद्धान्त के प्रभाव से द्वायावाद के कवि में स्वतन्त्रता की भावना का उद्वेग हुआ जिससे वह समस्त अनिच्छित बंधनों को तोड़ देने के लिए हृत्तमकल्प हुआ । विवेकानन्द के मुक्ति सिद्धान्त का सबसे अधिक प्रभाव निराला जी के काव्य पर पड़ा । राग तो यह है कि उनके दाशनिक काव्य का ताना बाना मुख्यतः विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के तारों द्वारा ही निर्मित है । निराला जी के यश प्रार्थी कवि नैतिक और समाज की मुक्ति के साथ-साथ छन्द के बंधनों को भी काटने का सफल प्रयत्न किया है ।<sup>४</sup>

### श्री अरविन्द दर्शन

जिस प्रकार वेदान्त दर्शन के समस्त सम्प्रदायों का मूलोद्धार उपनिषद् माना रहा है उसी प्रकार प्रातिभान द्वारा अनभूत वैदिक ऋषियों का

१ विविध प्रसंग पृ० ९६

२ विविध प्रसंग पृ० ९७-९८

३ व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० ५५

४ जहाँ मुक्ति रहती है वहाँ बंधन नहीं रहते । न मनुष्यों में, न कविता में । मुक्ति का अर्थ ही है बंधनों से छुटकारा पाना । यदि किसी प्रकार का शृङ्खलाबद्ध नियम कविता में मिलता गया तो वह कविता उस शृङ्खला में जकड़ी हुई होती है, अतएव उस हम मुक्ति के लक्षणों में नहीं ला सकते न उस काव्य को मुक्तकाव्य कह सकते हैं । मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है ।

निराला परिमल भूमिका अष्टमावृत्ति, १९६० पृ० १९

आध्यात्मिक सत्य ही श्री अरविन्द की योग साधना का प्रेरणा स्रोत रहा है। वित्तु ऋषिया और श्री अरविन्द की साधना म मौलिक भेद यह है कि ऋषियों की साधना जहा व्यक्तिगत मुक्ति को लक्ष्य बना कर चलती है वहा श्री अरविन्द की साधना व्यक्तिगत मुक्ति के साथ साथ समाज अथवा मभूह की मुक्ति को भी सम्मिलित करके आगे बढी है।

वदिक ऋषिया की भांति अरविन्द न भी परम सत्ता का अद्वन रूप निरूपित किया है। उनके मत म एक ही बहु के रूप म परिवर्तित हा गया है।<sup>1</sup> यह सम्पूर्ण सृष्टि एक ही परम सत्ता की रूपात्मक और गत्यात्मक अभिव्यक्ति है।<sup>2</sup> अत एक जोर बहु का समन्वय ही वास्तविक अद्वत है। श्री स श्री अरविन्द ने जड और चेतन ज्ञान और अज्ञान कम भक्ति तान ईश्वर मनुष्य और प्रकृति भौतिकता और आध्यात्मिकता आदि म समन्वय स्थापित करने का सतत प्रयत्न किया ह। समन्वय ही श्री अरविन्द दशन की सबसे बडी विशेषता है। अत उनके मत म जड और चेतन म आकाश पाताल का अन्तर होते हुए भी स्वर्णिम परिणय सम्भव है।<sup>3</sup> उनके अनुसार जिस निश्चेतना से हमारी विकास-यात्रा आरम्भ होती है वह केवन आपाउत निश्चेतन है। जड के भीतर भी परम चेतन निहित है।<sup>4</sup> अत जड का वहिष्कार करना परम

1 We see that the Absolute the Self the Divine the Spirit, the Being is One the Transcendental is One The Cosmic is One but we see also that beings are many and each has a self a spirit alike yet different in nature And since the spirit and essence of things is one, we are obliged to admit that all these many must be that One and it follows that One is or has become many

Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 49

2 We speak of creation only in the sense of the Being becoming in form and movement

Ibid P 47

3 We have found already in the cosmic consciousness a meeting place where matter becomes real to spirit, spirit becomes real to matter

Sri Aurobindo, The Life Divine, Vol I P 32

4 Matter also is Brahman and it is nothing other than or different from Brahman

Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 292

आत्मा का ही बहिष्कार करना है। अगणित विकारों के उपरांत भी जड़ सत्य है—आत्मा का एक रूप है।<sup>1</sup> अतः श्री अरविन्द के नमः विद्यतन का प्रयोजन है जड़ म दिव्य आत्मा को विकसित करना। इसी सिद्धांत के आधारभूत उनका विश्वास है कि दिव्य जीवन प्राप्त करना केवल सम्भव ही नहीं प्रत्युत वही विश्व प्रकृति के युग युगान्तर व्यापी नमः विद्यतन का निगूढ उद्देश्य है—विश्व सृष्टि का गुप्त रहस्य है।<sup>2</sup> अरविन्द के इस दिव्य जीवन का अभिप्राय है अतिमानववाद जिसका लक्ष्य है पृथ्वी को देवभूमि में परिणत कर देना।<sup>3</sup> अरविन्द के नमः चेतनामूलक अतिमानववाद से छायावादी कवि पन्त विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं। उन्होंने श्री अरविन्द दर्शन के कतिपय तत्वों की काव्यमयी अभिव्यक्ति भी की है। अतः यहाँ पर श्री अरविन्द दर्शन के विशिष्ट तत्त्वों का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना ममीचीन होगा।

### परम सत्ता (ब्रह्म)

उपनिषद्-सत्य ही श्री अरविन्द की परमसत्ता अथवा ब्रह्म विषयक स्थापना के आधार हैं। उपनिषद्<sup>4</sup> और गीता<sup>5</sup> के मंत्रों को उद्धृत करते हुए उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ दिव्य जीवन (दि लाइफ़ डिवाइन) में लिखा है—

परम सत्ता शाश्वत निरपेक्ष और असीम है। निरपेक्ष और असीम होने के कारण वह बुद्धिगम्य नहीं है। तब द्वारा उसका वर्णन तथा बोध नहीं हो सकता। नेति नेति अथवा इति इति कह कर भी उसका स्वरूप निर्धारण

- 1 Substance or matter then is only a form of Spirit  
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 284
- 2 This earthly life need not be necessarily and for ever a wheel of half joyous half anguished effort attainment may also be intended and the glory and joy of God made manifest upon earth  
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 195
- 3 The body of man also may some day come by its transfiguration the Earth Mother too may reveal in us her godhead  
Sri Aurobindo The Life Divine Vol I P 307
- 4 Taittiriya Upanishad II I  
Swetaswata IV, 10 VI I 7 8 11
- 5 Gita XII, 16, XIII 19

नहीं किया जा सकता।<sup>1</sup> किन्तु परम सत्ता बुद्धि अथवा तर्क द्वारा अप्राप्त होता है भी हम प्रकार अप्राप्त नहीं है। प्रतिभावाण (इष्टयुगल) द्वारा उसका अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। प्रतिभावान् क समीप परम सत्ता ही जगत क रूप में अभिव्यक्त हो रही है। अतः जगत भी सच्चिदानन्दरूप है।<sup>2</sup> उस प्रकार ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है। बर्दिक रूपि की मूर्ति अरविन्द के मत में भी ब्रह्म विश्वरूप होता है। भी विश्वानीत आर निरपक्ष है अपन में पूर्ण स्वतंत्र है देश-काल तथा सीमा-असीमा से परे है।<sup>3</sup> इसी ब्रह्मभाव को प्राप्त करना मनुष्य जीवन का ध्येय है। ध्यायावाणी कवि मुनिमानन्दन पन्त की स्वर्ण निरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा आदि की रचनाओं पर श्री अरविन्द के उक्त ब्रह्म विचार का अत्यन्त व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है।

### जड़ और चेतन

श्री अरविन्द के मत में जड़ और चेतन में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। ज्ञान एक ही परम सत्ता का दो छोर है। अतः दोनों एक ही हैं। जिसमें हम जड़ के रूप में देखते हैं वह चेतन और माय का अनिरिक्त और कुछ नहीं है। जड़

- 1 There is then a Supreme Reality eternal, absolute and infinite. Because it is absolute and infinite, it is in its essence indeterminable, it is undefinable and inconceivable by finite and defining mind, it is describable neither by our negations, *Neti Neti* nor by our affirmations. *Iti Iti*.  
Sri Aurobindo The Life Divine Vol II P 34
- 2 Intuition brings to man those brilliant messages from the Unknown which are the beginning of his higher knowledge.  
Sri Aurobindo The Life Divine, Vol I P 81
- 3 Matter is Sachchidanand represented to His own mental experience.  
Ibid, P 289
- 4 The Transcendent, the supracosmic is absolute and free in Itself beyond Time and Space and beyond the conceptual opposites of finite and infinite.  
Sri Aurobindo The Life Divine, Vol I P 48



चेतन का ही रूपाकार है।<sup>१</sup> इस प्रकार श्री अरविन्द-ज्ञान मज्ज और चेतन, मन और अतिमानस सत चित्त-आनन्द रूप ब्रह्म के ही रूप है ब्रह्म उनमकेवल निहित ही नहीं है बल्कि समष्टि रूप म व ब्रह्म ही हैं हा अपने पृथक् रूप म उनम से बाँट ब्रह्म अथवा पूण सत्ता नहीं है।<sup>२</sup> पत जी को श्री अरविन्द दर्शन का उक्त जड चेतन सम्प्रथी सिद्धांत पूणत माय है।

### क्रम-विकास

सत्ता के अर्थ अध्यात्मवाङ्मय के विपरीत श्री अरविन्द ने भूत (मटर) की सत्ता को खुटाकर स्वीकार किया है। अतः उहाने सत्ता के दो सीमात माने हैं। एक सीमात पर आत्मा अथवा ब्रह्म है और दूसरे पर जड पदार्थ (मटर)। विकास की क्रिया जड पदार्थ स प्रारम्भ होती है कारण वह आत्मा का निम्नतर स्तर है।<sup>३</sup> आत्मा जड म ही निहित है और उसे जड म ही विकसित होना है।<sup>४</sup> श्री अरविन्द के मत म जड पदार्थ म जो विकास होता है वह प्रारम्भिक है जज्ञान म जो विकास हाना है वह मध्य है किन्तु विकास का अन्त होता है आत्मा की मुक्ति म जो चेतना का वास्तविक रूप है।<sup>५</sup>

1 Substance is the form of itself and of that substance if Matter is one end Spirit is the other The two are one Spirit is the soul and reality of that which we sense as Matter Matter is a form and body of that which we realise as Spirit.

Ibid P 291

2 Ibid P 292 293

3 Here the evolution takes place in the material universe, the foundation the original substance the first established all conditioning status of things is Matter Sri Aurobindo, The Life Divine Vol II (2) P 625

4 Supermind or gnosis must have entered into Matter and --it must evolve in Matter

Ibid p 627

5 An evolution in the Inconscience is the beginning an evolution in the Ignorance is the middle but the end is the liberation of the spirit into its true consciousness and an evolution in the knowledge

—Ibid 624

श्री अरविन्द का कहना है कि इस विकास क्रम में पूर्व विकसित स्थितियों का बिलकुल लाभ नहीं होता। प्रत्येक नवीन विकसित रूप अपने पूर्व विकसित रूपों को आत्मसात् करता जाता है। पशु में प्राणशक्ति और जड़ पदार्थ विद्यमान रहते हैं, मनुष्य में पशु के साथ ही दाना भी विद्यमान रहते हैं। विकास की क्रिया मनुष्य तक पहुँच चुकी है किन्तु मनुष्य का विकास सत्ता का अन्तिम शिखर नहीं है। वह स्वयं सन्नमणशील प्राणी है जो चरम विकास के मोड़ पर खड़ा है।<sup>1</sup>

### आरोहण-अवरोहण

श्री अरविन्द ने भूत और आत्मा के बीच आठ मापान या धरानन माने हैं। सबसे नीचे का धरानल भूत द्रव्य मटर या जड़ का उदात्तल है उसके ऊपर प्राण फिर उपच्यवन और फिर मन है मन के ऊपर प्रमण अतिमन आनन्द चेतन शक्ति तथा सबसे ऊपर आत्मा अथवा दिव्य चेतना अथवा अस्तित्व का स्थान है।<sup>2</sup> उक्त क्रम आरोहण की दिशा में है। अवरोहण का दिशा में सबसे प्रथम दिव्य अस्तित्व (ब्रह्म या आत्मा) आयागा, जो प्रमण निम्न स्तर पर अवतरित हात-हात भूत (प्रकृति) में साता हुआ मिलेगा। इस प्रकार श्री अरविन्द का शब्दा में जिन प्रकार भूत अवरोहण की अन्तिम साड़ा है उसी प्रकार वह आरोहण की प्रथम साणी भी है।<sup>3</sup>

श्री अरविन्द का कथन है कि प्रकृति का दिव्य जीवन की आर सन्नमण अवश्यम्भावी है।<sup>4</sup> कारण, ईश्वर के पूणत प्रकृतिरूप बन जान पर प्रकृति उत्तरोत्तर ईश्वर बनने के हनु प्रयत्नशील है।<sup>5</sup>

1 Ibid, p 629-30

2 Inverted order of a ascent and descent—  
 Existence Matter  
 Consciousness Force Life  
 Bliss Psyche  
 Supermind Mind

Sri Aurobindo The Life Divine Second Edition Vol I P 319

3 And as Matter is the last word of the descent so it is also the first word of the ascent Ibid P 311

4 Ibid P 348

5 God having entirely become Nature Nature seeks to become progressively God

Sri Aurobindo The Life Divine II Edition Vol I, P 55

श्री अरविन्द के मत में भूत में जन्तुभूत चेतना का सर्वद्वन्द्व प्रारंभ तथा मन तक हो चुका है। अब मन का अतिमन की ओर सङ्क्रमण करना है। कारण मन अतिमन का ही निचल स्तर की शक्ति है चित शक्ति का ही एक रूप है।<sup>1</sup> अतः श्री अरविन्द का कहना है कि जिस प्रकार प्राण का विकास मन की दिशा में हुआ है उसी प्रकार मन का भी विकास अतिमन और आत्मा की दिशा में होगा।<sup>2</sup> कारण अतिमन ही आत्मा का वास्तविक सज्जनात्मक शक्ति है।<sup>3</sup> इस प्रकार श्री अरविन्द के मत में दिव्य जीवन की दिशा में सञ्चरण अथवा यात्रा करना मनुष्य जीवन का एकमात्र लक्ष्य है मानव जीवन की एकमात्र साधकता है जिसका अभाव में वह क्षणस्थायी कीटा का मध्य रेंगन वाता एक लघु कीटा ही बना रहगा।<sup>4</sup> सक्षय में श्री अरविन्द ज्ञान में मनुष्य के आरोहण का अर्थ है मानव चेतन का भागवत चेतन में सर्वद्वन्द्व और यह आरोहण जब अपनी चरम अवस्था को प्राप्त होता है तब पृथक्भूत आत्मा का भागवत चेतन का अन्दर लय हो जाता है। तब मनुष्य का अन्तरात्मा अपने व्यष्टिभाव का उस एक अनन्त और विश्वयापक सत्ता में मिला देता या परात्पर सत्ता की परा स्थिति में खो देता है वह आत्मा का साथ ब्रह्म के साथ भगवान् के साथ एक हो जाता है अथवा जसा कि प्रायः और भी अधिक निश्चित रूप से कहा जाता है—वह स्वयं ही एकमेवाद्वितीय आत्मा ब्रह्म भगवान् बन जाता है।<sup>5</sup>

1 Mind is an inferior power of the original conscious knowledge or Supermind Consciousness or Chit represents it self as Mind

Sri Aurobindo The Life Divine Second Edition  
Vol 1 P 284

As Life evolves upward towards Mind, so Mind evolves upward towards supermind and Spirit  
—Ibid P 241

3 Supermind or the Truth consciousness is the real creative agency of the universal Existence Ibid P 210

4 See Sri Aurobindo The Life Divine Second Edition  
Vol I P 52

5 श्री अरविन्द गीता प्रबन्ध प्रथम भाग द्वि० सं० १९४८, पृ २३४

## दिव्य जीवन

श्री अरविन्द का मत म यदि मानव प्राणी अपनी प्रकृति का इतना उन्नत कर ले कि उसे भागवत सत्ता के साथ एकत्व अनुभव हो और वह भगवान के चतुः, प्रकाश, शक्ति और प्रेम का एक सान माग-ता बन जाय उसका अपना सकल्प और अस्तित्व भगवान के ही सकल्प और भाव म घुल मिल कर अपना पृथक्त्व लो दे—क्योकि यह भी एक मानी हुई आध्यात्मिक अवस्था है—ता मानव जीव के अर उससे सम्पूर्ण अस्तित्व को अधिकार करक भगवान का ही सकल्प भगवान की ही मत्ता और शक्ति उही के प्रेम प्रकाश और चतुः प्रतिबिम्बित हो सकने है और यह जरा भी असम्भव नहीं है । और इस प्रकार की अवस्था मनुष्य का केवल आरोहण कर दिव्य जन्म और दिव्य स्वभाव को प्राप्त होना ही नहीं है बल्कि उसम दिव्य पुरुष का उतर आना भी है ।<sup>१</sup> इस प्रकार श्री अरविन्द दर्शन म मनुष्य जीवन का उद्देश्य अपने वास्तविक मावभीम सच्चिदानन्द स्वरूप म विकसित होना है ।<sup>२</sup>

श्री अरविन्द का ध्यन है कि प्रकृति मे चेतना का विकास मत तक हो चुका है ।<sup>३</sup> किन्तु वास्तविक सत्ता मत मे भी परे है और वह है आत्मा ।<sup>४</sup> इस प्रकार बुद्धि प्रधान मनुष्य प्रकृति का अन्तिम प्रयत्न अथवा अयत्नम पहुच नहीं है ।<sup>५</sup> अत वह मनुष्य को आध्यात्मिक जीवनाश की ओर बढ़ने क लिए प्रेरित कर रही है । वह इस प्रयत्न म है कि ऊपर मे लिय सत्ता का अवतरण हो, जिसक प्रकाश म आध्यात्मिक मन्तो वास्तविक ईश्वर भक्तो योगियो सूक्तियो तथा रहस्यवातिया आदि का जगतीतल पर उद्य है ।<sup>६</sup>

१ श्री अरविन्द, गीता प्रबन्ध, प्रथम भाग द्वि० सं० पृ० २३२, ३७

२ our aim must be to grow into our true being our being of Spirit, the being of the supreme and universal Existence, Consciousness Delight, Sachchidananda  
Sri Aurobindo The Life Divine Vol II 1940, P 595

३ Ibid P 630

४ For what is involved and emergent is not a mind but a Spirit  
Supermind is its native dynamism  
Ibid, P 1106

५ Mental man has not been Nature's last effort or highest reach,—Sri Aurobindo The Life Divine Vol II P 621

६ Sri Aurobindo, The Life Divine, Vol II, P 652

उक्त आध्यात्मिक जावन ही उपनिषि म मनुष्य वा जहकार बाधक १ । अत मनुष्य को उस पर विजय पाना ह । आधुनिक मन अभी जिस अवस्था म है उसम वट अहकार के फटो को ही काटन का प्रयास कर रहा है कम सदेह नही परन्तु उसकी दृष्टि अभी भी लौकिक है और उसका भाव आध्यात्मिक नही प्रत्युत बौद्धिक और नतिक है । दश प्रम विषयबधुत्व समाज-सवा समष्टिसवा मानव मवा मानव जाति का आदर्श या धम य मव मराहनीय साधन ह यष्टिगत पारवारित सामाजिक और राष्ट्रीय अहकार रूपी हमारी जो पत्नी जवस्था ह उसम निरत कर एट दमरी ही जवस्था म हमारे चल जान व जिम जवस्था म पत्थ कर यष्टि जहाँ तक की बौद्धिक नतिक और भावावेगमय भूमिकाओ पर सम्भव ह यह अनुभव करता ह कि मरा अस्तित्व दूसरे सब प्राणिमा क अस्तित्व के साथ है ।<sup>१</sup> इस प्रकार श्री अरविद के मन म सबके साथ एक्य भाव रखते हुए अहकार का शमन कर आत्म साक्षात्कार एव जात्मान का अनभव करना हमारे दस जीवन का एक मात्र उद्देश्य ह यही हमारे ब्यक्तिक एव इहलौकिक जीवन का गुह्य अथ ह ।<sup>२</sup>

श्री अरवि का कथन ह कि सिद्धांतत समस्त आध्यात्मिक जीवन भागवत जीवन म विकास ह<sup>३</sup> और यदि हमे सत्तार और प्रकृति म न्िय जीवन का अनुभव करना ह तो हमे अपनी आत्मा का साक्षात्कार करना हागा<sup>४</sup> क्याकि दिव्य कम आत्मा से उदभूत होते है और केवल आत्मा के

१ श्री अरवि गीता प्रबंध प्रथम भाग त्रितीय संस्करण पृ० १९६-९७

२ To exceed ego and be our true self to be aware of our real being to possess it to possess a real delight of being is therefore the ultimate meaning of our life here it is the concealed sense of our individual and terrestrial existence

Sri Aurobindo The Life Divine Vol II P 596

३ All Spiritual life is in its principle a growth into divine living ( Sri Aurobindo The Life Divine Vol II P 1106 )

४ There must be the true self realised within if there is to be the true life realised in world and nature Ibid P 1111

प्रकाश मे ही पहचाने जा सकते है ।<sup>१</sup> दिव्यकर्मी का लक्षण बतात है श्री अरविन्द ने कहा कि दिव्यकर्मी का लक्षण वह है जो स्वयं भागवत चरना का ही केन्द्रिक लक्षण है, अर्थात् पूण आनन्द और शान्ति । व निर्विषय होते है इनकी उत्पत्ति या स्थिति जगत के किसी पदार्थ पर निर्भर नहीं करती ये सत्त्व ही रहते हैं अन्तरात्मा के ये कर्मी है ये ही दिव्य सत्ता का स्वरूप हैं । सामान्य मनुष्य अपने सुख के लिए बाह्य पदार्थों पर निर्भर करता है इसी से उसके वासना-वामना हाती है इसी से उसमें नाश-शाम सुख-दुःख हृष-शां होने है, इसीलिए वह सब वस्तुओं का शुभाशुभ क-काट से नौलना है । परन्तु दिव्य आत्मा पर इनमें से किसी का कोई असर नहीं पड़ सकता, वह किसी प्रकार की निर्भरता के बिना सदा तृप्त रहता है (नित्यतृप्ता निराश्रय) क्योंकि उसका आनन्द, उसका दिव्य तृप्ति उसका सुख, उसकी सुप्रसन्न ज्योति सदा उसके अन्दर बसता है उसके रोम-रोम में व्याप्त है आत्मरति अन्त सुगोन्तरारामस्तथान्तरज्योतिरेव च । बाह्य पदार्थों में वह जा सुख लेता है वह बाह्य पदार्थों के कारण नहीं होता उस में के लिए नहीं होता जिसकी वह उनमें दूरे भी न पावे बल्कि उन पदार्थों में जो आनन्द है उनके लिए हाता है व जो भगवान के अभिव्यक्त रूप हैं उनमें लिए होता है और उसके लिए होता है जो उनमें सत्ता है और सदा रहगा और जिसका वह दूरे कर पा ही सगा । इन पदार्थों के बाह्य रूपों में उसकी आसक्ति नहीं होनी बल्कि जो आनन्द उस अपने अन्दर मिलता है वही आनन्द उस सबमें मिलता है क्योंकि उसका जो आत्मा है वही उन पदार्थों का आत्मा है और सब चराचर प्राणियों के आत्मा के साथ वह एक हो गया है—उनके विभिन्न नामरूपा के हाते हुए भी उनके अन्दर जो एक समग्र है उसने साथ वह एक हो गया है (ब्रह्मयोगयुक्तात्मा) (सर्वभूतात्म भूतात्मा) । प्रिय पदार्थों के रूप में उसे हृष नहीं हाता, अप्रिय से उसे शोक नहीं होता, पदार्थों के धाव, मित्रा के धाव, या शत्रुओं के धाव उसकी चित्त की स्थिरता में नही कर सकते न उसके हृष्यको मान्ति कर सगा हैं, यह आत्मा अपने स्वरूप में, उपनिषद कहते हैं कि 'अव्ययम्' होता है उस पर कोई धाव, कोई क्षत नही होता । सत् पदार्थों में वह वही अक्षय आनन्द भोग करता है (सुखमक्षयमश्नुते)।<sup>२</sup>

१ श्री अरविन्द, गीता प्रबन्ध प्रथम भाग त्रितीय संस्करण पृ० २५६

२ श्री अरविन्द गीता प्रबन्ध द्वितीय संस्करण, पृ० २६६ ६७

श्री अरविन्द के अनुसार 'प्रत्येक कोटि या कक्षा में जो सर्वोत्तम है प्रत्येक समूह में जो सबसे मग्न है जिन जिन गुणों और कर्मों के द्वारा उस समूह की विगिष्ट आत्मशक्ति प्रकट हुआ करती है उन उन गुणों और कर्मों का प्रकाश जिसके द्वारा सर्वोत्तम रूप से प्रकट होता है वह ईश्वर की विभूति है। जीव की शक्तियाँ का यह उत्कृष्ट भागवत प्राकट्य के क्रम में एक अत्यन्त आवश्यक काय है। कोई भी महान पुरुष जो हमारी औसत रक्षा के ऊपर उठ जाता है वह अपने उस क्रम से साधारण मानव जाति को ऊपर उठाता है वह हमारी भागवत सम्भावनाओं का एक मजबूत आधार बनाता है परमेश्वर की एक प्रतिधुनि होता है भागवत प्रकाश की एक प्रभा होता है भागवत शक्ति का एक उल्लास होता है।<sup>१</sup>

श्री अरविन्द के उक्त शिष्य अथवा भागवत जीवन सम्बन्धी तत्वा को छायावाचनी कवि पन्त ने अपनी भावना और साधना का अभिन्न अंग बना लिया है जहाँ उनकी छायावाचोत्तर काल की अधिकांश कला कृतियाँ श्री अरविन्द के शिष्य जीवन से विशेष रूप से अनुप्राणित हैं।

पतंजी का स्वयं ज्ञापन है श्री अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त मग्न तथा अतननीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन दशासंमुख पूण सन्ताप प्राप्त हुआ। उनमें अधिक व्यापक ऊर्ध्व तथा अतन स्पर्शी व्यक्तित्व जिनके जीवन काल में अध्यात्म का सूक्ष्म बुद्धि अज्ञात सत्य नवीन एश्वर्य तथा महिमा में मग्न हो उठा है मुझ दूसरा कहीं देखने का नहीं मिला। विश्व कल्याण के लिए मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वनानिका की अणु शक्ति की देन भी अत्यन्त नुच्छ है।<sup>२</sup> और अपनी कला-कृतियाँ पर श्री अरविन्द दशन के प्रभाव के सम्बन्ध में यह लिखा है कि बीणा पल्लव काल में मुझ पर कबीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है युगान्त और वाच की रचनाओं में मन्त्रमा जी के व्यक्तित्व तथा माक्स के दशन का चित्रित इन सबमें जो एक परिपूर्ण एवं सन्तानित अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता था उसकी पूर्ति मुझ श्री अरविन्द के जीवन काल में मिली और इस अन्तर्दृष्टि को मैं इस विश्व-सन्नान्त-काल के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा अमूल्य समझता हूँ। मैं

१ श्री अरविन्द 'गीताप्रबन्ध' तृतीय संस्करण पृष्ठ २३२

२ पन्त उत्तरा, प्रथम संस्करण, प्रस्तावना पृ० १९२०

अपन समकालीन ललका म तथा विशिष्ट व्यक्तिका पर समय-ममय पर स्तुति गान निखन म सुख का अनुभव किया ह । श्री अरविन् क प्रति मरी कुट विनम्र रचनाएँ भेंट रूप म स्वर्णरिरण स्वर्णधनि तथा युगपथ म पाठका का मिलेंगी ।<sup>१</sup>

पन उा क अनिरिक्त छायावाा क अय प्रमुख कवि श्री अरविन् दशन स स्पष्टन प्रभावित नहा जान पत्त ।

### शव दशन

शव दशन भा अद्वतवाद का ही एर रूप ह । छायावाा क प्रवनक कवि प्रसाा नी न अपन अनक गीता तथा कामायना क रूप म प्राचीन पौराणिक कथानक म शव दशन की आत्मा प्रतिष्ठित कर युग क अनुरूप अद्भुत काव्य का सृष्टि की ह । अत छायावाद की आधुनिक पद्यभूमि क प्रसंग म शव दशन का मक्षप म यर्ा पर परिचय प्राप्त कर नना नितान्त आवश्यक ह ।

शव मन किसी समय जगत्-यावी था । भारतवर्ष क निण ना कुछ कहना ही नहा है । महाभारत-काल म या पूव म हा शिवभागवत श् का प्रयाग भा हाता था कयाकि अथर्वशीप उपनिषत् म भगवत शब्द भगवान शकर क लिए आर पातञ्जल महाभाष्य म उपासय के लिए शिवभागवत शब्द का प्रयोग हुआ ह ।<sup>१</sup> शिवपूजा किता समय जगत्-ध्याविनी अवस्थ था और हिंदू भारत म ना शिवपूजा और लिंगपूजा अनादि काल स परम्परागत र्ण ह ।<sup>२</sup>

### शव मत का आरम्भ और सम्प्रदाय विभाग

हिंदू-साहित्य म वत्स म द्वादि नामा म शिव का उपासना र्ण पत्नी है । उपागा में पशुपति महेश्वर परमेश्वर शिवशकर जाति नाम म वत्स उपासना विशा रूप म र्ण पत्नी है । आगमा या तत्रा म उमी का अर्थिक विकास दय पत्नी है । सभी तत्र उमा महेश्वर-मथा है । इनम शवतत्र शव मत का प्रतिपादन करत ह । उन शव मत क प्रतिपात्क स्वयं शिव भगवान ना न तमा माना जाना <sup>३</sup> ।

१ पन उनरा प्रथम संस्करण प्रस्तावना पृ० ११-१०

२ विण साधिति ५।२।७६ क अन्तगत भाग

३ रामायण गाए हिन्दुत्व प० ८०

४ र्ण प १००



इतिहास ग्रन्थों के द्वारा पुराणों में शिवमत का व्यापक रूप में वर्णन मिलता है। वामनपुराण के अनुसार शिव पाशुपत कालमुख और कपाली के चार जानिया शिवापासक के त्रिण ब्रह्मा न बनाई थी। किन्तु पुराणों में इन सम्प्रदायों का सूत्ररूप से ही कही रही वर्णन है इनके विस्तार की पूर्ति आगमा में ही है। आजकल जितने सम्प्रदाय हैं प्रायः सभी जागम ग्रन्थों में जन्मवित्त ।

वामन पुराण में जिन चार सम्प्रदायों की चर्चा है वे आजकल उदात्त रूप में नहीं पाए जाते। शिव पाशुपत कालास्य और कपाली इन चारों के वर्द्धन सायण ने सबदशन मंत्रों में माहेश्वर सम्प्रदाय के चार सिद्धान्त बतलाये हैं (१) शिव दशन (२) प्रत्यभिज्ञादशन (३) रमेश्वर दशन और (४) नकुलीय पाशुपत दशन ।<sup>१</sup> इन चारों सिद्धान्तों में प्रसाद जी प्रत्यभिज्ञा दशन से विशेष रूप से प्रभावित थे अतः उसकी बाड़ विस्तार के साथ जानकारी प्राप्त कर लेना उचित होगा।

### नामकरण

प्रत्यभिज्ञा दशन का काश्मीरीय शिव दशन भी कहते हैं। इसकी व्यापकता काश्मीर प्रांत में थी। अतएव उसी नाम से यह प्रसिद्ध भी है। इस त्रिकदशन तथा माहेश्वर दशन भी प्राचीनता से कहा है। यह शवागम है। यह भी एक अन्तर्गत है जो ईश्वराद्वयवाद के नाम से प्रसिद्ध है। आगमा काय अभिनवगुप्त इसके सबदष्ट प्रतिपादक हैं।

### साहित्य

सब शिवदशन का साहित्य विस्तीर्ण है। इसके साठ-सत्तर ग्रन्थ जम्मू काश्मीर संस्कृत सीरीज में प्रकाशित हुए हैं जिनमें शिवसूत्र तथा उस पर वृत्ति भास्कर का वार्तिक क्षमराज की विमर्शिनी प्रत्यभिज्ञा हृदय तन्त्रालोक तत्रसार प्रत्यभिज्ञाकारिका ईश्वर प्रत्यभिज्ञा आदि बहुत ही प्रसिद्ध हैं।

वसुगुप्त कल्लट सामानन्द उत्पन्नाचार्य, अभिनवगुप्त भास्कर, क्षमराज जयरथ आदि विद्वान इस मत के प्रचारक हुए हैं।

### अद्वैत-भूमि

शान्तर वृत्तान्त की माया के रहस्य का शांकरवदात्त भूमि में साधक नहीं समझ सता। माया वहाँ से आई किस प्रकार चतुर्थ की अज्ञान न धर

लिया क्यों घरा इत्यादि प्रश्न जिनासु के मन में उन्नि होते हैं। माया अनादि है। अनादि काल से ब्रह्म उससे आच्छन्न है जीव और ईश्वर भी अनादि है। यह सब समाधान हान पर भी मन में सतोप नहा हाता। वदान्त का ब्रह्म चतय और आनन्द स्वरूप है। साख्य पुरण चतय-स्वरूप है परन्तु इस चतय या आनन्द में क्या लाभ ? इनमें यदि कत त्व ही न हो तो भाषण ही क्या है ? यदि ब्रह्म मवशक्तिमान है परन्तु उस शक्ति का कुछ भी उपयोग न किया गया या ब्रह्म स्वयं न कर सका तो उस शक्ति से क्या प्रयाजन ? परन्तु कत त्व तो जड में मानते हैं इसलिए साधक की जिनासा की जगत भूमि में निवृत्ति न हो सकी। अतएव वह साख्य के पुरुष तथा वदान्त की माया या ब्रह्म का विनाय रूप से जानने के लिए अग्रसर होना है। दूसरी भूमि पर पहुँचते ही इन तत्त्वों को साधक बहुत विचित्र रूप में पाता है। वहाँ ता सभी वस्तु चिन्मय देख पड़ती है। उन चिन्मय जगत में किसी से कोई भिन्न नहीं है। उस भूमि में एक मात्र तत्त्व है—परमशिव। वह चित्त है उससे ही सभी चिन्मय पदार्थ आविर्भूत होने हैं और फिर उसी मतीन हो जाते हैं। इस भूमि का शवदशन की भूमि या प्रत्यभिज्ञाभूमि कहते हैं।<sup>१</sup>

### ब्रह्मद्वैत तथा इश्वराद्वयवाद में भेद

प्रत्यभिज्ञा दशन में भी अज्ञान है माया है किन्तु वह स्वतंत्र नहा है। वह परमतत्त्व के अधीन है। उनकी लीला से इस अज्ञान का उदय और लय दोना होते हैं। अज्ञान के उदय होने पर भी परमतत्त्व के स्वरूप में कोई भी परिवर्तन नहा हाता। माया का सत्त तथा उससे सृष्टि सभी उसी परमशिव की लीला है। परमशिव ता आप्तकाम है आत्माराम है उनमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं। जगत तो प्रयाजन रहित उनका प्रीडामात्र है।

शाकरवेदान्त में माया या अज्ञान किसी के अधीन नहीं है। श्ती में कत त्व है। ब्रह्म शुद्ध साक्षी अधिष्ठानरूप चतय स्वरूप अज्ञता है किन्तु शवदशन में माया' या अज्ञान शिव के अधीन है। परम शिव स्वतंत्र चिन्मय ज्ञानस्वरूप तथा कत त्व स्वरूप है। शवदशन में विमश ही शिव का स्वभाव है। ज्ञान और क्रिया दोनों उसके लिए एक समान हैं। उसनी क्रिया ही ज्ञान है क्योंकि वह ज्ञाता का धर्म है तथा उसका कत स्वभाव हान के कारण उसका ज्ञान ही क्रिया है। इस ज्ञान और क्रिया की उन्मुक्तता का

१ डा० उमश मिश्र भारतीय दान पृ० ३७९ ८०

नाम 'इच्छा' है। इसी कारण आत्मा इच्छामय है अथवा इच्छा ज्ञान तथा क्रिया इन तीनों शक्तियाँ म युक्त स्वातन्त्र्यमय है।<sup>१</sup>

शब्दज्ञान की आत्मा स्वभाव से ही सृष्टि स्थिति सहार अनुग्रह एवं विलयन करने वाली है परन्तु शास्त्रमत के ब्रह्म म य बात नहीं है। यही एक बहुत बड़ा भेद ब्रह्मद्वैतवादा और ईश्वरानुग्रहवाद म है।<sup>२</sup> यही कारण है कि ब्रह्मवादा म आत्मा का स्वस्फुरण उक्त प्रकार का न हान क कारण वह मृत्यु होते हुए भी असत के समान है। महाथमजरी टीका म महेश्वरानन्द ने कहा है—

यद्यपि ब्रह्मद्वैतवादा अद्वैत है किन्तु वस्तुतः वह द्वैत ही समझा जाना चाहिए। यही बात सविद्वानाम म भी लिखी है।<sup>३</sup>

### शिव

श्वताश्वतर म शिव का जा दार्शनिक स्वरूप है वही अपरकालान समस्त शब्दज्ञान का बीज है।<sup>४</sup> आगम ग्रन्था म शिव का सबश्रेष्ठ सत्य माना गया है। वह अनादि है अकारण है और स्वतः सम्पूर्ण है। वह सव्य है आर सवकर्ता है। शिव ही चित रूप है और अपनी इच्छा से ही वह अपन भीतर आप्त विश्व का प्रकाशित करता है।<sup>५</sup> यही ससार का कारण है उसके समान अन्य कौन बलवान हो सकता है यही समस्त मत्रा का जालय है और सबसिद्धिदायक है।<sup>६</sup> शिव-तत्त्व के अरिरेक्त वस्तुतः आर कुट्ट भी ग्राह्य या ग्राहक रूप म नहीं है। यही परमशिव भट्टारक नाना वचिग्रोके रूप म स्वयं स्फुरण होता है।<sup>७</sup> यह इच्छा ज्ञान तथा क्रियात्मक है एवं पूणानन्द स्वभाव का है।

१ मन्महापाठ्याय डा० गणेशाय कविराज कल्याण (शिवाक) प० ८२

२ प्रत्यभिज्ञा हृदय प० २२२

३ उमश मिश्र भारताय दशन प २८० ३८१

४ ७ मदुवशी गव मत प्रथम सस्करण १९५५ ड० पृ० १६५

(क) एका ि रक्षा नाकानीतशत इशनीभि ।—श्वता० २।२

(ख) माया तु प्रकृति विद्यामायिन तु मन्श्वरम ।—श्वता ४।१०

(ग) विश्वस्यैक परिवर्त्तितार नात्वा दव मध्यत सत्रपाश ।श्व० ४।१६

५ नानावाक भाग ६ प० ८-११ ।

नयनत्र भाग ८ प० ५८-५९ ।

७ प्रथमिज्ञाहृत्य प ८ गिर्यष्टि १-२ ।

## शक्ति

शिव मिदालन म शक्ति का लगभग उमा प्रकाश शिव की समवतिनी माना जाना या जिम प्रकार माध्यम प्रवृत्ति का। परन्तु काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा दशन म उसका परमशिव अथवा पुरुष की अभिव्यक्ति मान माना गया है। उसका निवास भी परमशिव म और केवल उही म है और उसका ह्म परम शिव की सजन शक्ति कह सकने है। इसी कारण वह परमशिव स अभिन्न है। इस प्रकार शिव मिदालन म जो द्वत ना भास होता या उसको प्रत्यभिज्ञादशन के अन्त म परिणत कर दिया गया।<sup>१</sup> इस शक्ति के पाच मून रूप है—

(१) शक्ति अर्थात् परमशिव की आत्मानुभूति की शक्ति (२) जानन्द शक्ति अर्थात् परमशिव की परमानन्द शक्ति (३) इच्छा शक्ति अर्थात् परमशिव की वह शक्ति जिमके द्वारा वह अपन आपका मण्डि ना निर्माण करन के हेतु एक परम इच्छा स युक्त पाते है (४) ज्ञान शक्ति अर्थात् परमशिव की वह शक्ति जो वह इस अनेकरूप विश्व को यक्त करते है।<sup>२</sup> शक्ति जब अपना यह अन्तिम रूप धारण करती है तब सक्ति का काय वास्तव म प्रारम्भ हुना है जिसे आभास कहते है। इस आभास की कल्पना लगभग वसी ही है जसी बदालन म विवत की। भेद केवल इतना ही है कि बदालन म इस व्यक्त विश्व की अनेकता का माया माना गया है वह सत है न असत—सदसदम्याम निर्वाच्या। परन्तु प्रत्यभिज्ञादशन म इस अनेकरूपता को सत माना गया है क्योंकि जिम किसी वस्तु का परमशिव म सम्बन्ध है वह असत नहा हो सकती।<sup>३</sup> इस प्रकार शिव तथा शक्ति दोनों तत्त्व शाश्वत है और सदव एक रूप होकर साय रहते है न शिव शक्ति रहित है और न शक्ति शिव स पथक है। केवल व्यवहार के लिये पृथक् पृथक् वणन किया जाता है।<sup>४</sup> दूसरे शब्दा म इन दोनो

१ डा० यदुवशी शिव मत प्रथम सस्करण १९५५ ई० प० १७२।

२ डा० यदुवशी शिवमत प्रथम सस्करण पृ० १७२

श्री अभिनवगुप्ताचार्य न तत्रसार म लिखा है—

चित प्राधाय शिवतत्त्वम जानन्द प्राधान्य शक्तिनत्वम

—द्या प्राधाय सत्ताशिवतत्त्वम जानशक्ति प्राधाय ईश्वरतत्त्वम्

त्रियाशक्ति प्राधाये विद्यातत्वम् इति। तत्रसार पृ० ७३-७४

३ डा० यदुवशी शिवमत प्रथम सस्करण प० १७२

४ शिवशक्ति पृ० ९६

म अभक्त है तादात्म्य है सामरस्य है । तभी तो परमशिव पूण है । शक्ति के सहारे शिव अपने म जह का बोध प्राप्त करते हैं । इसीलिए शंकराचार्य ने भी कहा है—

शिव शक्तया युक्ता यदि भवति शक्त प्रभवितुम् ।

न चेत्येव न्वा न म्लु कुशान स्पदितुमपि ॥

### सदाशिव

शिव शक्ति का जागरित रूप सदाशिव तथा बाहरी रूप ईश्वर कहलाता है ।<sup>१</sup> सदाशिव की दशा अत्यक्तावस्था है ईश्वर की अवस्था व्यक्तावस्था है । सदाशिव का रूप म शिव अश शक्ति अश का द्विपाय स्वता है अत उगत की स्थिति अत्यक्त रूप म होती है । सदाशिव नाम रूप है क्योंकि अष्ट शिव की मूर्ति स जा विम्फाट ध्वनि मसार म प्राप्त हाकर फल रही है उमे नाम कहत है और वह नाम ही सदाशिव है ।<sup>२</sup> ससार का निमेष या प्रलय को भी सदाशिव-तत्व कहा गया है ।<sup>३</sup> अस तत्व का अनुभव अहम इदम द्वारा होता है । अहम अह शिव का द्योतक है और अह विश्व का परिचायक है । अस तत्व को इच्छा प्रधान बतलाया गया है । अस सादारण तत्व भी कहते हैं ।

### ईश्वर

ईश्वर-तत्व म शान शक्ति की प्रधानता रहती है । इस तत्व का अनुभव इह द्वारा होता है । सदाशिव-तत्व म अह प्रधान और अह गौण रहता है और ईश्वर-तत्व म अह प्रधान और अह गौण रहता है ।<sup>४</sup>

### शुद्धविद्या या सदविद्या

अस भूमि म अहम और इहम इन दोनों रूपों म ऐक्य की प्रतीति रहती है । मैं यह हू यही भावना इस भूमि म जागत रहती है । इसम त्रियाशक्ति प्रधान है ।

### माया

इस भूमि म पूर्व भूमि की ऐक्य प्रतीति पथक पथक हो जाती है ।

१ आनन्दनहरी १ ।

२ ईश्वरा बहिष्मपा निमपाऽत सदाशिव ।

ईश्वरप्रत्यभिना ३-१-३

३ ननतत्र भाग २ पृ २८७-८८

४ ईश्वरप्रत्यभिनाविमर्शिनी भाग २ प १९८-९५

५ डा० उमशमिः भारतीय दर्शन, पृ ३८४

'अहम् अश पुरुष रूप म तथा इदम् अश प्रकृति' रूप म यहाँ अभि यत्त हात है । यहाँ अचित् अर्थात् जड में प्रमातृत्व का आभास होना है । यह ब'ना वादि पात्र' भावा का उत्पादन कारण है । तत्रालोक म इसे भेज् उत्पन्न करन वाली बताया गया है ।<sup>१</sup> यही समस्त निश्व को उत्पन्न करती है ।<sup>२</sup> इसे विमोहिनी शक्ति भी कहा गया है जिससे पूण प्रकाशित चितशक्ति का प्रकाश आच्छादित हो जाता है और जीवात्मा उसे हृदयगम नहीं कर पाता ।<sup>३</sup> प्रत्य भिन्ना दशन म माया अथवा तत्प्रसूत जगत का त्याग नहीं किया जाता प्रत्युत उसे मायोत ब्रह्मशक्ति समझ कर उसका जातिगन करने म ही जीवन की साधकता स्वीकार की गई है ।

### कला

इसकी उत्पत्ति माया मे होती है और यह माया की प्रथम सृष्टि है । यह तत्व जीवात्मा का ऊर्ध्व स्थिति मे ल जाने वाला माना गयो है ।<sup>४</sup> जिस प्रकार घन अघकार म दापक म किंचित प्रकाश मिलता है उसी प्रकार माया द्वारा प्रसारित घन अघकार म कला द्वारा किया तथा ज्ञान के त्रिण किंचित प्रकाश की प्राप्ति हाती है ।

### विद्या

इसकी उत्पत्ति कला मे होती है ।<sup>५</sup> यह तत्व पाशों से आवद्ध परतव जीवात्मा के अन्तगत ऐश्वर्य स्वभाव को प्रकाशित करता है ।<sup>६</sup> यह बुद्धिबुद्धी दपणें म नाना पदार्थों, दुख सुख, मोह आदि के प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करके जीवात्मा का मुखानि प्रत्ययों से परिचिन् कराता है ।<sup>७</sup>

- १ स्वात्माभिन्नमपि भावमडल शिवो यथा भिमात भिदा व्यवस्थापयति इति च माया ।—तत्रालोक, भाग ६ प० ११९
- २ तत्रालोक, पृष्ठ १२८
- ३ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग १ पृष्ठ ३७
- ४ तत्रालोक, भाग ६, पृष्ठ १३५-१३७
- ५ मण्डलत्रय, १।१०।४-५
- ६ तत्रालोक, भाग ६, पृष्ठ १६१
- ७ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २, पृष्ठ २०२-२०३
- ८ तत्रालोक, भाग ६ पृष्ठ १५०

### राग

उसकी उत्पत्ति भी माया जनित कला से मानी गई है।<sup>१</sup> मृगेद्रतत्र मू, इस सभी प्रकार के भोग्य पदार्थों एवं चित्तशक्ति आदि के लिए अभिलाषा उत्पन्न करने वाला तत्व कहा गया है।<sup>२</sup>

### काल

यह जीवात्मा या प्रमाता को परिमित बनाने वाला है। इसके द्वारा मैं वृश हो गया था मैं स्थूल हो गया हूँ मैं स्थून्नतर हो जाऊंगा आदि प्रमा का विभाजन होता है।<sup>३</sup>

### नियति

इसकी उत्पत्ति भी कला से ही होती है। तन्नालोक म नियति योजना घत्ते विशिष्टे कायमण्डले बह्व्वर इसे विशिष्ट विशिष्ट काय-वारणा का योजना करने वाली कहा गया है।<sup>४</sup> इसे शिव की नियमन करने वाली शक्ति भी, बतलाया गया है।<sup>५</sup> मगेन्द्र तत्र म भी इसे नियामक या काय निष्पात्क माना गया है।<sup>६</sup>

### पुरुष

उपयुक्त पाच कचुको से आवत चतय पुरुषत्व है।

### प्रकृति

महत तत्व से लेकर पृथ्वीतत्व, पयन्त सभी तत्वा का मूल कारण प्रकृति-तत्व है। यह सत्व रजस् और तमस की सामान्य अवस्था है। इस अवस्था म गुणा म प्रबानगीणभाव नहीं होता।

### अतः करण

#### बुद्धितत्व—

यह ऐसा है इस प्रकार निश्चय करने वाली बुद्धि तत्व है। यह

- १ तत्रात्रोक्त भाग ६ पृ० १६१
- २ मगेन्द्रतत्र १।१०।११
- ३ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २ पृ० २०५
- ४ तत्रात्रोक्त, भाग ६ पृ० १६०-१६१
- ५ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी भाग २, पृ० २९
- ६ मगेन्द्रतत्र १। १७

सत्वप्रधान होने के कारण 'स्वच्छ' है। इस तत्व में ही चतय के प्रतिबिम्ब का ग्रहण करने की योग्यता है।

अहकार तत्व—

यह मेरा है यह मेरा नहीं है इस प्रकार अभिमान का साधन अहकार तत्व है।

मनस्तत्व—

वह या न कहें इस प्रकार का सकल्प और विकल्प का कारण 'मन' है। य ताना अंत कारण—रूपतत्व है।

### आत्मा

शिवसूत्रो म चतयमात्मा<sup>१</sup> कह कर आत्मा को चतयस्वरूप माना गया है। इसके अनिरिक्त शवागमा म आत्मा को विमशरूपा पराशक्ति, चिनि स्वतयरूपा विश्वोत्तीण, विश्वात्मक परमानन्दमय आदि ना कहा गया है।<sup>२</sup> यह आत्मा अपनी इच्छा स ही शिव से लेकर धरणिपयन्त छत्तीम तत्वा म अभेद के साथ स्फुरित होती है।<sup>३</sup>

### जीव

शिव सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा असक्य और शाश्वत है। व सब परमशिव के ही अंश हैं परन्तु उसस सवमा अभिन्न नहीं हैं, जसा विबुद्ध अद्व तवादी मानत हैं। परन्तु व शिव स भिन्न नहीं हैं और जावात्मा तथा शिवरूप परमात्मा क परस्पर सम्बन्ध का हम एक ही प्रकार म निर्दिष्ट कर सनत हैं और वह है भेदाभेद सम्बन्ध। वास्तव म परमात्मा और जीवात्मा क इस सम्बन्ध म हम श्वताश्वतर उपनिषद का इस कल्पना का विकास देख सकत हैं जिनम परमात्मा और जीवात्मा का ण पण्ड्या स उपमा दी गई है तथा जिनम सांख्यवाण्ड्या म जीव और पुरम के परस्पर सम्बन्ध के थपन विशिष्ट सिद्धान्त का विकास किया है।<sup>४</sup> शक्ति सत्य है सुतरा जीव और जगत भी सत्य ह—मिथ्या नहीं है इसलिए सभी वस्तुत शिवमय है।

१ चतयमात्मा शिवसूत्र १, १।

२ प्रत्यभिशाहदयम प० २, ८

३ जामव गवभावपु स्फुरत तिव त चिन् विभु ।

अनिन्दच्छाप्रसर प्रसरत दव विमा शिव ॥ शिवण्डि, १।२

४ प० यमुवशी, शवमत प्रथम सस्करण प० १६८



## सृष्टि

प्रत्यभिज्ञानशन म सृष्टि या जगत को चिति वा ही स्वरूप माना गया है जो अपनी इच्छा से इसका उदय या उदय करती है।<sup>१</sup> अभिनवगप्ताचार्य का मत है कि जिस प्रकार स्वच्छ वषण म भूमि तन आनि पान प्रतिबिम्बित हाते हैं उसी प्रकार पूण सविदरूप परमेश्वर म यह जगत भी अभिन रूप स अवभासित हाता है जसा कि ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमशिनी म कहा भी है—

चेतनो हि स्वात्मदषण भावान प्रतिबिम्बवत् जाभासयति इति सिद्धात ।<sup>२</sup>

## चिन्मय सामरस्य की अवस्था

शिवसूत्रविमशिनी के अनुसार शिव शक्ति मयय मयय भाव स परस्पर सवटित हाकर इच्छा कम पान इन तीनों म सामरस्य ताकर उल्लास या आनन्द का नवनीत उत्पन्न करत हैं ।<sup>३</sup> यही शिवशक्ति के सामरस्य की अवस्था है । अतएव यथाय म अद्व त तद्व का पान यही होता ह ।

## जीव मुक्ति

जीवितावस्था मे स्थून शरीर को धारण किए हुए यनि यह सामरस्य पान होता ह तो उम जीवमुक्ति कहत हैं । इस अवस्था म भी जविचल रूप म एक चित ही रहता है । सविदरूपाशक्ति इस अवस्था म भी रहती है अतएव चिदानन्द का लाभ जीवमुक्ति को भी होता ह । शरीर के पतन के पश्चात वह परमशिव ही म प्रविष्ट और उसी म नीन हो जाता है ।<sup>४</sup>

अपन काथ्य विशयकर वामायनी म प्रसा जी ने शवमत और उसमे भी प्रत्यभिज्ञान का यथास्यान उपयोग किया है । उनके प्रिय आनन्दवाद नियतिवात् तथा समरसता सिद्धात का आधार भी शव मत ही है । अत उनके का य परशवशन के प्रभाव को हमने अलग ईश्वराद्वयवाद के भीतर लिखाया है ।

१ प्रत्यभिज्ञाहृदयम पृ ५६

२ ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमशिनी भाग २ पृ १५३

३ परव सूक्ष्मया अमाकरूपा कुण्डलिनी शक्ति शिवेन सह परस्पर सामरस्यरूप मययमययकभावात्कम सघटभासाय उत्थिता सति इच्छा पानक्रियामाश्रित्य रौद्रित्वम उमुद्रयन्ती वणशरीरमुल्लासयति । शिवसूत्रविमशिनी उमय २ सूत्र ३

४ डा उमेगमिश्र भारतीय दर्शन प० ८७

## बौद्ध दर्शन

बुद्ध के समय म नास्तिक का अथ ईश्वर म प्रतिपन्न नही था और न वेत्तिदक को ही नास्तिक कहत थ । पाणिनि के निवचन के अनुसार नास्तिक वह है जो परलोक म विश्वास नही करता (नास्ति परलोको यस्य स ) । इस निवचन के अनुसार बौद्ध और उन नास्तिक नही ह । बुद्ध न अपन सूत्रान्ना मे ( सम्वादाम ) नास्तिकवाद की मिथ्यादृष्टि कह कर गहित किया है ।<sup>१</sup> वस्तुतः जन धर्म के समान बौद्धधर्म भी अपने बन्धन रूप पिता का ही पुत्र है । पहले यहाँ पर जो ब्राह्मणधर्म था, उसी की यही उपजी हुई यह एक शाखा है । ब्राह्मणधर्म के कमकाण्ड तथा गानकाण्ड अथवा गार्हस्थ्यधर्म और सत्यासधर्म अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दोनों शाखाओं के पृथक्ता रूप ही जाने पर उनमें सुधार करन के लिए बौद्धधर्म उत्पन्न हुआ ।<sup>२</sup> इस प्रकार बुद्ध के उपदेश उपनिषदों के ही आधार पर थ । (अतः) श्रोताओं का कुछ भी भेद नहीं मानूँ पड़ा और वे सब प्रेम से श्रद्धापूर्वक उनके अनुगामी हुए ।<sup>३</sup>

शंकर के अद्वैतवाद तथा नागाजुन के ‘शून्यवाद’ म तो केवल शून्य ही म भेद मालूम होता है । व्यवहार स लकर परमाय तब दोना का विचार एक ही सा ह । दोनों ही के लिए ससार तुच्छ है अविद्या का व्यामोह है तथापि इसी के सहारे परमतत्त्व की अनुभूति हो सकती है । दाना मत्ता म परमनत्व अवाङ्मनसागोचर है । दोना ही परम पर की प्राप्ति के साथ-साथ परमानन्द तत्व म लीन हो जाते हैं । इसीलिए नागाजुन ने कहा भा है— प्रपचोपशम शिवम् ।<sup>४</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्त-दर्शन तथा बौद्ध दर्शन म अत्यन्त निकट का सम्बन्ध है अतः अन्त-दर्शन स प्रभावित द्याया गान्धी बन्धि का बौद्ध-दर्शन मे प्रभावित हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक था । इसके उपरान्त युग पुरप महात्मा गांधी न बौद्धधर्म के मौनिक सिद्धान्त मत्री, करुणा मुक्ति, उपमा आदि का अपने जीवन म सक्रिय प्रयोग किया था । भगवान बुद्ध की अभ्ययना करत हुए महात्मा जी ने कहा था— बौद्धधर्म के

- १ आचार्य नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दर्शन, प्रथम संस्करण प्र० अध्याय पृ० २
- २ आन गगाधर त्रिवेदी गीतारहस्य, चारहवाँ संस्करण, पृ० ५७६ ५७७
- ३ आ० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन, प्रथम संस्करण, पृ० १६७
- ४ वही पृ० १७१ ७२

नाम वाली चीज भले ही हिन्दुस्तान से दूर हो गयी होवे मगर बुद्ध भगवान का जीवन जोर उनकी शिक्षाएँ तो हिन्दुस्तान से दूर नहीं हुई हैं।<sup>१</sup> अतः महात्मा गांधी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भी छायावाद का कवि बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति आस्थावान बना।<sup>२</sup> इसका अतिरिक्त छायावाद के कवि न बौद्ध-दर्शन के प्रभाव का सम्बन्ध अपने व्यक्तिगत जीवन से भी जोड़ा है। महादेवी ने स्पष्ट कहा है कि बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी सत्कार को दुःखदायक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था। अवश्य ही इस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा परन्तु आज तक उसमें पहला जन्म के बुद्ध सत्कार विद्यमान है जिनसे मैं उस पहिचानने में भूख नहीं कर पाती।<sup>३</sup> छायावाद की कविता पर बौद्ध-दर्शन के प्रभाव का एक महान कारण छायावादी कवियों द्वारा बौद्धसाहित्य एवं दर्शन का गहन अध्ययन भी माना जाता है।<sup>४</sup> अतः छायावाद-काय की दार्शनिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के लिए यहाँ पर बौद्ध दर्शन का संक्षेप में परिचय प्राप्त कर लेना उचित होगा।

## बौद्ध-दर्शन के सामान्य सिद्धान्त

### मध्यम माग

भगवान बुद्ध का बताया माग मध्यम माग कहलाता है क्योंकि यह दानो अन्तो का परिहार करता है। जो कहता है कि आत्मा है वह शाश्वत

१ त्रिपयगा बुद्ध जयन्ती अथ अक्तूबर १९५६ पृ० २७

२ हमारी गौतम और गांधी की ऐतिहासिक भूमि है। भारत का दान विश्व को राजनीतिक तंत्र या वचनिक यंत्र का दान नहीं हो सकता वह सस्कृति तथा विकसित मनोयंत्र की ही भट होगी। इस युग के महापुरुष गांधी जी भी अहिंसा को एक व्यापक सांस्कृतिक प्रतीक के ही रूप में दे गये हैं सत्य-अहिंसा के सिद्धांत को मैं जन सगर्न (सस्कृति) के दा अनिवाय उपादान मानता हूँ। —पत्र उत्तरा प्र स प्रस्तावना पृ १३

३ महादेवी वर्मा रश्मि १९३८ अपनी बात पृ० ६७

४ अपनी साहित्य-साधना में उन्होंने बौद्ध साहित्य एवं दर्शन से कर्णा का बौद्धिक दृष्टिकोण ग्रहण किया।

रामनाथ मुमन कवि प्रसाद की साध्य-साधना, प्र मुग्ण पृ० ३२

नष्टि कपूर्वान्त म अनुपतित हाता है जा कहता है कि आत्मा नहीं है, यन् उच्छ्र दष्टि के दूसरे अन्त म अनुपतित हाता है । उच्छ्रे और शाश्वत दोनों अन्तो का परिहार कर भगवान मध्यमा प्रतिपति (माग) का उपदेश करत हैं।<sup>१</sup> बुद्ध का पहला उपदेश था—

मिक्षओ ! इन दो अतिमों को नहीं सेवा करना चाहिए ।—

(१) काम सुख म लिप्त होना (२) शरीर पीडा म लगाना ।—इन दोनों अतियों को छोड़ (में) ने मध्यम भाग खोज निकाना है जो अन्न देने वाला था पराने नाश शान्ति (दने) वाला है । वह (मध्यम भाग) यही आय अष्टांगिक माग है ।<sup>२</sup>

### चार आय—सत्य

बुद्ध को विश्वास था और उह साक्षात अनुभव भी प्राप्त हो गया था कि (१) ससार दुःखमय है (सब दुःखम) (२) दुःखो का कारण है (दुःख ममुत्थ) स ख पीडित होकर उसका नाश करने क उपायो को लागू दूढा करने हैं, अर्थात् उह विश्वास है कि दुःख का नाश हाता है (दुःख निरोध) तथा (४) दुःखो के नाश के लिए उपाय भी हैं (दुःखनिरोध गामिनी प्रतिपद) । इही चार बातों को लोगों को समझाने के लिए सत्त्वज्ञान होने पर भी बुद्ध ने अपन शरीर की रक्षा की । य ही चार 'आय-सत्य' हैं ।

### दुःख की कारण—परम्परा

सबसे पहले भगवान बुद्ध ने सबको यह समझाया कि ससार दुःखमय है । कोई भी जीव दुःख म मुक्त नहा है तथा दुःख किसी का प्रिय नहा है । उससे छुटकारा पान के लिए सबको प्रयत्न करना चाहिए । इसके लिए दुःख के कारण को जानना आवश्यक है बिना कारण के काय नहीं होना और कारण के नाश के बिना कार्य का नाश भी नहीं हो सता । इसलिए सभी को दुःख के कारणों को जानना चाहिए और उनका नाश के लिए उपाय दूढना चाहिए ।

### प्रतीत्य—समुत्पाद

सम कोई सत्ह नहीं कि हमारे दुःख का मूल कारण 'अविद्या' है जिसका अदमन शक्ति से कारणों की एक परम्परा हा जानी है । इस कारण

१ आश्रम नरद देव बौद्ध धर्म-शन प्र०स०, त्तीय अध्याय पृ० १६

२ राहुन ससिद्धत्पापन बौद्धदशन त्तीय सस्वरण पृ० २३

पमचत्रप्रवचन-सूत्र-समुत्-निवाप ५५।२।१

हृष (भौतिक पदार्थ) की क्षणिकता को तो आसानी से समझा जा सकता है। विज्ञान (मन) उससे भी क्षणभंगुर है इसे दर्शाते हुए बुद्ध कहते हैं—

भिक्षुओ ! यह बल्कि बेहतर है कि अज्ञान (पुरुष) इस चार महा भूतों की काया को ही आत्मा (नित्य तत्व) मान ले, किंतु चित्त का (वसा मानना ठीक) नहीं। सो क्यों ? चारों महाभूतों की यह काया एक दो तीन चार पांच छ सात वष तक भी मौजूद देखी जाती है किन्तु जिसे चित्त मान या विज्ञान कहा जाता है वह रात और दिन में भी (पहिने से) दूसरा ही उत्पन्न होता है दूसरा ही नष्ट होता है।<sup>१</sup>

बुद्ध के दशन में अनित्यता एक ऐसा नियम है जिसका कोई अपवाद नहीं है।

बुद्ध का अनित्यवाद भी दूसरा ही उत्पन्न होता है दूसरा ही नष्ट होता है व कहे अनुसार किसी एक भौतिक तत्व का बाहरी परिवर्तन मान नहीं बल्कि एक का बिलकुल नाश और दूसरे का बिलकुल नया उत्पाद है। बुद्ध काय कारण की निरंतर या अविच्छिन्न सन्तति को नहीं मानते।<sup>२</sup>

### अनात्मवाद

अनात्मवाद को पुद्गल प्रतिषेधवाद भी कहते हैं। बौद्ध आत्मा या पुद्गल को वस्तुसत् नहीं मानते। आत्मा नाम का कोई पदार्थ स्वभावतः नहीं है।<sup>३</sup>

सत्काय (=आत्मा) की धारणा को बुद्ध दशन सम्बन्धी एक भारी यथन (=दृष्टि संयोजन) मानते थे और सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए उसके नष्ट होने की सबसे ज्यादा जरूरत समझते थे।<sup>४</sup> उपनिषद के इतने परिश्रम से स्थापित किए गए आत्मा के महान सिद्धांत को प्रतीत्यसमुत्पादवादी बुद्ध कितनी तुच्छ दृष्टि से देखते थे इसका अनुमान उनके निम्न कथन से लगाया जा सकता है—

तो यह मेरा आत्मा अनभव कर्ता अनुभव का विषय है और तहाँ-तहाँ (अपने) भल बुरे कर्मों के विषय को अनभव करता हूँ वह मेरा आत्मा नित्य=

१ संयुक्त-नि० १२।७

२ राहुत साहृत्यायन बौद्ध दशन त्रितीय सं० पृ ३३

३ आचाय १८२ त्वेव बौद्ध धम-दशन पृ २४३

४ राहुत साहृत्यायन बौद्ध दशन पृ ३८

ध्रुव=शाश्वत=अपरिवर्तनशील है, अनन्त वर्षों तक बगा ही रहेगा यह भिक्षुओं की कवन भरपूर बाल 'यम' (=मूख विश्वास) है।<sup>१</sup>

### अनीश्वरवाद

बुद्ध के दशन का जो रूप-अनित्य अनात्म प्रतात्य समत्पाद हम देख चुके हैं उसमें ईश्वर या ब्रह्म की भी उसी तरह ग जाइश नहीं है जिस कि आत्मा की। 'बौद्ध सिद्धांत में किसी मूल कारण की व्यवस्था नहीं है। वह नहीं मानते कि ईश्वर महादेव या वासुदेव, पुरुष प्र आदिक किसी एक कारण से सब जगत की प्रवृत्ति होती है।'<sup>२</sup>

### निर्वाण

बुद्ध की शिक्षा का एकमात्र रस निर्वाण है। सब बौद्ध-दशना का लक्ष्य निर्वाण है, किन्तु निर्वाण के स्वरूप के सम्बन्ध में अग्रथ्य मतभेद है। निर्वाण का स्वरूप चाहे जो हो, सब बौद्धों को यह समान रूप में इष्ट है कि निर्वाण ससार-दुःख का अत्यन्त निरोध है, ससार से निःकरण है और अनन्य आप्त्य है। विद्वानों का कहना है कि आत्म प्रतिषेध, ईश्वर प्रतिषेध सत्तेनुक और क्षणिक सत्ता के मिथ्यात्वों के होने हुए निर्वाण निरोधमात्र अभावमात्र ही है।<sup>३</sup>

निर्वाण का अर्थ है बुचना-दीप या आग का जलते जलते बुझ जाना। प्रतात्य नमुत्पन्न (विच्छिन्न प्रवाह रूप से उत्पन्न) नाम रूप (=विज्ञान और भौतिकत्व) तत्त्वा व गारे से मिलकर जो एक जीवन प्रवाह का रूप धारण कर प्रवाहित हो रहें हैं इस प्रवाह का अत्यन्त विच्छेद ही निर्वाण है।<sup>४</sup> बुद्ध का उक्त निर्वाण 'मृत्यु की मृत्यु अथवा उपनिषदा के वननानुसार मृत्यु को पार कर जाने का मार्ग है—निरा मीत गहा है।<sup>५</sup>

### करुणा

बौद्धधर्म की सुन्दरतम व्याख्या भगवान बुद्ध के जीवनम विद्यमान है। बुद्ध के जीवन में महान आत्मीयता—प्रता और करुणा—का अभिव्यक्ति हुई था।

- १ बही पृ० २९ मज्झिम निकाय १।१।२—अय भिक्षव! बसता परिपूरो यान धम्मो ।
- २ आचाय नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दशान पृ० २२३
- ३ आचाय नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दशान चतुर्थ अध्याय, पृ० ७८
- ४ रत्न सांख्यशास्त्र बौद्ध दशान पृ० ५३ ५४
- ५ बान गंगापर निरस गीता रत्न्य चारुवा सस्तरण पृ० ५८०

अपने क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान के आधार पर समस्त देखो से निवृत्त होकर ज्ञान की प्राप्ति का नाम प्रज्ञा है। किन्तु अपना ही क्षेत्र में सीमित प्रज्ञा द्वारा दूसरा का कल्याण नहीं हो सकता। अतएव बुद्ध की करुणा मानवमान के लिए महादान के रूप में प्रस्फुरित हुई।

योग-दर्शन में चित्त के परिष्कार के रूप में मन्त्री करुणा मुनिता तथा ज्येष्ठा के नियमित परिशीलन की उपयोगिता दिखाई गई है। प्राचीन पालि साहित्य में भी ब्रह्म विहार नाम से वही वस्तुओं का निर्देश है। योग दर्शन में करुणा का जो परिचय दिया गया है उससे सदाशत भिन्न एक अन्य रूप भी है। इसी के अवनम्ब से अर्थात् उसे ही जीवन का साध्य बनाने से महायानी अर्थात् साधन का माग प्रवर्तित हुआ है। इस प्रकार की करुणा का अंतराय यत्किंगत मुक्ति है।<sup>१</sup> भावन तथा प्रत्येक बुद्धयान में सब सत्वों का दुःख दर्शन ही करुणा का मूल उत्स है। असका नाम सत्वावलंबन करुणा है। मद्दु तथा भय बोधि के महायान मत में अर्थात् सौश्रांतिक तथा योगाचार सम्प्रदाय में जगत का नश्वरत्व या क्षणिकत्व ही करुणा का मूल उत्स है। असका नाम धर्मावलंबन करुणा है। उत्तम महायान अर्थात् माध्यमिक मत में करुणा का मूल कुञ्ज नहीं है अर्थात् उसका पृथक सत्ता नहीं है। इस मत में शून्यता से अभिन्न करुणा ही वाच्य का अंग है। एक दृष्टि से श्रेष्ठ पर प्रतीत योगा कि शून्यता जस त्रिकोत्तर है वैसे ही करुणा भी त्रिकोत्तर है। यह जहेतुक करुणा है। अनगवज्ज कहने में कि करुणाजान कभी किसी सत्व का निराश (विमुख) नहीं करते—

सत्वानामस्ति नास्तीति न च व सविकल्पकम् ।<sup>२</sup>

भागवत में भक्ति का जो स्थान है वीद्वागम में करुणा का वही स्थान है।<sup>३</sup>

आधुनिक (छायावाद) युग साहित्यकार की चरम शक्ति परीक्षा का काल रहा है। सधप की इस ज्ञान ने विशाल जहाजों को तट पर ही पछाड कर ता-उना ऊचे-ऊचे शाल वक्षा को झकझोर कर घरासात कर दिया।<sup>४</sup>

१ आचार्य नरेन्द्र देव बौद्ध धर्म-दर्शन गोपीनाथ कविराज द्वारा लिखित भूमिका पृ० १७

२ वही पृ १९

३ वही पृ० २६

४ महात्मा कर्मा पथ व सायी प्रथम स पृ ८८

निदान, छायावाद की व्यक्तित्वाती कविता में दुःखवाद का विपणन स्वर भी सुनाई पड़ता है।

छायावाद का कवि स्वभाव से ही कठिनायुक्त या अत बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी उसे अत्यन्त प्रिय रहा है।<sup>१</sup> इस प्रकार बौद्ध विचार धारा की ओर उमड़े झुक जाने के कारण छायावाद की कविता में बुद्ध के दुःखवाद तथा क्षणिकवाद और कर्मणा की स्पष्ट अनुगूँज भी सुनाई पड़ती है। किन्तु छायावाद युग के सांस्कृतिक जागरण अथवा पुनरुत्थान में वेदाल अथवा अद्वैत दर्शन का आत्मवाद का ही धारणा था, अतः बौद्ध दर्शन का अनात्मवाद छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि को विचित्र प्रभावित नहीं कर सका।



१ कठिनायुक्त होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है।

महादेवी वर्मा साधुनिता कवि, अपने दृष्टिकोण से पृ० ३१





द्वितीय खण्ड





## छायावादी काव्य में औपनिषदिक अद्वैतवाद

जब सांस्कृतिक पुनरुत्थान का समय आता है तब जानिया के कुछ पुराने अथवा सनातन सत्य दुबारा जन्म लेते हैं।<sup>१</sup> उक्त सत्य की छाया में छायावादी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियों और समकालीन पृष्ठभूमि के अन्तर्गत हम देख चुके हैं कि किस प्रकार १९ वां शताब्दी के सांस्कृतिक एवं धार्मिक आन्दोलनों ने युग प्रवृत्ति को वेग और उपनिषदों के ज्ञान की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया। एक ओर राजा राममोहनराय की प्रेरणा से ब्राह्मण-समाज ने उपनिषदों के क्षेत्र में उपनिषदों के ग्रन्थों को अपनाया तो दूसरी ओर मन्मथेव गोविन्द रानाडे के प्रयत्न नृत्व में प्राथमिक-समाज ने एक ग्रन्थ की ही उपासना का माग प्रशस्त किया। स्वामी दयानन्द के आधुनिक-समाज ने, जिसका प्रचार काय छायावाद-युग में भी मन्द नहीं पडा था, 'बद की शरण तो का नारा बुन्द किया। स्वामी विवेकानन्द के रामकृष्ण मिशन ने भी औपनिषदिक ग्रन्थों की उपासना पर हाँ पूरा-पूरा बल दिया और यह प्रचारित किया कि उपनिषदों के धर्म अथवा सत्य को स्वीकार करने से ही राष्ट्र और भारत का उद्धार हो सकता है।<sup>२</sup> इन उपरान्त हमें प्रकरण में हम यह भी देख चुके हैं कि राजा राममोहनराय दयानन्द और विवेकानन्द की भाँति ही छायावादी-युग की मजान विभूतियों—जिनके गांधी रवीन्द्र और अरविन्द—ने भी राष्ट्र एवं मानव-जाति के सर्वांगीण विकास के लिए वेग और उपनिषदों के

१ 'निर्जर काव्य की भूमिका' पृ० ३८ ७४

२ 'दक्षिण शक्तिपीठ विचार', पृ० ५१ ५२

अमर सत्या को ही अपनाया और उह समष्टि द्वारा समभूमि पर अपना लेने का आग्रह किया। अस्तु उक्त मनोपियो के प्रभाव एव युग की सांस्कृतिक जागरण की मांगों के फलस्वरूप हम छायावाद की कविता में भी वेदों और उपनिषदों के कुछ सत्यों को पूर्ण रूप से जीवित पाते हैं। श्रीमता महादेवी जी ने ठीक ही कहा है कि जागरण के प्रथम चरण में हमारी राष्ट्रीयता ने अपनी 'याप्यता' के लिए जिस अध्यात्म का आह्वान किया काय ने सौंदर्य काय में उमी की प्राणप्रतिष्ठा कर दी। कवि ने धर्म के घरातल पर किसी विद्वत् कृति की स्वीकार्यता की, परन्तु सक्रिय विरोध के साधना का अभाव सा रहा।

जागरण के प्रभाव के अतिरिक्त प्रमुख छायावादी कवियों—प्रमाण निराना पत और महादेवी—ने वेदों और उपनिषदों का सम्यक अध्ययन और चिंतन भी किया था अतः जब उनकी प्रवृत्ति जन्तुमु खी हुई तब-तब वेदों और उपनिषदों के शाश्वत सत्य अनायास ही उनकी कविता में समाविष्ट हो गये।

जद्व त की अनुभूति में ही वैदिक ऋषियों का हृदय स्पन्दन एव उनके विचार दशन की प्रतिध्वनिया मिनती हैं अतः हम इस अध्याय में देखेंगे कि छायावाद की कविता में वेदों और उपनिषदों की जद्व तभावनामूक्त, किन्तु तत्वों की अभिव्यक्ति हुई है। इसके अतिरिक्त उपनिषत् ज्ञान पर आधारित वेदात्त दशन के उन अथ जद्व तमूलक सम्प्रदायों, जैसे शांकर जद्व त विशिष्टा द्व त द्वा द्वा त व्यावहारिक वेदात्तवाद आदि का जिनका सक्षिप्त परिचय हम छायावाद को प्रभावित करने वाले भारतीय दशन शीर्षक अध्याय में प्राप्त कर चुके हैं छायावाद-काय पर जो प्रभाव पड़ा है, उसका उल्लेख भी हम इसी अध्याय में करेंगे।

वैदिक ऋषि ने ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही अग्निदेव की स्तुति परमात्म रूप में की है अतः उन्होंने गाया कि भरणशील प्रजा में मैंने अमर अग्नि की महिमा देखी है। पुनः इन्द्र देवता मानते हुए भी उन्होंने इन्द्र की सूक्ष्म शक्ति को परमात्म शक्ति से पृथक् नहीं माना है। इसी से इन्होंने कहा

१ महादेवी वर्मा दीप शिला प्रथमवर्ति १९४२, चिंतन के कुछ क्षण पृ १३

२ अग्निमनी रोदसी आ विवेश—वह अग्नि विशाल आकाश जीव पृथ्वी में सबत्र व्याप्त हो रही है। (ऋग्वेद १०।८०।२)

विन्द्र ही सबसे ऊँचा और महान है ।<sup>१</sup> इसी प्रकार उन्होंने वरुण को सृष्टि का निर्माता और शासक के रूप में स्तवन किया है ।<sup>२</sup> और फिर—

इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहु  
रथो दिव्य स सुपर्णो गरुडमान ।  
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति  
अग्नि यम मानरिषवानमाहु ॥<sup>३</sup>

मंत्र द्वारा यह उद्घोषित किया है कि समस्त देवता एक ही ईश्वर के भिन्न भिन्न नाम हैं। ज्ञानी लोग उसका वचन अनेक प्रकार से करते हैं। ब्रह्मिण ऋषि के उक्त प्रतिभवाचन प्रसूत सत्या के आधारभूत छायावादी के प्रवक्तृ कवि जयशंकर प्रसाद ने अपने एकेश्वरवाद और आत्मवाद (आत्मवाद) की स्थापना की है। उनके मत में आरम्भिक वैदिक काल में प्रकृति पूजन अथवा बहुदेव उपासना के युग में ही जब एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति के अनुसार एकेश्वरवाद विकसित हो रहा था तभी आत्मवाद की प्रतिष्ठा भी पल्लवित हुई। इन दोनों धाराओं के दो प्रतीक थे। एकेश्वरवाद के वरुण और आत्मवाद के इन्द्र प्रतिनिधि माने गए। वरुण यावपति राजा और विवेक पक्ष के आदर्श थे। महावीर इन्द्र आत्मवाद और आनन्दवाद के प्रचारक थे।<sup>४</sup> डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी के मत में भी हिन्दुओं के बहुदेववाद के मूल में एक अखण्ड व्यापक भगवान की सत्ता ही है। ब्रह्मा विष्णु शिव आदि देवता उसी भगवान के गुणावतार हैं।<sup>५</sup> उसी भगवान अथवा ईश्वर की प्राप्ति के लिए साधक को अनेकानेक साधनाओं में लीन रहना होता है।

१ विश्वस्मान्द्रित्त उत्तर — इन्द्र ही सबसे ऊँचा और महान है।

(ऋग्वेद १०।८६।१५)

२ गम्भीरशसा रजसा विमान — (ऋग्वेद ७।८७।६)

सता अस्य राजा (ऋग्वेद ७।८७।६)

३ ऋ० सं० अष्ट २।० ३ व० २३ म ४६

४ जयशंकर प्रसाद—काव्य और कला रहस्यवादी शापक निबंध पृ० ३५

५ डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिंदी साहित्य की भूमिका चौथी बार १९५० पृ० ५५।—बहुत से देवी-पूजाओं को मानना और सबके दाता एक ब्रह्मदेवता (ईश्वर) को मानना एक ही ध्यान है। एकेश्वरवाद भी ब्रह्मवाद ही है।

जाबान रामचंद्र शुक्ल—जापगी ग्रन्थावली, पृ० १३० तृतीय संस्करण

कामायनी के आशा सग म विश्वदेव सविता पूषा सोम मरुत आदि देवता किसी एक ही शासक के अधीन तथा ग्रह नक्षत्र विद्युत्कण आदि उसी एक का सधान तथा उसकी प्राप्ति के हेतु सिर नीचा कर मौन प्रवचन करते हुए लिखाए गए हैं जो कामायनीकार द्वारा माय धार्मिक एकेश्वरवाद की ओर ही सकेत करते प्रतीत होते हैं ।

विश्वदेव सविता या पूषा  
सोम मरुत चचन पवमान  
वरुण जादि सब घूम रह हैं  
किसके शासन मे अम्लान ?

\* \*

महानील इस परम योम मे  
अन्तरिक्ष म ज्योतिर्मान  
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण  
किसका करते से सधान !

\* \*

सिर नीचा कर किसकी सत्ता  
सब करते स्वीकार यहा  
सदा मौन ही प्रवचन करते  
जिसका वह अस्तित्व कहाँ ?<sup>1</sup>

प्रसाद जी ने जहाँ 'एक सद्धिप्रा बहुधा वदन्ति' के अनुसार एनेश्वरवाद की कल्पना की है वहाँ पन्त जी ने उसी के आधार पर अद्वैतवाद की महिमा गाई है और एक सत-शीपक से एक पूरी कविता ही रच डाली है जिसका कुछ अंश इस प्रकार है—

इन्द्रेव तुम स्वभू सत्य सवन न्यिय मन

\* \*

तम्ही अग्नि हो, सप्लजिह्व अति न्ति य तपस पुनि

\* \*

दिन्य वरुण तुम चिर अकलुष, ज्या विस्तृत सागर  
मन की तप पूत स्थिति उवन अखिल पाप हर !

तुम्ही मित्र हा, ज्योति प्रीति की शक्ति ममन्वित,  
मम बुद्धि कर्मों में समता करते स्थापित ।  
गह्रमान तुम, ज्यातित पक्षा की उडान भर  
आत्मा की आकाशा को ले जान ऊपर ।

\* \* \*

कान रूप यम, करने निग्लि विश्व का नियमन,  
तुम्ही मातरिश्वा साता जन करते धारण ।

\* \* \*

तुम हा एक स्वरूप तुम्हारे ही सत्र निरिचन  
विप्रो मे तुम बहुधा बहु नामा स कीर्तित ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार पालय के परिवर्तन में भी उद्धान विश्व के विविध  
द्रव्या का 'एक सत्र (एक ही मम मधुर प्रकार) का विविधाभास कहा है—

एक ही ता असीम उल्लास  
विश्व में पाता विविधाभास  
तरल जननिधि में हरित विलास  
शान्त अम्रर में नील विकास  
वही उर उर में प्रमोच्छवास  
काव्य में रस, कुसुमा में वास  
अचल तारक पलका में हाम,  
लाल लहरा में लास ।  
विविध द्रव्या में विविध प्रकार  
एक ही मम-मधुर प्रकार ।<sup>२</sup>

और इसी मम की प्रतिध्वनि महादेवा जा की इस भावना में भी सुनाई पड़  
रही है—

सुन रही हूँ एक ही  
प्रकार जीवा में प्रलय ।<sup>३</sup>

इन छायावादी कवियों के अनिश्चित द्वितीय-युग और छायावादी-युग  
के संधि-स्यल पर छह पञ्चित रामनरेश त्रिपाठी ने भी उसी एक सत्र को

- १ सुमित्रानन्दन पन्त स्वर्णधूनि प्रथम संस्करण, स० २००४ पृ० १२३ २४
- २ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव चतुर्धावृत्ति पृष्ठ ८७
- ३ महात्मी वर्मा-आधुनिक कवि पृष्ठ ५२



किरण में रूप, सुमन में सौन्दर्य, पवन में प्राण, जोर गगन में विस्तार आदि नामों से अंकित किया है ।<sup>१</sup>

छायावाद का तथाकथित पलायनवादी कवि वेद कंचाभा क चिरंतन सत्य की ओर क्यों उन्मुख हुआ उसका कारण यह स्वयं बताता है—

जिस नात वह सत्य वही रे विन विपश्चिन  
ज्योतित उसका बहिरतर आनन्द रूप तित ।<sup>२</sup>

ऋग्वेद का अद्वैतप्रतिपादक पुरुष सत्त भी छायावादी कवि के आत्म विश्वास और लोक कल्याण की भावना का प्रेरणा स्रोत रहा है । पुरुष (ईश्वर) के एक अंश में ही हमारा सम्पूर्ण जगत् स्थित है शेष तीन अंश इसमें परे हैं ।<sup>३</sup> यही आप्त बचन पन्न जी के बहिरंग विकास के सिद्धांत का आधार प्रतीत होता है । इसी के आधारगत पन्न जी न मानव (पुरुष) के एक अंश का ही बहिर्मुख स्वीकार किया है और शेष तीन अंशों को वाणी के उर या गुहा में निहित बताते हुए भौतिक बभ्रव को अन्तर्बभ्रव से दीपित करने का आदेश कर लिया है—

एक अंश मानव का मात्र बहिर्मुख जावन  
शेष अंश प्रच्छन्न मनस में रहते गोप्य ।  
अन्तर्जीवन से जो मानव हो संयोजित  
पूण बने वह स्वयं बने यह वसुधा निश्चित ।

तीन अंश वाणी के उर की गुहा में निहित  
अधिमांस से त्रिज्य गान ही उनका प्रकृत  
बहिरतर मानव जीवन हो सत्य समचित  
अन्तर्बभ्रव से भौतिक बभ्रव हो दीपित ।<sup>४</sup>

- १ तू रूप है किरण में सौन्दर्य है सुमन में  
तू प्राण है पवन में विस्तार है गगन में ।—मानसो  
छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य स० अर्सेन्द्र ब्रह्मचारी प० १४८
- २ सुमित्रानन्दन पन्त—स्वर्णधूनि प्रथम संस्करण २ ४ प० १२५
- ३ त्रिपाद्व्यंज उ त्पुरुष पादा स्वेत्याभवत् पुन — पुरुष का केवल एक  
अनुपांश इस भूत भौतिकमयी समस्त सृष्टि की व्याप्त किये हुए है और  
तीन अंश इसमें बाहर हैं । (ऋग्वेद १०।१०।४)
- ४ पन्त—स्वर्ण धूनि प्रथम संस्करण पृ० १२८

श्वेताश्वतर उपनिषद् ब्रह्म पुरुष को जन्मा घोषित करते हुए उसे नित्य सबत्रविद्यमान सबकी आत्मा तथा जन्म, मरण आदि विकारा से रहित बताती है। चन्द्रिक जन्म उने दक्षता था।<sup>१</sup> पल्ल जीम भी उसी दिन पुरुष को देखने की परत आकाशा है—

दिन्य पुरुष जो जति समाप अतुरतम म स्थित,  
नहा दक्ष पाते जन उसको वह अभिन्न नित ।  
दसो उसके दिन्य काय को ससृति विस्तत  
वह न कभी मरता न जीण होता वेगमत ।<sup>२</sup>

चन्द्रिक पुरुष से अन्तर और वहिजगत दोनों के विकास की शिक्षा ग्रहण कर पतनी भोक्तिरता और आध्यात्मिकता दोनों के समन्वित विकास में आनन्द की परिणति मानते हैं—

अन प्राण मन अन्तमन से हा परिपोषित  
सत्य मूत्र से युक्त ज्योति आनन्द हा सखित ।<sup>३</sup>

निराला जी ने भी अपन देशवासियों को अपना शौर्य पहचानने के लिए ब्रह्म पुरुष की अजेय शक्ति की स्मृति दिना उच्च स्वर से, मलकारा है—

पद रज भर भी नहीं पूरा यह विश्व भार—  
जागो फिर एक बार ।<sup>४</sup>

गीता के 'एकोशन स्थितो जगत'<sup>५</sup> के आधार पर महादेवी ने लिखा है कि उसी की आभा का एक क्षण नभ में अमह्य दीपक जला देता है दिन को मनकराशि और चन्द्रमा को चौदा का परिधान दे जाता है।<sup>६</sup> महादेवी जी की

१ वेदाहमेतमजर पुराण सर्वात्मान सर्वगत विभुत्वात् ।

नमनिरोध प्रवदन्तियस्य ब्रह्मवाग्निना हि प्रवदन्ति नित्यम ॥—'वेद के रहस्य का वणन करने वाले महापुरुष जिसके जन्म का अभाव बताते हैं सबत्र तथा जिसका नित्य बताते हैं इस व्यापक होने के कारण सबत्र विद्यमान सबकी आत्मा जरा, मृत्यु आदि विकारा से रहित पुराण-पुरुष परमेश्वर को मैं जानता हूँ । श्वेताश्वतर तृतीय अध्याय, २१

२ पञ्च-म्वण पुलि, प्रथम मस्वरण प० ११८

३ वही, पृष्ठ १२५

४ निराला-परिमल, पृष्ठ १७७

५ गीता-१०।४२

६ तारा आभा का क्षण नभ का दत्ता अगणित दापन दान

प्रायः सभी प्रतिनिधि रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के स्थूल सौन्दर्य में व्यक्त किसी परात्म सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के यतिगत सौन्दर्य पर चेतना का आरोप भी।<sup>१</sup> प्रकृति को विराट रूप में चित्रित करने की उनकी इस अभिलाषा में वैदिक पुरुष का प्रभाव परिलक्षित होता है। कवयित्री का स्वयं पापन है—

हम वीर पुत्र और पशुओं की याचना में भरी क्रवाशा में जो इतिवत् पाते हैं वही उपासना आदि को चेतन यत्नित्व दकर एक सहज और सरल सौन्दर्यानुभूति में बदल गया है। फिर यही यतिगत सरल सौन्दर्यबोध उम संवत्सरा का जगद्भूत बन जाता है जिसका अक्षर पुरुष भूक्त में विश्व पर एक विराट गरास्त्व का आरोप द्वारा प्रकट हुआ है।<sup>२</sup>

महादेवी जी ने अपनी एक रचना में अतन रूपसत्ता विराट को अप्सरा के परिवेश में देगा है। वहाँ प्रकृति के समस्त उपकरण (अप्सरा) के अवयव रूप चित्रित हुए हैं। शनैः और तिमिर उस विराट सित अक्षर चौर सागर गजा स्तम्भ मञ्जरि शशा अन्क जान मेघ किक्किण (अप्सरा) का यह अभिनव शृंगार और नित्य नतन कितना सुन्दर एव मनहर है।

मेघो म मुखरित किक्किण स्वर  
अप्सरि तेरा गतन सुन्दर  
रवि शशि तेरे अवतस लोन  
सीमत्त जटित तारक धमोल  
चपना विभ्रम स्मित इद्र धनुष  
हिमवण बन भरते स्वेन निवर  
अप्सरि तेरा नतन सुन्दर ।३

ग्नि को बनवराशि पन्नाना  
विष्णु को चाँदी का परिधान ।

- १ आधुनिक कवि (१) अपने दृष्टिकोण से पृष्ठ ८०
- २ वही पृष्ठ ८
- ३ यामा, तृतीय सस्वरण, पृष्ठ १०५

प्रकृति के अस्त व्यस्त सौम्य मरुपनिष्ठा विस्तरे रूपों में गुण प्रतिष्ठा फिर उनकी समष्टि में एक व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा और अन्त में रहस्यानुभूति का जसा नमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीन काव्य देता है वना अत्यन्त मिलना कठिन होगा ।<sup>१</sup> उसी से प्रेरणा ग्रहण कर निराना जी न भी अपने वादल को विराट रूप चिह्नित किया है । ऋग्वेद में मेघ का उद्गम निबन्ध ध्व बाधा रहित सम्राट के रूप में स्तवन हुआ है—

अभि-श्रन्द स्तनय गभमा धा उन्वता परि दीया रथन ।

दनि सुकप विपित यच्च समा भवन्तदता निपादा ॥—

मघ जिस प्रकार गजता है विद्युत् चमकाता है जनमय रूप से आकाश में व्यापता है जनपूण भाग को बचन रहित सा करके खोल देता है और ऊँचे-नीचे सब प्रदेश जलमय हो जाते हैं, उसी प्रकार ह राजन ! तू स्वयं सब ओर गजन कर, घोर नाद कर ।<sup>२</sup> निराना जी का वाग्ज राग' भी ऐस ही गुणा में विभूषित है । उसमें विराट की प्रचण्ड कल्पना एक 'अपार कामनाओं की भावना कितनी साकार हो उठी है—

हे निबन्ध !—

अधतम-अगम-अनगल-वाग्ज ।

हे स्वच्छन्द !—

मत् चचन-समीर रथ पर उच्छ खल ।

ह उद्गम ।

अपार कामनाओं के प्राण ।

बाधरहित विराट ।

हे विष्णु के प्वावन ।

सावन घोर गगन के

ए सम्राट ।<sup>३</sup>

वेद में मेघ का रुद्र और शिव रूप में भी बचन है—

यत्प्रजन्य कनिष्कस्त्रनयनं हृदि दृष्टुत ।

प्रतीद विश्व मोदत यत्किं च पृथि ध्यामधि ॥

१ महात्मी वया-शीपिण्या-चिन्तन के कुछ क्षण पृष्ठ ग्यारह

२ ऋग्वेद ५।८३।७

३ परिमल, पृष्ठ १५

‘शत्रुगा के विजेता और प्रजाओं को समझ करने वाला मेघ । जब तू गरजता और विद्युत् के समान कड़कता हुआ दुष्टा का नाश करता है तब यह विश्व और जो कुछ भी पृथ्वी पर स्थावर जगम सृष्टि है तुझे देख प्रसन्न होती है ।’<sup>१</sup>

आगे भी श्लोका में कहा गया है—

अवर्षावपमुदु पू गभायाकधवाययेतवा उ ।

जजीजन ओपर्धाभोजनाय कमुत प्रजाम्यो विन्ने मनीषाम ।

जिस प्रकार मेघ बरसता है मरुस्थला और अन्तरिक्ष प्रदेशों को जति प्रमण करता हुआ भी वृष्टि को धारण करता है औषधियाँ को सब जंतुओं के भाजन के निमित्त उत्पन्न करता है प्रजाओं से प्रशंसा प्राप्त करता है उसी प्रकार हे सम्राट् । तू भी अपने शत्रुगण को अतिक्रमण करने और उनसे बचाने के लिए धनुष ग्रहण कर और गर वृष्टि कर ।<sup>२</sup>

ठीक इसी प्रकार निराला जी का विराट रूप वादन एक ओर हृत् के भरव घोष से तिनादित है और दूसरी ओर शिव की कल्याण भावना में पूर्ण—

वार-वार गजन

वपण है मूसनाधार

हृदय धाम नेता ससार

सुन सुन घोर बज्र हुंकार ।

\* \*  
अरे वप के हृत् ।

बरस तू बरस-बरस रसधार ।

पार ते चल तू मुचको

बहा दिसा मुचको भी निज

गजन भरव-ससार !<sup>३</sup>

प्रकृति के प्रतीका द्वारा ईश्वर की रहस्मानुभूति वेदा की विशेषता है । दुष्टय प्रकृति के प्राणण में निदग्न् विचरण करने वाले बल्कि शक्ति ने प्रकृति

१ श्रुवेद ५।८३।९

२ वगी १।८३।१०

३ परिमन पृ० १८८ १८८

क शक्ति-चिह्नो सविता वरुण मरुत पूषा आदि के बीच विराट का साक्षात्कार कर लिया था। अतः देव-वश-श्रुती एव मुर मन्वृति के प्रकृष्ट प्रताप कामायनी के मनु को जिज्ञासा प्रत्यापरान्त प्रकृति के अचल में सफल बभूव रामद्व विराट को हेम घोवते देख कितनी घनीभूत हो गई है—

वह विराट था हेम घालता  
नया रग भरने को आज  
कौन ? हुआ यह प्रश्न अचानक  
और क्लृप्तकल का था राज ।<sup>१</sup>

प्रसाद जी की इस विराट की कल्पना पर महात्मा गांधी की विन्तन शक्ती का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। कामायनी के प्रणय काव्य में महात्मा गांधी राष्ट्रनायक के साथ साथ हिंदू धर्म के प्रतीक भी माने जाते थे। ईश्वर का विषय में उन्होंने कहा था कि वह एक अवगनीय रहस्यपूर्ण सत्ता है जो समस्त भूतवर्ग में अनुभूयता है। मैं उसका अनुभव करता हूँ, यद्यपि देख नहीं सकता। वह अदृश्य सत्ता अनुभवगम्य होते हुए भी बुद्धि की परिधि का बाहर है कारण वह उन समस्त वस्तुओं से नितान्त भिन्न है जिन्हें मैं इंद्रिया द्वारा ग्रहण करता हूँ।<sup>२</sup> विराट के विषय में प्रसाद जी का टीका यही अनुभव है—

हे विराट ! हे विश्वदेव ! तुम  
कुछ हो ऐसा होता भान  
मैं गम्भीर धीरे स्वर सयुत,  
यही कर रहा सागर गान ।  
ह अन्त रमणीय ! कौन तुम ?  
यह मैं कस कह सक्ता

१ कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० ३०

२ There is an undefinable mysterious Power that pervades everything I feel it, though I do not see it It is this unseen Power which makes itself felt and yet defies all proof because it is so unlike all that I perceive through my senses

M. K. Gandhi Hindu Dharma P 64 Ypuna India  
11 10 25

कसे हो ? क्या हो ? इसका तो । ।

भार विचार न सह सनता ।<sup>१</sup>

धर्म म कृपक के रूप म विराट का वणन मिलता है ।<sup>२</sup> उसी प्रभाव  
साम्य मे प्रसात् जी विश्व गहस्थ के प्रति श्रद्धाजति अपित करते पाय जाते ह-

जिस मन्दिर का द्वार सदा उमुक्त रहा है

जिस मन्दिर मे रक् नरेश समान रहा है

जिसके हैं आराम प्रकृति कानन ही सारे

जिस मन्दिर के दीप इन्दु, दिनकर औ तार

उस मन्दिर के नाथ को निरुपम निरमय स्वस्थ का

नमस्कार मरा सदा पूरे विश्व गहस्थ को ।<sup>३</sup>

ऐस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के यत्न प्रसार म विराट अथवा  
चिन्तात्म के आरोप की प्ररणा छायावादी कविया को बहिक ऋचाओ से प्राप्त  
हु<sup>४</sup> । किसी भी सहृदय के लिए बहिक उदगीथा से प्रभावित हो जाना सहज  
सम्भाव्य है । प्रभाव के लिए ऋपि चेतना के दिय स्तर का सस्पश अनिवाय  
नही । असीम स्वानुभूत अतर्कान के प्रति शालीन श्रद्धा ही पर्याप्त है । अत  
जब छायावाट का कवि कहता है कि बालो को लान बाने मस्त गण की  
उपयोगिता जान लेने वाला ऋपि जब उहे धीर रूप म उपस्थित करता ह  
तब हम उसके प्रकृति म चेतना के आरोप से प्रभावित हुए बिना नही रह सकत ह  
तब हमे उसकी ईमानदारी म शक नही होना चाहिए । वास्तव म उसकी  
अद्वत भावना और विराट की स्थापना का आधार प्रातिभनान न होकर  
अनुभूति मान है ।

इस विराट अथवा यत्न जगत का आधार क्या है<sup>५</sup> इस जिज्ञासा के  
समाधान स्वरूप बहिक ऋपि को निगु ण ब्रह्म की अनुभूति हुई थी ।

१ कामायनी त्रितीय सस्वरण पृ० ३४

२ साध्वर्या अतिथिनीरिपिरा स्पर्हा सुवर्णो अनवद्य रूप ।  
बहस्पति पवताभ्यो वितूर्या निर्गा उप यवभिवस्थिविम्य ॥  
ऋग्वेद १०।६८।३

३ कानन कुसम प ४

४ महादेवी वर्मा दीपगिला चिन्तन के कुछ क्षण प० ११

५ वा अद्वा बत् क इह प्र योचत्कुत आभाता कुत इय विसष्टि ।-  
यह सृष्टि कहीं से प्रकट हुई यह विविध प्रकार का सग किस मून  
कारण से और क्या हुआ यह ठीक-ठीक कौन जान सकता है और  
यहाँ इसका कौन प्रवचन कर सकता है ? -ऋग्वेद १०।१२९।६

नासदीय सूक्त म अव्यक्त मत्ता का ही व्यक्त जगत का वारण माना गया है ।<sup>१</sup> महादेवी वर्मा की रविम की कतिपय रचनाओं<sup>२</sup> का आधार नासदीय सूक्त का श्रूय म सबन एव वामना के रूप म विद्यमान रहने वाला अव्यक्त निगुण ब्रह्म ही है । अन्तर केवन इतना है कि ऋषि न जहाँ ब्रह्म का वणन जिज्ञासा अथवा प्रश्न क समाधान म किया है वहा महादेवी जी ने अपने ब्रह्म वणन म सूक्त से उपादान ग्रहण करते हुए भी जिज्ञासा का स्थिर रता है ।

ऋग्वेद का हिरण्यगभ सूक्त भी ईश्वर है । उसके अनुसार इस जगत प्रपञ्च के उत्पन्न हान क पूर्व (हिरण्यगभ ) विद्यमान रहा वह एक अनीय था, वही उत्पन्न जगत का पालक रूप म प्रतिद्ध है ।<sup>३</sup> उसस हा प्रवृत्ति मक्त होता है उसमे ही समस्त लोक-सभृह तारा जोर उठत ह उसस ही स्रूय और पथ्वी विस्तार पात हैं ।<sup>४</sup> महादेवी वर्मा की निम्न उद्धृत पक्तियो पर ऋग्वेद के उक्त मन्त्रो का स्पष्ट प्रभाव देसा जा सता है—

धिपाये यो कुहरे म नीम्  
काल का सीमा का विस्तार,  
एकता म अपना आजान  
समाया था सारा भगान ।

\* \*  
उसी का मधु से सित्त पराग,  
और पहला बह सौरभ भार,  
तुम्हारे छूने ही चुपचाप,  
हा गया था जग म साकार ।

\* \*  
उसी म पचियाँ पल अविश्राम  
पुलक से पाने तग विकास

१ ऋग्वेद १०।१२९।१ ८

२ दक्षिण रविम की श्रूयना म निम्न की वन तथा रहस्य शीषक कविताएँ । पृ० ५, ६५

३ हिरण्यगभ समवतनाये भूनस्य जान पनिरक आमीत । ऋग्वेद १०।१२

४ अतो मूरत आ उदित्य रजोतो तावापथिवी अग्रयनाम । ऋग्वेद १०।१४९।२



निवस रजनी तम और प्रनाश,  
 बन गये उसके श्वासोच्छ्वास ।<sup>१</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्त दशन के जो तत्त्व ऋग्वेद म बीज रूप म निहित हैं उनका उपयोग छायावाद म यथास्थान किया गया है, किन्तु वेदो म जिस तत्त्वज्ञान का अन्वेषण आरम्भ हुआ उसका पूण विकास उपनिषदा म ही पाया जाना है । चिरकाल से भारतीय उपनिषद् के जन और प्रेय को अपने जीवन दशन अथवा इहलौकिक और पारलौकिक जीवन का आधार मानने आये हैं । सांस्कृतिक नवोत्थान के कारण जब छायावाद का कवि उपनिषदा की ओर उन्मुख हुआ तब ऋषिया ने अपने सूक्ष्म चिन्तन से जिन शाश्वत सत्या की खोज की थी सामान्यतया उन सब पर छायावाद के कवि की दृष्टि पड़ी और उसने उन्हें कही पर सिद्धान्त रूप म ( उच्चादर्शों की स्थापना म) और कही पर अपनी अनुभूति का अंग बना कर अपनी कला कृतिया म व्यक्त किया । छायावाद के तात्विक सिद्धान्ता और उपनिषदा की विचारधारा म इतना साम्य है कि उपनिषदा और तत्सम्बन्धी साहित्य से कुछ भी परिचय रखन वाला व्यक्ति यह सद्य जान सकता है कि छायावाद का काव्य उपनिषदा के सत्यो से विशेष रूप मे अनुप्राणित है । उपनिषदा के ब्रह्म आत्मा, जीव जगत आदि से सम्बन्ध रखने वाले विचारा को छायावाद म कहाँ तक और किस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है इसे यहाँ पर देख लेना चाहिए ।

### ब्रह्म

उपनिषदा म परब्रह्म की वास्तविकता की बात जोर देकर कही गई है । यह परब्रह्म अद्वितीय है । उसम कोई गुण या विशेषताए नहीं हैं । यह मनुष्य की मूढनम आत्मा क साथ तन्मू है । ब्रह्म स्वतन्त्र सत्ता क रूप म विद्यमान निर्विशेषता है । वह अन्त स्फुरण म जो कि उसका अपना अस्तित्व है अपना विषय स्वय ही हाता है । यह वह विगुद्ध कर्ता है जिसके अस्तित्व को याह्य या वस्तुस्वात्मक जगत म नहीं छोडा जा सकता ।

१ महात्मी वर्मा रश्मि (१९३८) पृ ७६ ७७ ७८

२ श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमतस्ती सम्परीत्य विविक्रि धीर ।

श्रया हि धीराऽभि प्रयसा वशीत प्रया मन्ते योग त्माद वशीत ॥

कटापनिषद् तृतीय बली २ ।

४ राधाकृष्णन भगवद्गीता प्र स० १९६२ परिचायक त्रिवेद पृ० २३

यदि ठीक ठीक कहा जाय तो हम उपनिषदों के ब्रह्म का किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते । वहद्वारण्यक उपनिषद का कथन है जहाँ प्रत्येक वस्तु वस्तुतः स्वयं आत्मा ही बन गई है वहाँ कौन निमित्त-विचार कर और निमित्तके द्वारा विचार करे ? सावभौम ज्ञाता का ज्ञान हम किस वस्तु के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं । वह शाश्वत (ब्रह्म) इतना असीम रूप में वास्तविक है कि हम उसे एक का नाम देने का भी साहस नहीं कर सकते, क्योंकि एक होना भी एक ऐसी धारणा है जो लौकिक अनुभव (व्यवहार) से ली गई है । उस परमात्मा के सम्बन्ध में हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि वह अद्वैत है । और उसका ज्ञान सब प्राप्त होता है जब कि सब द्वैत उस सर्वोच्च सत्ता में विलीन हो जाते हैं । उपनिषद् में उसका नकारात्मक वर्णन किया गया है कि ब्रह्म यत् नहीं है यह नहीं है (नेति गति) ।<sup>१</sup>

इस प्रकार उपनिषदों के ब्रह्म को अक्षय अग्राह्य अज्ञान, अर्थ अस्पृश्य अरम अगध अगोचर<sup>२</sup> आदि कहकर उस अत्यन्त सूक्ष्म घापित किया गया है । वह इतना सूक्ष्म है कि यह नय वाणी मन बुद्धि आदि द्वारा जाना नहीं जा सकता ।<sup>३</sup> अथ शान्ति में ब्रह्म इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है । उप

१ वहद्वारण्यक, २ ४ १२ १४

२ राधाकृष्णानु, भगवद्गीता प्र० स० १९६२ परिचयात्मक विवरण, पृ० २३ २४

३ पितृद्वेष्यमग्राह्यमगोचरमवर्णमचक्षु श्रोत्र तदपाणिपादम् ।—  
वह (ब्रह्म) जानने में न आने वाला और पकड़ में न आने वाला है (वह) श्रोत्र घण, चक्षु कान, हाथ, पैर (आदि से भी) रहित है ।  
—मु० उ० १।६

अनात्मस्पर्शमरूपमयय तथारम नियमगन्वच्छयत ।—

'जो अस्पर्शित, स्पर्शरहित अस्पर्शित तथा नित्य और अव्यय है ।

—ब० १।३।१४

४ नाममात्मा प्रवचने तस्यो न मधया न बहुना ध्युनेन ।—  
परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है ।—मुण्डक द्वितीय खण्ड ३  
न चक्षुसा गृह्णते नापि वाचा नायत्वंस्तपसा धमया वा ।  
यह परमात्मा न तो नश्वर से न वाणी से और न दूरगामी इन्द्रिया से ही ग्रहण करने में आता है ।—ततोप मुण्डक खण्ड १ ८  
न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्यच्छति नो मनो ।—ब्रह्मसूत्रोपनिषद ३

निपत्ता वा यही इन्द्रियातीत ब्रह्म पत्त जी थी चान्नी शिशु और अप्सरा म प्रकट हुआ है । अनेय अस्पृश्य अगोचर अरुण और नित्य ब्रह्म की भाति ही उनकी चान्नी सब रूप रस रग से ओझल<sup>१</sup> शिशु अतुल अरुण अनाम और अप्सरा नित्य अदृश्य अस्पृश्य तथा अकथ अतीतिक अमर अगोचर ह ।

ब्रह्म के विषय म श्वेताश्वतर उपनिषद कहती है कि 'तुम्ही स्त्री पुरुष कुमार अथवा कुमारी हो—त्व स्त्रीत्व पुमानसि त्व कुमार उन वा कुमारी।'<sup>२</sup> पत्त मत्र को पत्त जी द्वारा शिशु और अप्सरा म आरोपित ब्रह्म का आघात माना जा सकता है । एक स्थान पर उहाने नारी को सष्टिके उर की सास<sup>३</sup> भी कहा है । इसी से उनकी सुर-नर मुनि इप्सित अप्सरा त्रिभवन भर म लीन है।<sup>४</sup> कहा कही पर व अज्ञय इन्द्रियातीत ब्रह्म का स्पष्ट स्तवन करने पाए जाते हैं—

श्याम विश्वघनश्याम गहन घनश्याम रहस्य अनत चिरतन  
चिर अनादि अनेय पार जा पाते नही चक्ष वाणी मन ।<sup>५</sup>

ऋषियो ने ऐसे सूक्ष्म ब्रह्म को यत्त करने की कठिनाई का अनुभव करके नकारात्मक प्रणाली का अनुसरण किया है । उहाने ब्रह्म यह है न कहकर 'ब्रह्म यह नहीं है—'स एष नेति नेति आत्मा कहा है।<sup>६</sup> पत्त जी भी ऋषिया की प्रणाली का अनुसरण करते हुए अपने ब्रह्म के विषय म कन्ते हैं—

वह है, वह नहा अनिवच<sup>७</sup>

नव वाचा न मनसा प्राप्तु शक्यो न चक्षुसा । कठ० ततीय वानी १२

१ पत्त पत्तविनी सम्बत ९७ प्रथम सस्करण पृ० ११४

२ वही पृ० ५२

३ वही प० १४५ १३७

४ श्वेताश्वतर चतुथ अध्याय ३

५ पत्तविनी पृ ६७

६ वही प० १४४

७ पत्त स्वण किरण प्रथम सस्करण, पृ ४८

८ वह्नाख्य उपनिषत् ४।६।२२

९ पत्तविनी पृ० ११५

किन्तु उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य है ब्रह्मज्ञान अथवा आत्म साक्षात्कार । और इसके लिए ऋषियों ने बार बार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया है ।<sup>१</sup> किन्तु अरूप और अनिवचनीय ब्रह्म का उपासना के क्षेत्र में कुछ भी महत्व नहीं हो सकता । अरूप और अनिवचनीय कहकर हम न तो ब्रह्म का वास्तविक ज्ञान ही प्राप्त कर सकते हैं और न उसका साक्षिष्य ही । सगुण निगुण स चाह कितना ही तुच्छ क्यों न हो, हम सगुण अथवा सीम की सहायता से ही निगुण अथवा असीम की ओर उन्मुख होते हैं । अरूप और अनिवचनीय जो उपासक का प्राप्तव्य है रूप और सीमा में ही देखा जा सकता है । अतः ऋषिया ने उपासना के लिए निगुण ब्रह्म में गुणों का आरोप<sup>२</sup> कर विश्व के निखिल सौंदर्य में विराट का दर्शन किया । फलतः औपनिषदिक ब्रह्म से प्रभावित छायावादके अनिवचनीय ब्रह्म को भी हम भय भयकर (विराट) रूप धारण करते हुए पाते हैं—

अहे अनिवचनीय ! रूप धर भव्य भयकर  
इन्द्रजाल सा तुम अनन्त में रचते सदर  
गरज, गरज हस, हस, चढ, गिरि छा ढा, भू-अवर  
करते जगती को अजस-जीवन से उवर,<sup>३</sup>

मुण्डकापनिषद् में परब्रह्म परमेश्वर के सब लोकमय विराट स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

अग्नि इस परमेश्वर का मस्तक है चंद्रमा और सूर्य दाना तत्र है सब दिशाएँ दाना कान हैं और प्रकट हुए वेग उसकी वाणी हैं । वायु इसका

- १ आकाशशरीर ब्रह्म । सत्यात्म प्रणाराम मन आनन्दम । शान्तिसमद्व ममृतम् । इति प्राचीनयोग्योपासक ।—तन्निरीयोपनिषद्, पृष्ठ अनुवाक
- २ मनोमय प्राणशरीरो भारूप सत्यमकल्प आकाशात्मा सबवर्मा सबकाम सबगण सबरस सबमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर ।—अर्थात् वह उपास्य देव मनोमय, प्राणरूप शरीर बान्ता, प्रणव स्वरूप सत्य सकल्प आकाश के सदस्य व्यापक, सम्पूर्ण जगत का कर्ता पूषकाम सबगण, सबरस इस समस्त जगत को सब ओर से व्याप्त करने वाला वाणी रहित तथा सम्भ्रम शून्य है ।

—छा० उ० ३।१।४।२

प्राण और सम्पूर्ण विश्व हृदय है। इसके परो से पृथ्वी उत्पन्न हुई है। यही समस्त प्राणिया का अन्तरात्मा है।<sup>१</sup> इसी प्रकार स्मृति म कहा गया है कि अग्नि जिसका मुख चुनोक मस्तक आकाश नाभि, पृथिवी दाना चरण सूय नेत्र तथा दिशाए कान हैं उस सबनोकरूप परमात्मा को नमस्कार है।<sup>२</sup> उपनिषदों के अध्ययन से छायावाद के कवि के मस्तिष्क पक्ष म जा दाशनिक् उत्कठा जाग्रत हुइ उसके परिणाम स्वरूप वह भी ऋषिया का भाति उही की शक्ती म प्रवृत्ति के उपकरणों का विराट के मसण-अवयव रूप म चित्रित करने को आतुर हुआ। निदान उपा विराट की सन्दर छवि वसन उसका शृ गार तारे हार सूय शशि किरीट, मध केश तुपार स्नहाश्र मनयानिा मुखवास जलधि मन और सहरो का ससार उसकी नीला बनकर उसक कल्पना लोक म उपस्थित हो गये।<sup>३</sup>

श्वेताश्वतर उपनिषद बताती है कि परमदेव शिव समस्त जगत को सब जोर म धर कर स्थित हैं। अत नित्य प्रात उठकर नियमत उपनिषद का पाठ करने वाने शिवोपासक प्रसात् जी ने भी प्रकृति के ज्योति पुञ्जो को विरात् नटराज के अवयव अथवा अग्ररूप चित्रित किया है।<sup>४</sup> इस प्रकार बद्धि मन्त्रा म प्रभावित होकर छायावादी कविया ने बार बार प्रकृति के रम्य रूपो म सविता 'रूपा' आत्नि म विराट का आरोप कर दिया है। महादेवी जो क

१ मु उ० २।१।४

२ यस्याग्निरास्य द्यामूर्धा रव नाभिश्चवरणो क्षिति ।

सूयश्चक्षु दिश थोत्र तस्म लोकात्मने नम ॥

महाभारत शान्तिपव (४७७)

३ पत वीणा ग्रन्थि त्रितीयावृत्ति १९४ पृ १०

४ घतात्पर मण्डमिवातिमूक्षम ज्ञात्वा शिव सबभूतेषु गूम् ।

विश्वस्यक परिवर्णितार ज्ञात्वा दव मच्यत सवपाण ॥-श्वेताश्वतर ४।१६

५ प्रसात् वामायनी द्वितीय सस्करण पृ० २६ ६१

६ लो सविता आना सन्नकर  
सविता उबल ब्योम पृष्ठ पर,

याप्त सव लोका म वह

फने अपार पखा म निशिपल ।

पत स्वणकिरण पृ० ८८

७ वह पवित्रता सी अभिपक्ति, मद्य स्फुट शोभा म आवत

निवट उजले कमली की चान्दर जसी चाँदनी म मुस्कराती हुई विभावरी  
अभिराम है पर अघेरे के स्तर पर स्तर आढ कर विराट बनी हुई काला  
रजनी भी कम सुन्दर नहीं है ।<sup>१</sup> अत उहनि रजनी को विलमिल तारा का  
(विराट) जाली ओग दी है <sup>२</sup> और उसने अपन उदास शिशु जगत को टुनरान  
वहलाने की प्राथना ना कर दी है—

इन स्निग्ध उटा स छा द तन  
पुनकिन अगो म भर विशाल  
पुव सस्मित शीतल चुम्बन से  
अवित कर सका मकुन भाव  
दुलरा दो ना वहला दो ना  
यह तेरा शिशु जग है उदास ।<sup>३</sup>

उपनिषदा म ब्रह्म क विराट रूप का परिचान कराने के लिए उसे  
आकाश की सजा दी गई है । ऋषि न आकाश क जो लक्षण बताये हैं वे ब्रह्म  
के ही हैं । छादोग्य उपनिषद कन्ती है कि स समस्त भूत (पचतत्व और  
समस्त प्राणी) निस्सह आकाश स ही उत्पन्न हाते हैं और आकाश म ही  
विनीन होत है । आकाश ही उन सग्ने श्रष्ट और बडा है । वही इन सब का  
परम आधार है ।<sup>४</sup> आग की श्रुति कन्ती है—निश्चयपूर्वक आकाश ही नाम  
और रूप का निर्वाह करने वाला जयात जयका आधार है वे शोना जिकके  
भीतर हैं, व ब्रह्म है ।<sup>५</sup> यनी वान, दूमरे ढग स अनेक परिवर्तनों क  
आधारभूत निविकार आकाश (ब्रह्म) क सम्बन्ध म मन्त्रवी जी न कही है—

श्रिध्व चतना की ऊपा वह जघर पल्लवों म प्रभात स्थित ।

पन्त, स्वर्ण किरण पृ० ५१

१ महात्मी वर्मा दीपगिखा निम्नन क कुट्ट क्षण पृ० ३

२ रजनी जो जाना था विलमिल तारों की जानी  
उसके त्रिसरे बभ्रव पर जव रानी थी उजिमाली

महात्मी वर्मा आधुनिक कवि पृ० ६४

३ महात्मी वर्मा, आधुनिक कवि पृ ५५

४ सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त

आकाशप्रदरस्त यत्याकाशो ह्य यस्या जयापानावाप परापणाम ।

छा० उ० १।१।१

५ आकाशी व नाम नामरूपयानिविक्रित त यन्तरा तन् ब्रह्म ।

छा० उ० ८।१।४।१

वक्ष पर जिसके जल उडुगण,  
 बुझा देते असख्य जीवन  
 कनक औ नीलम यानो पर  
 दौडते जिस पर निशि वासर  
 पिघल गिरि-से विशाल बादल  
 न कर सकते जिसको चंचल  
 तडित की ज्वाला घन गजन  
 जगा पाते न एक कम्पन  
 उसी नभ सा क्या वह अधिकार—  
 और परिवर्तन का आवार  
 पुनक से उठ जिसम सुकुमार  
 लीन हाते असख्य ससार।<sup>१</sup>

इसी तरह निराला जी न ब्रह्म को नभ (आकाश) और आत्मा का नीलिमा कहकर दोना (आत्मा और परमात्मा) म अभिन्नता स्थापित की है।<sup>२</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद म उपनिषद के आकाशरूप ब्रह्म की अभिव्यक्ति कही पर विश्व क समस्त भूता का आधार मानकर और कही पर आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को लेकर की गई है।

उपनिषद का यह ब्रह्म विराट होते हुए भी अत्यन्त सूक्ष्म है।<sup>३</sup> उसकी कोई छाया या कानिमा नहीं है। उसके अन्दर या बाहर जसी वस्तु कछ नहीं है।<sup>४</sup> अत छायावाद के कवि ने छोटी से छोटी वस्तु को विराट रूप चित्रित करने म कम उत्साह नहीं दिखाया है। एक ओर निराला जी का कण<sup>५</sup>

१ महादेवी वर्मा रश्मि, पृ ६८ ६९

२ तुम नभ हो में नीलिमा—निराला परिमल पृ ७७

३ अणोरणीया महतो महीयानात्मा गुहाया निहितोऽस्य जन्तो ।—

सूक्ष्म स भी अति सूक्ष्म तथा बड़े से भी बहुत बड़ा परमात्मा इस जीव की हृदय गुफा म छिपा हुआ है।—श्वेताश्वतर उपनिषद ३।२०

४ बृहदारण्यक उपनिषद ३।८।८

५ तुम हो अखिल विश्व म  
 या यह अखिल विश्व है तुम म  
 अथवा अखिल विश्व तम एक ।

जहाँ विराट रूप धारण करता है वहाँ दूसरी ओर पत्त जी का 'स्याही का बँद' अपने समस्त कौतुक के साथ सत्तार-भागर म बूद पडता है ।

अद्वैत के प्रतिपादन म उपनिषदा में यह बात बार बार गही गई है कि एक ब्रह्म ही समस्त भूत समुदाय म विद्यमान है ।<sup>१</sup> वेदान्त के उक्त अद्वैत मत को छायावाणी के कवियों ने सर्वांशत अपनाया है । उपनिषद कहता है कि एक देव ही सब भूतों म छिपा हुआ सब व्यापी और समस्त प्राणियों का अन्तर्धामी परमात्मा है वही सब कार्यों का अधिष्ठाता सम्पूर्ण भूतवग का निवासस्थान चेतन रूप और सबका साक्षी है ।<sup>२</sup> उसी ज्ञान के आधार (य ज्ञानमय तपः) एव हृदय म स्थित<sup>३</sup> सब के प्रभु (सर्वस्य प्रभुम्<sup>४</sup>) को ऋषियों की भाँति प्रसाद जी ने भी नमस्कार किया है—

परा-प्रकृति से परे नहीं जो हिलामिला है  
समानम के बीच कमल सा नित्य खिला है  
चेतन की चिन्तना विश्व म जिसकी शता  
जिसकी आतप्रोत योम म पूण महत्ता  
स्वानुभूति का सागी है जो जड का चेतन  
विश्व शरारी परमात्मा प्रभुता का नेतन  
जो विज्ञानाकार है, ज्ञानो का आधार ह  
नमस्कार सदनन्त का ऐसे बारम्बार ह ?

वही प्रकार जगत के कर्ता सबके शासक<sup>५</sup> एव सबदा सब मनुष्यों के हृदय म सम्यक् प्रकार म स्थित परब्रह्म परमेश्वर<sup>६</sup> को पत्त जी न इस प्रकार स्मरण किया ह—

- १ देखिए, पन्त, पल्लव पृ० ७६
- २ एव सर्वेषु भूतेषु गुणोत्तमा ।— कठ० १।३।१२
- ३ एको देव सर्वभूतेषु गुणः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।  
कर्माध्यक्ष सर्वभूताधिवास साक्षी शता केवलो निगुणश्च ॥  
(श्वेता० ६।११)
- ४ मृ० उ० १।१९
- ५ कठ० ततीय बल्नी त्तीय अनुवाक १७
- ६ श्वेता० ३।१७
- ७ ज्ञानम कुमुम पृ० ९४
- ८ सर्वस्य ईशानम— सर्व शासक ।— श्वेता० ३।१७
- ९ एव दवा विशदकया महात्मा सा ज्ञाना हृदय सन्निकष्ट ।



अहे विश्व अभिनय के नायक ।  
 अखिल सृष्टि के सूत्राधार ।  
 उर उर की सम्पन्न मन्त्रापाक ।  
 ऐ त्रिभुवन के मनाविकार ।<sup>१</sup>

ईशोपनिषद् के प्रथम मंत्र<sup>२</sup> जिसके अनुसार ईश्वर सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है और जिसमें इस संसार को त्याग पूर्वक भागने का आदेश किया गया है को पतंजी ने भागवत का चिर परिचित स्वर तथा नाक कल्याण का साधन माना है—

ईश्वर जगत् व्याप्त त्याग से भोग भव जन  
 यह चिर परिचित भारत स्वर फिर इसे जगाओ ।<sup>३</sup>

और एकमेवाद्वितीय नेह नानास्ति किञ्चन<sup>४</sup> के आधारभूत निम्न उद्गार प्रकट किये हैं—

वही निरोहित जड में जो चेतन में विकसित  
 वही फूल मधु सुरभि वही मधुलिह चिर गुजित ।  
 वस्तु भद ये चिर अमृत ही भव में मूर्तित  
 वह अज्ञय स्वतः सचार्जित एक, अखण्डित ।<sup>५</sup>

किन्तु वास्तविक भगवान् विश्व के ऊपर उठा हुआ सनातन स्थानातीत और कालातीत ब्रह्म है जो स्थान और काल में उस दृश्यमान विश्व को समभाले हुए है ।<sup>६</sup> जसा कि तदतरम्य सर्वस्य तद्गु सर्वस्यास्य बाह्यतः<sup>७</sup> श्रुति घोषित करती है । जत पतंजी पुन कहते हैं—

एक एकता स न द्वन्द्व बहु मुख शिख गोभन  
 सव सव स परे अनिवचनीय वह परम ।

१ पतंजी पल्लव चतुर्थावृत्ति पृ० २५

२ ईशा वास्यमिन् सव यत्किञ्च जगत्या जगत ।

तेन त्यक्तैन भुजीया मा गव कस्य स्वित् घनम् ॥—इशापनिषद् १

३ स्वर्ण किरण प्रथम सं० पृ० १२६

४ छान्दाग्य ६।२।१

५ स्वर्ण किरण प्रथम सं० पृ० १२५

६ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयामक निबन्ध पृ० २०

७ ब्रह्म समस्त जगत में भी है और उसने बाहर भी है ।—ईशापनिषद् ५

८ स्वर्ण किरण प्र सं० पृ० १३६

इसी प्रकार प्रमाद जी की

अखिल विश्व में रमा हुआ है राम हमारा

महादेवी जी की

सभी में है स्वर्गीय विवास

वही ब्रह्मलक्ष्मी कर्मणीय पवास <sup>१</sup>

मथिलाशरण गुप्त की

रमा है सबमें राम

वही सलोना श्याम !<sup>२</sup>

तथा गाथाशरण सिंह की

हे तुम्हारा वास निश्चिन्त विश्व में विश्वाम में—जसा पत्तियाँ उपनिषद के ईशावास्यमिदं सर्व एष सर्वेषु भूतेषु शून्योत्तमा अथवा विश्वाधिप सर्व भूतेषु शून्य <sup>३</sup> जस महावाक्या की अनशून्य मान हैं ।

अक्षर के सम्बन्ध में कठोपनिषत् का उदघोष है—

‘यह अक्षर ही ता ब्रह्म है और यह अक्षर ही परब्रह्म है—सी अक्षर को जान कर जो जिसका चाहता है उसका वहाँ मिल जाना है।’<sup>४</sup> अक्षर ब्रह्म के इस चमत्कार को निराला जी ने बड़े ही मनोयोग से प्रकामित किया है—

वण चमत्कार

एक एक शब्द बोधा ध्वनिभय साकार ।

\* \* \*

सुनी मुक्ति वचन में बधी फिर अपार

वण चमत्कार ।

१ वादन कुसुम पृ० ८६

२ आधुनिक कवि पृ० १३

३ अक्षर त्रिनीयावृत्ति २००७ पृष्ठ १७

४ आधुनिक कवि आरम्भ-वचन पृष्ठ ९

५ श्रुता० ४।१५

६ एतद् यवाग्रं ब्रह्म एतद् यवाग्रं परम ।

एतद् यवाग्रं जात्वा यो यच्छिञ्चति तस्य तत ॥

कठोपनिषत् त्रितीय बल्ली १६, प्रथम अध्याय ।

शत शत रग खिला, मिला प्राण,  
गूजे गगनागण भये अगण्य गान  
लिखी रूप की छवि झड़त कर स्वर-तार

वण चमत्कार ! १

उपयुक्त पक्तियों में यह दिखाया गया है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि और उनकी त्रियाशीलता अक्षर ब्रह्म का ही निरूपण चमत्कार है।

पन्त जी ने भी उपनिषद के विश्वातीत एव कूटस्थ अक्षर<sup>२</sup> ब्रह्म के विषय में यह समीक्षा उपस्थित की है—

चिर अक्षर ही जीवों में क्षर  
स्वयं मुक्त वह पूण परा पर  
विश्व विवतन क्षर विकास की  
है अनन्त शाश्वती प्रताक्षा ।<sup>३</sup>

ऋषियों ने ब्रह्म को अजमा अजर अमर अभय<sup>४</sup> नित्य निष्काम अकाम आत्मकाम<sup>५</sup> अदृश्य अस्पृश्य असग<sup>६</sup> जन में स्थित अग्नि<sup>७</sup> आत्मा कहा है। ब्रह्म के इही लक्षणों अथवा विशेषताओं का आरोप पन्त जी ने अपनी अप्सरा में कर लिया है जो सज्ञा में तो अप्सरा है किन्तु तत्त्वतः है ब्रह्म ही—

जग के सुख दुख पाप-ताप  
तण्णा ज्वाला से हीन  
जग जन्म भय मरण शून्य  
मोक्षनमयि नित्य-नवीन  
अतल विश्व शोभा-वारिधि में  
मज्जित जीवन-मीन

१ गीतिका पृ० ९३

२ क्षिति जल अग्नि पवन नभ से पर

जो ध्रुव राम अमर चिर अक्षर —स्वर्ण किरण पृ १७४

३ स्वर्ण किरण पृ १७५-७६

४ बहुदारण्यक ४।४।२५

५ योज्जामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो ।—बहुदारण्यक ४।४।६

६ असगो न हि सयते —। वह आत्मिकि मनही पडता ।—बहुदा ४।५।१५

७ स एवग्नि सति सनिविष्ट ।—श्वेता० ६।१५

तुम अदश्य अस्पृश्य अप्सरी  
निज सुख म तल्लीन ।<sup>१</sup>

उपनिषद का यह ब्रह्म 'सत्य, ज्ञान और अनन्त'<sup>२</sup>—रूप है और वही सीम-असीम, क्षर-अक्षर जड चेतन रूप म सबत्र प्रकाशित हो रहा है—

है सत्य एक,—जो जड चेतन  
क्षर अक्षर, परम अनन्त सान्त ।<sup>३</sup>

श्रुति कहती है कि 'ब्रह्म के अगभूत काय-कारण समुदाय म यह सम्पूर्ण जगत व्याप्त हो रहा है'<sup>४</sup> इस तथ्य को पत जी ने इस प्रकार यवत किया है—

ज्ञानी कर्मों शिल्पी सैनिक  
एक सत्य के अवयव निश्चित  
अन्तपथ से निखिल चराचर  
आत्मा के बल से सपोषित ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों और उपनिषदों में जो भगवान का वणन अविक्रम और अचिन्त्य रूप म हुआ है<sup>५</sup> उमकी सम्यक अभिव्यक्ति छायावाद का कविता में हुई है । उपनिषदों में भगवान के लिए परम्पर विरोधी विशेषण भी प्रयुक्त हुए हैं जो यह सूचित करते हैं कि उस पर अनुभवगम्य पारणाएँ लागू नहीं की जा सकती । अर्थात् उपनिषद् का वह गति नहीं करता है और फिर भी यह गति करता है वह बहुत दूर है फिर भी पास है<sup>६</sup>—जस विशेषणों से भगवान का दुहरा स्वरूप सामने आता है । एक तो उसका सत (अस्तित्वमय) स्वरूप और एक नाम रूपमय स्वरूप । वह परा अघात लोकातीत है और अपरा अर्थात् अन्तर्व्यापी है ससार के भीतर और बाहर दोनों जगह विद्यमान है ।<sup>७</sup> छायावाद का कवि ब्रह्म के परा और 'अपरा'

१ पन्त गुजन तृतीय सस्वरण पृष्ठ १००

२ तन्निरियापनिषद ब्रह्मानन्द बह्वी, प्रथम अनुवाक

३ पन्त, उत्तरा, प्रथम सस्वरण, पृष्ठ ८८

४ तस्यावयवभूतेस्तु व्याप्त सर्वमिद जगत ।—श्वेता० ४।१०

५ स्वर्ण किरण प्रथम सस्वरण, पृष्ठ १२८

६ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध पृ० २६

७ ईसोपनिषद् ५

८ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध पृ० २५

दाना रूपा को अपने काय म चित्रित करता हैं यह बात हमारे उपयुक्त विवेचन से पूणत स्पष्ट है ।

### आनन्दमय ब्रह्म

उपनिषदों का ब्रह्म स्वभावतः असीम सर्वोच्च निष्कलुष और अपनी एकता और परम आनन्द से इस प्रकार युक्त है कि उसमें किसी विजातीय तत्व का प्रवेश नहीं हो सकता ।<sup>१</sup> उपनिषदों ने उसे सच्चिदानन्द<sup>२</sup> कहा है और सत् चित आनन्द रूप में ही वह समस्त वस्तुओं में व्याप्त है । तनिर्रीय उपनिषद के शास्त्रों में विश्व की प्रक्रिया भौतिक तत्व (अन्न) जीवन (प्राण), मन (मनस), बुद्धि (विज्ञान) और परम ज्ञान (आनन्द) की पांच अवस्थाओं से गुजरी है ।<sup>३</sup> छायावाद के कवि ने इस दार्शनिक सत्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

अन्नप्राण मन आत्मा केवल  
ज्ञान भेद है सत्य के परम  
इन सबमें चिर व्याप्त ईश्वर  
मुक्त सच्चिदानन्द चिरतन ।<sup>४</sup>

विज्ञानमानन्द ब्रह्म<sup>५</sup> आनन्दो ब्रह्म त्वि यजानात्<sup>६</sup> जादि प्रतिया भी ब्रह्म को आनन्दमय घोषित करती हैं । आनन्द ने ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं उत्पन्न होकर आनन्द से ही जीते हैं और इस लोक से प्रयाण करते हुए आनन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं ।<sup>७</sup> ब्रह्म आनन्दमय है अतः रस रूप है (रसो व स ) और जीवात्मा रस रूप ब्रह्म को प्राप्त करके ही आनन्दित होता है । वही रसमय ब्रह्म आनन्द स्वरूप आकाश की भाँति सबमें व्याप्त है ।<sup>८</sup> उपनिषद के इसी सबव्यापी एव सब को आनन्द प्रदान करने वाले रसमय ब्रह्म से प्रभावित होकर प्रसाद जी ने कहा है—

- १ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध पृ० २५
- २ सत्य ज्ञान सच्चिदानन्दरूप शुक्लरहस्योपनिषद तृतीय खण्ड
- ३ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध, प० ४७
- ४ पत, स्वर्णविरण प्रथम संस्करण पृ० १३३
- ५ बृहदारण्यक ३।९।२८
- ६ तनिर्रीय उपनिषद पष्ठ अनुवाक
- ७ वही,
- ८ वही, सप्तम अनुवाक

सब में पुलकित कर रसमय

रहता वह भाव परम है ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार आनन्दाद्भयेव हृत्विमानि भूतानि जायन्ते के आधारभूत पन्त जी ने अखिल स्रष्टि आनन्द प्रणीता<sup>२</sup> कह दिया है। और ब्रह्म वदममत ब्रह्म अमत स्वरूप है (मु० उ० २।२।११) के आधार पर यह धारित किया है कि जीवन में निरंतर पानामृत की धार छलकती रहती है।<sup>३</sup> इसी आनन्दमय ब्रह्म की सेवा में छायावाद के कवि का हृदय लीन है।<sup>४</sup> और उपनिषद के इसी 'चिर अमय, चिर नूतन प्रकाश एव आनन्द अथवा रस रूप ब्रह्म में वह 'जग के उबर आँगन में ज्योतिमय जीवन का वपण की कामना करता रहता है।<sup>५</sup>

ब्रह्मानन्द के माह अथवा ईश्वर में चिर विश्वास<sup>६</sup> के कारण ही छायावाद का कवि उच्चादर्शों तथा सम्स्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का प्रमी बना<sup>७</sup> जिससे सासारिक जीवन की बटुता के भय भी वह नवीन आशा और नवीन अभिनापा की स्थापना करने में सफलता प्राप्त हो सता तथा जीवन के सुख दुःख को अस्थिर मानकर मन के जीवन (ब्रह्मानन्द) का अवलम्ब ले सका।<sup>८</sup> अस्तु विश्व में विश्वातीन निगुण ब्रह्म के मधुर संगीत की चिर व्याप्ति का ध्यान

१ कामायनी द्वितीय सम्स्करण, प० २०६

२ स्वर्णकिरण पृ० १७६

३ चूम सुख-दुःख के पुलकित अपार छलकती पानामृत की धार। —पल्लव, पृ० ८८

४ तुम्हारी सेवा में अनजान हृदय है मरा अन्तर्धान —पल्लव प०

५ जग के उबर आँगन में बरसो ज्योतिमय जीवन।  
वरसा सधु-नधु तण स्रष्ट पर  
ह चिर अमय, चिर-नूतन।

—रत्न गञ्जन तृतीय सम्स्करण पृ० ७९

६ पन्न पल्लविनी पृ० २३२

७ वही पृ० २३१

८ अग्रिम है जग का सुख दुःख जीवन ही नित्य चिरतन।  
सुख दुःख का ऊपर, मन का जीवन ही र अवलम्बन।

पन्न, पल्लविनी, पृ० २०८

करके उसके मन प्राणा ने सुख दुःख के पुलिना को डुबा कर अमरत्व का अनुभव भा किया।<sup>१</sup> किन्तु श्रुतियो में जहाँ ब्रह्म को निर्विणोप और निगुण कहा गया है वहाँ उसे त्रि-य गुणा से आपूरित भी बताया गया है।<sup>२</sup> जब उसे सष्टि से पर्यक्त करके देखा जाता है तब वह निगुण होता है और जब उस सब वस्तुओं के रूप में देखा जाता है तब वह सगुण होता है।<sup>३</sup> ठीक उसी तरह छायावाद का कवि भी अपने ब्रह्म को—

निरिण छवि की छवि ! तुम छवि हीन<sup>४</sup>

बहकर उस उक्त दोनो लक्षणों (सगुण निगुण) से युक्त बताया है। अतः यदि वह एक ओर निगुण ब्रह्म को आनन्दरूप धोपित करता है तो दूसरी ओर सगुण आनन्दरूप से अपने हृदय बीच निज धाम बनाने तथा पूणकाम करने की प्रार्थना भी करता है—

मनो अब आके आनन्दरूप  
रहे तब पद में आठो याम  
बना लो हृदय बीच निज धाम  
करो हमको प्रभू पूरण काम।<sup>५</sup>

### आत्मा

हिंदू विचारभारत में किसी व्यक्ति को परमात्मा के साथ एकरूप मानना साधारण बात है। उपनिषदों में बताया गया है कि पूणतया जागरित आत्मा जो परब्रह्म के साथ वास्तविक सम्बन्ध को समझ लेती है इस बात

मनो ब्रह्म त्ति व्यजानात्—मन ही ब्रह्म है इस प्रकार समझो।

तत्तिरीयोपनिषद चतुर्थ अनुवाक

- १ दूर बन के ओ राजकुमार !  
अखिल उर उर में तरे गान  
मधुर इन गीता से सुकुमार !  
अमर मरे जीवन औ प्राण !

—पन्त गुजन ततीय मस्करण पृ० ८३

- २ देखिए, श्वेता० ३।१९ माडूक्य० ६७  
३ राधाट्टणन भगवद्गीता परिचयात्मक निबन्ध पृ० २७  
४ पन्त गुजन पृ० ७८  
५ प्रसाद, वानर-कुसुम, पंचम सस्वरण पृ० ५९

को देता लती है कि वह मूलतः परब्रह्म के साथ एकरूप है और वह अपने ब्रह्म के साथ एकरूप होने की घोषणा भी करती है।<sup>१</sup> कौशातकि उपनिषद् (३) में द्रुपद प्रतदन से कहते हैं मैं प्राण हूँ मैं चेतन आत्मा हूँ मुझे जानने और प्राण मान कर मरी पूजा करो। जा मुझे जीवन या अमरता मानकर मरी पूजा करता है वह हम ससार में पूर्ण जीवन प्राप्त करता है वह स्वर्गलोक में जाकर अमरता और अक्षय्य प्राप्त करता है। गीता में भगवान् ने कहा है राग भय और शोक से मुक्त होकर सुख में ही रहकर सुख में शरण लेकर अनेक लोग ज्ञानमय तप द्वारा पवित्र होकर मरे हुए को प्राप्त कर चुके हैं।<sup>२</sup> कृष्ण ने जिस श्रिता या दावा किया है वह सब सच्च आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त होने वाला सामान्य प्रतिफल है। वह कोई ऐसा नायक नहीं है जो कभी पृथ्वी पर चलता फिरता था और अपने प्रिय मित्र और शिष्य को उपदेश देने के बाद इस पृथ्वी का छोड़कर चला गया है अपितु वह तो सब जगह विद्यमान है और हम सबके अन्दर विद्यमान है और वह सदा हम उपदेश देने की तैयारी करता है जसा कि वह कभी भी किसी को भी उपदेश देने के लिए तैयार था। वह कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो अब समाप्त हो चुका है अपितु वह तो अतर्क्य आत्मा है जो हमारी आध्यात्मिक चेतना का लक्ष्य है।<sup>३</sup>

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि उपनिषद् और गीता में ब्रह्म और आत्मा एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। कही-कहा तो स्पष्ट शब्दों में कहा

१ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबंध पृ० ३४

२ शक्यवाच्य ने इस पर टीका करते हुए कहा है हमका अर्थ यह है कि द्रुपद ने जो एक श्रिता है शास्त्रों के अनुसार ऋषियों का प्राप्त होने वाली दृष्टि से अपने-आपको परब्रह्म के रूप में दर्शाते हुए यह कहा है कि मुझे जानने और प्राण मान कर मरी पूजा करो। जा मुझे जीवन या अमरता मानकर मरी पूजा करता है वह हम ससार में पूर्ण जीवन प्राप्त करता है वह स्वर्गलोक में जाकर अमरता और अक्षय्य प्राप्त करता है। गीता में भगवान् ने कहा है राग भय और शोक से मुक्त होकर सुख में ही रहकर सुख में शरण लेकर अनेक लोग ज्ञानमय तप द्वारा पवित्र होकर मरे हुए को प्राप्त कर चुके हैं। कृष्ण ने जिस श्रिता या दावा किया है वह सब सच्च आध्यात्मिक अवस्था को प्राप्त होने वाला सामान्य प्रतिफल है। वह कोई ऐसा नायक नहीं है जो कभी पृथ्वी पर चलता फिरता था और अपने प्रिय मित्र और शिष्य को उपदेश देने के बाद इस पृथ्वी का छोड़कर चला गया है अपितु वह तो सब जगह विद्यमान है और हम सबके अन्दर विद्यमान है और वह सदा हम उपदेश देने की तैयारी करता है जसा कि वह कभी भी किसी को भी उपदेश देने के लिए तैयार था। वह कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो अब समाप्त हो चुका है अपितु वह तो अतर्क्य आत्मा है जो हमारी आध्यात्मिक चेतना का लक्ष्य है।  
कहा, पृ० ३४

३ गीता ४।१०

४ राधाकृष्णन भगवद्गीता परिचयात्मक निबंध पृ० ३४ ३५



गया है कि यह आत्मा ही ब्रह्म है ।<sup>१</sup> इस प्रकार आत्मा भी ज्ञानमय आनन्द मय तथा मुक्त है। अतः निराला जी कहते हैं—

स्थित म आनन्द म चिरकाल  
जाल मुक्त । नानाम्बुधि  
बीचिरहित ।<sup>२</sup>

आत्मा और ब्रह्म म अभेद के कारण ही वदिक कृपि न कहा है कि यह ब्राह्मण जाति, यह क्षत्रिय जाति य नोक ये दवगण, ये भूतगण और यह सब जो कुछ भी है सब आत्मा ही है ।<sup>३</sup> किन्तु इसका अनुभव सबको नहीं होता । इसके उत्तर म कठोपनिषद कहती है कि आत्मा सभी वस्तुओ मे निहित (तो) है किन्तु प्रकट रूप म दिखाई नहीं देती । जा सूक्ष्मदर्शी है वे अपनी प्रखर बुद्धि से उमे दख लेते है ।<sup>४</sup> आत्मा की पहचान म छायावाद का कवि इस सूक्ष्म दर्शिता का परिचय देता हुआ पाया जाता है । समस्त भूतसमुदाय को उसने अपनी भावना म आत्मवत् ही देखा है—

महै नीना आकाश न केवल  
केवन अनिल न चचल  
इनम चिर आनन्द भरा  
मरी आत्मा का उज्वल ।

ॐ            ॐ            ॐ  
मैं इस जग मे नहा अकेला  
मुझको तनिक न सशय  
वही चाह है कण कण म  
जो मरे उर म निश्चय ।<sup>५</sup>

इसी प्रकार प्रसाद जी ने भी कहा है—

आत्मा सब की सत्ता थी, है रहेगी मान तो  
नित्य चेतन सूत्र की गुरिया सभी को जान लो ।<sup>६</sup>

- 
- १ अयमात्मा ब्रह्म—बृहदारण्यक, २।५।१९  
२ निराला परिमल पृ २३३ ३४  
३ इदं ब्रह्म क्षत्रमिमे तावा इम देवा इमानि भूतानीदं सब यदयमात्मा ।  
बृहदारण्यक २।४।६  
४ एम सर्वेषु भूतेषु गूणोत्तमा न प्रवाशते । कठोपनिषद १।३।१२  
५ पन्त स्वर्ण किरण प्रथम सस्करण, पृ० ६६  
६ वानन-बुसुम पृ ११६

गीता में भगवान ने कहा है कि सबत्र समदष्टि रहनेवाला योगयुक्त पुरुष सब भूतो म आत्मा का और आत्मा म सब भूता को देखता है ।<sup>१</sup> उस भाव नी सम्यक अभियक्ति पत जी की निम्न पक्तिया म मिन जाता है—

मेरे भीतर पङ्क्तिमित ब्रह्म  
उदित अस्त शशि दिनकर  
मैं हूँ सबन एक एव रे  
मुझ से निविल चराचर ।<sup>२</sup>

इसी प्रकार निराला जी ने भी यह दिखाया है कि योगभुक्त पुरुष मन, बुद्धि और अहंकार से मुक्त होकर अपने ही भीतर सूर्य चन्द्र ग्रह तारे और अनगिनत ग्रहणाण्ड भांड' देता है ।<sup>३</sup> अन्तर केवल इतना है कि जहाँ पन्त जी न अपन को यागी के कक्ष म रखा है वहाँ निराला जी ने गीता के योग भाग का आस्वस्थ प्रस्थान भर किया है । इसी से जहाँ पन्त जी ने 'महूँ सबसे एक' कह कर एक योगी की भाँति सब भना म आत्मा को देखने का दावा किया है वहाँ निराला जी ने समस्त भूतवय को एकता का, व्यष्टि तो समष्टि म अभिन्न ह, कह कर प्रतिपादन भर किया है ।

अपि न आत्मा को अविनाशी और अमग असक्ति से रहित बताया है ।<sup>४</sup> वह सत्कार म आप्त हाते हुए भी निलिप्त है । अर्थात् वह सात्त्विक कदम से पक्ति नहीं होता । इसी से पन्त जी ने उम शुक्र<sup>५</sup> (परम विगुद्ध तत्व) तथा अनन्त का मुक्त मीन कहा है । आत्मा क निरामय सौन्दर्य एव निस्तग सुख का बडा ही सुन्दर एव भावपूर्ण चित्रण हम पन्त जी की एक तारा नामक कविता म मिनता है—

तुम्हारा काञ्छिए मत पत्नर नायत्किचिदस्ति धनजय ।  
मयि सबमिद प्रोत सूत्र मणिगण ह्व ॥

मेरे अनिरिक्त किञ्चित मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है । यह सम्पूर्ण जगत सूत्र म मणिदा क सदश मुझ म गुथा हुआ है । —गीता, ७।७

१ गीता ६।२९

२ स्वर्ण किरण पृ ६६

३ परिमल, पचबटी प्रमग, पृष्ठ २२२ २३

४ स एष ननि नत्यात्मा, अगृह्योन हि गहृष्ये शीर्षो न हि शीपते ।  
जसगो ऽ हि सयते ।—बृहत्स० ४।५।१५

५ तन्नेव शुक्र तद ब्रह्म । कठोपनिषत् २।२।८

चिर अविक्ल पर तारक अमर !

जानता नही वह छत्र वर !

वह रे अनन्त का मुक्त भीम अपने असग सुख म विलीन

स्थित निरा स्वरूप म चिर नवीन !

निष्कप शिखा सा वह निरपम भेन्ता जगत जीवन का तम

वह शुद्ध प्रबुद्ध गुफ वह सम ।<sup>१</sup>

उपनिषदों के अनुसार ससार के जितने स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ हैं सभी आत्मा के ही रूप हैं। जितनी वस्तुएँ ससार में हैं सभी का सार आत्मा ही है। उपनिषदों में सबसे विशेष महत्व आत्मा ही को दिया गया है कारण यह है कि इसके समान प्रिय वस्तु दूसरी नहीं है।<sup>२</sup> उस प्रकार उपनिषदों के मत में आत्म सुख ही परम सुख है जिसकी प्राप्ति कामनानाश से ही सम्भव है।<sup>३</sup> सम्भवतः इसीलिए छायावाद की कविता में कामना के नाश और साधना पर विशेष बल दिया गया है—

तच्छ ह यह भावना इच्छा निया ह नाम जिसको

साधना ही श्रय अब तक शुभ हुआ ह प्रय किसको

कहा पारस छू जिम लोहा बन काचन ग्लौ ?

अन मन की मुरलिके मत गान गा तू कामना का !

इष्ट है तरे लिए—साधन बन तू साधना का ?<sup>४</sup>

आत्मा व गुण (सत चित्त-आनन्द) के सामने सासारिक सुख दुःख को नश्वर<sup>५</sup> छनना अवका मात्र भाया मान कर तिरस्कृत अथवा विस्मृत कर दिया गया है—

आत्मा का गुण सत्य सत्य म

छाया का छल कहीं समाए ?

मुख दुःख धूप छाँट का परदा

जिसके परे सत्य का घर ह ।<sup>६</sup>

१ गुञ्जन तृतीय संस्करण पृष्ठ ८६

२ डा० उमश मिश्र भारतीय दशन पृष्ठ ५८ बृहत्सा० ४।५।६

३ बह्मसंस्कृत ४।४।६

४ नरेंद्र शर्मा मिटटी और फून तृतीय संस्करण पृ० ३

५ सस भी नश्वर दुःख भी नश्वर यद्यपि सख सुख सबके साथी  
कौन घुन फिर सोच फिर म आज घडी क्या है कन क्या थी।

नरेंद्र शर्मा पत्रिका बन तृतीय संस्करण १९४६ पृष्ठ ५३

६ वही पृष्ठ ५५

एक दिव्य अथवा आत्मिक सुख की खोज में ही छायावाद के कवि ने छायावन में विचरण किया, जिसके कारण उस पलायनवादी कहा गया।<sup>१</sup> यह अतीन्द्रिय अथवा आत्मानन्द की खोज का ही फल था जो आर्थिक विपन्नता के उपरान्त भी छायावाद के कवि ने भौतिक कान्ति का स्वर ऊँचा नहीं किया। अलौकिक आनन्द के लोभ के कारण ही छायावाद का काव्य सहनशीलता और सहिष्णुता की पावन भावना से अनुप्राणित है। और अतीन्द्रिय आनन्द के आग्रह में ही उसमें 'कमयाग'<sup>२</sup> की भावना निरपेक्ष साधना,<sup>३</sup> उत्सव की उत्कण्ठा,<sup>४</sup> सुख दुःख में समभाव<sup>५</sup> का सचयन प्रचुर मात्रा में हुआ है। उसमें विवेक उपेक्षा काटसहिष्णुता आदि का आध्यात्मिक अथवा मानवीय गुणों के प्रादुर्भाव तथा भौतिक मूर्खता एवं तज्जनित उच्छ्वसताओं के अभाव का कारण उसका आत्म अथवा चतनावादी दृष्टिकोण ही है।

### जीव

उपनिषद् के मत में 'ब्रह्म' के मूल और अमूल में दो रूप हैं। यह मर्त्य और अमर्त्य, स्थिर तथा अस्थिर (मत) सत (स्वलक्षण) तथा त्यत (अवर्णनीय) है। इस ही परमात्मा भी कहते हैं। यही परमात्मा अविद्या के कारण बंधन में पड़ कर 'जीवात्मा' कहलाता है, पूवजन्म के कर्म के अनुसार सुख और दुःख के भोग के लिए इस ससार में आता है और जन्म मरण में युक्त रहता है। ससार में आने के समय भोग के अनुकूल स्थूल शरीर को धारण करता है। उपनिषद् का कहना है कि यह जीव अपने भोग के लिए स्वप्न में स्वयं नवीन-नवीन विषयों की सृष्टि कर लेता है। परन्तु वस्तुतः स्वप्न का भी

१. तुम्हें खोजते छाया-वन में अब भी कवि विख्यात

पन्त, गुजन, तृतीय सस्वरण, पृष्ठ ९६

२. कमयाग से जीवन के सपनों का स्वयं मिलेगा,

इसी विपिन में मानस की आशा का कुसुम मिलेगा।

प्रसाद कामायनी, द्वितीय सस्वरण, पृष्ठ १२१

३. अलम है इष्ट अत अनमोल साधना ही जीवन का मोन।

पन्त पल्लविनी, पृष्ठ ८८

४. महल है अरे, आत्म बलिदान,—पन्त, पल्लविनी पृष्ठ ८६

५. मानव जीवन बेटी पर परिणय हो विरह मिलन का

दुःख सुख दोनों नावेगें है मेल जीव का मन का।

प्रसाद, आसू दानम, सस्वरण, पृष्ठ ४९

मण्टि ब्रह्म ही की है। जीवात्मा और ब्रह्म ता एक ही है।<sup>१</sup> उपनिषद म जीव के विषय म कहा गया है कि जैसे जन्ती हुई आग से उसी समान रूपवाल सहस्रा स्फुलिंग निकलते रहते हैं उसी प्रकार हे सोम्य ! अविनाशी ब्रह्म से नाना प्रकार के भाव (जीव) उत्पन्न हाते और उही म विलीन होते हैं<sup>२</sup> इस प्रकार उपनिषद म अश्व अशी भाव स जीव और ब्रह्म की एकता निरूपित की गई है। ब्रह्म और जीव म एकता स्थापित करने वाले आग और उसके स्फुलिंग के उत्तम उदाहरण के आधारभूत ही पल्ल जी ने मानव (जीव) को स्फुलिंग<sup>३</sup> कहा है। अग्नि रूप ब्रह्म अविनाशी है अतः उसके स्फुलिंग रूप जीव को उहीने चिरता और नित्य भी कहा है। महादेवी जा ने भी उगयुक्त उदाहरण को थोडा परिवर्तन (आग वाला स्फुलिंग उताप) के साथ अपना कर जीव और ब्रह्म की एकता को अक्षण रखा ह।<sup>४</sup>

इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद मे ब्रह्म और जीव की एकता को मूय और उसकी किरणों के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया है।<sup>५</sup> इसी मंत्र के आधार भूत महादेवी जी ने जीव और ब्रह्म की एकता को उत्तम पुरुष मे इन प्रकार यक्त किया है—

१ १० उमेश मिथ भारतीय दशन पृष्ठ ५९

तुम जीवो मे ही हो ईश्वर।—पन्त युगवाणी, पृष्ठ १ ०

२ यथा सुदीप्नात् पावकाद विस्फुलिंगा)

सहस्रश प्रभवते सरूपा ।

तयाभराद विविधा सोम्य भावा

प्रजायते तत्र चवापि यन्ति ॥ मु उ० २।१।१

३ मानव नित्य स्फुलिंग चिरतन पल्लविनी पृष्ठ २४५

४ कर पाआगे भिन्न वभी क्या

ज्वाना रा उताप ?—रश्मि पृष्ठ ६२

५ यथा गाय्म मरीचयो कस्यास्त गच्छन् सर्वा एतस्मिस्तजोमण्डल एकी भवन्ति । ता पुन पुनरुत्थत प्रचरन्ति ।—हे गाय्म ! जिस प्रकार अन्त होते हुए मूय की किरणें इस तेजोमडल म सबकी सब एक हो जाती हैं (और) उदय होने पर वे पुन पुन सब ओर फलती रहती हैं वग ही (निद्रा के समय) वे सब इन्द्रियां परमदेव म एक हो जाती ह

मैं तुम में हूँ एक एह है

जिसे रश्मि प्रकाश

किन्तु मत्र के पूरे भाव अर्थात् सत्त्विकाल में सूय की किरणा के समान ब्रह्म से जीवों की उत्पत्ति तथा प्रलयकाल में अस्त होने हुए सूय में एकाकार होती हुई किरणा की भाँति समस्त जीवों का ब्रह्म में समाहित हो जाना को बवयिनी न (चाँद को सूय का स्थान देकर) इस प्रकार व्यक्त किया है—

तुम हो विष्णु के विम्ब और मैं

मुग्धा रश्मि अज्ञान

जिसे खाँच साने अम्बिर के

कौतूहल के बाण ।

ओस धुमे पय में छिप तेरा

जब आता थाहकान

भूल अधूरा खेल तुम्हा में

होती अन्तर्धान ।<sup>१</sup>

किन्तु महादेवी जी की उपयुक्त पत्तियाँ में आया हुआ चाँद और उसकी रश्मियों का उदाहरण उपनिषद् में मत्र में आया हुआ सूय और उसकी किरणा के उदाहरण की भाँति केवल जीवों की उत्पत्ति और उनके विलयन का ही परिचय नहीं करना, प्रत्युत जागृत आयेय सम्बन्ध से मानुष की सुन्दर समष्टि भी करता है ।

पूर्वोक्त मत्र (प्रश्न ४१२) में ब्रह्म की निष्क्रिय स्थिति का निरा बहा गया है जिसमें समस्त इन्द्रियाँ ब्रह्म में एक हो जाती हैं । किन्तु महादेवी क्या न जसा कि उनमें मन्त्रों की शक्तियों अथवा शक्तियों में खाँचा परिवर्तन करके उन्हें धरने के प्रवृत्ति प्रयत्न मानलूम पड़ती है नाच का ही ब्रह्म और उनमें उत्पन्न होने वाले स्वप्नों का जीव का प्रत्यक्ष मान कर नाच को ही जीव का उपक्रम और उदाहरण मान लिया है ।<sup>१</sup> इस प्रकार उन्होंने ब्रह्म और जीव

१ रश्मि, पृ० ६२

२ रश्मि पृ० ५६ ५७

३ स्वर लक्ष्मी में मधुर स्वप्न की

तुम निरा के तार

जिसे आता इस जीवन का

उपक्रम उदाहरण।—रश्मि पृ० ५९

की एकता को यत्न करने के लिए कुछ स्वतंत्र उदाहरणों, जैसे समुद्र और उमकी सहर<sup>१</sup> बसन्त और उसकी थी<sup>२</sup> आलोक और तारे<sup>३</sup> आदि का प्रयोग किया है। उदाहरणों द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता को यत्न करने की प्रवृत्ति निराला और पत म भी पाई जाती है। निराला जी ने विटप और उमकी गाखा<sup>४</sup> और पत जी ने सागर और उसकी बूद<sup>५</sup> के उदाहरणों द्वारा ब्रह्म और जीव की एकता को स्पष्ट किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादात्मक उपनिषदों के ब्रह्मवच्य प्रतिपादक उदाहरणों की कही पर ज्या का त्या और कही पर थोड़ा परिवर्तन के साथ अपनाया गया है और कही-कही पर उही के आधारभूत स्वतंत्र अथवा नवीन उदाहरणों की कल्पना कर ली गई है।

ऋषिया ने अहब्रह्मास्मि साऽह तत्त्वमसि आदि महावाक्यों द्वारा स्पष्ट रूप में जीव और ब्रह्म में अभेद बताया है। इन महावाक्यों के आधारभूत छायावादी कवियों ने रहस्य के क्षेत्र में आत्मा परमात्मा की एकता एवं विरह मिलन के अनेक गीत गाय हैं। इसी से स्थान स्थान पर उही उक्त महावाक्यों का सिद्धांत रूप में भी प्रवचन किया है।

### अहब्रह्मास्मि—

निराला जी ने स्पष्ट कहा है कि मौलिकता के प्रश्न पर बारीक खान घीन होने पर निश्चय है ब्रह्म ही हर सृष्टि के मूल में दृष्टिगोचर<sup>६</sup> होगा। निराला जी की इस पनी अतद पिटि ने यवहार जगत में कुकुमुत्ता जसी अपूर्त एवं उपहासास्पद वस्तु में भी अहब्रह्मास्मि और सोऽह के मूल सिद्धांत को पकड़ लिया। अहब्रह्मास्मि अथवा सोऽह की विश्वव्यापिनी शक्तता का प्रत्यक्ष उहां कुकुमुत्ता नामक काव्य में कराया है।<sup>७</sup> इसी प्रकार बालकृष्ण शर्मा नवीन ने कहा है—

१ २ ३ रश्मि क्रमशः पृ० ५७ ५८ और ६१

४ तुम नन्दन-वन घन विटप

और मैं सुख शीतल-तल शाला । —परिमल पृ ८१

५ वह एक बूद सागर अपार । —पल्लविनी पृ० २५४

६ पन्त और पल्लव प्रथमावृत्ति १९४९, पृ ८४

७ सब जगह तू देख ले

सुबह का सूरज हू मैं ही

चाँद मैं ही गाम का । आदि—

निराला कुकुरमुत्ता, पृ० ६

मैं रवि हूँ, पावक हूँ  
शशि हूँ शीतल सुमन सुवास  
अटल शक्ति है किन्तु निहित है  
मुख्यम हास विनास ।<sup>१</sup>

किन्तु निराला जी ने जहाँ 'अयमस्मि सब' पर ही विशय बल दिया है, वहाँ 'नवीन' जी ने उसके साथ ही ब्रह्म के आनन्दमय स्वरूप का भी संकेत कर दिया है ।

सृष्टि के पूर्व जिस प्रकार अव्यक्त ब्रह्म में यह व्यक्त जगत् निहित था उसी प्रकार महात्मी जी ने अपनी ही एकता को समस्त सृष्टि का उपादान कारण माना है ।<sup>२</sup> और निराला जी ने सबथ अपनी ही ज्योति का विस्तार देखा है ।<sup>३</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी कवियों ने व्यक्त और अव्यक्त, सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों में अपने को ब्रह्मवत् सिद्ध किया है । इस प्रवृत्ति के कारण ही छायावाद में अहंभाव की प्रचुरता है ।

### तत्त्वमसि

छायावादी उपनिषद में त्वमसि<sup>४</sup> महावाक्य द्वारा 'त्वम' (जीव) तथा तत् (ब्रह्म) में अभेद स्थापित किया गया है । इसी मन्त्र से प्रभावित होकर निराला जी ने लिखा है—

जागो फिर एक बार

तुम हो महान, तुम सदा हा महान

ब्रह्म हो तुम ।<sup>५</sup>

और पन्त जी ने अपने सन्नासी से प्रार्थना की है—

१ छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य स० धर्मन्द ब्रह्मचारी पृ० १५२

२ एकता में अपनी अज्ञान समाया या सत्तार । —रश्मि पृ० ७६

३ ज्योतिमय चारा और परिचय सब अपना ही । —परिमल, पृ० २३३

४ छा० उ० ६।८।५ ६।९।४, ६।१०।३

५ परिमल प० १७७



तुम वह हो बोला स्यासी जिज्ञ करो तम तोम  
 इस प्रकार तत्त्वमसि के आधारभूत छायावाद में जगत के तम तोम तथा राष्ट्र की अकमप्यता को दूर करने का प्रयत्न हुआ। ध्यान देने की बात है कि ऋषिया ने तत्त्वमसि के द्वारा व्यक्तिगत मुक्ति की ही कामना अथवा कल्याण की थी। निम्न छायावादी कवि न तत्त्वमसि के सिद्धान्त को ऋषिया की भाँति एकान्त साधना अथवा व्यक्तिगत मुक्ति तक ही सीमित छोड़ रखा। उसने उक्त सिद्धान्त द्वारा प्रसुप्त जगत् राष्ट्र को जगाने तथा उसके अज्ञान को दूर करने का उपक्रम भी किया। इस प्रकार यज्ञि अहब्रह्मास्मि के प्रभाव से छायावाद के कवि में अह भाव जगा तो तत्त्वमसि के सिद्धान्त ने उसे लोक कल्याण की ओर भी प्रेरित किया। इसी से छायावाद काव्य का जागरण अथवा उदबोधन गान अत्यन्त सूक्ष्म सशक्त एक प्राणप्रद है। इस प्रकार छायावाद में जीव और ब्रह्म की एकता घोषित करने के उपरान्त तत्त्वमसि के आधारभूत समूह को मुक्ति पर विशेष बल दिया गया जिसे हम छायावाद की मौलिक धन कह सकते हैं।

वेदात का ब्रह्म बधनरहित तथा सच्चिदानन्द स्वरूप है। अतः छायावाद के कवि ने जीव में ब्रह्म के उक्त गुणा का आरोप भी कर दिया है—

मुक्त हा सदा ही तुम  
 बाधा विहान बस छान ज्यो  
 डूवे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप।<sup>१</sup>

### जगत

सष्टि के विषय में उपनिषद् का एक मत नहीं है। किन्तु सामान्य रूप में सभी उपनिषदों ब्रह्म में ही जगत का आविर्भाव मानती हैं। सष्टि का वर्णन करते समय छायावादी कवियों ने उपनिषद के सष्टिमूलक मन्त्रों का बार-बार सहारा लिया है।

छायावादी उपनिषद् में यह कहा गया है कि ब्रह्म से ही यह सब उत्पन्न हुआ है।<sup>२</sup> इसी के आधारभूत पदों ने जगत के प्रपञ्च को एक ही शक्ति

१ स्वर्ण धूनि पृ० १३३

२ निराना परिमल पृ० १७६

३ आत्मन एवद सर्वम् । छा० ७।२६।१

ब्रह्म से विकसित माना है<sup>१</sup> और निराला जी ने उसे एक ही कर से गुया हुआ हार कहा है।<sup>२</sup>

ब्रह्म से ही इस जगत के समस्त तत्व उत्पन्न हुए हैं इसका सुन्दरतम बणन उपनिषद म निम्न प्रकार से किया गया है—

जसे मक्नी अपने स्वरूप से ही जाल को बनाती है और पुन उसे निगल लेती है जसे पृथ्वी से अन्न आदि औषधियाँ उत्पन्न होती हैं जसे जीवित पुरुष से ही केश लोम आदि उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म ने यहाँ सम्पूर्ण जगत प्रकट होता है।<sup>३</sup>

महादेवी जी की निम्न पक्तियों पर इस मन्त्र की स्पष्ट छाप है—

स्वणलूता सी क्व सकुमार

हुई उसम इच्छा साकार ?

उगल जिसने तिनमें तार

बुन लिया अपना ही ससार।<sup>४</sup>

सृष्टि का कारण बताते हुए उपनिषत्कार ने कहा है कि उसने (ब्रह्म ने) सकल्प अथवा ईक्षण किया कि मैं एक ही बहुत हो जाऊ अनेक रूपा म प्रकट होऊ।<sup>५</sup> दूसरे शब्दों म इस जगत के समस्त नानत्व का मूल कारण ब्रह्म की इच्छा है। ध्यायावाद के प्रमुख कवियों प्रसाद और निराला ने सग अथवा इस त्रिगुणात्मक प्रकृति को ब्रह्म की इच्छा के परिणाम स्वरूप चित्रित किया है।<sup>६</sup>

१ एक शक्ति से कहते, जग प्रपच यह विकसित, पत, ग्राम्या, द्वि० स०  
प० ६९

२ बहु सुमन बहुरग निमित्त एक सुन्दर हार  
एक ही कर म गुया उर एक शोभा भार।  
गीतिका प्रथम सस्वरण प० २२

३ यथोणनामि सजते गहणते च यथा पृथियामोषधय सम्भवन्ति ।  
यथा सत पुरुषात्केसलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वरम ॥  
मु० उ० प्रथम खण्ड ७

४ रश्मि पृ० ६६

५ सोऽनामयत बहु स्या प्रजायेय । तत्तृतीय उ० २।६

तदशत बहु स्या प्रजायेय । ध्या० उ० ६।२।३

६ सग इच्छा का है परिणाम —कामायनी पृ० ६१

इच्छा हुई सृष्टि की

प्रथम तरंग वह आनन्द सिंधु म

×

त्रिगुणात्मक रचे रूप निराला—परिमल पृ० २३४

सजत महन्ते च' म यह भी स्पष्ट है कि सग के उपरान्त प्रलय भी ब्रह्म की इच्छा में होती है। सृष्टि के इस नियम को निराला जी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

उसकी ही इच्छा है रचा चातुष म  
पालन सहार म ।<sup>१</sup>

प्रलय के उपरान्त सृष्टि का बना ही भावपूर्ण वणन पन्त जी की इन पत्तियों में मिलता है—

रिक्त होते जब जब तब वास  
रूप धर तू नव नव तत्वान,  
नित्य नादित रखता सोलनाम  
विश्व के अक्षय-बट की डाल ।<sup>२</sup>

छायावादी उपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि इस जगत की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय जिससे होती है वह ब्रह्म ही है ।<sup>३</sup> छायावाद के कवियों ने इस सिद्धांत की सर्वांशत अपना लिया है। यथा—

(क) सृष्टि-स्थिति-प्रलय का  
कारण कार्य भी है वही<sup>४</sup>—

(ख) चिन्मय प्रकाश से विश्व उदय  
चिन्मय प्रकाश में विकसित लय ।

(ग) मिथु की क्या परिचय दें देव ।  
विगडते बनते बीच विलास

१ परिमल पृ० २२३

२ गुजन पृ० ८३

३ सब सत्त्विक ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ।—निश्चय ही यह सब कुछ ब्रह्म है क्योंकि उससे उत्पन्न होना उसी में स्थित रहता तथा अन्त में उसी में वीन हाता है इस प्रकार शान्त चित्त होकर उपासना करे । छा० उ ३।१।१

४ निराला-परिमल पृ० २२३

५ पन्त-पल्लविनी पृ० २२१

सुद्र हैं मेरे बुदबुद प्राण  
तुम्हा में सट्टि तुम्हीं में नाश<sup>१</sup> ।

(घ) आदि में छिप आता अवसान  
अन्त में बनता नव्य विधान २—

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद की कविता में उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म द्वारा जगत की उत्पत्ति स्थिति और नाश के सिद्धान्त तथा उसके कारण ब्रह्म की इच्छा का पूरा पूरा समावेश हो गया है। छायावाद की कविता में उक्त सिद्धान्त की भावमयी अभिव्यक्ति भी की है<sup>३</sup> जो *In poetry Philosophy lives*<sup>४</sup> का सिद्धान्त को चिन्ताय करता है और जिस हम छायावाद की मौलिक देन के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

### एकोऽहबहुस्याम्

सोऽकामयत बहुस्या प्रजापय<sup>५</sup> के अनुसार ब्रह्म ने बहुरूप धारण करने की इच्छा प्रकट की तो 'एकोऽह बहुस्या अथवा एक रूप बहुधा य

१ महादेवी वर्मा रश्मि, पृ० ४४

२ वही, पृ० ८

३ (क) छोड़ निजन का निमत निवाम, तीड में बंध नग क सान्ना  
भर दिए कलरव से शिशि आस, गहों में बुसुमित मुदित, अमना<sup>१</sup>  
पन्त, गुजन तृतीय सस्करण पृ ८३

(ख) सुप्त-जग में गा स्वप्नित गान स्वण में भर दी प्रथम प्रभात  
मजु गुजित हो उठा अजान, फुल्ल जग-जीवन का जलजात ।  
पन्त गुजन, पृ० ८२

(ग) उसी में घटियाँ पल अबिराम पुनक से पाने नग विकास  
शिवस रजनी तम और प्रकाश, बन गय उमके श्वासोच्छ्वास ।  
महादेवी वर्मा, रश्मि, पृ० ७८

सयें और प्रलय की भावमयी अभिव्यक्ति

(घ) बनलता इन्द्रधनुष सा रग सदा बह रहा निरपति के संग  
नही उसको विराम विधाम, एक बनने मिटन का काम ।—वही पृ० ९६

(ङ) अथर सुपमा का सजन विनाश, यही क्या जग का श्वासोच्छ्वास ?  
वही, पृ० ७

४ Radha Krunan The philosophy of Tagore P 166

५ तत्तिरीय उपनिषद् २।६

करोति <sup>१</sup> के अनुसार वह अनेक रूपों में परिवर्तित हो गया। एक ही अनक हो गया। उपनिषद के इस सप्टिमूनक सिद्धान्त की बड़ी ही भावपूर्ण अभिव्यक्ति भयिनीशरण गुप्त की शंकार <sup>२</sup> तथा छायावादी पत <sup>३</sup> निराना <sup>४</sup> आदि कवियों की रचनाओं में हुई है।

### व्यक्त और अव्यक्त जगत

किंतु ब्रह्मरूप धारण करने के पूर्व उस एक का स्वरूप क्या था इसका स्पष्टीकरण करते हुए तत्तिरीय उपनिषद् कहती है कि प्रकट होने से पहले यह जगत अव्यक्त रूप में था उसमें ही यह प्रकट हुआ है उस परब्रह्म परमेश्वर ने स्वयं अपन का ही इस जगत का रूप में प्रकट किया। <sup>५</sup> छायावादी कवि पत जी ने व्यक्त से प्रसप्त मतवत शस्य शूय कहकर उसी के आधारभूत व्यक्त जगत का अर्थ ही भाषिक चित्र उपस्थित किया है। यथा—

आदि-वान में बाल प्रवृत्ति ज्व  
थी प्रसप्त मतवत हत गान  
शस्य शय वमुधा का अचन  
निश्चा जननिधि रवि शशि म्यान

१ जो एक ही रूप को बहुत प्रकार से बना लेता है।

—कठोपनिषद तृतीय बल्ली १२

२ हुआ एक होकर अनेक वह—शंकार पृ २२

३ एक छवि के असह्य उत्पन्न  
एक ही सब में स्पन्दन

एक ही तो असीम उल्लास  
विश्व में पाता विविधाभास

पन्त—पतव पृ ८६

४ रूप—रस—गान—स्पर्श

शब्द समार यह

बीचियाँ ही अग्नित शुचि सच्चिदानन्द की।

निराना परिमल पृ २३४

५ असदा इदमग्र आसीत् । तदा न सञ्जायत । तत्परमान स्वयमकुस्त ।  
तत्तिरीयापनिषद ब्रह्मानन्दवल्ली, सप्तम जनवाक ।

प्रथम हास-सं, प्रथम जधु-म  
 प्रथम पुलक स हे छविमान ।  
 स्मृति में विस्मय न तुम सहसा  
 विश्व स्वप्न म तिल अजान ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार महादेवी वर्मा ने अक्षय का 'शून्यता की निद्रा' कह कर उत्तरीय स्वप्निल घन के समान इस जगत को निःसत् माना है। किन्तु उनका चित्र पत्र जी की भाँति सिद्धांत प्रतिपादक के रूप में न होकर कवय जिनासा पण है— जस

शून्यता म निद्रा का वन  
 उमड आते ज्यों स्वप्निल घन  
 × ×

हुआ त्या सूनपन का भाव  
 प्रथम किससे उर म अस्लान  
 और किस शिल्पी न अनजान  
 विश्वप्रतिमा कर दी निर्माण ।<sup>२</sup>

विश्व स्वप्न स तिल अजान और उमड जाने ज्यों स्वप्निल घन स स्पष्ट है कि पन्त और महादेवी दोनों जगत की मायारूप मानत हैं जिसका आधार ब्रह्म मात्र एवमा मायामि पुरुरूप इयते<sup>३</sup> कहा जा सकता है।

अक्षय (अह) का निराकार और व्यक्त (जगत) को साकार मान कर भी छायावादी काव्य में सृष्टि का बना न भाव चित्र उपस्थित किया गया है। यथा—

(क) निराकारतम माना मग्ता  
 ज्वाति पुज म हा साकार  
 बन्व गमा द्रुत जगत जाल म  
 धर कर नाम रूप नाना ।<sup>४</sup>

१ पन्न पल्लव चतुर्थावृत्ति १९४२ पृ० २५

२ महात्मा रश्मि पृ० ५

३ माना द्वारा ब्रह्म अनव रूप म दष्ट हाना है।

(ऋ० अष्ट० ४ अ० ७ व ३, म० १८)

४ पन्न-वीणा-प्रिय, पृ० १४

- (ख) अखिल इच्छाओ का ससार  
स्वण छवि मे निज गत् छविमान  
बन गई मानसि । तुम साकार ।<sup>१</sup>
- (ग) हम अलग हुए हे पूण स यक्त हाके<sup>२</sup>

### जगत सत्य है

अव्यक्त ब्रह्म मे ही सूक्ष्म रूप से यह यक्त जगत निहित था<sup>३</sup> और वही मण्डि-ज्ञान म स्थून जगत के नानात्व म व्यक्त हो गया स यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म ही एस जगत का उपादान कारण है । कर्त्तार मीश पुरुष ब्रह्मयोनिम<sup>४</sup> भूतयानि परिपश्यति वीरा<sup>५</sup> आदि उपनिषद मन्त्रो म ब्रह्म को एस सम्पूर्ण का उपादान कारण बताया गया है । और सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म<sup>६</sup> सत्सत्य स आत्मा<sup>७</sup> आदि मत्र ब्रह्म को सरूप घोषित करते है । सुतरा सत्य रूप ब्रह्म के इस जगत का उपादान कारण हाने के नाते यह जगत भी सत ही है । एसीनिए उपनिषदो न अखिल विश्व को ब्रह्मरूप घोषित किया है ।<sup>८</sup> उपनिषद के इस सिद्धांत का छायावाद क कवियों पर व्यापक प्रभाव पडा है । फलत उन्हे अपनी कलाकृतियो म एस दिखाई देत तथा अनुभव मे जान वान स्थून जगत का सरूप चित्रित किया है । उपनिषदो जीर शवागमो के प्रभाव स जहा प्रसात् जी ने इस जगत को नित्य चिर सुन्दर और सतत

१ पत—गुजन पृ० ६५

२ प्रसात्—ज्ञान कुसुम पृ ६९

३ उसम अनन्त का है निवास

यह जग जीवन म ओतप्रोत ।

पत—पल्लविनी पृ २५५

उस छोटे उर म छिप हुए है डाल पात औ स्वय मूल  
ससति की गहरी हरीतिमा बहु रूप रंग फल और फूल ।

पत—पल्लविनी पृ० २५४

४ मु० उ ११३

५ वही १११६

६ तत्तिरीयोपनिषद २११

७ छा० उ ६।८।७

८ सब सत्त्विक ब्रह्म । -छा० उ० ३।१।८।१

सत्य<sup>१</sup> बताया है वहाँ वेदात्त दशन (उपनिषद) के पुजारी होने के नाते निराला जी ने उसे 'सतत सत्य अनादि निमल सत्त्व सुख विस्तार'<sup>२</sup> तथा पत जी ने सत्य, शुभ और अमर<sup>३</sup> कहा है। महादेवी जी ने भी अग जग उनका कण-कण उनका<sup>४</sup> द्वारा ब्रह्म को इस जगत का उपादान कारण घोषित करते हुए प्रकारान्तर से सच्चि को सत्यरूप माना है।

### जगत् परब्रह्म परमेश्वर की लीला है

'लोक वस्तु लीलाकवलयम सूत्र से यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार आप्तकाम और बीतराग पुरुषा द्वारा बिना किसी प्रयोजन के जगत का हित साधन करने वाले कम स्वभावत होते रहने हैं उनका कम किसा प्रकार क फल लाभ की इच्छा स युक्त न होने के कारण केवल लीलामात्र ही है उसी प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा का भी जगत रचना आदि कर्मा स अपना कोई प्रयोजन नहीं है तथा उन कर्मों म कर्तापिन का अभिमान या आसक्ति भी नहीं है इसलिए उसके कम केवल लीलामात्र ही हैं। उसी के आधारभूत प्रसाद जी ने विश्व को विश्वेश का श्रीडा क्षत्र<sup>५</sup> तथा श्रीडा पूण प्रसार<sup>६</sup> कहा है और पन्त जी ने अपन मानस को उसकी श्रीडा का स्थल माना है।<sup>७</sup> मघिलीशरण गुप्त का भी बह लीलाद्व त ब्रह्म बाँध मिचौनी की श्रीडा म छतता हुआ सिद्धाई पडता है।<sup>८</sup>

१ चिति का स्वरूप यह नित्य जगत -कामायनी, पृ० २५०

चिति का विराट बपु मगल

यह सत्य सतत चिर सुन्दर।

-कामायनी पृ० २९६

२ गीतिका पृ० २२

३ एक अनेक सत्य ही या केवल क्षर अक्षर।

धरा सत्य थी सत्य पवन जन पावक अवर

सत्य हृदय मन इन्द्रिय सत्य समस्त चराचर -पल्लविनी पृ० ६२

४ सुन्दर अनादि शुभ सच्चि अमर-नस्तविनी, पृ० २३१ ब्रह्मसूत्र २।१।३३

५ विश्व श्रीडा-क्षत्र है विश्वेश हृदय उदार का'-कानन-कुमुम पृ० ११६

६ सक्त चराचर जिसका श्रीडापूण पसारा। वही

७ मरा मानस तो शशि हासिनी। तरी श्रीडा का स्थल है

-पल्लविनी पृ० ३७

८ बाँध मिचौनी की श्रीडा म सबमुच तून मुझ दया।

शवार, बचिना शोपक कविता, पृ० १२८



किन्तु छायावाद की समकालीन पृष्ठभूमि में हम देख चुके हैं कि छायावादी युग की प्रवृत्ति का उपनिषद् की ओर भाटने में विवेकानन्द का प्रमुख हाथ रहा है। स्वामी जी ने भारतवर्ष की सर्वांगीण उत्थिति के लिए उपनिषद् की शिक्षा को जनिवाय बताया। उपनिषद् ज्ञान के प्रकाश में ही उन्होंने अपने दशवासियों को निभयता तीव्रकमण्यता अन्ततः शांत भाव त्याग पवित्रता प्रेम दृढता एकता आत्म विश्वास दश भक्ति ज्ञान का पाठ पढ़ाया तथा कर्मयोग भक्तियोग ज्ञानयोग का अमर सन्देश दिया। यहाँ तक कि राजनीतिक और सामाजिक विचारों के विकास के लिए भी उन्होंने आध्यात्मिक विचारों को आवश्यक ठहराया। जिस सावभौम धर्म का विश्व में विवेकानन्द ने प्रचार किया उसका मूलाधार उपनिषद् ज्ञान ही था। अतः उन्होंने बड़ ही ओजस्वी स्वर में कहा सब रहस्य विद्याज्ञान को तिनानि दे दो और अपने उपनिषद् का—उस बनप्रद आनोकप्रद ज्ञान दशन शास्त्र का आनय ग्रहण करो। उपनिषद् के सत्य तुम्हारे सामने है। उनका अबलम्बन करो इनकी उपनिषद् कर इन्हें काय में परिणत करो—बस देखागे भारत का उद्धार निश्चित है।<sup>१</sup> इस प्रकार विवेकानन्द ने यह प्रचारित किया कि वेदान्त दशन अत्यन्त व्यावहारिक और प्राणप्रद है। फलतः उनके प्रभाव और प्रयत्न से जनसमुदाय में यह भावना बढभूत हो गई कि व्यावहारिक वेदान्तवाद और रहस्यवाद की तुलना में निरा भौतिकवाद अति तुच्छ तथा एकांगी है और भारत का अतीत सहित सम्पन्न सुसंस्कृत एवं सकारण ऐश्वर्यों का छविधाम है। उपनिषद् की नवीन धनानिक अथवा दशनिक व्याख्या तथा व्यावहारिक वेदान्तवाद का बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में भारतीय विचारधारा पर प्रचुर प्रभाव पड़ा जिसकी स्पष्ट प्रविध्वनि साहित्य में भी सुनाई पड़ी। विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त के जिन तत्वों का छायावाद में समावेश हुआ वह इस प्रकार है

### ब्रह्म या ईश्वर

विवेकानन्द का ब्रह्म उपनिषद् का ही ब्रह्म है अतः वह अनय अव्यक्त अनिध्वनीय असंख्य अर समस्त भूतों में अनुस्यूत है। इस ब्रह्म को छायावाद के कविया प्रसाद पन्त निराभा भट्टाचारी आदि—ने बार बार स्मरण किया

१ विवेकानन्द मरी समर-जीति पृ० ६१ ६२

है जिसकी चर्चा हम छायावाद-काव्य में उपनिषदों के प्रभाव के अंतर्गत कर चुके हैं ।

ईश्वर के सम्बन्ध में विवेकानन्द का मत यह है कि ईश्वर व्यष्टियों की समष्टि है और साथ ही एक व्यष्टि भी है समष्टि ही ईश्वर है और व्यष्टि ही जीव है ।<sup>१</sup> 'विवेकानन्द' द्वारा वर्णित ईश्वर के उक्त स्वरूप के आधार भूत ही निराला जी न ब्रह्मा है कि व्यष्टि और समष्टि में कृत्त भी भेद नहीं है । वस्तुतः व्यष्टि और समष्टि में वही एक ही चिदधन आनन्दका समाया हुआ है ।<sup>२</sup> पन्त जी न भी अपना एक रचना व्यष्टि और विश्व में अपन ही भीतर ग्रह शक्ति दिनकर आदि को परिभ्रमित दिसा कर व्यष्टि और समष्टि में अन्तः स्थापित किया है ।<sup>३</sup> व्यष्टि और समष्टि की यह अनिन्नता पन्त और निराला का पनायतवादो सत्सार में जगते से रोवती तथा समाज-सेवा के लिए प्रेरित करती है, जो विवेकानन्द के 'यावहारिक' वेदान्तवाद का प्रमुख विचार उदात्त स्वर है ।

विवेकानन्द के अनुसार ईश्वर शक्तिरूप है<sup>४</sup> ईश्वर ही समस्त सुखों का स्रोत है<sup>५</sup> ईश्वर में बढ़ कर हम अन्य किसी उच्च वस्तु का कल्पना नही कर सकते क्योंकि ईश्वर ही पूर्णरूप है और वही मनुष्य का चरम लक्ष्य है ।<sup>६</sup> ईश्वर की उक्त कल्पना को स्वामी विवेकानन्द ने मातरूप में लोकप्रिय बताया था ।<sup>७</sup> विवेकानन्द की ईश्वर रूप जगदम्बा में छायावाद के प्रमुख कवि पन्त और निराला विनाप रूप से प्रभावित हुए । निराला जी की 'दवि तुम्ह में क्या हूँ'<sup>८</sup> एक बार धस और नाच तू श्यामा<sup>९</sup> आदि रचनाओं में यह प्रभाव स्पष्ट है । ईश्वर को जग-जननी मान कर निराला जी ने पंचवटी प्रसंग में ब्रह्मा है जगदम्बा के कटाक्ष से हा करोहा शिव विष्णु अज्ञ, कोटि कोटि सूय चन्द्र

१ विवेकानन्द विविध-प्रसंग पृ० ५९

२ परिप्लव पृ० ३२२

३ भवण विष्णु पृ० ६६

४ विवेकानन्द शक्तिदायी विचार पृ० ४०

५ वही पृ० ४३

६ विवेकानन्द प्रमयोग पृ० २१ २२

७ विवेकानन्द विविध प्रसंग, पृ० २९

८ निराला परिप्लव, अष्टमावृत्ति, पृ० ८४

९ वही, पृ० १०७

तारा-ग्रह आदि धनते और अन्त में नष्ट होते हैं। आदि शक्ति रूपिणी जगदम्बा ही सारे ब्रह्माण्ड के मूल में विराजती है। उही के गुण गा कर नर भव सिन्धु पार करते हैं।<sup>१</sup> इसी प्रकार पत जी ने अपनी मात शक्ति शीषक कविता में 'मा की भक्ति शक्ति नान प्रथित सदमुरक्ति तथा भय भजने जन रजने चिर पावन मृजन चरण आदि कह कर उससे भव जीवन को पूण बनान की आकांक्षा प्रकट की है और उस पर तन मन, जीवन उत्सर्ग करने का पावन व्रत लिया है।<sup>२</sup> पत जी की प्रारम्भिक कृति वीणा में आधीसे अधिक रचनाएँ 'मा की भिन्नित हैं। ये गहन अनुराग की रचनाएँ हैं। एक बालिका के हृदय में मा के प्रति जितना अनुराग हो सकता है इन कविताओं में पाया जाता है। विवेकानन्द की जगमाना की भाँति ही पत जी की मा विराट् अनन्तरूप और अनन्त शक्तिरूपिणी हैं। अतः हम कह सकते हैं कि पत और निराना दोनों का ध्यान विवेकानन्द की आदि शक्ति रूपिणी जगदम्बा की ओर विशेष रूप से गया है। इसी मा की सेवा<sup>३</sup> प्रम<sup>४</sup> आराधना<sup>५</sup> तथा गुणगान<sup>६</sup> में उनका

१ निराना परिमल प० २१५

२ स्वर्ण धूनि प्रथम संस्करण प० ८१

३ (क) जीवन का एक ही अवलम्ब है सेवा

है माता का आदेश यही,—निराना परिमल पृष्ठ २१४

(ख) माँ ! तेरे प्रिय पद पदमों में अपना जीवन को कर दू ।

पत—वीणा प्रथि द्वितीयावति पृष्ठ २

४ (क) माँ की प्रीति के लिए ही चुनता हूँ सुमन दल

इसके सिवा कुछ भी नहीं जानता ।—निराला परिमल पृष्ठ २१४

(ख) तू कितनी प्यारी है मुझको जननि कौन जाने इसको ।

पत—पल्लविनी पृष्ठ ५८

५ (क) माता की चरण रेणु मरी परम शक्ति है—

माता की तपति मेरे लिए अष्ट सिद्धियाँ ।

निराना—परिमल पृष्ठ २१४

(ख) मुझ चरण में क्षीण नवाकर अवनत-वदना होने दो —

पत—वीणा-प्रथि पृष्ठ ११

६ (क) निराना परिमल देखिए पचवटी प्रसंग (२) प २१५ २१७

(ख) राम रोम के छिद्रों से माँ ! फूटे तरा राग गहन ।

पत—रश्मि बध, पृ० २५

कविहृदय मग्न है। इसी विराट माँ व प्रति युगल कवियों ने बार बार आत्म समर्पण का भाव व्यक्त किया है। उपनिषदों की शिक्षा व अनुरूप उन्हें इस ईश्वररूपिणी माँ के अतिरिक्त किसी और को जानने की आवश्यकता नहीं है। विवेकानन्द की इसी जगन्माता ने प्रभावित होकर पत और निराला ने विश्व स्वीकृति का पूजन किया है।<sup>१</sup>

पत और निराला ने जगदम्बा व गुणगान पर बल तो दिया है किन्तु उनके उपनिषद् के ईश्वर का प्रतीक हान व कारण उनके गुण भी अनिवचनीय ही रहेंगे। इसी व पत भी कहा है कि मैं जीवन भर माँ के पूरे गीत गाने में व्यसमग्न ही रहूँगा।<sup>२</sup> अतः जहाँ वे माँ से यह प्रायना करते हैं कि उनका राम रोम के छिद्रा में माँ का गहन राग फूटे वहाँ व यह भी कहते हैं कि माँ का चरित्र न गा सकने पर भी उन्हें सुख का ही अनुभव होगा।<sup>३</sup>

ईश्वर अथवा ब्रह्मरूप होने से ही पत और निराला ने जगन्माता को द्वय द्राह्म मदन अहंकार आदि से रिक्त और अपार शक्ति एक सफल कामनाया का पूण कराने वाली बताया है।<sup>४</sup> इसी माँ का साक्षात्कार करना युगल कवियों का अभीष्ट है। पत जी ने उसके दर्शन का भी वर्णन किया

१ विश्व स्वीकृति का ही मैं मन में करता हूँ नित पूजन।

पत—ग्राम्या प ८१

२ जीवन भर भी माँ ! मैं पूरे गा न सकूँगी तरे गीत।

—वीणा ग्रथि प० ६१

३ गा न सकी यदि मैं वसकी तो मुझका वसम भी है सुख।

पत—पल्लविनी पृ० १८

४ (क) द्राह्म मोह, छत्र, मदन मदन मुझ निज सगति में खोने दो  
नाम पकड़, यह विश्व महोदधि तर्ने दो माँ ! तरने ने।

पत वीणा-ग्रथि, पृ० १२

(स) माता के स्नेह शब्द भर सुख-भावन हैं।

\*

\*

शक्ति से जिनकी शक्ति-प्राप्ति में सत्ता है,

माता हैं मेरी वे।

—निराला, परिमल पृ० २१४ १५

५ (क) माँ ! वह त्वि वच आवगा जब मैं तेरी छवि देखूँगी।

पत वीणा-ग्रथि पृ० २०

(ग) निराला, परिमल देविका पंचपटी प्रका (२) पृ० २१४ १५

है।<sup>१</sup> इस प्रकार की कविताओं की विशेषता यह है कि भावुकता के आँसुओं के बग्न जीवन की दारुण यथा को गहरे रंग में अंकित किया गया है और माता रूप में इष्टदेवी आनन्द स अधिक शक्ति की देवी हैं। वह कवि को पलायनवादी ससार में नहीं न जाती न सुनहली किरणा स उसके ओस उसे आसू पाछ लती हैं। वह उस दुःख भार सहन करने के लिए प्रेरणा देती है और माना कहती हैं कि यह भार वहन करना ही उनकी श्रद्धा उपासना है।<sup>२</sup>

वीणा की रचनाओं में पन्त जी ने अपने उपास्य को माँ के अतिरिक्त प्रियतम रूप में भी देखा है। इसी आधार पर विश्वम्भर मानव ने यह धारणा बना है कि अपने उपास्य के प्रति पत जी की भावना निर्दिष्ट नहीं है। उस अलौकिक सत्ता को उहाने कही मा माना है और कही प्रियतम<sup>३</sup>। पुन उक्त अतिदिष्ट भावना का समथन करते हुए व लिखते है एक मूल सत्ता के विविध नीनामय रूपों से परिचित रहस्य जानिया को इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं हो सकता। इस पता चलता है कि पत ने रहस्यवाद को भावना के रूप में ही स्वीकार किया अनुभूति के रूप में नहीं।<sup>४</sup> किन्तु वस्तुव पत जी द्वारा मून सत्ता के मा जथवा प्रियतम के रूप में अपनाते का सम्बन्ध भावना और अनुभूति से उतना नहीं है जितना विवेकानन्द और रवीन्द्र के दशन जीर विचारधारा का प्रभाव। विवेकानन्द न ईश्वर को जगन्माता के रूप में और रवीन्द्र ने अपन उपास्य को प्रियतम के रूप में अपनाया था। उक्त दोनों यक्तियों स प्रभावित होने के कारण पत जी ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में अपन उपास्य को कही पर माँ और कही पर प्रियतम-रूप में स्मरण अथवा सम्बोधित किया है। वीणा पल्लव-कानीन रचनाओं पर विवेकानन्द और रवीन्द्र के प्रभाव का उहोने उत्तरा की प्रस्तावना में स्वयं स्वीकार किया है।<sup>५</sup>

१ क्षीण-क्षपाकर की छाया में नलिनी बन की करुण-पुकार

माँ ! तत्र त न मुन दिखाई अपनी ज्योतिर छटा अपार !

वीणा-ग्रथि प० ५०

२ नया साहित्य निराता अक रामविनास शर्मा—सांस्कृतिक जागरण और निराता पृ १३

३ सगम—फरवरी १९४९ प० १७

४ सगम—फरवरी १९४९ पृ० १७

५ वीणा-पल्लव-कानीन रचनाओं पर कवी-रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रण है।—उत्तरा, प्रस्तावना पृ० १९

ईश्वर का मातृशक्ति के रूप में अपनाने के साथ विवेकानन्द ने यह भी कहा है कि मनुष्य के सिवाय दूसरा ईश्वर नहीं है।<sup>१</sup> अतः विवेकानन्द से प्रभावित छायावाद की कविता में मानव ईश्वर का यथेष्ट समावेश मिलता है।

### मानव ईश्वर

विवेकानन्द के मत में ईश्वर सब यापी है। प्रत्येक प्राणी में वह अपने का व्यक्त करता है पर मनुष्य के लिए वह मनुष्य में ही दिखाई दे सकता है और पहचाना जा सकता है।<sup>२</sup> उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ईश्वर की पूजा नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वर तो मटि में सबल व्याप्त है। हम उसका मानव स्वरूप की ही उपासना कर सकते हैं।<sup>३</sup> अस्तु ईश्वर की मनुष्य के रूप में उपासना करना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार विवेकानन्द के अनुसार ईश्वर सम्बन्धी हमारे समस्त विचार मानव रूप में ही चन्द्राभूत हो सकते हैं।<sup>४</sup> विवेकानन्द के उक्त मानव ईश्वर से प्रभावित होकर छायावादी कवि ने मानव में ईश्वरत्व का आरोप किया और उस सूक्ष्म रूप में चित्रित किया।

विवेकानन्द के मानव ईश्वर का प्रचुर पभाव पतल जी पर परिलक्षित होता है। पतल जी ने बार बार यह आकाशा प्रकट की है कि मानव जीवन में पुनः मानव ईश्वर अवतरित हो। इसी में उन्होंने देवत्व को मानव का धाम माना है<sup>५</sup> और मानव के देवत्व से ही जन-समाज अथवा जन जीवन के निर्माण की कामना प्रकट की है।<sup>६</sup> पतल जी ने इस शब्दत्व का आराधन महात्मा गांधी और श्री अरविन्द के चित्रित में किया है। अतः जहाँ महात्मा गांधी के विषय में उन्होंने कहा है कि—

१ व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ० ६७

२ प्रमयोग तृतीय संस्करण श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर पृ० १०७

३ प्रमयोग, पृ० ५०

४ प्रमयोग, पृ० ५०

५ स्वर्ण किरण पृ० २२

६ स्वर्ण किरण पृ० १४०

७ मानव में देवत्व में अधिन जन समाज जीवन ही निमित्त।

जडवाद जजरित जग म तुम अवतरित हुए आत्मा महान ,  
यत्राभिभूत युग म करने मानव जीवन का परित्राण <sup>१</sup>  
वहा श्री अरविन्द की भी अभ्ययना निम्न शब्दो म की है—

ज्योतिः श्री अरविन्द चेतना के दि-योत्पन  
पूण सच्चिदानन्द रूप शाभित स्वर्गोत्ज्वल ।

\* \* \*

मानव से ईश्वर ईश्वर स मानव बन कर  
आये तौट घरा पर ले नव नवीन का वर ! <sup>२</sup>

विवेकानन्द का क्लान्त यह शिभा देता है कि मनुष्य के सिवा दूसरा  
ईश्वर नहीं है । अतः पत जी ने जीवन का अपरिमित ऐश्वर्य मानव ईश्वर  
को ही अपित किया है ।<sup>३</sup> उनके निकट विवेकानन्द की भाँति ही मनुष्य म  
ईश्वर का दर्शन करना ईश्वर दर्शन का स्वाभाविक माग है । इसी स उलाने  
जीवन-सौंदर्य म 'मानव ईश्वर का ईश्वर के समकक्ष रख कर देखा है ।  
यथा—

हूँ जीवन आराध्य हृदयवासी, हूँ मानव ईश्वर  
भगवतमय तुम सब प्रथम अक्षर कृष्ण के सागर ।

\* \* \*

तुमम केन्द्रित लोक योजना घने स्वर्ग सी पावन  
मानव के घट वासी दा मानव को नव जीवन वर । <sup>४</sup>

विवेकानन्द के मत म प्रेम ही परमेश्वर है ।<sup>५</sup> अतः पत जी  
'मानव ईश्वर म प्रेम की प्रतिष्ठा को ही धरती का स्वर्ग मानते हैं—

मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें—मानव ईश्वर ।

और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुम्हें धरा पर ?<sup>६</sup>

१ पल्लविनी, पृ० २३३

२ स्वर्ण किरण, प० ९

३ जीवन का ऐश्वर्य अपरिचित मानव ईश्वर को ही अपित ।

—स्वर्ण किरण, प० १३७

४ स्वर्ण किरण पृ १४५ ४६

५ प्रेमयोग पृ० २२१

६ युगवाणी पृ० २९

और प्रेम का ही मानव-आत्मा का खाद्य घोषित करते हैं ।<sup>१</sup>

### ईश्वर और प्रेम

स्वामी विवेकानन्द का मत में प्रेम ही परमेश्वर है जन प्रेम और पवित्रता ही दुनिया का शासक है ।<sup>२</sup> जिस ईश्वर का चाह है उसी का प्रेम को प्राप्ति होगी । उसी के पान भगवान अपने आपका प्रकट करेंगे ।<sup>३</sup> ईश्वर पर आस्था तथा उसका समागम अथवा साक्षात्कार की आकांक्षा रखने वाले छायावादी कवियों पर विवेकानन्द के उक्त अध्यात्मवादी प्रेम का पर्याप्त प्रभाव पड़ा, जिसमें उन्होंने प्रेम का धामना को इतर भूमि पर भी रख कर परखा । विवेकानन्द की शिक्षा का अनुसूप ही जगन्नाथ प्रसाद ने प्रेम को जगत का शासक,<sup>४</sup> पवित्र पन्थ तथा ईश्वर रूप में चित्रित किया है । निराना जान अपनी अद्वैतपरक प्रसिद्ध रचना 'तुम जीरे में हैं ईश्वर का प्रेम की सना दो है' और पतंजलि ने प्रेम का स्वयं भव तत्त्व तथा जग का इति अर्थ आदि आध्यात्मिक माना से समनवृत्त किया है ।<sup>५</sup> मा प्रसार छायावाद युग के अनेक कविया, जसे रामनरेश त्रिपाठी ने किमी अनान सना की प्रेम तथा को ही इस भूतल पर चित्रित दखा<sup>६</sup> और रामकुमार वर्मा ने प्रेम की उगती स हा उस अनात विर छवि को छून का दावा किया है ।<sup>७</sup>

१ मानव-आत्मा का खाद्य प्रेम —युगवाणी पृ० २६

२ प्रेमपाग पृ० ९९

३ प्रेमयोग, प० ३१

४ प्रेम-पथिक, तृतीय सस्करण, पृ० २३

५ प्रेम-पथिक, तृतीय सस्करण, प० ०२

६ परिमल, अष्टमावत्ति, प० ३६

७ भव तत्त्व प्रेम —ग्राम्या, पृ० ९६

८ अतिमा, प्रथम सस्करण स० २०१२ पृ० ५४

९ सौच रत्न था—भूतल पर मह

जिसकी प्रेम-रक्षा है चित्रित ?

स्वप्न आर्वा सस्करण स० १९८५ पृ० २१ ।

१० मैं आज प्रेम की उगती में बर विर छवि छू नी

—विशरत्ना दूमरा गात ।



स्वामी विवेकानन्द का प्रेम ससारी अथवा वासनात्मक प्रेम न होकर आध्यात्मिक विकार रहित प्रेम है जिसके परम लक्षण के विषय में उन्होंने स्वयं कहा है

‘वह (प्रेम) सौदा करना नहीं जानता । वह तो सदा देता ही है । प्रेम सदा देने वाला ही होता है । देने वाला कभी नहीं चनता । इस प्रकार जो प्रेम पूणतया निस्वार्थ हो वही प्रेम प्रेम है और वही सचमुच ईश्वर का प्रेम है ।<sup>१</sup> अतः जब हम प्रसाद को यत् कहते हुए पाते हैं कि—

पागल रे ! वह मिनता हं कब  
उसका तो देते ही हैं सग ।  
आसू के कन कन से गिन कर  
यह विश्व निय है ऋण उधार  
तू क्यों फिर उठता है पुकार ?—  
मुझको न मिला रे कभी प्यार ।<sup>२</sup>

तब यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि वह विवेकानन्द द्वारा प्रचारित निष्कलुष निस्वार्थ निरामय ईश्वरीय प्रेम की ओर ही प्रवृत्त है ।

स्वामी विवेकानन्द का यह प्रेम विश्व करयाण अथवा लाकमगन की भावना से सिक्त है । उनका यह कथन कि ससार की यह प्रत्येक शक्ति प्रेम निर्लक्ष्य और सब वस्तुओं में प्रवाशमान है<sup>३</sup> विश्व प्रेम अथवा सावभौम प्रेम की ओर ही इंगित करता है । अतः छायावादी कवियों ने जहाँ प्रेमरूप ईश्वर की जगत में प्राप्त लिखाया है ।<sup>४</sup> वहाँ उठते विश्व प्रेम का चिकित्सा राग भी अलापा है ।<sup>५</sup> प्रसाद जी ने जहाँ ममार का प्रियतममय<sup>६</sup> घोषित किया है

१ विवेकानन्द प्रेमयोग पृ० २२

२ नहर, प० ३७

३ प्रेमयोग पृ० १२१

४ उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छिड़ है—

प्रसाद प्रेम-पदिक पृ० ३०

५ विश्व प्रेम का चिकित्सा राग पर-मवा करने की आग,  
इसको साध्या की लाली सीमा । न मन्त पड जाने दे  
दृष्य ग्राह का साध्य-जलद-मा इसकी छटा बनाने से ।

पन्त धीगा प्रथि पृ० १५

६ प्रेम-पदिक, पृ० ४

वहाँ उद्दान प्रकृति को विश्व प्रेम में मिला देने का आदेश भी कर दिया है क्योंकि उनका मत में विश्व स्वयं ही ईश्वर है ।<sup>१</sup> इस प्रकार उनके निकट विश्वरूप ईश्वर का सामिध्य प्राप्त करने के लिए विश्व प्रेम आवश्यक है । निराला जी ने भी कहा है कि मुनिया ने प्रेम के पिपासुओं को सवाजय प्रेम का जो अत्यन्त पवित्र है इसलिए उपदेश दिया कि सदा सचित को शुद्ध हो जाती है और गुह्य विचार में ही पवित्र ईश्वर प्रेम का अङ्ग उगत है ।<sup>२</sup> इस प्रकार उनके मत में भी स्वस्व त्याग<sup>३</sup> का पाठ पढ़ाने वाला सेवाजय प्रेम ही ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र साधन है । इस आध्यात्मिक प्रेम की शिक्षा उन्हें रामकृष्ण मिशन में प्राप्त हुई थी जिसका स्वरूप निर्धारण उन्होंने निम्न शब्दों में किया है—

प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है  
सदा हाँ नि सीम भू पर ।  
प्रेम की महोर्मि-भावा ताँ दती श्रुद्ध ठाट  
जिसमें सत्कारियों के सार क्षुद्र मनोयोग  
तृण सम बह जाने है ।<sup>४</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला जी ने भी विवेकानन्द की भाँति ही आध्यात्मिक प्रेम के लिए स्वस्व त्याग पर बल दिया है और दिव्य देवधारियों को ही उसका अधिकारी बताया है ।<sup>५</sup>

पल जी ने भी विश्व को प्रेममय<sup>६</sup> धारित करते हुए उसमें प्रेममय

१ प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम में विश्व स्वयं ही ईश्वर है ।

प्रेम पथिक पृ० ३०

२ परिमल पृ० २२५

३ परिमल पञ्चवटी प्रमत्त पृ० २१०

४ परिमल, पृ० २१०

५ याद कर प्रेम-बाहवाग्नि की प्रचंड ज्वाला

दिव्य गृहघारी ही बूदते हैं इसमें प्रिय,

पाने हैं प्रमाप्त

योंकर अमर हाते हैं ।—परिमल पृ० २११

६ कवित्त सा चोक् चोक् म,

हृप म और गोक् म

कहाँ तहाँ है प्रेम ? साँस साँस सक्क उर म ! पलविनी, पृ० १५१

ईश्वर की याप्ति का निर्देश किया है।<sup>१</sup> अतः उम मिश्र मूर्ति ईश्वर के साक्षात्कार के हेतु उन्होंने भी प्रेम पथ का अनुसरण करने का आदेश किया है। विवेकानन्द के मत में ईश्वर मुक्ति स्वरूप है।<sup>२</sup> अतः परत जी ने प्रेम को मुक्ति और सज्जन के रूप में भी अपनाया है।<sup>३</sup>

विवेकानन्द ने आध्यात्मिक प्रेम की चर्चा करते हुए कहा है कि मानव प्रेम में स्त्री पुरुष का प्रेम ही उच्चतम अत्यन्त यत्न परम प्रबल और परम आकर्षक होता है। इसी कारण उमी भाषा का व्यवहार उच्चतम भक्ति के बणन में किया जाता है। इस मानव प्रेम का उमात् सत महात्माओं के ईश्वर प्रेम के उमाद की अत्यन्त क्षीण प्रतिध्वनि है। ईश्वर के सच्चे प्रेमी भक्त ईश्वरीय प्रेम में रग कर उमत्त होना चाहते हैं। प्रत्येक धर्म के साधु महात्माओं ने जो प्रेम मन्त्रों अपने हृदय का रक्त डालकर तयार की है—जो प्रेम मन्त्रों प्रेम के लिए प्रेम करने का समस्त निष्काम ईश्वर प्रेमी भक्तों की आशाओं का आधार या आश्रय स्थान है—उसी प्रेम मन्त्रों का प्याला ये प्रेमी भक्त पीना चाहते हैं। प्रेम का पुरस्कार प्रेम ही है और यह कसा उत्तम पुरस्कार है। यही एक वस्तु है जो समग्र दुःखों को दूर करती है। इसी प्याले को पीने से इस संसार रूपी याधि का नाश हो जाता है, मनुष्य ईश्वरोन्मत्त बन जाता है और मैं मनुष्य हूँ यह भी भूत जाता है।<sup>४</sup> विवेकानन्द द्वारा वर्णित प्रेम का उक्त आध्यात्मिक स्वरूप प्रसाद जी के प्रेम पथिकों का आदेश प्रतीत होता है। सत महात्माओं के ईश्वर प्रेम के उमात् की प्रतिध्वनि प्रेमपथिकों और उसकी प्रिया चमेरी के आदेश प्रेम में पूर्णतः सुनाई पड़ती है। काविक गयवा कामद सोदय पर टिका हुआ उनका प्रेम चलते चलते निष्काम अलौकिक प्रेम में परिवर्तित हो जाता है और वह ईश्वरीय प्रेम में रगकर उमत्त हो उठते हैं।

विवेकानन्द के मत में जब मनुष्य त्याग की अवस्था में आकर हो जाता है तब वह ननिक सधर्म की समस्त वस्तुओं से परे चला जाता है और

१ प्रिय ही प्रिय र व्याप्त अर्हतिशि भीतर बाहर ।

स्वर्णधूलि पृ० ८०

२ देविये परत वीणा प्रिय गीत सख्या ४३ पृ० ३८

३ विविध प्रमग पृ० ९७

४ प्रेम मुक्ति है प्रेम ही सज्जन—। स्वर्णधूलि पृ० १४४

५ प्रेमयाग पृ० १२४-१२५

समस्त भूतो म एक ही सत्ता का प्रकाश देखता है ।<sup>१</sup> इस भाव की अनुभूति त्यागभूति प्र म पथिक को हुई है । इसी म उसने कहा है कि प्र मरूप ईश्वर हा, मन नयनी क्या जग भर म व्याप्त है ।<sup>२</sup>

प्र म के सिद्धांत पन म विवकानंद का कथन है कि जा प्रेम पूणतया नि स्वाथ हो वही प्रेम प्रेम है और वही सच्चमुच ईश्वर का प्रेम है । (त्रिन्दु) उस प्र म को प्राप्त करना बड़ी कठिन बात है ।<sup>३</sup> प्र म के इस उदात्त सिद्धांत अथवा स्वर्गिक पक्ष का भा प्रेम पथिक म स्पष्टतया चित्रित किया गया है ।<sup>४</sup> यह आध्यात्मिक प्र म कठिन इसलिये है कि उसका सिद्धान्त अपना सभी अस्तित्व मिटा देता है ।<sup>५</sup>

विवकानंद ने एक स्त्रल पर कहा है कि वह इश्वर ही एकमात्र प्रेमी है । उसके प्र म म कभी कोई विकार नहीं होता और उसका प्र म हम सदा अपने म लीन करने का प्रस्तुत रहता है । उसके प्र म म कभी कोई अन्तर नहा पढता और वह सदा हम अपनाते कोतमार रहना है ।<sup>६</sup> एम ही शाश्वत निमल प्र म की गिशा मोहमुक्त प्रेम पथिक अपना प्रयसी चमत्ती का दता नृना पाया जाता है—

सुनो चमली ! भूनी बीती वाना को मन स धोकर  
स्वच्छ बनो, आन्तरिक स्वग म रमण करा हाकर निष्काम  
स्निग्ध शांत गम्भीर, महा मोय सुधासागर के कण  
य सब विहारे हैं तग म-विश्वत्मा ही सुन्दरतम ह ।  
"योद्धावर कर दा उस पत तन मन जीवन सबस्व नहा—  
एक कामना रहे हृदय म सब उत्तम करा उस पर ।

१ विविध प्रसंग पृ ९१

२ प्रम पथिक पृ० २३

३ प्रमयोग पृ० २३

४ पथिक । प्रेम की राह अनोखी भूल भूतनर चन्दा है

घनी छाँट है जा ऊपर तो नीचे कानि विछे हुए

प्रेमयग म स्वाथ और कामना हवन करना हागा

तब तुम प्रियतम स्वग बिहारी हान का पन पायोग

—प्रेम पथिक पृ० २३

५ प्रम-पथिक पृ० २३

६ प्रमयोग पृ० २३

एक सि धु म मिन कर अक्षय सम्मेलन होगा सद्दर

फिर न विछुटने का भय तुमको ममको होगा कही कभी ।<sup>१</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद के आदर्शवादी कविगण ने विवकानन्द के आध्यात्मिक त्यागमय प्रेम की भावमयी अभि यक्ति देने का बड़ा ही श्लाघ्य प्रयास किया है ।

### ईश्वर और दुख

एक सदासी तथा जड़ तवादी होने के नाते विवकानन्द ने सख और दुख को भी जाध्यात्मिक स्तर पर जपनाया है । एतदर्थ उन्होंने कहा है जीवन और मृत्यु में सख और दुख में ईश्वर समान रूप से विद्यमान है । दुखी ही ईश्वर ईश्वर का रूप है । जो गरीब निब्रवा और पीड़ितों में शिव को देखता है वही वास्तव में शिव का उपासक है ।<sup>१</sup> विवकानन्द के देख विषयक इस आध्यात्मिक स्वरूप का निराना और पत पर प्रचुर प्रभाव पडा है । पत जी ने देख को जाध्यात्मिक स्तर पर अपनाते हुए उमम ईश्वर दशन का उपनम भी किया है—

एस भीषण घन में सन्दर छिपा हुआ है मुक्तावर

जसी अश्र-जल में वह मुख अबतोंको मन । अबतोंको ।<sup>२</sup>

और अपनी प्रायनापरक रचनाओं में दीन दलियों के कष्ट निवारण का प्रत भी किया है ।<sup>३</sup> अपनी छाया शीषक कविता में उन्होंने पर पीडा से पीडित होने की तीव्र आकांक्षा भी प्रकट की है ।<sup>४</sup> जसी प्रकार उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में जगमाना से जग का अपार ताप हरने के हत बारम्बार प्रायना की है ।<sup>५</sup>

१ प्रम-प्रथिक पृ० ३० ३०

२ शक्तिशायी विचार पृ ३५

३ प्रमयोग पृ० १३

४ शक्तिशायी विचार पृ० १०

५ वीणा-प्रथि शिनीयावति पृ० ४०

६ वीणा-प्रथि गीन गख्या १४ पृ० ११

७ पर पीडित ग पीडित होना मुय सिखा दो कर मद हीन ।

पल्लविनी पृ० २५

८ पल्लव पृ ६९

किन्तु छायावादी कवियों में स्वामी विवेकानन्द के सन्देशों की जीवन्त तथा व्यावहारिक बदलाव का सबसे अधिक प्रभाव निराला जी पर ही देखा जा सकता है। निराला जी ने विवेकानन्द की इस शिक्षा का निःसुखों के दुःख का अनुभव करा और उनकी सहायता करने का आग्रह करने अपने जीवन में पूर्णतः चरितार्थ किया। और विवेकानन्द की भाँति ही उन्होंने गरीबों अज्ञानियों और दुःखियों का सेवा को अपने जीवन का ध्येय अथवा आदर्श बनाया। यहाँ कारण है कि दीन दुःखियों की हीनावस्था को देख कर उनके हृदय में करुणा अथवा बदला का अपार सागर उमड़ जाया—

मैंने मैं—शली अपनाई  
देखा दुखी एक निज भाई  
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे  
बस उमड़ वेदना आई,  
उसके निकट गया मैं धाय  
लगाया उसे गले में हाथ ।

धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए विवेकानन्द ने कहा कि मैं उस धर्म और ईश्वर में विश्वास नहीं करता जो विधवाओं के आँसू पालने या जनाया को रोटी देने में असमर्थ है।<sup>१</sup> विधवाओं और अनाथों के प्रति विवेकानन्द का यही उद्गार निराला जी की परिमल की प्रसिद्ध कविताओं विधवा और भिक्षु का प्रेरणा स्रोत प्रतीत होता है। विवेकानन्द की भाँति ही विधवाओं के कष्टों के प्रति दुःख के उपसर्गों से क्षुब्ध होकर निराला जी ईश्वर से कई उपाहानों में प्रश्न पूछ चुके हैं—

यह दुःख वह किसका नहीं कुछ छोर है  
दब अत्याचार कसा घोर और कठोर है ।  
क्या कभी पीठे किसी के अश्रुजल  
या लिया करते रह सकना विकर ?

वही प्रकार अनाथों की रक्षा की समस्या का उन्होंने अपनी भिक्षु नामक कविता में साधारण रूप दे दिया है। उसमें दाना भाग्यविधाता (उगाय

१ शक्तिशायी विचार पृ० २१

२ परिमल पृ० १०९

३ शक्तिशायी विचार पृ० २२

४ परिमल पृ० १११

स ईश्वर) की जनाथा को रोटी दान की जसमयता पर बटु व्यग्य भी किया गया है—

भूख से सूख ओठ जब जाते  
दाता भाग्य विधाता स क्या पाले—  
टूट जासुजो के पीनर रह जाते ।<sup>१</sup>

निराना जी की यह सहानुभूति जयवा करुणा प्राणिजगत तक ही सीमित नहीं है। एक अद्वैतवादी होने के कारण वह जड़ पदार्थ में भी चेतन प्राणी के स दुःख सख का अनुभव करते हैं। अतः स्वार्थाथ मानी द्वारा प्रफुल्ल पुष्प के जीवन को नष्ट होते देख वह व्यथा विह्वल होकर बग ही क्षोभपूर्ण आक्रोश प्रकट करते हैं—

स्वाथ का मारा महा भटकता—  
फूटी कौड़ी पर विनोदमय जीवन सदा पटकता—  
तोड़ दिया नचकाई ज्याही डानी  
पत्थर से भी कठिन कलेज का है  
चला गया जो वह हत्यारा माली ।

इसी प्रकार दानित मुसम क प्रति नित्यतापूण व्यवहार में क्षय हाकर वह मरत है—

किन्तु देखकर तुम्हें जरा से जजर  
फेंक दिया पृथ्वी पर तमको  
रखे हुए हृदय में अपने उस निदय न पत्थर ।<sup>२</sup>

परिमल की कण नामक कविता की प्रतीक यजना भी दलितों के प्रति सानुभूति उपन्न करती है। कण की आकाश नेखत और अत्याचार सहत हुए न जाने कितने दिन मास बीत चुके हैं—

ताक रहे आकाश  
धीत गए कितने दिन—कितने मास ।  
पड हुए सहते हो अत्याचार  
पत् पद पर सनिया के पत् प्रहार

१ परिमल पृ० १११

२ वही पृ० ११२

३ वही पृ १३३

वत्न में पद में कोमलता नात

किन्तु हाथ व तुम्ह नीच ही है कह जाते ।<sup>१</sup>

वत्न में, पद में कोमलता नात' से स्पष्ट है कि निराला जी ने दुःख का पयवसान सामाजिक विद्रोह में न कर आध्यात्मिक उल्लास कोमलता अथवा सहनशीलता में ही लिया है। इसी से वण रज होत हुए भी विरज का कामना में हर प्रकार का अत्याचार सहन करता है—

तुम्ह नग अभिमान

छूट कहा न प्रिय का ध्यान

स्वमे सग मोन रहत हा

क्या रा विरज के लिए ही जतना सहते हा ।<sup>२</sup>

छायावाद का कविता में दुःख व इसा आध्यात्मिक पक्ष का अपनापन के कारण दुःख की प्रतिष्ठिता पर आधारित भौतिकवादी दशन के सामाजिक विद्रोह अथवा नालि की भावना का प्रायः जभाव ना है। रहस्यवादिना के आग्रह से छायावाद का कवि दुःख का प्रभु की दरशा अथवा उससे मिलन के लिए प्रमुख प्रसाधन के रूप में अपनाता हुआ पाया जाता है।<sup>३</sup> किन्तु दुःख के प्रति छायावादी कवि का यह आध्यात्मिक दृष्टिकोण व्यावहारिक जीवन में कायरता, भीरुता अथवा पराजय की भावना का प्रथम नहीं देता। उसका यह दुःख विवेकानन्द व दुःख का भीति ही आत्म शक्ति का प्ररक है। विवेकानन्द की शिक्षा है कि यदि तुम दुखी हा ता सुखी बनन का प्रयत्न करो। अपने दुःख पर विजय प्राप्त करो। दुबला को ईश्वर की प्राप्ति नहा हाती अतः दुबल कदापि न बनो। तुम्हारे अन्दर असीम शक्ति है तुम्हें शक्तिशाली बनना चाहिए। शक्तिशाली हुए जिना तुम ईश्वर का कर्म प्राप्त कर सयोग ४ तुम गुड स्वरूप हा उठा जायन हो जाआ ह महान यह ना तुम्हें शाना नहीं देती। तुम अपन का दुबल और दुःखी गमयन हा ह सबशक्तिमान उठा

१ परिपल पृ० १४६

२ वही,

३ भर दत हा

बार-बार प्रिय वरणा की विरणास

शुभ हृदय का पुनर्जित कर दत हा ।

परिमन पृ० १०३

४ प्रमयोग पृ० १५



जाग्रत होओ अपना स्वरूप प्रकाशित करो ।<sup>१</sup> तम जनत स्वरूप हो । तुम्हारे स्वरूप की तुलना म देश का<sup>२</sup> कुछ भी नहीं है । तम्हारी जो इच्छा होगी वही कर सकते हो तुम सर्वशक्तिमान हो । विवेकानन्द के सावहारिक वचन के इसी पक्ष को निराना जी ने अपनी प्रसिद्ध कविता जागो फिर एक बार म बड़ी ही जोजपूर्ण भाषा म अभियक्त कर अपने देशवासियों को हीनता का भाव त्याग कर जाग्रत हो जाने के लिए बलकारा है—

पशु नहा वीर तुम  
समर-सूर भूर नही  
काल चक्र मे हो दरो  
आज तम राजकुँवर ।—समर-सरताज ।  
पर क्या है  
सब माया है—माया है  
मुक्त हो सग ही तुम

तम हो मगन तम सग हो मगन  
हे नश्वर यह दीन भाव  
कायरता कायपरता  
ब्रह्म हो तुम  
एक रज भर भी है नही पूरा यह विश्व भार—  
जागो फिर एक बार ।<sup>३</sup>

उपयुक्त पक्तियाँ म निराना जी न देश को निराना मे जगाने के प्रसंग म माया और मुक्ति को भी स्मरण क्रिया है जो विवेकानन्द क ब्रह्म माया विषयक विचारा मे सम्बद्ध है ।

१ व्यावहारिक जीवन म वचन पृ० ३१-२०

२ वही पृ० १६

३ परिमल पृ १७७

## जगत्

स्वामी विवेकानन्द सन्ध्यामी थे अतः उनके जगत विषयक विचार शंकराचार्य की ही परम्परा में जाते हैं। शंकराचार्य की तरफ विवेकानन्द ने भी सत्कार का मिथ्या और ब्रह्म का एकमात्र सत्य माना है।<sup>१</sup> विवेकानन्द के अनुसार जगत की समस्त विभिन्नता नाम और रूप से स्रष्ट हुई है पर जय हम चाहते हैं कि इस विभिन्नता को पकड़ें अलग कर लें यह कहीं दिखाई नही देती। यही प्रपञ्च या विकार माया है जिसका अस्तित्व निर्विकार (ब्रह्म) पर निर्भर रहता है और जिसकी ब्रह्म में पृथक् कोई सत्ता नहीं है।<sup>२</sup> इस प्रकार विवेकानन्द के मत में अध्यात्म और अधिभूत जगत एक ही है उसी का नाम ब्रह्म है, और जो अलग अलग जान पड़ता है वह भ्रम है। वही माया अविद्या अथवा अनान है।<sup>३</sup> अतः उन्होंने कहा है कि जगत एक है वही अनेक वस्तु प्रतीत होता है।<sup>४</sup> दूसरे शब्दों में अस्तित्व रखने वाली सभी वस्तुओं की समष्टि ही का नाम विश्व है। जिसे हम यद्वि कहते हैं वह समष्टि ही का अभिव्यक्ति मात्र है।<sup>५</sup> निराना जी ने नीचे की पंक्तियों में विवेकानन्द के इस जगत विषयक दृष्टिकोण का अपनाया है—

यद्वि औ समष्टि में नही है भ्रम

भ्रम उपजाता भ्रम—

माया जिसे कहते हैं।<sup>६</sup>

माया अथवा अनान के कारण ही यह जगत नाना नाम रूपा में व्यक्त हो रहा है इस तथ्य के आधारभूत निराला जा ने सत्कार की मायावत में का परिवार (अनेकत्व) बताकर उस नश्वर तथा दुर्गम अनान काव्य भी कहा है—

नश्वर सत्कार

सद्वि पातन प्रलय भूमि—

१ यह सत्कार विलक्षण मिथ्या है (प्रयोग पृ० ३२) एक मात्र ईश्वर ही सत्य है (शक्तिवादी विचार, पृ० ४०)

२ विविध प्रसंग, पृ० ६५-६६

३ प्राच्य और पाश्चात्य, पृ० ८६

४ व्यावहारिक जीवन में ब्रह्मन्त पृ० २०

५ विविध प्रसंग पृ० ३४

६ परिमल, पृ० २०२

दुग्ध अनान राज्य—

मायावत में का परिवार<sup>१</sup>—

पन्त जी ने भी सत्सार को ब्रह्म की माया जयवा कौतुक के रूप में देखा है—

सजनि ! यह कौतुक है या रास ?

×                      ×                      ×

ब्रह्म माया का सा सत्सार ।

इसी प्रकार महादेवी वर्मा ने भी सत्सार को कौतुक जयवा विस्मय<sup>२</sup> के रूप में देखा है जोर उस माया का देश<sup>३</sup> कहा है । माया के कारण ही मनुष्य ईश्वर को भूलकर इस विषमय सत्सार को सजीवन मान बैठता है—

गूँघना मायावी सत्सार

गुना जाता स्वप्नो का हास

मानत विष को सजीवन

मुग्ध मेर भूत जीवन<sup>४</sup> ।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना चाहिए कि विवेकानन्द और शंकराचार्य के समान ही कबीर आदि सन्त कवियों ने भी सत्सार को माया नश्वर अस्थिर आदि कहा है जिनका छायावादी कवियों पर पथाप्त प्रभाव पड़ा है । अतः उनकी सत्सार का मायावत मानने की भावना पर किसी एक ही व्यक्ति संप्रणय अथवा मत का प्रभाव नहीं माना जा सकता । विशेषकर उस दशा में जबकि शंकराचार्य विवेकानन्द तथा सत्तो के मायावादी तथा तात्त्विक दृष्टि से कोई भेद नहीं है । वास्तव में छायावाद का मायावाद शंकराचार्य विवेकानन्द तथा सत्ता के मायावाद की क्षीण प्रतिध्वनि ही है । इसी से उसमें सत्तन जगत को नश्वर अथवा मिथ्या रूप में नहीं देखा गया है । छायावादी का कवि वृष्णवत्सल (विशिष्टाद्वैत द्वैताद्वैत आदि) तथा शंकाद्वयवाद से भी प्रभावित है जिनके अनुसार जगत सत्य है माया मिथ्या अथवा स्वप्न नहीं है । अतः

१ परिमल पृ० २२२

२ पल्लव पृ० ७६

३ आधुनिक कवि पृ० २२

४ वही पृ० १८

५ वही पृ० १७

वह जगत का सत्यरूप भी चित्रित करता है । इस प्रकार छायावाद में हम दशम शास्त्र में उपलब्ध माया के विभिन्न रूपा की अभिपक्ति दलन का मिलती है । इसका विवेचन हमने अद्वैतवाद के भिन्न भिन्न रूपों के साथ अनग अनग कर दिया है ।

जिस प्रकार शंकराचार्य ने माया से निवृत्त होने के लिए ज्ञान की आवश्यक माना है, उसी प्रकार विवेकानन्द ने भी माया की उत्पत्ति अज्ञान से बना कर उससे मुक्त ज्ञान के लिए ज्ञान-योग का माग निकाला है ।<sup>१</sup>

अज्ञान अविद्या अथवा माया ही मनुष्य को सत्कार में भटकती रहता है—माया ही समस्त पापकर्मों का मूल है । ज्ञान होने ही माया तथा तज्जनित सत्ता का अन्त हो जाता है । माया और ज्ञान की इन दोनों स्थितियों का बणन निराला जी की निम्न पंक्तियों में मिलता है—

बार-बार छाया में घोषा खाया

जागी तब न प्यास थी और न माया ।<sup>२</sup>

ज्ञान-दशा में नानात्व का उपशम हो जाता है और जीव को सत्य ज्ञान-अनन्त' ब्रह्म की उपलब्धि का जाता है । जब का इसी स्थिति का बणन निराला जी ने इन शब्दों में किया है—

वहाँ वहाँ कोई अपना सब  
सत्य-नीलिमा में तयमान  
केवल मैं, केवल मैं, केवल  
मैं, केवल, मैं केवल जान ।<sup>३</sup>

निराला जी का उक्त बणन विवेकानन्द के इस मन के विमान्त में केवल भ्रम मात्र है गल्पवया मात्र है । उसी अनन्त के ऊपर मानो एक आवरण पड़ा हुआ है और उसका कुछ अंश हम में रूप में प्रकाशित हो रहा है किन्तु

१ परमात्मा ही मुक्ति है (विविध प्रसंग पृ० ९६) । प्रत्यक्ष नर-नारी वही प्रत्यक्ष जीवन्त आनन्दमय एकमात्र देवता है (व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, पृ० ५६) । इस ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति ज्ञान द्वारा होती है (विविध प्रसंग १०२) ।

२ परिमल, पृ० ७९

३ वही, पृ० ८१

वास्तव में वह उसी अनन्त का अंश है। यथायत्न असीम कभी समीप नहीं होता—ससीम केवल बात की बात है<sup>१</sup> के कितना समीप है।

विवेकानन्द ने पारमार्थिक दृष्टि से जगत को माया अथवा उसके नानात्व को मिथ्या कहा है किन्तु वे उस बिल्कुल निष्प्रयोजन नहीं मानते क्योंकि उनके मत में यह सृष्टि भी एक मूर्ति ही है जिसमें और जिसके द्वारा हम जिसकी वह मूर्ति है और उससे परे है उसको ग्रहण करने का प्रयत्न कर रहे हैं।<sup>२</sup> इस प्रकार विवेकानन्द के समीप 'इस ससार और मनुष्य देह का भी मूल्य है परन्तु वह मूल्य गौण है। ससार और मनुष्य देह साध्य (ईश्वर) की प्राप्ति के साधन माने हैं। ससार और इन्द्रिया क द्वारा ही मनुष्य को धीरे धीरे ईश्वर तक पहुँचना है।<sup>३</sup> किन्तु दुर्भाग्यवश मनुष्य ससार का साध्य और ईश्वर को साधन सामग्री मान बैठता है।<sup>४</sup> मनुष्य के इसी भ्रम का पतन ने मगमरीचिका तथा इसके कारण मायाकृत ससार को मरु कहा है और विवेकानन्द के समान ही मनुष्य-जीवन के साथ ईश्वर की प्राप्ति के लिए गौणरूप ससार के महत्त्व को स्वीकार किया है—

उस छवि के मजुन उपवन को  
इस मरु से पथ जाता है  
पर मरीचिका में मोहित हो  
मग मग में देख पाता है।<sup>५</sup>

ससार का मगमरीचिका अथवा माया मानने के कारण विवेकानन्द ने ससार को त्यागन का भी आदेश दिया है। उनका कहना है कि वेदान्त में हमारे इस वर्तमान मायामय जीवन का—इस मिथ्या जीवन का—परित्याग करने के लिए कहा गया है और ऐसा होने पर ही उसके पीछे जो सत्य जीवन सदा वर्तमान है प्रकाशित होगा।<sup>६</sup> इसी के आधारभूत उन्होंने बताया है कि हम लोग का यह विशय रूप से जानना आवश्यक है कि वेदान्त का उद्देश्य इन सब वस्तुओं में भगवान का दर्शन करना है उनका जो रूप आपानत

१ व्यावहारिक जीवन में वर्तमान पृ २३-२४

२ प्रेमयाग पृ १०२

३ वही पृ० ३२-३३

४ वही पृ० ३३

५ वीणा ग्रन्थि पृ ३५

६ व्यावहारिक जीवन में वेदान्त पृ ०

प्रतीत होता है वह न देख कर उनको उनके प्रकृति स्वरूप में जानना है।<sup>१</sup> जा व्यक्ति प्रत्येक वस्तु में उसी सत्य का दर्शाता है, वही ससार में रहने योग्य है वही यह कह सकता है कि मैं इस जीवन का उपभोग कर रहा हूँ मैं इस जीवन में सुखी हूँ।<sup>२</sup> स्वामी विवेकानन्द के जीवन और जगत् सम्बन्धी इन विचारा तथा उपदेशों का छायावादी कवियों की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति पर प्रचुर प्रभाव पड़ा। जिसके परिणामस्वरूप उसने जगत की सुन्दर असुन्दर सभी वस्तुओं में ईश्वर-शक्ति का प्रवास किया। विवेकानन्द के इसी प्रभाव के कारण छायावाद की बाह्य मौल्य पर लिकी हुई दृष्टि अनासक्त भाव में अन्तर्मुखी हो गई है। अतः छायावाद का कवि कुकुरमुत्ता जसी हेय वस्तु में भी ब्रह्म की खोज करता है और उसे ब्रह्मवत् अथवा जगत्सिद्ध सब के रूप में चित्रित करता है।

### मुक्ति

स्वामी विवेकानन्द के मत में प्रत्येक (आत्मा) ही वही पूर्ण ब्रह्मत्व है।<sup>३</sup> अतः मनुष्य तो मुक्त ही है किन्तु उस इस सत्य का जानना पड़ता। वह प्रति क्षण इसे भूल जाता है। जाने या बिना जाने अपने इस मुक्त स्वरूप का पहचान लेना—यही प्रत्येक मानव का सम्पूर्ण जीवन है। जानी और अजानी बिना जाने अणु से लेकर नक्षत्र तन्त्र—सभी मुक्त हाने का ही प्रयत्न करते हैं।<sup>४</sup> इस प्रकार उनके अनुसार मुक्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य ध्येय है।<sup>५</sup> और इस मुक्ति का अर्थ है बाह्य एवं अन्तः प्रकृति दोनों का नियमन कर अन्तर्निहित ब्रह्म स्वरूप को अभिप्रेत करना।<sup>६</sup>

विवेकानन्द के वदन्त में 'इस ब्रह्म-त्व का अन्तर्भूति का एक माग माग है।' जिसकी गारुड उद्घाटन इस प्रकार की है—

तन्मय और उसकी प्राप्ति के साधना इन दोनों का मित्रा कर योग पड़ा जाता है। योग शब्द मस्तक के अन्ती धातु से व्युत्पन्न हुआ है जिसमें कि अग्रणी शब्द 'यान' (Yoke) जिसका जम है जाड़ना जा कि हमारा प्राण

१ व्यावहारिक जीवन में वदन्त पृ० ३४

२ वहाँ पृ० ४२, ४४

३ ४ ५ त्रिविध प्रसंग पृ० ६० ९७ ९७

४ भाषित्यायी विचार, पृ० ३१

५ त्रिविध प्रसंग, पृ० ८५ ८६

स्वरूप है। इस प्रकार के योग अथवा मिलन के साधन कई हैं पर उनमें मुख्य हैं कर्मयोग भक्तियोग राजयोग और ज्ञानयोग।<sup>१</sup>

याग के इन भिन्न प्रकारों की परिभाषा इस प्रकार की है—

१ कर्मयोग—इसके अनुसार मनुष्य कर्म और कर्तव्य के द्वारा अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति करता है।

२ भक्तियोग—इसके अनुसार अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति समुच्च ईश्वर के प्रति भक्ति और प्रेम द्वारा होती है।

३ राज-योग—इसके अनुसार मनुष्य अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति मन संयम के द्वारा करता है।

४ ज्ञान-योग—इसके अनुसार अपने ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति ज्ञान के द्वारा होती है।

ये सब एक ही केन्द्र—भगवान की ओर ले जाने वाले विभिन्न मार्ग हैं।<sup>२</sup> अतः विवेकानन्द का आदेश है कि कर्म भक्ति याग या ज्ञान के द्वारा इनमें से किसी एक के द्वारा या एक से अधिक के द्वारा, या सबके सम्मिलन के द्वारा मुक्त हो जाओ। यही धर्म का सर्वस्व है। मत मतान्तर विधि या अनुष्ठान अथवा मन्दिर या सब गौण हैं।<sup>३</sup>

विवेकानन्द के इसी योग का समर्थन निराला जी ने पंचवटी प्रसंग में राम के मुख से कराया है—

आती जिज्ञासा जिनास के मस्तिष्क में जब  
भ्रम से सब भागने की इच्छा तब होती है—

जागता है जीव तब  
योग सीखता है वह योगियों के साथ रह  
स्थल से बह सूक्ष्म सूक्ष्मात्मिसूक्ष्म हो जाता <sup>४</sup>

कर्म भक्ति याग ज्ञान में से किसी एक को अपना कर मनुष्य जीव-मुक्त हो सकता है अतः सामान्य दृष्टि से वे एक ही हैं विवेकानन्द का इस मत की स्थापना निराला जी ने पंचवटी प्रसंग में ही इस प्रकार की है—

१ विविध प्रसंग पृ० १०३

२ वही

३ शक्तिशायी विचार ३१

४ परिमल प० २२२ २३

भक्ति-योग कम जान एक हा है

यद्यपि अधिकारिया के निबट्र भिन्न दीखते हैं ।

एक ही है, दूसरा नहीं है कुछ<sup>१</sup>—

किन्तु 'योग' के इन विभिन्न रूपों में निराला जी ने 'जानयाग' की अत्यन्त जटिल तथा भक्तियोग को सब सुलभ बनाया है क्योंकि वह सामान्य मनुष्य के मन की गति के अनुकूल है । इस प्रसंग में उल्लेख प्रकरान्तर से मुनियों की 'यावहारिक' दृष्टि से प्रशंसा भी की है—

मुनियां न मनुष्यों की गति

सोच ली थी पहले ही ।

इसलिए द्वैतभाव भावुओं में

भक्ति की भावना भरी<sup>२</sup>—

इसमें स्पष्ट है कि निराला जी मुक्ति की उस अवस्था को नहीं चाहते जिसमें जीव अव्यक्त ब्रह्म से एकाकार होकर अपनी सत्ता खो देता है । अतः उन्होंने स्पष्ट कहा है—

मुक्ति नहीं जानता मैं भक्ति रह काफी है ।<sup>३</sup>

इस प्रकार निराला जी के लिए भक्ति अथवा उपामक उपाम्य की जान-जानुभूति ही काम्य है । अतः वे मुक्ति की उस निशा की जिसमें जीव अपना अस्तित्व खोकर आनन्दमय ब्रह्म रूप हो जाता है घोर निंदा भी करते हैं—

आनन्द बन जाता हय है

श्रेयस्कर आनन्द पाना है<sup>४</sup>

निराला जी की भक्ति ही काम्य है अतएव वे सदा ही ईश्वर से भनात हैं—

परमात्मन लीग तुम्हें मनस्काम कल्पतरु कहते हैं, तुम सबके भना भिताप पूर करत हा यदि प्रभो, मुझ पर सन्तुष्ट हो तो मैं यही कर माँगता हूँ—

१ परिमल पृ० २२५

२ यह है बड़ा जटिल भाव भक्ति-अथवा कहा नाय ।

परिमल पचवटी प्रसंग, प० २२५ ॥

३ वही, पृ० २२५

४ वही पृ० २१५

५ वही, प० २१६



तुच्छ वासनाओं का  
 विसर्जन मैं कर सकूँ  
 कामना रह ता एव  
 भक्ति की बनी रह ।<sup>१</sup>

परिमल की जागरण—शीघ्र ज्विता म विरला जो न हम यह  
 भी बननाया है कि मैं ससार क मायामोह न मुक्त होकर अपन लक्ष्य को  
 प्राप्त अर्थात् जीव-मुक्ति का भी अनुभव कर चुका हूँ—

प्रतिपद पराजित भी अप्रतिहत बढ़ता रहा  
 पट्टुचा मैं नश्य पर ।  
 अधिचर निज शान्ति म  
 वचान्ति सब खो गई—

टूट गये सीमा बंध—  
 छूट गया जड पिण्ड—  
 ग्रहण देश-काल का  
 निर्बीज हुआ र्म—  
 पाया स्वरूप निज  
 मुक्ति रूप स हुई<sup>२</sup>—

उपयुक्त पक्तियों में विवेकानन्द के इस मत का कि योग अपने आन्तरिक मुक्त  
 स्वभाव की अनुभूति स हाता है और इस अनुभूति क सामन सभी वस्तुएँ  
 पराभूत हो जाती हैं<sup>३</sup> का ही सम्यक् निरूपण हुआ है ।

जीव-मुक्ति क सम्बन्ध में विवेकानन्द न कहा है कि यह बात नहीं है  
 कि मुक्त हान पर मनष्य बम करना छान दे और निर्बीज मिट्टी का ढर बन  
 जाय प्रत्युत वह अन्य लागा की अपक्षा अधि-कमनीन हाता है क्वाकि अय  
 नाग ता केनन वाध्य हाकर बम करत हैं पर वह स्वतंत्र हाकर ।<sup>४</sup> दूसरे

१ परिमल पृ० २१७

२ वहा पृ २३३

३ विविध प्रसंग पृ ८६

४ वही पृ० ९१

शान्ति म जीव-मुक्ति का काम निष्काम काम होता है । निराला जी का कवि नसी निष्काम काम म प्रवृत्त है—

कवि तुम एव तम्ही  
घार-घार झेतत सहस्रा वार  
निमम समार के  
दूसरो के अथ ही लैते दान

मोड निज सुख म मुख ।<sup>१</sup>

नसी कारण वह सबस्व त्याग म ही नित्यानन्द का अनुभव करता है—

रिक्त्त तत्त्वान कर  
रहते हो रिक्त्त ही

चिर प्रसन्न ! चिरकालिक पतझड बन हुए ।<sup>२</sup>

निराला जी की भाँति ही महादेवी वर्मा भी अद्वैतवाद की उपासिका हैं किन्तु आराधना के क्षेत्र म वह द्वैतभाव बनाये रखना चाहती हैं । उनकी इस द्वैतभावना का आधार भी उपास्य-उपासक भाव ही है जिसम आत्मा परमात्मा की केलि अथवा श्रीडा का सदर विधान है—

रगमय है देव दूरी !  
छू तुम्ह रह जायगी यह  
चित्रमय श्रीडा अधूरी !

दूर रहकर सेवना पर मन न भरा मानता है ।<sup>३</sup>

अन वह अपन निजत्व क अभिमान को त्यागना नहा चाहता—

सजनि मधुर निजत्व दे  
कन मिलूँ अभिमानिनी मैं ।<sup>४</sup>

इस प्रकार महादेवी वर्मा की नस निजत्व अथवा द्वैत की रक्षा अथवा लोभ का कारण त्रिय अथवा परमात्मा के प्रति आराध्य आराधक सम्बन्ध ही है—

१ परिमल पृ० १७०

२ वही पृ १८०

३ आधुनिक कवि (१) पृ० ९४

४ वही पृ० ९०

बह रहे आराध्य चिन्मय  
मण्मयी अनुरागिनी में ।<sup>१</sup>

महादेवी वर्मा की इस भक्ति भावना पर विवेकानन्द के भक्ति-योग का प्रभाव माना जा सकता है क्योंकि उनका प्रियतम विवेकानन्द के ब्रह्म की तरह निगुण ब्रह्म ही है जिसका स्मरण चिन्तन तथा तादात्म्य उनकी कविताओं के उपादान है। केवल आराधना के क्षेत्र में ही वे दृढता का आग्रह करती हैं जो विवेकानन्द के भक्ति याग के अत्यन्त निकट है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विवेकानन्द के ब्रह्म या ईश्वर मानव ईश्वर की भावना दुःख तथा प्रमरूप भगवान् मायारूप जगत तथा उसमें भक्ति के सिद्धांतों का छायावाद की कविता पर प्रचुर प्रभाव पड़ा है।

### श्री अरविन्द दशन

श्री अरविन्द का दशन भी औपनिषदिक अद्वैतवाद की ही परम्परा में आता है। और उसकी सबसे बड़ी देन औपनिषदिक ज्ञान का आधारभूत अविमानस की खोज सामूहिक मुक्ति पथों और स्वर्ग का समावेश अथवा दिव्य जीवन की कल्पना या स्थापना है। किन्तु छायावाद युग में किसी भी छायावादी कवि पर अरविन्द दशन का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। आज भी हिन्दी में श्री अरविन्द के दिव्य जीवन दशन के एकमात्र प्रचारक या अभिभावक छायावादी कवि पतंजली ही कहे जा सकते हैं। किन्तु छायावाद युग में जिसकी सीमा सामान्यतः सन १९४० ई० तक मानी जाती है पतंजली का भी परिचय अरविन्द दशन से नहीं हो पाया था। अरविन्द दशन से अपना संबंध दिखाने हुए पतंजली ने उत्तरा की भूमिका में लिखा है कि इस दशन से मेरा परिचय सन ४२ के आसपास हुआ जबकि द्वितीय यज्ञ का चक्र चल रहा था और जो मेरी मन स्थिति के लिए अत्यन्त ऊँचापेह का युग था।<sup>२</sup> किन्तु इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि अरविन्द दशन के सम्पर्क में आने के पूर्व मेरे भीतर कुछ ऐसी नवीन अनुभूतियाँ उत्पन्न होने लगी थी जिनकी पृष्ठि अरविन्द दशन से अच्छी तरह हो गई—

‘अपनी नवीन अनुभूतियाँ के लिए जिन्हें मैं अपनी सूक्ष्म चेतना का स्वप्न-संचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था मुझ किसी प्रकार के बौद्धिक

१ आधुनिक कवि (१) पृ० ९२

२ उत्तरा प्रस्तावना पृ० १८

तथा आध्यात्मिक जन्मम्व की आवश्यकता थी। इहा दिना मेरा परिचय श्री अरविन्द के भागवत जीवन ( नि लाइफ डिवाइन ) से हो गया। इसवे प्रथम खण्ड के पन्ते समय मुझे ऐसा लगा जस मेरे अस्पष्ट चिन्तन को अत्यन्त सुस्पष्ट सुगठित एव पूण दशन के रूप में रख लिया गया है।<sup>१</sup> इसमें स्पष्ट है कि छायावात् युग में श्री अरविन्द-दशन से परिचय न होते हुए भी पत जी के विचारा में श्री अरविन्द दशन के तत्व मौजद थे और वे तत्व थे भूत और आत्मा का सम्बन्ध<sup>२</sup> पृथ्वी पर स्वर्गलोक की कल्पना<sup>३</sup> आध्यात्मिक अथवा नाकात्तर मानवता का सृष्टि तथा बहिरतर

१ पन्त उत्तरा प्रथम संस्करण, प्रस्तावना पृ० १८

2 We start then, with the conception of an omnipresent Reality of which neither the Non Being at the one end nor the universe at the other are negations that annual they are rather different states of the Reality obverse and reverse affirmations

Sri Aurobindo The life Divine Vol 1 1943 p 40

जड चेतन है एक नियम के वश परिचायित  
मात्रा का है भेत् उभय है अन्योन्यायित ।  
भूत जगत की पावता को करा न कल्पित  
निखिल जीव जग की सत्ता इससे परिपायित ।

पन्त युगवाणी, १९३९ पृ० ५४

3 For from the divine Bliss the original Delight of existence, the Lord of Immortality comes pouring the wine of that Bliss the mystic some into these jars of mental living matter eternal and beautiful he enters into these sheaths of substance for the integral transformation of the being and nature

Sri Aurobindo, The life Divine Vol 1 1943, p 315

मुक्त जहाँ मन की गति जीवन में रति  
भव मानवता में जन जीवन परिगति ।

ऐसा स्वर्ग घरा में तो मनुष्यस्थित

नय मानव-सृष्टि किरणा में ज्यायित ।

पन्त युगवाणी १९३९ पृ १८

नाति द्वारा सामहिक मुक्ति ।<sup>1</sup> इस प्रकार पत जी ने छायावाद काय मही श्री अरविद के लिख्य जीवन की कल्पना के समान ही यह कल्पना कर ली थी कि भूत और आत्मा म से प्रत्येक अकेला रहने पर अपर्माप्त है । मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करे । जइ चेतन व इसी समन्वय को ध्यान म रखकर उहाने युगवाणी (१ ३९) म कहा था—

भूतवाद उस स्वर्ग के लिण है केवन सोपान  
जहाँ आत्म दर्शन अनादि स समासीन अमान ।<sup>2</sup>

- 4 There may be even here a physical working of divine mind and sense a physical working of divine life in the human frame and even the evolution upon earth of some thing that we may call a divinely human body  
Sri Aurobindo The Life Divine Vol 1 1943 p 307

क्या न एक ही मानव सभी परम्पर

मानवता निमाण करें जग म जोकीतर ।

पत युगवाणी १९३९ पृ २८

- 1 by the illumining descent of the higher into the nature of the lower being and the forceful ascent of the lower being into the nature of the higher mind can recover its divine light in the all comprehending super mind life repossess its divine power in the play of omnipotent Conscious Force and Matter open to its divine liberty as a form of the divine Existence

Sri Aurobindo The Life Divine Vol I 1943 p 319

सब मुक्ति हो मुक्ति तत्व अब

सामूहिकता ही निजत्व अब

बने विश्व जीवन की स्वरत्रिपि

जन जन मम कहानी ।

पत युगवाणी १९३९ पृ १४

- 2 However high we may climb even though it be to the Hon Being itself we climb ill if we forget our base Not to abandon the lower to itself but to transfigure it in the light of the higher to which we have attained is true divinity of nature

Sri Aurobindo The Life Divine Vol I, 1943, p 45

- ३ पत, युगवाणी, १ - ९ पृ १३

इसी प्रकार श्री अरविन्द क सम्पक मे आन के पूव ही उहोने यह अनुभव कर लिया था कि पदाथ (मटर) और चेतना (स्पिरिट) नदी के दो किनारो के समान है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर साथ प्रवाहित एव विकसित होता है ।<sup>१</sup> अत सत्य या ता भूत और आत्मा के समन्वय म है या उनमे परे है<sup>२</sup>—

बहिरतर आत्मा भूता स है अतीत वह तत्त्व ।

भौतिकता आध्यात्मिकता कवल उसक दा पून

व्ययित विश्व स स्थूल सूक्ष्म म परे मत्य के मूल ।<sup>३</sup>

इसी दृष्टिकोण से उहोने युगवाणी म बहिर्जीवन के साथ अन्तर्जीवन के सगठन की आवश्यकता पर बल दिया है और माक्सवाङ्मय के लोक-सगठन स्पी टापाक आदर्शवाद और भारतीय दशन क चेतनात्मक ऊँच आदर्शवाद दोना का समन्वय करने का प्रयास किया है ।<sup>४</sup> युगवाणी की भूमिका म उहोने स्पष्ट कता है कि भविष्य म जब मानव-जावन विद्युत जीव अणु शक्ति का सबल टोका पर प्रलय बग से दीडन लगगा तब आग क मनुष्य की तकौ वादा म बिलगरी हुई चेतना उनका संचालन करने म किमी तरह भी समथ नही हो सकेगी । इसलिये सामाजिक जीवन के साथ ही मनुष्य की अन्तश्चतना म युगात्तर का होना अवश्यम्भावी है ।<sup>५</sup> यही कारण है कि पन्त जी न भौतिक वाङ्मय क सिद्धांता का जहाँ समर्थन किया है वहाँ उनका अशास्त्रवाङ्मय क साथ समन्वय एव सश्लेषण भा करन का प्रयत्न किया है ।

१ पन्त युगवाणी की भूमिका, दखिए प्रतीक शब्द पृ० १००

२ The Transcendent the Supracornic is absolute and free in itself beyond Time and Space and beyond the Conceptual opposites of finite and infinite

Sri Aurbindo The Life Divine Vol I 1943 p 43

३ पन्त, युगवाणी १९३९ पृ० ४२

४ पन्त युगवाणी का भूमिका—दखिए—प्रतीक शब्द पृ० ३००

अन्तर्मुम अन्त पडा था बग-युग म निष्क्रिय निष्प्राण,

जग म उम प्रतिष्ठित करन लिया नाम्य न बन्तु विश्राम ।

पन्त युगवाणी १९३९ पृ० ८१

५ पन्त उत्तरा प्रथम मस्तरण प्रस्तावना म उद्धृत पृ० ५

श्री अरविन्द के आध्यात्मिक ऊर्ध्व सचरण से प्रभावित स्वर्णकिरण' के विचारों का अपने पूर्ववर्ती विचारों का ही विकास प्रमाणित करते हुए एतत्त जी ने लिखा है कि ज्योत्स्ना की स्वप्नलाक भादनी (चेतना) ही एक प्रकार में स्वर्णकिरण में युग प्रभात के आलोक में स्वर्णिम हो गई है—

वह स्वर्ण भार को ठहरी जग के ज्योतिष जागन पर  
तापसी विश्व की वाता पान नव जीवन का वर ।<sup>१</sup>

इस पक्ष का और पुष्ट तथा स्पष्ट करते हुए उन्होंने उत्तरा की भूमिका में कहा है कि ज्योत्स्ना में मैंने जीवन की जिन बहिरंतर मायताओं का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) में उनके रूपान्तरित होने की ओर इंगित किया है युगवाणी और ग्राम्या में उहाँ के बहिर्मुख (समतल) सचरण का (जो भावमवाङ्मय का क्षण है) तथा स्वर्णकिरण में अन्तर्मुखी (ऊर्ध्व) सचरण का (जो आत्मा का क्षण है) अधिक प्रधानता दी है किन्तु समन्वय तथा सशुभपण का दृष्टिकोण एवं सज्जनित मायताएँ दोनों में समान रूप से वर्तमान हैं ।<sup>२</sup>

युगवाणी में भौतिकता को प्रधानता देने के कारण ही एतत्त जी ने लिखा है—

जीवन का चिर सत्य  
नहीं दे सका मुझ परितोष  
मुझ पान सं वस्तु सुहाती  
सूक्ष्म बीज सं कोष ।<sup>३</sup>

किन्तु आध्यात्मिकता के पक्ष में सर्वोपरि भौतिकवादियों का उहाँ ने यह चेतावनी भी दे दी है—

आत्मवाद पर हमलें हा भौतिकता का रट नाम ।  
मायता की मति गणोगे तुम सवार कर चाम ?<sup>४</sup>

इसी प्रकार स्वर्णकिरण स्वर्णधूलि तथा उत्तरा में आध्यात्मिकता का प्रधानता देने के कारण उँहोंने जट भौतिकवादियों का मजाक उड़ाते हुए जट धतन की एकता की विनक्ति भी दे दी है—

- १ पं० उत्तरा प्रथम संस्करण प्रस्तावना पृ० १
- २ उत्तरा, प्रस्तावना प्रथम संस्करण पृ० २
- ३ युगवाणी १९३९ पृ० ७६
- ४ वही पृ० ६०

तुम धस्तु तमम म डक दाग  
आदर्शों का अक्षय प्रकाश ?  
यात्रिक पशुघन से राजाग  
मानव का देवोत्तर विक्राम ।

फिर भी यदि जाना तुमका प्रिय  
उनका चेतनता दुःख नितान्त  
हे सत्य एव — जो जड़ चेतन  
भर अक्षर परम अनन्त मान्त ।<sup>१</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूत और आत्मा के सम्बन्ध का व्यापार पन्त जी अपने जीवन तथा काव्य के किसी सम्बन्ध पर नहीं छाट पाये हैं । वास्तव में भौतिकता और आध्यात्मिकता का सम्बन्ध ही पन्त का जीवन दर्शन तथा उनके काव्य का मौखिक स्वर है । उनके इस सम्बन्ध का बीज उनकी प्रारम्भिक कृति ज्यात्मना में विद्यमान है । ज्यात्मना में वर्तमान का निम्न कथन पन्त जी के सम्बन्धवादी जीवन-ज्ञान के अम विकास पर जिस वे किसी समय और किन्ना अवस्था में विस्मय नही कर पाये हैं पूण प्रकाश डालता है—

जिस प्रकार पूव की सम्भ्रता जपन एकांगी आत्मवाद और अध्यात्मवाद के दुष्परिणामो में नष्ट हुई है उन्ना प्रकार पश्चिम का सम्भ्रता भी अपने एकांगी प्रकृतिवाद विचारवाद और भूतवाद के दुष्परिणामो में विकास के दान्त में डूब गई । पश्चिम के जटवा के मानव प्रतिमा में पूव के अध्यात्म प्रकाश की आत्मा भरकर एव अध्यात्मवाद के अस्तित्वपर म भूत या अद्वैत विज्ञान के रूप रगा को भर कर हमन आन बाल युग का निर्माण किया है ।<sup>२</sup>

किन्तु आन बाल युग में भी पन्त जी के भीतर यह शका बराबर बनी रही कि भूत और आत्मा में बरख्य कौन है ? यदि भूत आधार और आत्मा आधेय है तो भूत का उपाग करके आत्मा का उपाग में कत बचाया जा सकता है ? यन्ना प्रश्न उनके लिए भाव्य और गाथा के बाव का प्रश्न बन गया । गाथा में आत्मा की उदात्तता चाहते थे किन्तु जित जित रात भूत

१ उत्तरा प्रथम मस्करण पृ० ८६ ८८

२ पन्त मैरा रचनागत दणिय प्रकाश—८ दन्त पृ० ३२



सता रही हो उसकी आत्मा किम प्रकार उत्थान पा सकती है ? आधार के बिना आधय का अस्तित्व ही मकटपूण हो जाता है । निदान पत जी कल्पना करने लग कि गांधी का स्वीकार करते समय किसी न किसी दूरी तक मावस को भी स्वीकार करना होगा । अघात आत्मा का धरण करते समय भूत का भी सबथा त्याग नहीं चन सकता । यही पत जी की व नवीन अनुभूतिया थी जिनके लिए वे कांई बौद्धिक तथा जाध्यात्मिक अवलम्ब चाहते थे और अन्ततोगत्वा यह अवलम्ब उन्हें अरविन्द दर्शन में प्राप्त हुआ । तब से द्विधा की स्थिति समाप्त हो गयी है और व पूरी निश्चिन्तता के साथ उस विश्व का काल्पनिक चित्रण कर रहे हैं जो भूत और आत्मा के सम्यक विकास एवं सम्यक मितन से उत्पन्न होगा ।<sup>१</sup>

इस प्रकार हम दसत हैं कि पत जी पर श्री अरविन्द दर्शन का प्रभाव कांई आकस्मिक घटना नहीं है प्रयुत यह उनका छायायुगीन समन्वयामक जीवन-दर्शन के नम विकास की ही एक सुदृढ और समुज्ज्वल कड़ी है जिसकी अभिव्यक्ति का अवसर उन्हें छायावादोत्तर का नम ही मितन मका है । छायावादकाल में उपनिषदा व प्रभाव से जड चेतन की एक्ता का भान ता उन्हें था और वह भूतल को स्वयं बनाने की कामना भी करते थे किन्तु जड चेतन को किस प्रकार समन्वित किया जाय यह समस्या उनके सामन बराबर बनी रही जिसका समाधान उन्हें श्री अरविन्द दर्शन द्वारा हुआ । श्री अरविन्द से उन्होंने यह भीखा कि चेतन ही जड है अतः जड चेतन बाना को सथोजित कर नव जीवन की रचना सम्भव हो सकती है ।<sup>२</sup> तब से पत जी निरन्तर जड (अध =

१ देखिये दिनकर पत प्रसाद और भविनीधरण

प्रथम संस्करण १९५८ पृ १६

२ गुड बुड हो सब जा

भद मुक्त निभय मन

जीवित सब जीवन धण

स्वयं यही भूतन हा ।— यादस्ना से

देखिए पत पत्राधिनी प्रथम संस्करण पृ २५९

३ तम प्रकाश चनन ही जड है मत्र जमाध मिक्षाया तमन ।

पत वाणी प्रथम संस्करण पृ० ४३

४ नव जावन रचना सम्भव थी जड चेतन को कर सधागिन ।

पत वाणी प्रथम संस्करण पृ० १६२

भौतिकवादी) और चेतन (ऊर्ध्व=अध्यात्मवाद) के समन्वय द्वारा पृथ्वी और स्वर्ग का परिदृश्य कराते में सम्मिलित है।<sup>१</sup> इस प्रकार छायावादी-भुग के भूत और आत्मा, जन्म और चेतन दशत और विज्ञान पृथ्वी और स्वर्ग के भावात्मक अथवा कल्परनात्मक समन्वय को ही पन्त जी अपनी छायावादीतरकानीय वृत्तियों स्वर्ण किरण स्वर्ण धूमि उत्तरा अतिमा, वाणी जादि म थी अरविन् व दिव्य जीवन—जो मटर (भूत) का ही चरम विकास है—की भूमिका में वही तमयना तथा निश्वास के साथ व्यक्त करत चल जा रहे हैं।

जड़-चेतन का समन्वय श्री अरविन्द-दशन की मौलिक देन है।<sup>२</sup> अतः पन्त जी के जावन-दशन में थी अरविन्द के पभाव से जड़-चेतन का उक्त समन्वय भिन्न-भिन्न द्वन्द्वा-यथा तम-प्रवाण मत्त-अमर शरीर आत्मा<sup>३</sup> सन्-असत्<sup>४</sup> श्रय-प्रय,<sup>५</sup> इह-पर<sup>६</sup> स्थूल-सूक्ष्म<sup>७</sup> व्यक्ति-विश्व

१. हो रत्न स्वर्ग में धरणी का जड़ में चेतन का रहस्य मिलन

सू स्वर्ग एक ही रहस्य नुराण नरतन करत धारण।

पन्त उत्तर प्रथम सस्वरण पृ० ७१

2. Matter also is Brahman and it is nothing other than or different from Brahman. If indeed Matter were cut off from Spirit this would not be so but it is as we have seen only a final form and objective aspect of the divine Existence with all of God ever present in it and behind it. Sri Aurobindo The Life Divine Vol I, 1943 P 92

३. तम प्रवाण हा जन्म चेतन हा रत्निय हा आत्मा तन मन हा

मत्त अमर का एक पौति में पूरक मान विज्ञानों।

पन्त वाणी प्रथम सस्वरण, पृ० ४५

४. क्या प्रवाण तम भिन्न? पृथक् सदमत जड़ चेतन?

एक गतिश्रम धर में प्राप्त अमर तक अनुक्षण।

पन्त वाणी प्रथम सस्वरण पृ० १३

५. श्रय प्रीय हा व्यक्ति धर्म हा ताक कर्म हो—

पन्त वाणी प्रथम सस्वरण पृ० ५५

६. जड़ से हो विद्विन्न न चेतन आत्मा में रे भिन्न न तन मन,

इह पर म हा मन न जीवन भूमित हा गुण पाता।

पन्त वाणी प्रथम सस्वरण पृ० ७१

७. स्थूल सूक्ष्म का नव प्रवाण में जावन में जाना सदावित्त।

पन्त वाणी प्रथम सस्वरण, पृ० १७३

जघ — ऊर्ध्व <sup>१</sup> बहि — अन्तर स्वर्ग परणी <sup>२</sup> विद्या अविद्या <sup>३</sup> ज्ञान भावना बुद्धि ह्यय <sup>४</sup> आत्मा के रहस्य मित्तन के रूप में व्यक्त हुआ है ।

छायावाङ्मय युग में गांधी जी के प्रभाव से पतंजी जाध्यात्मिकता के प्रबन्धन पतपाती थ <sup>५</sup> मित्तु अध्यात्म = दर्शन का वराम्य सिद्धांत उह स्वीकार न था अतः भू जीवन में पथक भागवत जीवन उह किंचित भाता नहा था ।<sup>६</sup> इसी से लोक सञ्जति के सम्बन्ध में उन मित्तना जात्मा की महिमा के प्रति उनका प्रश्नवाचक चिह्न बना रहा ।<sup>७</sup> म प्रबन्धन का समाप्तान श्री जरविद दर्शन

१ सामाजिक जन विश्व रूप जो रहे एक में वन्मस जीवित  
जग उर्ध्व को बहिरतर को मनष्यत्व में कर समवित ।  
पत वाणी प्रथम संस्करण पृ १७७

२ बहिरतर की सत्या का जग जीवन में कर परिणय  
ऐहिक जात्मिक बभ्रव से जन मगन हो नि सजय ।  
पत स्वर्ण किरण प्रथम संस्करण प २३

३ बधता प्रकाश तम बा ने में सुर मानव तन करते धारण  
फिर नाक चेतना रगभूमि भू म्बग कर रहे परिभण ।  
पत उत्तरा प्रथम संस्करण प ७

४ ब्रह्मज्ञान र विद्या भता का एकरव सम वय  
नीतिक ज्ञान अविद्या बहुमुख एर सत्य का परिचय ।  
पत स्वर्ण किरण प्रथम संस्करण प ३

५ फिर स्वर्ग बजाए भू की हृत्तत्री निषचय  
जो ज्ञान भावना बुद्धि ह्यय का हा परिणय ।  
पत उत्तरा प्रथम संस्करण प ४५

६ नव सञ्जति के दूत । देवताज्ञा का करने काय  
आत्मा के उद्धार के निए आए तम अनिवाय ।  
पत युगवाणी १९२९ पृ० १३

७ कम त्याग वराम्य ध्येय हो ह्यय न तर करता था स्वीकृत  
भू जीवन में पृथक भागवत जीवन मुभ न भाता किंचित ।  
पत वाणी प्रथम संस्करण प० १४४

८ आत्मा की महिमा में मण्णिन होगी नव मानवता ?  
प्रम शक्ति में चिर निरस्त्र हा जावगी पाशवता ?  
पत युगवाणी १९३६ पृ० १३

द्वारा भली भाँति हो जाने पर उह पात हो गया कि जड़ विज्ञान और चेतना का संचरण दानो लोक जीवन के विकास में बाधक न होकर सहायक किंवा आवश्यक हैं ।<sup>१</sup> अतः उनके सांस्कृतिक संचरण में गांधी जी ताँ मात्र साधन बन कर रह गये थीर साध्य हुए 'योगेश्वर श्री अरवि' ।<sup>२</sup> निदान आस्वस्थ होकर पन्त जी यह प्रचारित करने लगे कि मानव जीवन का परिचालन वही सत्य कर सकता है जिसका रज तन भूतवादाँ हों जिसका मन प्राणिवाद और हृदय अध्यात्मवाद हो ।<sup>३</sup> दूसरे शब्दों में वे इस जगत में अध्यात्म संचरण का मूर्तित तथा स्थूल सूक्ष्म को तबीन प्रकाश में संयोजित होने की कामना करने लगे ।<sup>४</sup> इसी दृष्टि से उन्होंने उन लोगों को जावन-दशन का मिथ्या कहा जो सृष्टि में एकता को विभिन्नता में विभक्त करके खोजते हैं क्योंकि उनके मत में जगत की विचित्रता (विभिन्नता) ही पूर्ण एकता का एकांत निदर्शन है ।<sup>५</sup> इस प्रसंग में उन्होंने सत्सार से विमुक्त कराने वाले सत्यास भाग का भाँ

- १ वास्तव में चाहे चेतना को पदाथ (अन्न) का सर्वोच्च या भीतरा स्तर माना जाय चाहे पदाथ को चेतना का निम्नतम या बाहरी धरातल दोनों ही मानव जीवन में अविच्छिन्न रूप में वागर्थादिव जुड़ हुए हैं । जिस प्रकार पदाथ का संचरण परिस्थितियों के सत्य या गुणों में अभिन्यक्त होता है उसी प्रकार चेतना का संचरण मन के गुणों में लोक जीवन के विकास के लिए दाना ही में सामंजस्य स्थापित करना नितान्त आवश्यक है ।

पन्त, उत्तरा, प्रथम संस्करण पृ० ७

- २ शुद्ध बने गांधी जी साधन, माध्य सिद्ध युग के योगेश्वर देता जड़ विज्ञान उपकरण-गठनाँ भू जन का नव चेतन !  
पन्त वाणी, प्रथम संस्करण, पृ० १६८

३ पन्त स्वर्ण घूनि प्रथम संस्करण पृ० १३

४ पन्त, वाणी प्रथम संस्करण पृ० १६८

५ मिथ्या जन्माँ जीवन दशन  
जो विभिन्नता में विभक्त कर  
खोज रहे एकता सृष्टि में,

भर उपवन की विचित्रता

पूर्ण एकता का एकांत निदर्शन !-पन्त वाणी, पृ० १३ ३४

विरोध किया है<sup>१</sup> क्योंकि उनके मतानुसार जीवन की ज्ञान-जड़ चेतन की धूप छाँह सं ही है।<sup>२</sup> जड़ चेतन के ऐक्य के आधारमूल उहाने आध्यात्मिकता का अवहेलना करने वाले भौतिकवादियों तथा भौतिकता का निषिद्ध निर्णीत करने वाले अध्यात्मवादियों को सण सत्य का ही पुजारी प्रमाणित कर उहे यह सुभाव लिया है कि वे जन-जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने के लिए एक दूसरे के दृष्टिकोण का समर्थ और अपनावें—

तट अधिवासी उतरा भीतर घट अभ्यासी विचरो बाहर  
वितरित हा बहिरतर बभव जन जीवत हा सुखमय, सुन्दर !  
सण करो मन पूण सत्य को भू जीवन की तुम्हे शपथ है।<sup>३</sup>

म प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी न भौतिकता और आध्यात्मिकता को एक ही मस्य के दो पहलुओं के रूप में ग्रहण कर उहे लोच कल्याण के लिए महत्तर सांस्कृतिक समन्वय में एक दूसरे के पूरक की तरह समायोजित करा चाहा है।<sup>४</sup> भौतिकता और आध्यात्मिकता के उक्त समन्वय को ही उहाने भागवत जीवन माना है—

जन भ पर करना निर्मित नव जीवन बहिरतर सयोजित  
एक मनत्र ही एक घरा हो —यही भागवत जीवन निश्चित।<sup>५</sup>

पन्त जा का स्वयं ज्ञापन है कि आज अध्यात्म के विरुद्ध भौतिकवाद उन्वचनन अतिचेतन के विरुद्ध उपचेतन अकचेतन दशन के विरुद्ध विज्ञान-यत्तिका के विरुद्ध समूहवाद एवं जनतंत्र के विरुद्ध पूँजीवाद खड़े होकर मानव जीवत में एक अधिविश्व ज्ञानि तथा अन्तगत असगति का आभास दे रह है।<sup>६</sup> वसी अन्तगत असगति न उनका ध्यान एक-यापक जनमुक्त विकास

१ भू पर ससृष्ट द्रिय जीवन मानव आत्मा की रे अभिमत  
ईश्वर का प्रिय नहीं विरागी सायासी जावन भ उपरत !

पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ १७५

२ जड़ चेतन की धूप छाँह में जीवन शोभा का मुख गणित ।

पन्त वाणी प्रथम सं० प० १२

३ पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ ४८

४ पन्त गद्य-त्रय प्रथम संस्करण पृ १४०

५ पन्त वाणी प्रथम संस्करण पृ० १७२

६ पन्त गद्य-त्रय, प्रथम संस्करण पृ० १९७

तथा अहिंसा समन्वय की आर आकृष्ट किया है<sup>१</sup> किन्तु प्रधानता उ हान  
जन्तुस विकास को ही दी है।<sup>२</sup> उनका स्पष्ट क म न है—

ता क म न म कहा अतरित जात्मा का मन है चिर ज्यामित  
इत छाया दशयो को जा निज आभा से कर देती जीवित ।<sup>३</sup>

तथा

जन मन के विकास पर निभर सामाजिक जीवन निश्चित  
संस्कृति का मू स्वग अमर आत्मिक विकास पर अवलम्बित ।<sup>४</sup>

स्पष्ट ही पन जी के इस आत्म प्रधान संस्कृति पर आ अरविन् के आत्म  
विकासवादी साधना एव त्रिय जीवन का प्रचुर प्रभाव है। आ अरविन् के  
मत म आत्म सत्य पर आधारित एकता सामंजस्य आर समता का जीवन ही  
जीवन का एकमात्र सत्य है, जो विगत युगा क अपूण बौद्धिक निमागा का  
स्थान ा सकता है।<sup>५</sup> इसी आत्म सत्य का अपना कर पन जी न आत्मा को

- १ आज मनुज को ऊपर उठ जी भीतर स हो विस्तन  
नव्य चतना म जग जीवित को करता है दीपित ।

पन स्वणधूनि प्रथम संस्करण पृ० १०

- २ (क) आज हम मानव मन का करना आत्मा के अहिंसा —<sup>१</sup>

पन स्वणधनि प्रथम संस्करण पृ० १३

- (ख) अजर्जीवन क वभव म मुकुलित हा जगता के त्रिणि क्षण ।

पन उत्तरा, प्रथम संस्करण प० ६

- (ग) मू जीवन का अतिप्रम कर स्वग धरा पर रचना जीवित ।

पन वाणी प्रथम संस्करण प० १३५

- (घ) अतर एश्वर्यो स मडित मानव हा त्प्रातर ।

पन उत्तरा प्रथम संस्करण पृ० १८

पन स्वणकिरण प्रथम संस्करण पृ० ७

४ वही, प० ६६

- 5 A life of unity mutuality and harmony born of a deeper  
and wider truth of our being in the only truth of life that  
can successfully replace the imperfect mental constructi  
ons of the past

Sri Aurobindo The Life Divine Vol II (2) 1940 p 116<sup>१</sup>

सम्मुख आन का आवाहन किया है<sup>१</sup> और यह जाशा बाधी है कि यदि मानव अंतर विस्तृत और चेतनता विकसित हो जाये तो आत्मा के स्पर्शों से भूरज सहज ही जीवित हो उठगी ।<sup>२</sup> इसी प्रकार जस श्री अरवि ने दिया जीवन के लिए आत्मिक ऐक्य की अनभूति को आवश्यक माना है<sup>३</sup> पत जी न भी भावी सम्मृति के निर्माण के लिए आत्म ऐक्य का नाव के रूप में अपनाया है—

आत्म ऐक्य हो नीव मनुष्य समाज का भवन  
स्वर्गोत्तम हो मुक्त व्यक्ति हृदि के वातायन ।<sup>४</sup>

और मन स्वयं जयवा आत्मा के नवीन द्रवा जसे एतता सामजस्य और समता के द्वारा ही ग्नानि पराभव मृत्यु अमगन पर शाश्वत जय पाने की लानसा प्रकट की है ।<sup>५</sup>

श्री अरवि ने प्रकृति के रूपांतर तथा दिया जीवन के लिए भीतर देखने आत्मा में प्रवेश करने तथा आत्मा का जीवन बिताने को पहली

१ आत्मा जाये सम्मुख महिमावित मानव मुख ।

पत स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण पृ ८०

२ विस्तृत जा हो जाए मानव अन्तर चेतनता विकसित  
आत्मा के स्पर्शों से भूरज सहज हो उठगी जीवित ।

पत स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण पृ ४६

3 A realisation of spiritual unity can alone found  
and govern by its truth the action of the divine life  
Sri Aurbindo The Life Divine Vol II 1940 p 1129

४ पत स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण पृ ४७

५ हम विश्व सम्मृति के भू पर करनी आज प्रतिष्ठित  
मनुष्यत्व के नव द्रव्या से मानव उर कर निर्मित  
मानवीय एकता जातिगन मन में करनी स्थापित  
मन स्वयं की किरणों से मानव मुख ही कर मंडित ।

एकत्रिन कर मन शक्ति चेतन मानव का निश्चय  
ग्नानि पराभव मृत्यु अमगन पर पाना शाश्वत जय ।

पत स्वर्णकिरण प्रथम सस्करण, पृ १९—२०

आवश्यकता माना जाता है ।<sup>१</sup> पन्त जी भी अन्तर्भू-स्वयं के लिए नवीन मानवता को अन्तर्कटित तथा अणुमत जन का भीतर देखन का आदेश देते हैं—

नव मानवता को निःसंशय होना है अब अन्तर्कटित  
अन्तर्भू स्वयं नयी युग सम्भव बाह्य साधना पर अवलम्बित ।  
व्यक्तिक सामूहिक गति के दन्तर द्वन्द्वों में जगत् स्थिति  
और अणुमत जन भीतर दृष्टा समाधान भीतर यह निश्चित ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पन्त जी आत्मा का जाग्रत कर उम भीतर से दीपित करने के पथ में हैं किन्तु अन्तर्भू साथ ही वे उसका बाह्य विस्तार और विकास को भी नितान्त आवश्यक मानते हैं ।<sup>२</sup> इतना अवश्य है कि वे आत्मा का अन्तर्भू पावक का कण ज्ञान के कारण अक्षय धन मानते हैं<sup>३</sup> और इसी लिए उम स्वयं युग के निमाण में सामाजिक साधना से महत्तर प्रमाणित करते हैं और धरती के नगर विलासियों को अपनी आत्मिक निधि में परिचित ज्ञान का साक्ष्य देते हैं<sup>४</sup> इस साक्ष्य में उद्घाटित उत्तरा की प्रस्तावना में

- १ Thus to look into ourselves and see and enter into ourselves and live within is the first necessity for transformation of nature and for the divine life

Sri Aurobindo The Life Divine Vol II 1940, p 1120

- २ पन्त, वाणी प्रथम संस्करण पृ० १६५  
३ मानव आत्मा को जाग्रत ही भीतर से होना नव दीपित बाहर से विस्तृत नव विकसित ।—वही पृ० ८२-८३  
४ निश्चय से आत्मा अक्षय धन यह जन्म के पावक का कण — वही पृ० १२  
५ पिघता दगा लोह् मुष्टि को आत्मा की कोमलता, जन बल से रे कहा बड़ी है मनुष्यत्व का क्षमता । पन्त स्वयंघृति, प्रथम संस्करण, पृ० १३  
६ धरती के नगर विलासी क्षुधित हृत्प आवागम प्यामी निज आत्मिक निधि सहा परिचित ।

पन्त, वाणी प्रथम संस्करण, पृ० ७९



स्वयं कहा है कि राजनीति का क्षेत्र मानव जीवन के सत्य के सम्पूर्ण स्तरा को नहीं अपनाता वह हमारे जीवन का धरती पर चरने वाला समतल चरण है हम अपने मन तथा जात्मा के शिखरा की ओर चढ़ने वाले एक ऊँचे संचरण की भी आवश्यकता है जो हमारे ऊपर के वभव को धरती की ओर प्रवाहित कर समाज के राजनीतिक आर्थिक ढाँचे को शक्ति सौंदर्य सामंजस्य तथा स्वाया लोक कल्याण प्रदान कर सके। जयदा पृथ्वी के गहरे पक म डूबा हुआ मनष्य का पाव ऊपर उठकर आगे नहीं बढ़ सकगा।<sup>१</sup> अपनी उक्त स्थापना के अनुरूप ही उन्होंने मानव और प्रकृति को संयुक्त कर उस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की शत्रु जाकाशा प्रकट की है। इस प्रकार उनकी आत्मा प्रधान ससृति का ध्येय जन हित के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जसा कि नीचे की पक्तियो से स्पष्ट है—

आत्म जयी माँग जावन सब  
जन समाज का देख ही निज देख  
हृदय न हो भू सत्य प्रति विमुख  
ध्येय एक जग जीवन जन हित।<sup>२</sup>

अतः पन काय के सम्बन्ध में यह मन देना कि उनकी तमाम कविता भौतिकवाद को अस्वीकार करती है और वह दरअसल समन्वय करती है तमाम देवी देवताओं की उपासना के साथ पूजावादी की उपासना का<sup>४</sup> उचित नहीं है।

वास्तव में पन्त जी का आत्मा यक्तिया द्वारा आत्मा ससृति और समाज की स्थापना अभीष्ट है और उसका निर्माण के लिए भूमिका के रूप में उन्होंने श्री अरविन्द दशन के जड़ चेतन की एकता आरोहण अवरोहण

१ पन्त उत्तरा प्रथम सम्स्करण प्रस्तावना पृ १४

२ मानव ही संयुक्त प्रकृति में स्वर्ग बन भू पावन —  
पन्त स्वर्णकिरण प्रथम सम्स्करण पृ० २२

३ पन्त वाणी प्रथम सम्स्करण पृ ७९

४ शशीरानी गुप्ता गुमिनाथन पन्त के लिए डा राम विनाय शर्मा का स्वर्णकिरण और स्वर्ण घूनि —शोषण तम पृ ३१०

वास्तव मे पत जी को आदश यक्तिया द्वारा आदश सस्कृति और समाज को स्थापना अभीष्ट है और उसके निर्माण के लिए भूमिका क रूप म उहोने श्री अरविन्द षन के जड चेतन की एकता, आरोहण अवराहण मन अतिमन तथा त्रिय जीवन के सिद्धांत और सदेश को ग्रहण किया है । अत कभी वे जड चेतन की एकता स नव हीरक दल भू जीवन निमित<sup>१</sup> करना चाहते हैं कभी मन के उध्व सचरण और दिय चेतना के आवाहन द्वारा मत्य भूमि को स्वर्ग बना देना अथवा भू और स्वर्ग का एक कर देना चाहत है<sup>२</sup> और कभी आत्मा के स्वर्णिम प्रकाश स भू जीवन के प्रागण को श्री शाभा मगल से भर देना चाहते है ।<sup>३</sup>

श्री अरविन्द का कहना है कि हमारे वतमान प्रकृति जावन म ऐसा प्रतीत होता है कि ससार ही हमारी सष्टि कर रहा है किन्तु आध्यात्मिक जीवन म हम स्वय अपनी और अपन ससार की सष्टि करनी हागी । सष्टि क इस नवीन नियम क अनुसार जान्तरिक जीवन ही प्रधान हागा यै उसी का अस्तित्व और परिणाम । हमारी आत्मा मन और प्राण तथा मनुष्य जीवन का पूणता की आर अधसर हान स वसी का आभास मिल रहा है ।<sup>३</sup> अन्तर

१ जड चेतन म करना अथ नव हीरक दल भू जीवन निमित ।

पन्त वाणी प्रथम सस्करण, पृ० १८२

२ वह पूण मानवा का मानव जो जन म धरता श्रमिक चरण वह मत्य भूमि को स्वर्ग बना जन भू को कर नगा धारण ।

पन्त उत्तरा प्रथम सस्करण, पृ० ६९

३ भू स्वर्ग एव ही रह शन सुरगण नरतन करत धारण ।

पन्त उत्तरा, प्रथम सस्करण पृ० ७५

४ आत्मा का स्वर्णिम प्रकाश कण

भू कदम कल्पय तम का उच्चल कर आनन

श्री शाभा मगल म भर दे

भू जीवन का प्रागण ।

पन्त वाणी प्रथम सस्करण, पृ० १०८

5 In our present life of Nature it is the world that seems to create us but in the turn to the spiritual life it is we who must create ourselves and our world In this new formula of creation the inner life becomes of the

की भी उन्नति जयवा सामना वा दिग्दशन पत जी ने नीचे की पत्तिया म कराया है—

सम्पूर्ण जगत का रहस्य हा रहा रूपा तर  
 आलोकित होते निश्चेतन उपचेतन स्तर —  
 हसता चिमूत प्रकाश शुभ्र मानव तन धर  
 चतय बिम्ब —नव सूर्य चन्द्र शत रहे निखर ।  
 यह अधिमानस की श्रुति धरा तन पर बिम्बित  
 जात्मा को धर रजत शानि वा योम अमित ।  
 सयुक्त हो रहा विश्व चेतना म विकसित  
 मानवता को हाना भीतर न सयाजित ।<sup>१</sup>

इस प्रकार पत जी म थीर जात्मा के विकास द्वारा इस धरा को स्वग बना देना चाहत हैं<sup>२</sup> इसी स वे बार बार कहते है कि स्वग भू से दूर नही है विश्व आन<sup>३</sup> म भरा हुआ है<sup>३</sup> और यह निश्चित है कि इस धरा का छोडकर कही भी स्वग सम्भव नही है ।<sup>४</sup>

इस प्रकार हम देखते है कि पत जी के सम्पूर्ण काय म आतरिक श्रुति और सामजस्य का स्वर अयन्त प्रखर है और उस सामजस्य म श्री अरविद दशन का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है । जिस प्रकार श्री अरविद ने सामूहिक आध्यात्मिक जीवन के लिए एकता, सामजस्य और समना के

*first importance and the rest can be only its existence and outcome It is this indeed that is indicated by our own soul and mind and life and the perfection of the life of the race*

Sri Aurobindo The life Divine Vol II 1943 P 1108 9

१ पत वाणी प्रथम सस्करण पृ० ७५

२ For it is a Gnostic way of dynamic living that must be the fulfilled divine life on earth

Sri Aurobindo The Life Divine Vol II 1943 P 1108

३ स्वग न भू से दूर —

विश्व आन<sup>३</sup> भरा है ।—पत वाणी प्र० स० पृ ५९

४ मनुज धरा को छोड वहा भी स्वग नही सम्भव यह निश्चित ।

पत वाणी प्र० स० पृ० १७३

सिद्धान्त को अनिर्वाय घोषित किया है,<sup>१</sup> जमी प्रसार पत जी न भी उम  
(एकता सामञ्जस्य और समता के सिद्धान्त का) अपन नव चतनावादा सामा  
जिक सांस्कृतिक जीवन के लिए आवश्यक प्रमाणित किया है।<sup>२</sup>

अब हम उपयुक्त विवचन के आधार पर निष्कप रूप में यह कह  
सकते हैं कि पत जी का कवि ग यात्मक है जो बाहरी भीतरी परिस्थितिया  
स सत्व प्रभावित होता रहा है। उक्त बाहरी भीतरी परिस्थितियों को  
सामाज्य के स्वर्णिम सून में समर्पित करने के लिए भी वह सतत प्रयत्नशील  
रहा है। अतः उनका विकासशील कवि न था जसर्विद नेशन को भी सामाजस्य  
की भूमिका में ग्रहण किया है।

### वैष्णव वेदान्तवाद

उपनिषदा में ब्रह्म के निगुण निर्विणेष और सगुण, सविशय दोनों रूपा  
का वर्णन मिलता है। किन्तु आगे चलकर उपनिषत् नान के आधार पर वेदान्त  
के दो त्रिशिष्ट मता का प्रतिपादन हुआ। निगुण जसत् अरम जसग  
अस्पश जल्यक्त अनिवचनाय ब्रह्म का विशद प्रतिपादन गारकर वेदान्त में और  
सगुण सविशय सत्ज उपास्य ब्रह्म का प्रतिपादन वैष्णव वेदान्तवादा में हुआ।  
वेदान्त-नशन के उक्त दोनों रूपा में से किसी एक के प्रति एकात्मिक आग्रह  
छायावादा की कविता में नहीं मिलता। छायावादा का कवि अभी तो निगुण  
निर्विणेष ब्रह्म का और कभी वैष्णव वेदान्त के सगुण सविशय ब्रह्म का समर्पण  
करता है। एक आर वह शारर वेदान्त के आधारभूत जगन का माया अथवा

१ Unity mutuality and harmony must therefore be the inescapable law of a common or collective gnostic life  
Sri Aurobindo The life Divine Vol II, 1943, P 1129

२ दक्षिण पन्त, उत्तरा, प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

३ सन ! यह है माया का देग  
क्षणिक है मरा तेरा सग  
यही मिलता कौटा में वधु !  
सजीला ना पूजा का रण  
तुम्ह करना विज्ञे महन  
न मता है पार जीवन !

महाशैवी वर्मा, आधुनिक कवि (१) पशुपत संस्करण, पृ १८

मिथ्या घोषित करता है तो दूसरी ओर वह बष्णव-वेदांतवाद की भाँति यह भी स्वीकार करता है कि तगत मत्य है ।<sup>१</sup>

ब्रह्म के निराकार और निविशप स्वरूप तथा आत्मा परमात्मा की अभिन्नता आदि का निश्चय जो शाकर वेदांत का प्रतिपाद्य विषय है हमने औपनिषत्तिक ब्रह्म तत्वात् के भीतर कर लिया है । अतः यहाँ पर बष्णव वेदांतवाद के उन रूपा का उल्लेख कर देना ही पर्याप्त होगा जिनसे छायावाङ् का कवि प्रभावित हुआ है ।<sup>२</sup> बष्णव वेदांतवाङ् के वे रूप इस प्रकार हैं—

विशिष्टाद्वैत स्वाभाविक भ्राम्भेद जयवा स्वाभाविक द्वैताद्वैत जचित्य भ्राम्भेद और गुद्धाद्वैत ।

### विशिष्टाद्वैत

रामानुज वेदांत का वाद विशिष्टाद्वैत का नाम से प्रसिद्ध है । इसका तात्पर्य अर्थ है— विशिष्टयोरन्तम अर्थात् विशिष्ट कारण और विशिष्ट काय की एकता । सूक्ष्मचिदचिदविशिष्ट ब्रह्म कारण है और स्थूल चिदचिद विशिष्ट ब्रह्म काय है । सत्कायवाद सिद्धांत को उक्त वेदान्त स्वीकृत करता है और तन्नुसार कारणावस्थ ब्रह्म और कार्यावस्थ ब्रह्म के अद्वैत का प्रतिपादन करता है । ब्रह्म जीव और जड स्वरूपन परस्पर पृथक् है किन्तु जडचेतनात्मक वस्तु का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं उसकी सत्ता सबदा ब्रह्मायत है । वह ब्रह्म से पृथक् स्थित नहीं अपितु सबदा उसमें जपयक सिद्ध है । वह ब्रह्म के द्वारा नियम्य घाय और उसका शप होने के कारण उसका शरीर है और ब्रह्म उसका नियन्ता धारयिता और शपी होने के कारण आत्मा है । इस प्रकार सम्पूर्ण चित्चिन्तात्मक वस्तु ब्रह्मात्मक या ब्रह्म का शरीर है और इस शरीराम भावम ब्रह्म के प्रकार या विशषण रूप में ही उसके स्वरूप का परिचय है ।<sup>३</sup> रामानुजाचार्य के इस विशिष्टाद्वैत मत का निराकार जो ने अपनी सुप्रसिद्ध अद्वैत

१ सुन्दर अनादि गुण सष्टि अमर

पञ्च पल्लविनी प्र० स० पृ० २३१

२ जीवन ही निरय चिरन्तन ।

पञ्च गुञ्जन तृतीय संस्करण पृ० २०

३ रामकृष्ण आचार्य, ब्रह्मसूत्रा के बष्णव भाष्यो का तुलनात्मक अध्ययन, प्रथम संस्करण पृ० ३४

मूलक कविता तुम और मैं में ब्रह्म का प्राण और उसकी सृष्टि को 'बाया वहर' व्यक्त किया है।<sup>१</sup>

तुम मनु मानस क भाव  
और मैं मनारजिनी भाषा <sup>२</sup>

म भी विशिष्टाद्वैत मन का ही प्रतिपादन अभीष्ट है। उक्त पंक्तियाँ म मानस क भाव ब्रह्म क प्रतीक और भाषा जिमम भाव निहित है ब्रह्म क शरीर क प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार महात्मा जी क दीपक शरीर (जगत) और प्रकाश (ब्रह्म) तथा 'धीन (शरीर-जगत) और चकार' (जगत में निहित ब्रह्म क रूपक द्वारा विशिष्टाद्वैत मन का बड़ा ही हृदय प्राण चित्रण नीचे का पंक्तियाँ में हुआ है—

धीन जन्मी तार की चकार है आकाशचारा  
धूमि क म्म मनिन दीपक म बरा ह निमिरहारी <sup>३</sup>

### निम्ब्याक वेदांत

उक्त वेदांत का वाक्य 'स्वाभाविक भद्राभद्र या 'स्वाभाविक द्वैताद्वैत' है। इसके अनुसार ब्रह्म भाव और जड परस्पर स्वल्पत भिन्न हैं और साथ ही भाव और जड अपने स्वरूप स्थिति और प्रवृत्ति में ब्रह्मायत होने से ब्रह्म में अभिन्न हैं। इस प्रकार ब्रह्म से जड और जीव का भेद और अर्थ स्वाभाविक है जो समान स्तर पर मान्य है। उक्त पंक्ति में स्वाभाविक भेदाभेद रामानुज को भी मान्य है, किंतु जसा कि हम ऊपर देख चुके हैं रामानुज के विशिष्टाद्वैत में अस्तित्व का प्रमाण वायु कारण क अद्वैत की दृष्टि में किया गया है उसकी तुलना में यहाँ निम्ब्याक के 'स्वाभाविक भेदाभेद' का दृष्टि यह है कि कारण और वायु का भेद नहीं, अपितु स्वाभाविक द्वैताद्वैत है। दूसरे शब्दों में वायु और कारण का स्वाभाविक भेदाभेद समान स्तर पर मान्य है। ब्रह्म कारण है और चिन्विच्छिन्नक जगत वायु है जगत का स्वाभाविक भेदाभेद है। ब्रह्म जगत का निमित्त है चिन् और अचिन् भाँ उभारी शक्तियाँ हैं। ब्रह्म अपने में स्वाभाविकतया भिन्नाभिन्न उक्त स्वामन और स्वाधिष्ठित चिन् और अचिन् शक्तियों का विचार या प्रसार कर अपने का चिन्विच्छिन्नक जगत क

१ निराला परिमल अष्टमावृत्ति, पृ० ३३

२ वही, प० ७९

३ महात्मा यर्मा आपुनिक कवि (१) धनुष मुस्करा पृ० ८१

रूप में परिणत करता है और इस प्रकार वह जगत का निमित्त कारण होने के साथ उत्पादन कारण भी है।<sup>१</sup> निम्नांक के इस मंत्र का प्रतिपादन ही महादेवी जी की निम्न पक्तियों का अभिप्राय प्रतीत होता है—

सिन्धु को क्या परिचय दें दक्ष ।  
विगडत बनते बीचि विनाम  
क्षण हूँ मरे बुदबुद प्राण ?  
तुम्हीं मैं सष्टि तुम्हीं मैं नाश ।<sup>२</sup>

कारण और काय का समान स्तर पर स्वाभाविक भेदाभेद महादेवी जी की निम्न पक्तियाँ में अत्यन्त स्वाभाविक पद्धति पर अभिव्यक्त हुआ है—

चित्रित तू मैं हूँ रेखात्मक  
मधुर राग तू मैं स्वरसंगम  
तू असीम मैं सीमा का भ्रम  
काया छाया मैं रहस्यमय ।  
प्रयत्न प्रियतम का अभिनय क्या ।<sup>३</sup>

इसी प्रकार निराला जी की निम्न पक्तियाँ में—

तुम विमान हूँ उच्छवास  
और मैं वात कामिनी कविता ।  
तुम प्रेम और मैं शक्ति ।<sup>४</sup>

मैं हृदय के उच्छ्वास और प्रेम का कारण और वात कामिनी कविता तथा शक्ति को उनका काय बताकर दोनों में स्वाभाविक भेदाभेद स्थापित किया गया है। महादेवी जी की निम्न पक्तियाँ में भी स्वाभाविक भेदाभेद की भावना स्पष्ट व्यक्त हुई है—

नयन मैं जिसके जनक वह तृपित चानक हूँ  
शान्त मैं जिमके प्राण मैं वह निठुर दीपक हूँ  
फूल को उर मैं छिपाये बिन्दु बुलबुल हूँ

- १ डा० रामकृष्ण आचार्य ब्रह्मसूत्रा के वृष्णव भाष्या का तलनारमक अध्ययन प्रथम सम्करण पृ ३४-२१
- २ महादेवी वर्मा रचित १९३८ प ४४
- महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ सम्करण पृ० ५७
- ४ निराला परिमल अष्टमावलि पृ० ७६

एक हीवर दूर तन से छाह वह चल हू  
दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हू ।<sup>१</sup>

### वल्लभ वेदान्त

उक्त वेदान्त का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत है जिसका अर्थ यह माना गया है कि 'शुद्ध च तदन्तम—अर्थात् माया सम्बन्धरहित ब्रह्म का अद्वैत दूसरा अर्थ यह किया गया है 'गुढयोरद्वैतम—अर्थात् मायासम्बन्धरहित ब्रह्म और जगत का अद्वैत ।<sup>२</sup> उक्त वेदान्त के अनुसार एकमात्र तत्त्व ब्रह्म है और यावत् जड़ जीवात्मक जगद्रूप काय भा ब्रह्म ह अतः दोनों का साधा अद्वैत है । ब्रह्म जीवभाव को किसी अविद्या या उपाधि के कारण प्राप्त नहीं हुआ अपितु अपनी इच्छा से हुआ है अपनी इच्छा से वह जड़ जगत के रूप में है । ब्रह्म सच्चिदानन्द है ब्रह्म के उक्त तीन गुण—सत्त चित और आनन्द—अपन तारतम्य से ब्रह्म के नाना रूपों में परिणत होने के लिए सहायक है उक्त गुणों का आविर्भाव और तिरोभाव ही नाना रूपों का हेतु है । ब्रह्म न अपम जिस अर्थ में आनन्द के साथ चित का भी तिरोभाव कर दिया है वह जड़-तत्त्व है । ब्रह्म जब चाह तब जीव और जड़ में तिरोहित गुणों का आविर्भाव कर सकता है और इस प्रकार विदश और सत्श पुनः सच्चिदानन्द हो जाते हैं । उक्त प्रकार से एकमात्र सच्चिदानन्द ब्रह्म ही आविर्भाव दशा में कारण और तिरोभाव दशा में काय है अतः कारण और काय का शुद्धाद्वैत है ।<sup>३</sup> महात्मी वर्मा ने तीन के रूपों द्वारा अन्तर्भाव के उक्त विद्वान्त भाव का इस प्रकार व्यक्त किया है—

सुम्हारी धीत हा में बज रह हैं धमुरे मय तार ।

अभिन्न मधुर उज्वल स्वप्न शत शत राग के शृंगार ।<sup>४</sup>

कारण-भाव का शुद्धाद्वैत हा पल्ल जी की निम्न पत्निया का सुमिप्राय है—

- १ महात्मी वर्मा, आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण पृ० ५४
- २ गाखामी था गिरिधर जी महाराज 'शुद्धान्त मातङ्ग', श्लोक १७ पृ० २३
- ३ डॉ० रामकृष्ण आशाय ब्रह्मसूत्रा के बल्लभ-भाष्या का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम संस्करण पृ० ३६ ३७
- ४ महात्मी वर्मा दीपनिगा प्रथमावलि १९८२ ४ वां गीत



बतारू मैं कम सुन्दर !  
 एक हूँ मैं तुमसे सज भानि  
 उनद हूँ मैं यदि तुम हो स्वानि  
 तृपा तुम यदि मैं चातर पाति !  
 लिखा सकता है क्या गुणित सर  
 कभी अपना जनय समतता ?  
 कभी क्या दपण ही निमल  
 दिखा सकता निज मुख उज्ज्वल ?  
 बौर हो तुम उर के भीतर  
 बतारू मैं कैसे सुन्दर ?<sup>१</sup>

महादेवी वर्मा की वीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ<sup>२</sup> जसी भावाभिव्यक्तियाँ बल्लभवन्तात के गुड्याद्वत भाव का ही प्रतिपादन करती हूँ। बलदेव वेदान्त—

उक्त वेदान्त का वास्तविक अर्थभंग है। जहाँ तक कारणाकारण का सम्प्रत्य है उक्त वेदान्त का विशिष्टाद्वत के समान केवल अमद स्वीकार है निम्नांक वेदान्त के समान अर्थभंग नहीं। बिन जीर अरिज दोना ब्रह्म की शक्तियाँ हैं। उक्त शक्तियाँ स युक्त ब्रह्म कारण है और उनी स युक्त वह काय है। ब्रह्म कारणावस्था स सूक्ष्मशक्ति और कर्मावस्था स मधुन शक्ति है और उक्त प्रकार दोना का अन्तर्वत् विशिष्टाद्वत के समान स्वीकृत है।<sup>३</sup> बलदेव वेदान्त के उक्त दार्शनिक मत का छायावाद की कविता पर प्रभाव के सम्बन्ध में बलदेव जिनका ही कहा जा सकता है कि वह छायावाद काय पर रामानुज के विशिष्टान्तवाद के प्रभाव का आरंभ पुष्ट करन स सहायक हवा है।

छायावादी काव्य को प्रभावित करने वाले तथ्य—पीपक अध्याय स चतुर्थ की प्रमाभक्ति का छायावाद की कविता पर प्रभाव टानने वाले कारणों के स्पष्टीकरण में हमने देखा है कि जिस प्रकार छायावाद का कवि रामकृष्ण परमहंस रवीन्द्रनाथ टैगोर और विश्वानन्द के प्रभाव स चतुर्थद्व

१ पत्र वीणा प्रियि त्रिनीयावति १ ४२ पृ २

२ महादेवी वर्मा आनुजित कवि (१) चतुर्थ सम्पन्न पृ० ५४

३ रामकृष्ण आचार्य ब्रह्मभूषा वं बध्गव नाय्या का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम सम्पन्न पृ० २६ २५

की प्रेमाभक्ति की ओर प्रेरित हुआ। छायावाणी के कवियों में उक्त विभूतियाँ का सबसे अधिक प्रभाव निराला जी पर ही रहा है। अतः उनके मानवीय जीवन के प्रमत्तत्व भी प्रेमाभक्ति की आध्यात्मिक ध्वनि से आपूरित हैं। गीतिका में मृत की यजना करने वाले उनके मूल पदा में प्रेमाभक्ति की पराकाष्ठा प्राण हुई है।<sup>१</sup> उनके हुआ प्रातः प्रियतम तुम जावग चने ? — जैसे पदों में परकीया की उक्ति द्वारा प्रेमाभक्ति का रहस्य ही प्रकट किया गया है।<sup>२</sup> 'प्रिय यामिनी जागी'—जैसे पदा में 'स युग के प्रति द्वारा भक्तों की राधा की ही अवतारणा हुई है।<sup>३</sup> गीतिका के साक्षरता अपलक आन खनी मीन रनी हार प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृङ्गार' प्यार करती हूँ इसलिए (वि) मृग भी करने है वे प्यार प्राण घन को स्मरण करने नयन क्षरते-नयन करने । यदि गीता का निर्माण प्रेमाभक्ति की भूमि में ही हुआ

१ निराला गीतिका प्रथम सस्वरण आचार्य नन्दार वाजपेयी द्वारा लिखित समीक्षा, पृ. ७

२ हुआ प्रातः प्रियतम तुम जावग चने ?  
पना की रात व तु ध गल मन ।

बाधा यह पान,  
पार करो मृग विषय का यह व्यवधान ।  
निमिर म मृग उग आआ भल भल ।  
निराला गीतिका प्रथम सस्वरण पृ०

३ (प्रिय) यामिनी जागी ।  
अस पत्रज म अरण मुग  
नरण-अनुरागी ।

—गानि की तन्वी, तन्ति  
छनि न क्षमा मांगी ।

वागना की मूर्ति मुक्ता त्याग म त्यागी ।—वही पृ० २

४ निराला गीतिका प्र० म० आ० नन्दार वाजपेयी द्वारा लिखित समीक्षा, पृ० ७

५ निराला गीतिका, प्रथम सस्वरण, गीतिका, पृ० ४, ६, ३६, ५०

है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाङ् काव्य में चतुर्भुज की प्रेमाभक्ति के प्रभाव से मानवीय जीवन का सामान्य प्रेम भी अत्यन्त उदात्त भावभूमि पर अधिष्ठित है।

वर्णव भक्ति की एक बड़ी विशेषता यत्किञ्च परमात्मा के साथ विश्वास और प्रेम का सम्बन्ध है। अतः उसमें उपासक और उपास्य के मध्य द्वैतवाद को अस्वीकार किया गया है। वर्णव वर्ण में उत्पन्न वर्णव्य सस्कारात् युक्त छायावाद का कवि जिस समय अपना अरूप का नव रूप विभा के रूप में देखना चाहता है<sup>१</sup> और बन्धन मुक्ति के प्रति घनी जासक्ति प्रकट कर गन्धहीन को गन्धयुक्त तथा अरूप को मूर्तिमान् बन जाने का आग्रह करता है<sup>२</sup> उस समय उसकी भावना निगुणोपासना की अपेक्षा वर्णव भक्ति के अत्यन्त ममीय जा जाती है। इस भावभूमि में वह इतने स्थान पर द्वैत भाव को जपनाता है क्योंकि द्वैतवाङ् भ्रम होते हुए भी मनुष्यों की गति के अनुकूल है।<sup>३</sup> इस प्रकार देखते हैं कि छायावाद का कवि कवीर ज्ञानि निगुणियों की भाँति अपनी सत्ता को ब्रह्म में विनीत कर देना नहीं चाहता प्रत्युत

१. हे अरूप नव रूप विभा के  
चिर स्वरूप पाके जाओ ।  
निराला गीतिका प्रथम सस्करण पृ० ११
२. तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन  
गन्धहीन तू गन्ध युक्त बन  
निज अरूप में भर स्वरूप मन ।  
मूर्तिमान् बन निधन ।  
पन्त गुञ्जन तृतीय सस्करण पृ० ११
३. द्वैतवाद ही है भ्रम ।  
तो भी प्रिये,  
भ्रम के भीतर से  
भ्रम के पार जाना है ।  
मुनियों न मनुष्यों के मन की गति  
सोच ली थी पहले ही ।  
एसीनिए द्वैतभाव भावकों में  
भक्ति की भावना भरी—  
निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० २२५

वह उसे उसके (प्रह्ला के) साथ श्रीडा-बेलि करन के लिए स्थिर बनाय रखना चाहता है ।<sup>१</sup> उसी मनोदंगाम वह यह उत्पत्ति प्रकट करता है कि—

कामना रहे तो एत  
भक्ति की बनी रह ।<sup>२</sup>

अथवा

मुक्ति नहीं जानता मैं भक्ति रहे काफी है ।<sup>३</sup>

छायावाणी के कवि के लिए प्रेम की कल्पना ही पूरा उदार और अमय है । चत वह पश्चात्कालीन हस्तभामे हस्ताश, काम शोध मय म चामिन तथा गान भक्ति के अभिवापी को कल्पानिधि प्रभु के द्वार आने का आह्वान करता है कल्पना तथा महिमा के उत्पत्ति मेघ को पाने के लिए बार बार उल्लासित हो उठता है और अनेक भावन उसके प्रति अपनी अनन्य प्रीति प्रदर्शित करता है ।<sup>४</sup>

ब्रह्म की उपासना के लिए जिन साधना को छायावाणी के कवि ने अपनाया है वह भक्ति के ही विरपरिचिन साधन अर्थात् नाम कीर्तन तथा गण कीर्ता है । वह उपनिषद पराण तथा महाभारत में भगवन्नाम तथा गुण की महिमा भरी पड़ी है । मन अनिरक्त सन्त कबीर से लेकर महात्मा गाँधी तक सभी सन्त भक्त एवं महात्माओं ने नाम और गुण की महिमा गाई है । छायावाणी के कवि भी उक्त भक्ता की भाँति परमाथ प्राप्ति के लिए भगवान के नाम और गुणा का गान करता हुआ पाया जाता है ।<sup>५</sup>

१ (क) रगमय है दव दूरी ।

छू तुम्ह रह जायगी यद

चिन्मय श्रीडा अधूरी ।

दूर रहकर खेतना पर मन न मग यान्ता है ।

महात्मी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण पृ० ०८

(ग) गजनि मधुर निजतर द कम मिले अभिमानिनी में ।—वही पृ० ९२

२ निराना परिमल अष्टमावति पृ० २१७

३ वही पृ० २१५

४ पत स्वण धूलि प्रथम संस्करण पृ० ०७

५ (क) भजन कर हरि के चरण मन ।

पार कर मायावर्ण मन ।

निगला, वचना ७८वीं गीत ।

वष्णव भक्ति मे प्रायना एक अपरिमित शक्ति है। प्रायना मन्तो भक्ता और महात्माआ के जीवन् की समद्धि शक्ति और चल है। वे अपने जीवन की प्रत्येक घडी और प्रत्येक पल म प्रायना के जलम्य प्रभाव तथा अपरिमित शक्ति का अनुभव करते हैं। सभी भक्त अपनी प्रायनाओ म भगवान के मगन मय विधान म आत्मसमपण और नोकहित की कामना करते हुए पाये जाते है। छायावाद के कवियो ने भी अपनी यत्तिगत प्रायनाआ म भगवान के प्रति अपार प्रेम श्रद्धा भक्ति विश्वास तथा आत्मसमपण आदि क भाव प्रकट किए हैं। देश समाज राष्ट्र तथा मानवमात्र का कल्याण भी उनकी भक्तिपरक प्रायनाआ का अंग बना है। प्रसाद के कानन-बुसुम म करुणभदन प्रियतम याचना विनय आदि कविताए प्रायनापरक है तथा महात्रीडा नमस्कार वचना प्रभो आदि गुणगान प्रधान हैं। निराला जी न भी अपनी जचना म परम प्रभ का भक्त-हृदय से स्मरण वदन और स्तवन किया है। 'अवना के दुरित दूर करो नाथ अशरण हू गहो हाथ भवसागर सपार करो हे' मानव का मन शान्त करो हे आदि गीत भक्तिरस से सित्त हैं। इनम भक्ता क दय, सारल्य दास्य समपण आदि भाव सहज ही उद्दीप्त हो उठ है। परिमन की तुम और मैं — शीघ्रक कविता म जिस निराला ने अद्वैत के आधारभूत निगुण-मगुण व्यक्तिक-अव्यक्तिक ब्रह्म का गान किया है उसका स्वर अचाना के इन गीतो म वष्णव भक्ति के रस से मराबोर हो गया है। कवि पन्त का हृदय भी आत्मिक का श्रद्धालु हृदय है अतः भक्ति की करुणा मे सित्त है। इसी से उन्होंने भक्ति विह्वल होकर गाया है—

चरण कमल म अपण कर मन  
रज रजित कर तन  
मधुरस-मजित कर मम जीवन  
चरणामत-आगम म ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार पन्त के स्वणविरण के आवाहन निवेदन स्वण घूलि के 'आवाहन मानशक्ति, 'मानचेतना तथा उत्तरा के युग विपा',

(ख) हरि का मन म गुणगान करो,  
तुम और गुमान करो, न करो।

निराला, अचना ४४वाँ गीत।

१ पन्त, गुजन तृतीय संस्करण, पृ० २०

उभेय आवाहन वन्दना, 'स्तवन नमन, विनय, आदि गीत भक्ति भावना से परिपूर्ण है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद की कविता में परम्परागत वष्णव वेदान्तवाद—विशिष्टाद्वैत, स्वाभाविक द्वैताद्वैत सुद्धांत आदि—के दार्शनिक सिद्धांतों तथा वष्णव भक्तिभावना के पूजन आराधन आत्म निवेदन आत्मसमर्पण आदि का बड़ा ही प्रभावपूर्ण और सुन्दर चयन हुआ है ।



## छायावादी काव्य में ईश्वराद्वयवाद

ईश्वराद्वयवाद का प्रचुर प्रभाव हम छायावादी काव्य के भीतर जय शंकर प्रसाद में देखने को मिलता है। वसे प्रसाद पर उपनिषद् के अद्वैतवाद का भी पर्याप्त प्रभाव है। उनकी ब्रह्म जीव आत्मा तथा आत्म विषयक मायताओं पर उपनिषदों के ब्रह्मवाद अथवा आत्मानन्द की स्पष्ट छाप है। उनके काव्य में औपनिषदिक ब्रह्म के अनिवचनीय सब-यापी सब-प्रकाश तथा विराट रूप एवं आत्मा की सबव्यापकता सबमयता असंगता आदि के प्रभाव को हमने छायावादी काव्य में औपनिषदिक प्रभाव के भीतर देख लिया है। किंतु इस औपनिषदिक अद्वैतवाद के सिद्धान्त को प्रसाद जी ने शबकुन में उत्पन्न तथा शवोपासक होने के नाते ईश्वराद्वयवाद की परम्परा अथवा भूमिका में ही देखने का प्रयास किया है। इस प्रकार उठाने उपनिषद् के अद्वैतवाद का सच्चा विकास आगम ग्रन्थों में ही माना है। आगम यथा म प्रतिपादित जगत और ब्रह्म की सत्यता तथा अभिन्नता का ही उठाने उपनिषद् की पक्की अद्वैत भावना का रूप बनाया है।<sup>१</sup> आगम शास्त्रों में वर्णित काम-कला का -पासना सामरस्य अथवा आनन्दवाद के सिद्धान्त आदि का उत्पन्न भी

१ भारतीय उपनिषद् का प्राचीन ब्रह्मवाद इस मूल विश्व को ब्रह्म का ब्रह्म में आज निरुद्ध स्थिति में नही मानता। वह विश्व को ब्रह्म का स्वरूप बनाता है —। आगमों में भी शिव को शक्ति विग्रही मानते हैं और यही पक्की अद्वैत भावना बड़ी गई है अर्थात् —गुरु का शरीर प्रकृति है।—प्रमाण काव्य और कला, पृ० १४

उन्होंने बंदो और उपनिषद् को ही घोषित किया है।<sup>१</sup> इस प्रकार उनका मत में आगम ने अनुयायियों के निगम के आदिवाद का अनुसरण किया विचारों में भी और त्रियात्रा में भी। निगम ने कहा था—आगमवाक्या ने दोहराया आगम के टीकाकारों ने भी इस अद्वैत आनन्द को अच्छी तरह पल्लवित किया।<sup>२</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि उपनिषद् के अद्वैतवाद से प्रभावित होकर ही जयशंकर प्रसाद की अद्वैतसमूह भावना सामरस्य अथवा आदिवाद का सीधा सम्बन्ध उपनिषद् की अपा शब्ददर्शन के ईश्वराध्यवाद से ही अधिक है। शब्ददर्शन में भी उनका कन काश्मारी प्रत्यभिज्ञा दर्शन से विशय रूप से प्रभावित था। अतः प्रसाद जी के काव्य पर प्रत्यभिज्ञा दर्शन के तत्वों का ही प्रचुर प्रभाव पड़ा है। प्रत्यभिज्ञादर्शन ही ईश्वराध्यवाद के नाम से प्रसिद्ध है।<sup>३</sup>

### शिव तत्व

शब्द दर्शन में एकमात्र तत्व शिव है। उसी से अन्य तत्व अभिव्यक्त होते हैं। प्रत्येक जीव में रहने वाला शिव तत्व ही आत्म तत्व है। यह चतुर्थ रूप है।<sup>४</sup> इसका परा सवित' परमेश्वर, शिव या परम शिव भी कहते हैं। यह तत्व न केवल जीव में ही है प्रत्युत जिनका वस्तुएँ सत्कार में हैं, जड़ या चेतन सभी में व्यष्टि रूप में वतमान है। यह अनन्त वस्तुओं में

१ काम का धर्म में अथवा सष्टि के उदगम में बहुत बड़ा प्रभाव श्रुत के समय में ही माना जा चुका है—कामस्तोत्रे समवतताधि मनसोरेत प्रथमयदासीत इसी वैदिक काम की आगमशास्त्रों में, कामकला के रूप में उपामना भारत में विकसित हुई थी। यह उपामना सौन्दर्य आनन्द और उमाद भाव की साधना प्रणाली थी। —प्रसाद काव्य और कला रहस्यवाद भाष्यक निबन्ध पृ० २२-३३

भावों का अद्वैतवाद और उनका सामरस्य वाला रहस्य सम्प्रदाय कामकला की सौन्दर्य-उपामना आदि का उदगम पदा और उपनिषद् के श्रुतियों की व साधना प्रणालियाँ हैं जिनका उन्होंने समय-समय पर अपने सधामें प्रचार किया था। —वही पृ० २४

२ प्रसाद काव्य और कला रहस्यवाद भाष्यक निबन्ध पृ० ६२-४३  
टा० उमाद मिश्र भारतीय दर्शन पृ० २८०

४ पञ्चमहाभाष्य निबन्ध १।१



रहने पर भी एक है जो ए ए रूप में ही समस्त वस्तुओं में निहित है। यह दश और काव्य में अतीत है और फिर भी सभी देशों और सभी कालों में एक रूप में बतलाता है। यह नित्य और अनन्त है। यह समस्त विश्व में व्यापक रूप में है और विश्वातीत भी है। समस्त विश्व इसी तत्व का अभिन्न रूप है।<sup>१</sup> विश्वात्ताण विश्वात्मक परमानन्दमय तथा प्रकाशमय तस शिव-तत्त्व का ही अभिन्न रूप में स्फुरण है।

शिवतत्व अनन्त वस्तुओं में रहने पर भी एक है और एक रूप में ही वह अनन्त वस्तुओं में निहित है इस तथ्य की अभिव्यक्ति प्रसाद जी ने कामायनी की निम्न पंक्तियों द्वारा की है—

सर्वम ध्रुव कर रममय  
रत्ना वह भाव चरम है।

यह शिवतत्व समस्त विश्व में व्याप्त भी है और उससे परे भी है। परम शिव का विश्वव्यापी एवं विश्वात्तीत रूप कामायनीकार ने दशन सग में ताण्डव नृत्य के अन्तर्गत दिखाया है—

अ तनिनाम् ध्वनि स पूरित  
थी शून्य भदिनी सत्ता चित  
नटराज स्वयं धे नृत्य निरत  
या अनरिक्त प्रहसित मुक्षरित  
स्वर लय होकर रहे ताल  
य लुप्त हो रहे दिशा काल।<sup>२</sup>

परमशिव पूर्णानन्द स्वरूप भी है। शिव का आनन्दमय स्वरूप जो उनसे नृत्य में अभिव्यक्त होता है सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। नृत्य जगत में व्याप्त ईश्वरीय साम्य का प्रतीक है। इस प्रकार शैवदशन के अनुसार एक ही आनन्दमय सत्ता सम्पूर्ण ससार में व्याप्त है उसके अनिरिक्त और कुछ नहीं है।<sup>३</sup> वही आनन्द स्वरूप सत्ता परमेश्वर की शैवता के रूप में परिणत हो

१ डा उमश मिश्र भारतीय दशन पृ० ३८२

२ अक्षितम अभिनव स्फुरति — प्रत्यभिज्ञाहृदय पृ० ८

३ कामायनी पृ० स पृ० २९६

४ कामायनी पृ० २६

५ एव सत्ता पूरितानन्दस्य पूर्णोऽप्यपी वतन नास्ति किञ्चित्।

जानी है । शिव-नत्व के इस आनन्दमय स्वरूप का वर्णन भी प्रसाद जी ने ताण्डव नर्तन के भीतर ही दिखाया है । वहाँ पर शिवतन्त्र ही जगत की सीला का रूप में परिणत हो गया है—

सीता का स्फुरित आह्वान,  
वह प्रभा पुञ्ज वितिमय प्रसाद १

कामायनी में प्रसाद जी ने पराशक्ति का भी समावेश किया है । पराशक्ति का यह समावेश उन्होंने श्रद्धा के भीतर किया है । श्रद्धा पहले तो मनु की गुरु बन कर उन्हें प्रवृत्ति की शिक्षा देती है फिर पत्नी बन कर उनकी गृहस्थी बनाती है और अन्त में पराशक्ति का रूप धार कर वह उन्हें शिवलोक पहुँचा देती है । रहस्य सग में पहुँच कर श्रद्धा जिस अधिकार का साथ विपर का वर्णन करती है उमम तनिक भी मन्देह नहीं रह जाता कि वह पराशक्ति है साक्षात् शंकर का सिद्धि है । उमका यह रूप सब धूँड़िए तो दशन-सग में ही खुल पड़ता है जहाँ वह मनु से कहती है—

तव चना जहाँ पर शान्ति प्राप्त  
में नित्य तम्हारी सत्य बात ।<sup>२</sup>

तना ही नहा वह मनु का ऐसी दिव्य दृष्टि भा देती है जिससे उन्हें मन्त्र अम्भुत दृश्य दिखाई देने लगता है—

सत्ता का स्पन्दन चना डाल  
आवरण पटन की श्रिय राल  
तम जननिधि का बन मधु मयन,  
ज्योत्सना-भरिता का आनिगन  
वह रजत गौर उज्ज्वल जीवन  
आनोक पुरप । मगत चतन ।  
कवन प्रनाश का धा कतान  
मधु किरना की धी लहर नील ।<sup>३</sup>

### विमर्शाशक्तितत्व

यन् तत्त्व प्रनाशात्मा है अर्थात् 'विमर्श ही स्वका स्वभाव है ।  
'मष्टि श्रमणा म विश्वाकार ज्ञान स म्पिति' म विश्व को प्रकाशित करने

१ कामायनी पृ० २६१

२ कामायनी पृ० ५८२ म्पिति, पन् प्रमा, मदिलीकरण, पृ० ८४

३ कामायनी पृ० २६०

तथा संहार म आत्मसात करने से शिव म जो अहभाव है उसी को विमल शक्ति कहते हैं<sup>१</sup> यदि शिव म विमल शक्ति न हो तो वह 'अनीश्वर तथा जड हा जायेंग। "स शक्ति के अनन्त स्वरूप हैं किंतु इनम पाच स्वरूप बहूत महत्व के है—

### १—चित्त शक्ति

यह प्रकाररूप है।<sup>२</sup> इसी के द्वारा शिव अपने को स्वप्रकाश समझते हैं। "स शक्ति का मकेत प्रसाद जी ने कामायनी की लीला का स्पष्ट आह्वाद वह प्रभापुज चित्तमय प्रसाद<sup>३</sup> कर रही लीलामय आनन्द महाचित्त सजग हुई सी यक्त<sup>४</sup> तथा चेत की चितकला विश्व म जिसकी सत्ता<sup>५</sup> आत्ति पत्तिया म स्पष्टत किया ह।

### २—आनन्द शक्ति

जिसके द्वारा शिव आनन्दमय है तथा अपन म आनन्द का साक्षात्कार करते है। इस शक्ति की अभिव्यक्ति कामायनी की निम्न पक्तियो मे हुई है—

भरा निवास जति मधुर कात्ति  
यह एक नीड है सुख का शक्ति।<sup>६</sup>

### ३—इच्छा शक्ति

जिसके द्वारा शिव जगत का सृष्टि संहार और अय सभी काय करते हैं। प्रसाद जी न विश्व को इसी इच्छाशक्ति का परिणाम कहा है—

काम मगन से मन्ति श्रय  
सग इच्छा का है परिणाम।<sup>७</sup>

१ डा उमेश मिश्र भारतीय दशन प ३८३ पराप्रवर्गिका प० १ २

२ तत्रसार आह्निक १।

३ कामायनी पृ २६१

४ वही पृ० ६१

५ कानन-कुसुम पृ० ९४

६ कामायनी प० २४४

७ वही प० ६१

कामायनी का यह 'काम ऋग्वे' के कामस्तदग्र<sup>१</sup> मंत्र का आधारभूत इच्छा का ही पर्याय है, अतः प्रसाद जी ने इस इच्छा शक्ति को प्रेम कला की भी सना दे दी है—

यत् लीला जिसकी विकस चली  
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला ।<sup>२</sup>

इस प्रकार प्रसाद जी ने इस इच्छा समन्वित काम को सजन शक्ति के रूप में अपनाया है—

वह मूल शक्ति उठ छडी हुई  
अपने आलस का त्याग किए  
परमाणु-बाल सब दौड पडे  
जिसका सुन्दर अनुराग लिए ।<sup>३</sup>

इच्छा शक्ति द्वारा जगत की सृष्टि स्थिति और संहार का वर्णन भी प्रसाद जी ने कामायनी के दशम सर्ग में बड़ी ही ओजपूर्ण शैली में किया है ।<sup>४</sup>

#### ४—ज्ञान शक्ति

जिसके कारण शिव स्वयं ज्ञान स्वरूप है । इस शक्ति का समाहार प्रसाद जी ने श्रद्धा के चरित्र में किया है ।

छान्दोग्य उपनिषद् में श्रद्धा को आस्तिक बुद्धि समन्विता कहा गया है ।<sup>५</sup> शाक्त तंत्र में सम्बद्ध त्रिपुरारहस्य (ज्ञान खण्ड) नामक ग्रन्थ में श्रद्धा 'आस्तिक बुद्धि के रूप में गहान हुई है । इस ग्रन्थ में कर्तव्यज्ञेय श्रद्धा द्वारा नर का सफ़्त हान की बात कही गई है अथ श्रद्धा द्वारा सफ़्त होने की बात नहीं मिलती—

सत्तकमथयेणाशु साधनकपरो भवेत् ।

सत्तकजनिता श्रद्धा प्राप्यह फनमाह नरः ।<sup>६</sup>

१ ऋग्वेद १०।१२९।४

२ कामायनी पृ० ८४

३ वही पृ० ८०

४ कामायनी दशम-सर्ग, पृ० ३६०-२६२

५ आस्तिक बुद्धि इति श्रद्धा ।

६ त्रिपुरारहस्यम् अध्याय ७, श्लोक ३

गानमय होने के कारण ही कामायनी की श्रद्धा जड़ में स्फूर्ति प्रकट करती है<sup>१</sup> तथा मन को महाचिति<sup>२</sup> समरमता<sup>३</sup> आदि का सा-देश और चतता का सुन्दर इतिहास<sup>४</sup> सुनाती है ।

## ५—क्रिया शक्ति

जिसके कारण शिव सभी स्वरूप को धारण करते हैं। इसी शक्ति द्वारा प्रसाद जी ने सत्ता को तारा हिमकर दिनकर आदि में परिवर्तित होना हुआ दिखाया है—

सत्ता का स्वरूप चला डाल  
जावरण पटल की गति खाल

जामेदारी पूण ताण्डव सुन्दर  
भरने थे उजवाला ध्रम सीन्दर  
घनते तारा हिमकर दिनकर  
उड़ रहे धूमिलकण से भूधर ।<sup>५</sup>

शक्ति के उक्त पांच स्वरूपों में सम्पन्न शिव अपने आप समस्त विश्व की अभिव्यक्ति करते हैं। वस्तुतः यह जगत शिव की शक्ति ही का विस्तृत रूप है, जिसे परमशिव ने अपने में (स्वभित्ति) स्वेच्छा से अभिव्यक्त किया है ।<sup>६</sup> हमी मत का प्रतिपादन प्रसाद जी ने अपनी कामायनी में किया है ।<sup>७</sup>

१ कामायनी पृ ५५

२ वही पृ० ६१

३ वही पृ० ६०

४ वही पृ० ६६

५ वही पृ० २६१

६ डा० उमशमिध्र भारतीय दर्शन पृ० ३८३

७ चिर मित्रित प्रवृत्ति से पुनर्कित

बहु चेतन परम पुरातन

निज शक्ति तरगायित था

आनन्द अम्बु निधि शासन ।

### सदाशिवतत्त्व

जब शिव का शक्ति में उभेय होता है तब सृष्टि होती है और जब वह अज्ञ मूढ़ तत्ता है तब जगत का नय हो जाता है।<sup>१</sup> यह उभेय और निमेष अनादि बार अनन्त है। उसी उभेय के कारण 'सदाशिवतत्त्व' का अभिप्राय शक्ति होती है। यह शक्ति-तत्त्व का प्रथम और स्थूल उभेय है। इस अवस्था में इच्छा शक्ति को प्रधानता होती है, क्योंकि 'इदं अथ अस्फुटं रहता ह्यं और जह अज्ञ प्रधान रूप में उस जाच्छादित किये रहता है। इसलिए मैं हूँ इस प्रकार का प्रतीति होती है। इस स्थिति में द्विधाभाव बना रहता है।<sup>२</sup> अहं (मैं) द्वारा उत्पन्न इसी द्विधा अथवा विषमता की आरंभ प्रमाण जी ने निम्न पक्तियाँ में संकेत किया है—

सब की सेवा न पराई  
वह अपनी सुख ससति है  
अपना ही अणु अणु कण कण  
द्वयता ही ता विस्मृति है।  
मैं की मरी घतनता  
सबका ही स्पश किये सी  
सब भिन्न परिस्थितियों की  
है भाग्य घूँट पिये सी।<sup>३</sup>

### ईश्वर तत्त्व

शिव का अहं अथ पुरुष में और 'इदं अथ प्रकृति' में अभिव्यक्त होना है। किंतु पुरुष से प्रकृति किंवा प्रकृति से पुरुष एवान्तत पद्यक नहीं है। वे दोनों एक ही दो प्रकार हैं। जिस समय पुरुष सूक्ष्म तत्त्व में प्रवृत्त करता है उस समय वह अपने का सूक्ष्म प्रपञ्च को स्थूल प्रकृति का सूक्ष्म रूप है कि समान उत्पन्न लगता है। इस अवस्था

१ यस्याऽभय निमेषाभ्या

जगत प्रलयाभ्याम् ।

त शक्तिं चक्रविभक्तम्—

प्रभव शरत् स्तुम् ॥१॥

संस्कृत साहित्य-संश्लेषण-संस्थान, काशी

म मैं—यह हू इस प्रकार की प्रतीति उत्पन्न होती है। इसमें मैं चतुर्थ है और यह प्रकृति है। यहाँ मैं और यह दाना बराबर महत्व के हैं। किन्तु इस स्थिति में द्वैतमान स्पष्ट रहना है। उसके अनन्तर जब पुरुष सूक्ष्म प्रपञ्च के साथ तात्कालिक बाध करने लगता है और यह—मैं हू ऐसी प्रतीति उसकी विमर्श शक्ति में होने लगती है तब यह की प्रधानता रह जाती है। इस अवस्था को ईश्वरतत्त्व कहते हैं।<sup>१</sup> ईश्वरतत्त्व की इस स्थिति में सुखदुःख व अवागी भाव मिट जाते हैं जिससे पुरुष आनन्द का अनुभव करने लगता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर प्रसाद जी ने अपने रहस्यवाद की परिभाषा में अहं को इदं में पर्यवसित कर देने को आवश्यक बताया है और कामायनी में मानव मात्र के कल्याण के लिए उसे ही अपना लक्ष्य का संकेत दिया है—

सब भद भाव भुलवा कर  
दुःख सख का दृश्य बनाता  
मानव कह रे— यह मैं हू  
यह विश्व नीड बन जाना ।<sup>२</sup>

## शिव और सृष्टि

शिव भक्त में परमशिव ही एकमात्र तत्त्व है। वह चित्त है और उसी से सभी चिन्मय पदार्थ आविर्भूत होते हैं तथा उसी में जलभूत हो जाते हैं। सृष्टि तो उनका उन्मीलन मात्र है।<sup>३</sup> एवं प्रकार सृष्टि रूप में कोई नवीन वस्तु उत्पन्न नहीं होती—वास्तु पहले से थी उसी की अभिव्यक्ति होती है। अतः परमशिव ही इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण है। सूक्ष्म रूप में वह कारण है और सूक्ष्म रूप से उसका कार्य है। शिव ही जगत् का

१ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८७

२ इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का हृदय से सम्बन्ध करने का सुन्दर प्रयत्न है।

प्रसाद काव्य और कला 'रहस्यवाद'—शीपक निबन्ध पृ० ५९

३ कामायनी पृ० २९७

४ अत्र स्थितवनामेव घटते वहिरात्मना । —ईश्वर प्रह्लादभिरा, ३२

उन्मीलनम् अवस्थितनम्यव प्रक्रीकरणम् । —प्रत्यभिज्ञाहृदय पृ० ६

रूप म परिणत हुआ है<sup>१</sup> अतः जगत सत्स्वरूप हूँ शबोपासक होने के नाते प्रसाद जी जगत की इसी व्याख्या का स्वीकार करते हैं। शंकर की भाँति व ब्रह्म को सत्य और जगत का मिथ्या नहीं मानते। कामायनी म उन्होंने अपनी जगत विषयक इस भावता का चित्त का विराट वपु मगल, यह सत्य सतत चिर सुन्दर<sup>२</sup> तथा चित्त का स्वरूप यह नित्य जगत<sup>३</sup> आदि खण्ड पत्तियों द्वारा व्यक्त किया है। शव दशन क इम सष्टि विधान म परमशिव का ही सबन विस्तार है अतः यहाँ पर कोई भी किसी से भिन्न नहीं है।<sup>४</sup> इस तथ्य को प्रसाद जी मनु के इन उदगारा कि देखो यहाँ पर कोई भी पराया नहीं है तथा हम न अय है और न अय कुटुम्बी है हम केवन एक हमी है<sup>५</sup> द्वारा अभिव्यक्त किया है।

### शिव और जीव

शव दशन म जीव सम्पूर्ण विश्व के तद्रूप माना गया है। चिन्ता की कोई भी अवस्था ऐसी नहीं है जिसका तादात्म्य शिव के साथ स्थापित न किया जा सके। भाक्ता भाग्य भाव स शिव सदा सबत्र स्थित है।<sup>६</sup> अतः जीव और शिव म कोई तात्त्विक भेद नहीं है। शक्ति मत्य है मुतरा जीव और जगत भी मत्य है। अतः यहाँ पर सब कुछ शिवमय है। किन्तु मायाशक्ति के

- १ अहा नगो यह विश्वेश्वर की सष्टि अनप ।  
शिव स्वरूप तिन माहि विराजत ललि सब ही सम ।  
यह विराट सगार तामु अव्यक्त रूप है ।

चन्द्र मूय युग नन, जबहि यह अपन पसत ।

तव ही तममय जगत माहि नर अखिन दखत ।—चिन्ताधार प्रमराय

२ ३ कामायनी पृ० २९६, २५०

४ एक तत्व की ही प्रधानता कही उन जह वा चतन ।—कामायनी, पृ० १

५ कामायनी, पृ० २९५

६ यस्मात्समया जीव सबभावसमुभवात् ।

तावैतन्मयेण तादात्म्य प्रतिपत्तिः ॥ ॥

तस्माद्भावापचिन्तामू न सावस्थान या गिर ।

भाते व भाग्यभावात् सग सबत्र सत्स्थित ॥४॥

बभ्रुगुप्त रसकारिका, काश्मीर मन्थन द्वायाव ४२, पृ० ४३



द्वारा परमेश्वर जब अपने रूप का जाच्छादित कर देते हैं तब वह मूर्ख तत्व होकर पथक हो जाता है। माया से मुख्य कर्मों का अपना बंधन समझता हुआ यही ससारा पुरुष अथवा जीव है। परमेश्वर से अभिन्न होता हुआ भी इसका माह परमेश्वर में नहीं जाता।<sup>१</sup>

माया के पांच कचुक हैं—कला विद्या राग काल तथा नियति। परमेशिव सबकृता सबत्र पूष नित्य आपक तथा असकृचित शक्ति सम्पन्न होता हुआ भी अपनी अज्ञानता से सकृचित होकर माया के उक्त पांच कचुकों के रूप में स्वयं अभिव्यक्त होता है। यही कचुकों का आवरण रूप में स्वीकार कर पुरुष ससारी हो जाता है। इही से आवत चतुर्थ मूर्ख तत्व है। परमेशिव का आवत करन के कारण ये कचुक बंधे जाते हैं।<sup>२</sup> कला के आवरण से जीव अपना सब कुछ करने का समय खा देता है विद्या के आवरण से जीव में जल्पनता जाती है राग से जीव विषयो में फस जाता है काल के कारण जीव अपने को अनित्य मानता है तथा नियति के कारण जीव को निश्चित काम करने पड़ते हैं। जब साधक इनका अंत में प्रवेश कर इनके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है तब उस माया से छटकारा मिल जाता है। माया से मुक्त होकर जब वह आगे बढ़ता है तब उस शुद्धतत्व विशिष्ट पुरुष शुद्ध विद्या के रूप में दिखाई पड़ता है। इस भूमि का सद विद्या कहते हैं। यह सद विद्या तत्व ईश्वरतत्व में नीन हो जाता है और साधक को ईश्वरतत्व में अनुभव करने का अवसर मिलता है। ईश्वरतत्व सदाशिवतत्व में सदाशिव तत्व शिवतत्व में तथा शक्तितत्व परमेशिवतत्व में परिणत हो जाता है। वही पदच कर साधक शिव शक्ति के सामरस्य का अनुभव करता है। यही पूणावस्था है। यही इस दशन का परम लक्ष्य है।

माया के कचुकों का स्पष्ट प्रभाव मनु के जीवन में दिखाई पड़ता है। कला के आवरण से मनु को समस्त ललित कला, नश्वर छाया से प्रतिभा सिद्धि हान लगता है जिससे वह उद्विग्न और निरस्तहित भी हो उठता है।

१ डा उमग मित्र भारतीय दशन पृ० २७९, ३८४-८५

२ वही पृ० ३८५

३ वही

४ वन त्वे सात्त्व्यात्तर जाय नश्वर द्वाया या नवित वता ।

बना का यह आवरण ही उन्हें जीवन में ममता का अनुभव कराना है।<sup>१</sup> विद्या के आवरण में उन्हें अल्पनता का अनुभव हाता है क्योंकि वह (विद्या) सब ज्ञान का शुद्ध अंश मान है।<sup>२</sup> इसी प्रकार राग नाव उन्हें सबुद्धित पूणता के रूप में दिखाया गया है।<sup>३</sup> जिसके कारण वह नाता विषयो में निम्न दिखाये गये हैं। काल के आवरण से मनु जीवन में जनित्यता का भी अनुभव करते हैं।<sup>४</sup> और नियति जाल से धुन हाकर उससे मुक्ति की भी कामना करते हैं।

मुक्ति के प्रसंग में शिव दशा में कहा गया है कि बिना गुरु के भक्ति मिलना असम्भव है। उस तथ्य को हम दशा में स्त्री अथवा नायिका के उदाहरण द्वारा समझाया गया है। जिस प्रकार कोई स्त्री नायकानुरक्त होने पर भी बिना ज्ञानों किसी विज्ञान जन समूह में अपने प्रयान को नहीं पा सकती किन्तु दूता द्वारा जान लेने पर कि उसका प्रियतम यही है, आत्म समर्पण कर देती है उसी प्रकार जीव बिना गुरु की महायता के परमेश्वर को नहीं पहचान सकता।

मनु को जीव की स्थिति मरगकर उन्स समस्त अनान जयवा सासास्त्रि बंधना से मुक्त कर परमगिवनत्व की स्थिति में पहुँचा देना ही कामायनी

१ ममता की शीघ्र अरण देखा गिनती है तुनम ज्याति बना।

कामायनी पृ० १६७

२ गवज ज्ञान का शुद्ध अंश विद्या बनकर वृद्ध रच छ।

कामायनी पृ० १७३

३ 'बद्ध मरा हो' मह राग नाव सबुद्धित पूणता है अज्ञान

मानस जननिर्ति का शुद्ध यान।—

कामायनी पृ० १७१

४ नित्यता विभाजित हो पा पन में कान निरन्तर चल बना।'

कामायनी पृ० १७३

५ भक्ति का मुद्गर वह नाल लोह

उसने भी पर मुना जाता कोई प्रकाश का महा साव

बन छ तिरा अपनी नेकर मरी स्वतन्त्रता में सहाय

बना का साता है निपति जाल में मुक्ति दान का दर उपाय।

कामायनी पृ० १७८

वार का लक्ष्य प्रतीत होता है। कामायनी में श्रद्धा गुरु तथा मनु जीव के प्रतीक रूप में अपनाये गये जाते हैं। श्रद्धा से ही मनु को माया द्वारा जीव को अपने पाश में फसा ले जाने का ज्ञान होता है।<sup>१</sup> मनु को आनन्द भूमि तक पहुँचाने वाली इच्छा स्वप्न ज्ञान की एकता तथा समरसता का बोध भी श्रद्धा द्वारा ही हाता है। श्रद्धा की सन्मत्ता से ही वह परमशिवतत्त्व का अनुभव कर लेता है। इस प्रकार गुरु की सहायता से जिन विभिन्न भूमिगत प्रवेश करता हुआ साधक जल में परमशिवतत्त्व का प्राप्त कर लेता है उन सब का समाहार प्रसाद जी ने मनु की जीवन यात्रा में किया है।

(१) माया के बन्धन में छूटने के उपरान्त साधक सन्विष्टा की भूमि में पहुँचता है। इस भूमि में अहम् और इहम् का दाना मूषो में ऐक्य की प्रतीति रहती है। इस तथ्य का अनुभव मनु को भी हुआ है यह था उनसे निम्न व्याख्यान से स्पष्ट हो जाती है—

हम अयं न और वृट्टुम्बी  
हम केवल एक हूँ  
तम सब मेरे अवयव हो  
जिसमें कुछ नहीं बची है।<sup>२</sup> -अथवा  
अपना ही अणु अणु वण वण  
द्वयता ही तो विस्मति है।<sup>३</sup>

(२) दूसरी भूमि है ईश्वरतत्त्व की। इसमें अहम् अश गौण होता है और 'इहम् अश की प्रधानता रहती है। अन साधक इहम् अह (यह मैं हूँ) का अनुभव करता है।<sup>४</sup> मनु का यह कथन कि—

सब भेद भाव भुनवाकर  
दुख सब को दशय बनाना

१ यहाँ मनोमय विश्व कर रहा  
रागारुण चेतन उपासना  
पाया राय्य यही परिपाटी  
पाश बिछा कर जीव फँसना।—कामायनी, पृ २७०

२ कामायनी पृ० २९५

३ कामायनी, पृ २९७

४ शं० उमश मिश्र, भारतीय दर्शन पृ० ३६४

मानव कह रे ! 'यह मैं हूँ  
यह विश्व नीड बन जाता ।'<sup>१</sup>

इसी ज्ञानदशा का परिचायक हूँ ।

(३) तासरा भूमि सदाशिवतत्व की है । इसमें साधक को 'मैं हूँ' की प्रतीति होती है ।<sup>२</sup> इस भूमि का सबेते मनु के इस कथन में माना जा सकता है—

मैं की मेरी चेतनता  
मन्त्रको स्पष्ट किये सी ।<sup>३</sup>

किन्तु मन्त्र कृतिया की अपनी सीमा है हम ही तो,  
पूरी हो कामना हमारी विफल प्रयास नहीं तो ।<sup>४</sup>

(४) चौथी भूमि है 'शक्ति तत्व' की । यही परमशिव की अमीनतावस्था है ।<sup>५</sup> इस अवस्था का वर्णन प्रसाद जी ने आनन्द सग में इस प्रकार किया है—

चिर मिलित प्रकृति से पुलकित  
वह चेतन पुरुष पुरातन,  
निज शक्ति तरगापित था  
आनन्द-अम्बु-निधि-शासन ।<sup>६</sup>

(५) अन्तिम अवस्था है चिन्मय सामरस्य की । यहाँ पहुँच कर जिज्ञासु अपने अस्तित्व को परमशिव में लीन कर जाता है । किन्तु परमशिव में लीन होने पर भी कोई तत्व अपने स्वरूप को नष्ट नहीं करता । सभी तत्व परमशिव में लीन होकर चिन्मय हो जाते हैं । यन्त्री मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है । यहाँ शुद्ध अद्वैत है । चिन्मय शिवतत्व में सभी चिन्मय हो जाते हैं । शिवशक्ति व सामरस्य की यही अवस्था है । अद्वैत तत्व का ज्ञान

१ कामायनी पृ० २९७

२ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८४

३ कामायनी पृ० २९७

४ यही, कम सग पृ० १३९

५ डा० उमेश मिश्र भारतीय दर्शन पृ० ३८७

६ कामायनी पृ० २९४

यही होता है ।'

प्रसाद जी ने भी मनु का चिन्मय सामरम्य की इस अवस्था तक पहुँचा कर कामायनी काव्य का अन्त किया है । यथा—

वह चन्द्र विरीट रजत नग स्पन्दित सा पुरुष पुरातन  
देखता मानसी गौरी लहरो का कामज नत्तन ।  
प्रतिफलित हुई सब जँखें उस प्रम ज्योति विमला स  
सब पहचाने म नगत अपनी ही एक कला स ।  
समरस थे जड या चैनन सुन्दर साकार वाग या  
चननना एक विनसती आन न जखण्ट घना था ।

### समरसता

प्रसाद का समरसता का सिद्धान्त भी अद्वैत की ही भित्ति पर सड़ा है । आगमशास्त्र में अ न म तात्पर्य है जो का नित्य सामरस्य ।<sup>१</sup> इसी सिद्धान्त के आधारभूत बाधसार में कहा गया है कि जिस प्रकार परस्पर अत्यंत प्रेम वा न दम्पतियों का द्वैत दोना क समरस हो जाय पर आन दमय हो जाता है उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा क समरस हो जाने पर जो जानद अबाध रूप से उत्पन्न होता है उसमें यह क पित द्वैत या पाथक्य नी ग्रह्यान्त क तुल्य हो जाता है ।<sup>२</sup> इसी प्रकार नयतन्त्र में उस अवस्था को जिसमें यागी यह अनुभव करने लगता है कि न तो मैं हूँ और न कोई अन्य सामरम्य कहा गया है ।<sup>३</sup> इस सामरस्य अवस्था में न तो सुख रहता है और न दुःख न ग्राह्य और न ग्राहक—केवल परमाद्य तत्त्व ही शेष रहता है ।<sup>४</sup> इसी सिद्धान्त का उपयोग

१ का उमेरा मिश्र भारतीय दर्शन पृ २८७

२ कामायनी पृ ३००

३ का उमेरा मिश्र भारतीय दर्शन पृ ३८१

४ नरहरिस्वामी बाधसार व्याख्याका—पृ १० रामावतार विद्याभास्कर प्रथम मस्तरण पृ १००

५ नात्मस्मि न चाचास्ति ध्यय चाय न विद्यत ।

जात्पत्तम नीन मा समरमीगतम ॥

नयतन्त्र भाग १ पृ १९८

६ न दुःख न सुख यथ न ग्राह्य ग्राहका न च ।

न चास्ति भूतभावा वि तन्मि परमाद्यन ॥ —अपकारिका, १।५

प्रसाद जी न अपने काव्य विनापकर कामायनी म मानव-वल्याण क लिए जीवन की दाना सरणिया-लौकिक और पारलौकिक-म किया है। उहाने कामायनी म यह प्रतिपान्ति किया है कि मनुष्य समरमता के सिद्धान्त को अपनाकर एहिक जीवन का भी साधक और सुखी बना सकता है और जाव-मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है।

कामायनी क रहस्य सग म त्रिपुर का विधान कर प्रसाद जी न सम रमता क दार्शनिक अथवा आ-यात्मिक पक्ष का पुष्ट किया है। इच्छा कम और पान मानव मन की नैसर्गिक वृत्तियाँ हैं। अत इनम सामरस्य अथवा सामरस्य स्थापित करके ही मनुष्य पूणता को प्राप्त हा सकता ह। एन तीना के पृथक्त्व म आनन्द की प्राप्ति असम्भव है। इस पक्ष अथवा मत्य की ओर प्रसाद जी न हमारा ध्यान आकृष्ट किया है और स्पष्ट कहा है—

पान दूर बुद्ध क्रिया भिन्न है,  
इच्छा क्या पूरी हा मन की  
एक दूसर स न मिल सक  
यन् विभ्वना है जीवन की।\*

तन्तर त्रिय जीवन अथवा त्रिय ज्यानि की प्राप्ति के लिए इन तीना (इच्छा कम पान) की समरमता को अनिवाय बनाया है और श्रद्धा द्वारा मनु को एन तीना क सामरस्य का साक्षात्कार कराकर उह योगिया की भाँति परमा न का अनुभव कराया है—

स्वप्न स्वा जागरण भम्म हो  
इच्छा क्रिया, पान मित लय थ  
त्रिय अनाहत पर निना म  
श्रद्धामुत मनु वय तमय थ।

किन्तु प्रसाद जी की मौनिक अथवा महानतम विनापता अध्यात्म जगत क एग सामरस्य सिद्धान्त का द्वावहारिक जीवन क कक्ष म प्रतिष्ठित कर देने म है। प्रसाद का युग सम-वयनी युग था। जीवन के सभी क्षथा म समन्वय की भावना परावित हो रहा थी। युग की एम सम-वयवा। दुष्टि की मु-रतम मष्टि प्रसाद का समरमता सिद्धान्त है। प्रसाद जी की प्रान्ति-गिता

\* कामायनी पृ० १८०

१ प्रसाद कामायनी त्रिनाय सम्करण, पृ० १८१

ने व्यक्तिगत सामाजिक सामूहिक तथा आध्यात्मिक जीवों की समस्त विधाओं के निराकरण अथवा समावयव का उपाय इस सामरस्य सिद्धांत में पा लिया। इस प्रकार सख्त-दुःख यथाथ आदर्श थय प्रयत्न वृष्णा वृष्टि बुद्धि हृदय आदि विधाओं के मंगलमय समावयव अथवा सामरस्य का बड़ा ही विशद वर्णन हम कामायनी में देखने को मिलता है।

जावन में उत्पीड़नजन्य वपम्भ का कारण सुख दुःख का पृथक् पृथक् अथवा परस्पर विरोधी नस्त्व मान लेने में है। इस द्विधा का निराकरण दोनों को समभाव से अपना कर ही हो सकता है। इस तथ्य की स्थापना कामायनी में प्रसाद जी ने अत्यन्त मार्मिक रूप से किया है—

जिसे तुम समझ हो अभिशाप जगत् की ज्ञानाज्ञा का मूल  
दर्श का वह रहस्य बरतान कभी मत बसको जाओ भूल

नित्य समरसता का अधिकार उमडता कारण जलधि समान  
व्यथा से नीची लहरों बीच बिखरते सुख मणि गण क्षुतिमान १ २

कामायनी की सृष्टि के पूर्व आसू में भी उन्होंने जीवन में सख दुःख अथवा विग्रह मिलन को समभाव में अपनाने का संश्लेष किया है।

मनुष्य स्वभाव से ही कामनाओं का पुञ्ज है। वह हर प्रकार अपनी आकाशाज्ञा की वृष्टि चाहता है। किन्तु सघनमय जीवन में मनुष्य की समस्त आकाशाज्ञा का पूरा होना नितान्त असम्भव है। अतः इच्छाओं को कल्पमय प्रमाणित कर उसमें छटकारा पाने के लिए निवृत्ति-भाग का प्रचार हुआ। किन्तु सामरस्य की दृष्टि में निवृत्ति-भाग नितान्त एकांगी है। अतः प्रसाद जी उसका समझन नहीं करतें। व्यावहारिक दृष्टि से वे कामना और वृष्टि के सम रूप अथवा समरसता को ही उत्तम भाग मानते हैं—

हम भूख प्यास से जाग उठे आकाशा-वृष्टि-समावयव में  
रति काम बने उन रचना में जा रही नित्य यौवनवय में।

मैं वृष्णा या विकसित करता, वह वृष्टि दिखानी थी उनको  
आनन्द-समावयव होता था हम ल चरते पथ पर उनका १ ३

१ कामायनी पृ० ६१-६२

२ देखिए आचार्य नन्दुनार वाजपेयी आधुनिक साहित्य पृ० ६०

३ प्रसाद कामायनी शिरीय सम्करण पृ० ८२

व्यक्ति और समाज का अयो-यात्रित सम्बन्ध है अतः प्रसाद जी व्यक्ति-जीवन की समरसता के उपरान्त सामाजिक जीवन म भी समरसता के सिद्धांत को अपनाने का सन्देश देने हैं । सामाजिक जीवन को भ्रमरतल बनाने के लिए वह व्यष्टि और समष्टि नासक और शासित अथवा अधिकार और अधिकारी म भी समरसता की स्थापना करते हैं जिसके अभाव के कारण कामायनी म वर्णित सारस्वत प्रश्न के सामाजिक जीवन म विषमता और अशान्ति उत्पन्न हो जाती है ।

### आनन्दवाद

कामायनी म समरसता सिद्धान्त की भाँति ही प्रसाद जी ने शवागम से ही अपने अद्भुत अथवा सबवादमूलक आनन्दवाद का ग्रहण किया है । अतः उनका यह आनन्दवाद बलभावाय के कार्य-या आनन्द के रंग का न होकर सात्रिका और यागिया की अन्नभूमि पद्धति पर है ।<sup>१</sup>

प्रसाद जी न कामायनी म आनन्द को साध्य मानकर श्रद्धा और इडा के समन्वय को प्राथमिकता दी है । रूपक की भावना के अनुसार श्रद्धा विश्वास समन्वित रागात्मिका वृत्ति है और इडा व्यवसायात्मिका बुद्धि । कवि न श्रद्धा का मन्त्र प्रेम और कल्याण का प्रवृत्तन करज वाली और सच्च आनन्द तक पहुँचाने वाली चित्रित किया है । इडा या बुद्धि अनेक प्रकार के वर्गीकरण और व्यवस्थाओं म प्रवृत्त करती हुई कर्मों म उत्पन्न वाली चित्रित की गई है । इस प्रकार प्रसाद जी के मत म आनन्द की ओर प्रेरित करने वाला तत्त्व श्रद्धा है, बुद्धि नहीं । प्रसाद जी न स्वयं कहा है कि यह इडा का बुद्धिवाद श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान बनाने म सहायक होता है । फिर बुद्धिवाद के विकास म अधिक सुख की साज म, दुःख मिलना स्वाभाविक है ।<sup>२</sup> हमने

१ समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की ।—कामा० पृ० १७०

२ आचार्य नान्दवारे वाजपेयी आधुनिक साहित्य प० ६४

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास म० १९९३ पृ० ८२५-८२६

४ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास

म० १९९७, पृ० ८२६

५ प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण आमुस पृ ८



स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने बुद्धि का विरोध 'यावहारिक' दृष्टिकोण से अध्यात्म की भूमिका में ही किया है। अतः शुक्ल जी का यह कथन कि बुद्धि की विगहणा द्वारा बुद्धिवाद का विरुद्ध उस आधुनिक आन्दोलन का आभास भी कवि को दृष्टिमान पड़ता है जिसके प्रवक्तक अनाताने फ्रान्स ने कहा है कि बुद्धि के द्वारा मृत्यु को छोड़कर और सब कुछ मिट्टी हो सकता है। बुद्धि पर मनुष्य का विश्वास नहीं होता। बुद्धि या तर्क का सहारा तो लोग अपनी भनी-वरी प्रवृत्तियाँ को ठीक प्रमाणित करने के लिए लेते हैं<sup>१</sup> साधु प्रतीत नहीं होता। प्रसाद जी ने अनाताने फ्रान्स की भाँति बुद्धि का सर्वांशतः विरोध नहीं किया है। उन्होंने उस श्रद्धाविहीन बुद्धि का विरोध किया है जो क्लेश, सन्ताप और सघप को ही जन्म देने में निरत रहती है। इस प्रकार प्रसाद जी का बुद्धि विरोध किसी विदेशी बुद्धि विरोधी आन्दोलन के मत में न होकर भारतीय 'यावहारिक' दृष्टिकोण के अनुरूप है जिसमें स्वामी विवेकानन्द के शांति विचार (बुद्धि) का विशेष मूल्य नहीं। हृदय की ही सबसे बड़ी आवश्यकता है। हृदय के द्वारा भगवत्साक्षात्कार होता है बुद्धि के द्वारा नहीं। बुद्धि केवल जमादार के समान रास्ता साफ कर देती है—वह गौण भाव से हम योगी की उत्तति की सहायक हो सकती है। बुद्धि पुलिस के समान है—किंतु समाज के सुन्दर परिचालन के लिए पुलिस का बहुत प्रमाण नहीं है। उसे केवल गम्भीर रोकना पड़ता है अथवा निवारण करना पड़ता है। विचारशक्ति अर्थात् बुद्धि का कार्य भी इतना ही होता है। विचारशक्ति अथवा उसकी अपनी गतिशक्ति नहीं है उसके हाथ पर नहीं हैं। हृदय भाव ही वास्तव में कार्य करता है वह विजयी अथवा उन्मत्त भी अधिक वेगवामी पत्थर की अपेक्षा शीघ्रगामी जाना है। विचारशक्ति एक गौण सहायक मात्र है वह अधिक कुछ नहीं कर पाती।<sup>२</sup>

स्पष्ट है कि प्रसाद जी ने अपने आनन्दवादी प्रतिष्ठा में श्रद्धा (हृदय) और इडा (बुद्धि) का वही स्थान दिया है जो उह (हृदय और बुद्धि) को विवेकानन्द के व्यावहारिक दृष्टिकोण में प्राप्त है। फलतः कामायनी में उडा (बुद्धि) अथवा निवारण के प्रति अत्यन्त दूर और सजग है। व्यवस्था और नियम का उन्मत्त उन किसी प्रकार सह्य नहीं है। कारण उन्मत्त अभाव में

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास

सं० १९, ७ पृ० ८३४-३५

२ विवेकानन्द व्यावहारिक जीवन में दृष्टान्त पृ० २५-२६

सत्यानाश निश्चित है ।<sup>१</sup> अतः वह मनु का निर्वाहित अधिकार भोगने का प्रति-  
बन्धी चेतावनी देती हुई कहती है—

आह प्रजापति यह न हुआ है कभी न हागा

निर्वाहित अधिकार आज तक किमन भागा ।<sup>२</sup>

किन्तु हम चेतावनी का भी मनु के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । स्वेच्छा-  
चारी मनु उत्तमिन् हो कहने लगते हैं मैं शामक हूँ फिर स्वतन्त्र हूँ मरा  
जीवन तभी सफल होगा जब मैं तम (बुद्धि) पर अपना असाम अधिकार  
प्राप्त कर लूँगा । यदि ऐसा न हुआ तो मरा प्रजापति हाना क्या है ।<sup>३</sup> लाचार  
हाकर इडा राट कल्याण अथवा ताक धम की रक्षा के लिए प्रजा द्वारा विद्रोह  
कराकर मनु से युद्ध करती है । मनु युद्ध में नास्त होते हैं । थदा का आगमन  
होता है वह मन का महानाती है और अपन मधुर म्पश से उनको व्यथा हर  
लती है ।<sup>४</sup> इस प्रकार थदा का अवलम्बन मने मनु का हृत्प-वृत्तुम खिल जाता  
है ।<sup>५</sup> थदा का संरक्षण और पथ प्रदर्शन में मनु उस आनन्दभूमि तक पहुँच जाते  
हैं जो मानव जाति का साध्य है । इस प्रकार हम दिसते हैं कि सामाजिक  
व्यवस्था के लिए अनिवाय होते हुए भी बुद्धि मानव-जीवन के उद्धार अथवा  
आनन्द के हेतु अपर्याप्त अथवा एकांगी है । उनके लिए थदा (हृदय) का मह-  
योग आवश्यक है । मानव का साम्प्रोक्त थदा नियोजित सततित बुद्धि द्वारा  
ही हो सता है ।<sup>६</sup> कह सकते हैं कि प्रसा जो न बुद्धि का सर्वांग निरस्कार

१ और कह रण किन्तु नियामर नियम न मान

तो फिर मव बुद्ध नष्ट हुआ निश्चय जान ।

कामायनी तृतीय संस्करण, पृ० २००

२ प्रसा कामायनी तृतीय संस्करण पृ० २००

३ मैं शामक मैं फिर स्वतन्त्र तुम पर भी मरा

हा अग्नार नसीम सपन हा जीवन मरा ।

कामायनी पृ० २०६

४ 'हृदय' मुझ वह वस्तु चाहिए जो मैं चाहूँ,

तुम पर ही अधिकार, प्रजापति न तो क्या हूँ ।—वही, पृ० २०२

५ वहा पृ० २३

६ वही, पृ० २२७

७ यह तव मया तू थदामय,

तू मननगीन कर कम अमय,

मया त सब गन्ताय निधय,

हर त, हा मानव भाग्य उच्य —वही, पृ० २५२

अथवा प्रतिरोध नहीं किया है। उनका विरोध मात्र सकुचित अनियंत्रित बुद्धि के प्रति है जो प्रसाद में परिवर्तित होकर नाना विघ्नो, विषमताओं और अन्त में विनाश का कारण बन जाती है। प्रसाद जी का स्पष्ट मत है कि इडा (बुद्धि) और श्रद्धा (हृदय) दाना के सहयोग से ही मानव की मुक्ति अथवा परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है। यही भारतीय गार्ध्यात्मिक दृष्टि है यही यावहारिक जीवन का वेदांत है। इसमें श्रद्धा (हृदय) पक्ष प्रधान और इडा (बुद्धि) पक्ष गौण है। यही कामायनी के आनन्दवाद का प्रतिपाद्य विषय है।

### नियतिवाद

प्रसाद जी की नियति कल्पना बहुत कुछ वैयक्तिक है वह किसी श्रमागत सिद्धान्त की प्रतिरूपमात्र नहीं है।<sup>१</sup> इस नियति पर भी उनका बौद्धिक रग था।<sup>२</sup> फिर भी शास्त्रों में जो नियति का स्वरूप उपन्यास होता है उससे उनकी नियति कल्पना नितान्त भिन्न नहीं है। योगवाशिष्ठ में कहा गया है कि सवश्र सम रूप से स्थित जो यापक ब्रह्म की सत्ता है उसी का नाम नियति है। वही काय कारण के नियम्य और नियामक रूप में स्थित है। कारण होने पर काय अवश्य होता है और काय होने पर उसका कोई कारण अवश्य हाता है। इसी नियम का नाम नियति है वही कारण आत्मी की नियामकता है और वही काय आत्मी की नियम्यता भी है।<sup>३</sup> नियति ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की स्थिति, विस्तार सामर्थ्य विवेक रचना जन्म और अथ नियाकारितात्मी की हेतुता में महासत्ता महाचिति महाशक्ति महादृष्टि महाक्रिया महा उदभव और महास्पन्दगति आदि नामों से कही गयी है।<sup>४</sup> रुद्र आदि देवता भी नियति का

१ आचार्य नन्दगुप्तानारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य पृ० ६५

२ रामनाथ मुमन कवि 'प्रसाद की काव्य साधना प्रथम मु० पृ० ३२३

३ यथास्थित ब्रह्मत्व सत्ता नियतिरुच्यते।

सा विनतुर्विनेत्व सा विनेयविनेयता ॥

योगवाशिष्ठ, प्रकरण २ सर्ग १० श्लोक १

४ महामत्तति कथिता महाचितिरितिस्मता।

महाशक्तिरिति ख्याता महादृष्टिरिति स्थिता ॥

योगवाशिष्ठ, प्रकरण ३, सर्ग ६२, श्लोक १०

उल्लंघन नहीं कर सकते । माधव और हर के समान सबन और बहुत चानी हान पर भी नियति के नियमों का कोई व्यतिक्रम नहीं कर सकता ।<sup>१</sup> यह सब लकर छोटे-स छोटे तण पयत नियति का ही नियमन व्यापार सबत्र दिखनाई पडता है । इस नियमन के कारण ही इस नियति कहा गया है ।<sup>२</sup>

यागवाशिष्ठ म विश्व की नियामिका शक्ति के रूप म नियति की जो विराट कल्पना मिलती है वह प्रसाद जी की नियति-कल्पना के अत्यन्त निकट है । योगवाशिष्ठ की नियति की भांति ही प्रसाद जी की नियति समस्त विश्व का शासन अथवा नियंत्रण करती है । समार म जो कुछ भी उत्कृष्ट निवृष्ट भला बुरा दिखाई दे रहा है वह नियति का ही कृत्य है ।<sup>३</sup> नियति ही मनुष्य की समस्त एपणाओं की प्रेरक शक्ति है ।<sup>४</sup> उसी की प्रेरणा मे मानव मन म व्यापकता अथवा सकीर्णता उत्पन्न होती है ।<sup>५</sup> सख और मित्र भी उसी की इच्छा का परिणाम है ।<sup>६</sup> जागृति के दु ख यास आदि नियति का ही भीषण अभिनय

मनानियति गदिता महोदभव इति स्मृता ।

महा सप्तमि प्रोक्त महात्मकतयोक्ति ॥

यागवाशिष्ठ प्रकरण ३ सर्ग ६२ श्लोक ११

१ न क्वचित् लघयितुमपि रद्रादिबुद्धिभि ।

मवनापि बटुनाऽपि माधवाऽपि हरोऽपि च ॥

यागवाशिष्ठ प्रकरण ३ सर्ग ६० श्लोक २६

२ तामहाद्वययत मिदमिदययिति स्थिते ।

आतथापि मजस्वद नियमानियति स्मृता ॥

यागवाशिष्ठ प्रकरण ६ सर्ग ५७ श्लोक २१

३ नियति चलाती कम चय यह तण्णा जनिन ममत्व वासना

पाणि पामय पचभून की यहाँ हो रही है उपासना ।

प्रसाद, कामायनी द्वि० सर्ग, पृ० २७५

उम एतान्त नियति शासन म चने विवग धोर धीरे -वही पृ० ४२

४ कम चय सा घूम रहा है यह गौनच बन नियति प्रेरणा

सबके पीछे लगी हुई है कोई व्याकृत नयी एपणा । वही पृ० २७५

५ व्यापकता नियति प्रेरणा बन अपनी सामा म रट बर-वही पृ० १७३

६ घन र । या विजन पथ पर मधुर जीवन-मेव

दो अपरिचित म नियति जत्र चाहती थी मन ।

प्रसाद, कामायनी, द्वि० सर्ग, पृ० ८९

है।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद जी ने नियति को विश्व का नियामिका शक्ति के रूप में चित्रित किया है जिसके अनुशासन का समस्त भूतवग स्वीकार करते हैं।

शिव दर्शन में यह कहा गया है कि परम शिव ही अपनी इच्छा से सबकुछ होकर नियति के रूप में स्वयं अभिव्यक्त होता है।<sup>२</sup> अतः नियति की शक्ति अनन्त है। प्रसाद जी ने भी उसे (शिव) निराकार ब्रह्म की सभी शक्तियाँ गुणा विशेषताओं तथा एक कार्यो से समलङ्कित करने का प्रयत्न किया है यद्यपि इस प्रसंग में उन्होंने (शिव) ब्रह्म का नाम नहीं रखा लिया है।<sup>३</sup> प्रसाद जी की नियति सर्वशक्तिमत्ता होना हुए भी केवल सांसारिक व्यक्तियों अथवा सीमित आत्मा का ही नियंत्रण करती है। भेद बुद्धि माया पाश आदि से मुक्त शिवत्व का जनन करने वाले आनन्दमय आत्मा पर इसका नियंत्रण नहीं करना।<sup>४</sup>

प्रसाद जी का यह नियति सिद्धान्त साधारण भाग्यवाद या प्रारब्धवाद में भिन्न है। उसका प्रवाह मानवता के और सृष्टि के कल्याण के लिए है। यह जीवन के प्रति आस्था और अद्विराध उत्पन्न करती तथा मानव के अतिचारों को रोक कर विश्व की अबाध प्रगति का भाग प्रशस्त करती है। यह मनुष्य का सामाजिक कर्तव्य की पूरी छूट देती है और कहीं भी सौख्यिक व्याय की प्राप्ति में बाधा नहीं बनती। किसी भी सीमा रेखा पर जाकर पूर्वजन्म और उसके कर्मों की दुहाई देना और मनुष्य को सामाजिक व्याय के भाग में पूरी दूरी तक जाने देने से रोकना प्रसाद की नियति का काम नहीं है।<sup>५</sup>

१ नियति विद्वेषणमयी प्राप्त से सब व्याकृतं च।—कामा० पृ० २०८

२ नियति नदी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही

—वही पृ० १६६

३ का० उमा मिश्र भारतीय दर्शन प० ३८५

राम लाल सिंह कामायनी—अनुशीलन द्वितीय संस्करण पृ० ५७

४ निराकार है नियति ठहरना हम दोनों को आज यही है

नियति मत्त दम्भू न मुनो अब हमका अर्थ उपाय नहीं है।

प्रसाद कामायनी, द्वितीय संस्करण पृ० १६८

५ आचार्य नन्दगुप्तारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य, प्र० सं०, पृ० ६५

## छायावादी काव्य में सर्वात्मवाद

डा० नगेन्द्र न लिखा है कि 'छायावाद' में समस्त जड़-वस्तु का मानव चेतना से स्पष्टित मान कर अंकित किया गया है और इस भावना को यदि कोई आधुनिक रूप दिया जायगा तो वह निश्चय ही सर्वात्मवाद ही होगा।<sup>१</sup> किंतु उनके इस कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि सर्वात्मवाद एक स्वतंत्र दशन है। कारण, उन्होंने स्पष्ट कहा है कि छायावाद मूलतः भारतीय अद्वैतवाद का ही प्रोत्साहन है।<sup>२</sup> वास्तव में भारतवर्ष में सर्वात्मवाद का नाम से कभी भी किसी स्वतंत्र दशन की सृष्टि नहीं हुई। भारतीय दशन में सर्वात्मवाद अद्वैतवाद का ही एक विशिष्ट रूप में स्वीकृत होता आया है। सम्भवतः इसीसे आचार्य शुक्ल ने उसे 'व्याप्त' का पुराना रूप<sup>३</sup> कहा है। सर्वात्मवाद की परिभाषा करते हुए उन्होंने बताया है कि सर्ववाद का अभिप्राय यह है कि व्यक्ता श्रुत, मूर्तामूर्त विचरित जो युक्त है सब ब्रह्म ही है। इस पुराने वाद के अनुसार चतुर्विध रूप में हमारे सामने है उस रूप में भी ब्रह्म ही का प्रसार है।<sup>४</sup>

जहाँ तक अगत का ब्रह्मत्व होने का प्रश्न है, व्याप्त दशन और सर्वात्मवाद में कोई भेद नहीं है। वदन्त दशन की संक्षेपित ब्रह्म,<sup>५</sup> ईशावास्यनिघण्टु

१ डा० नगेन्द्र, विचार और अनुभूति, १९४१, पृ० ५६

२ डा० नगेन्द्र, आधुनिक हिन्दी कविता की मूल्य प्रवर्तिका, प्रथम बार, पृ० १२

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काव्य में रहस्यवाद, प्रथम संस्करण, पृ० १२८

४ वही, पृ० १२८

५ छा० उ०, १.१४.१

६ ईशावास्यनिघण्टु, १

आदि श्रुतियाँ जगत को ब्रह्मरूप प्रमाणित करती हैं। किंतु वेदा त जगत को ब्रह्मरूप मानते हुए भी, ब्रह्म को जगत तक ही सीमित नहीं रखता। वेद त का ईश्वर विश्वरूप होते हुए भी विश्वातीत है।<sup>1</sup> यही पर वेदांत अथवा अद्वैत दर्शन सर्वात्मवाद से परकर अथवा भिन्न हो जाता है। सर्वात्मवाद जगत को ईश्वर रूप मानने हुए भी ईश्वर की विश्वातीतता को स्वीकार नहीं करता। ईश्वर के विश्वातीत स्वरूप को न तो उसमें कोई कल्पना ही मिलती है और न स्थापना ही।

भारतीय अद्वैतवाद का मुख्यतः शांकर वेदांत अथवा अद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है जगत को माया अथवा मिथ्या प्रमाणित करता है। किंतु सर्वात्मवाद में जगत माया अथवा मिथ्या न होकर सबकाल और सबदशा में सत्यरूप है। अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद को दृष्टि में रखकर पाल ग्रहसन ने अद्वैतवाद की परिभाषा में आत्मतत्त्व को सत्य और प्रकृति (जगत) को माया बताया है तथा सर्वात्मवाद की परिभाषा में आत्मतत्त्व की सत्यता के साथ ही जगत को भी सत्य कहा है।<sup>2</sup> अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद के कारण टेनिसन ने अपने अद्वैतमूलक भावों को 'डायर पथिइज्म' के नाम से अभिव्यक्त किया है।<sup>3</sup> अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इस भेद के उप

१ सहस्रगोपां पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात ।

स भूमि विश्वतो वत्वात्पतिष्ठन्नात् गुलम ॥—ऋग्वेद १०.६०।१

२ Pantheism--The religious belief or philosophical theory that God and the universe are identical (implying a denial of the personality and transcendence of God) the doctrine that *God is everything and everything is God*

James Murray A New English Dictionary of Historical Principles Vol VII P 430

३ Idealism--The atma is the sole reality with the knowledge of it all is known there is no plurality no change Nature which presents the appearance of plurality and change is a mere illusion

Pantheism--The universe is real and yet the atma is the sole reality for the atma is the entire universe

Paul Deussen The Philosophy of the Upanishads p 40

४ The Sun the moon the stars the seas the hills and the plains Are not these O Soul, the Vision of Him who reigns?

रान्त भारतीय विचारधारा के प्रतिकूल पाश्चात्य विचारधारा में सर्वात्मवाद के सिद्धांत की आचारगत एवं आध्यात्मिक अनाचार का प्रख भी बताया गया है।<sup>1</sup> छायावाद के कवियों ने औपनिषदिक अद्वैतवाद जिसमें सर्वात्मवाद भी सम्मिलित है, का साथ साथ अंगरेजी कवियों बडसवथ, टेनिसन आदि की सर्वोत्तम भावनाओं से भी प्रेरणा प्राप्त की है अतः यहाँ पर सर्वात्मवाद के दार्शनिक पक्ष का सम्यक विवेचन कर लेना समीचीन होगा।

### सर्वात्मवाद (पैनथिइज्म)

सर्वात्मवाद अंगरेजी शब्द पैनथिइज्म का अनुवाक अथवा पर्याय है। पैनथिइज्म का शाब्दिक अर्थ है—पन—(सब), थीथोज—(ईश्वर), अर्थात् सब कुछ ईश्वर है।<sup>2</sup> इस सिद्धांत के अनुसार ईश्वर और जगत अभिन्न और अविद्यो-य ( Inseparable ) है—ईश्वर ही विश्व और विश्व ही ईश्वर है। इसमें एकात्मवाद ( Monism ) और नियतिवाद ( Determinism ) दोनों का होना अनिवार्य माना गया है।<sup>3</sup> परम तत्त्व एक है इस दृष्टि से वह एकात्मवादी है और ईश्वर के लिए विश्व का होना अनिवार्य है इस दृष्टि से वह नियतिवादी है।

Speak to Him thou for He hears and Spirit with Spirit can meet—Closer in He than breathing and nearer than hands and feet, God is law say the wise O Soul and let us rejoice And the ear of man cannot hear and the eye of men cannot see But if we could see and hear thus Vision were it not He? Hallam, Lord Tennyson The Works of Tennyson 1913 P 239

- 1 The conception of Nature as being a direct expression of the Divine character, is responsible for the moral and spiritual perversions that are everywhere associated with polytheistic or pantheistic Nature worship  
E Herman The Meaning and Value of Mysticism 3rd Edition p 231
- 2 Pantheism ( Pan, 'all' and theos, God ), the name given to that system of speculation, which in its spiritual form identifies the universe with God Chambers's Encyclopaedia Vol VII 1926 p 732
- 3 In order that there may be pantheism monism and determinism must be combined  
Flint Anti Theistic Theories p 336



वादि श्रुतिगो जगत को ब्रह्मरूप प्रमाणित करती हैं । किंतु वेदा त जगत को ब्रह्मरूप मानते हुए भी, ब्रह्म को जगत तक ही सीमित नहीं रखता । वेदा त का ईश्वर विश्वरूप होते हुए भी विश्वातीत है ।<sup>१</sup> यही पर वेदा त अथवा अद्वैत दर्शन सर्वात्मवाद म पथक अथवा भिन्न हो जाता है । सर्वात्मवाद जगत को ईश्वर रूप मानते हुए भी ईश्वर की विश्वातीतता को स्वीकार नहीं करता । ईश्वर के विश्वातीत स्वरूप को न तो उसम कोई कल्पना ही मिलती है और न स्थापना ही ।

भारतीय अद्वैतवाद जो मुख्यतः साकर वेदा त अथवा अद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है जगत को माया अथवा मिथ्या प्रमाणित करता है । किंतु सर्वात्मवाद मे जगत माया अथवा मिथ्या न होकर सवकाल और सबदगा म मान सत्यरूप है । अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद को दृष्टि म रखकर पाल धायसन ने अद्वैतवाद की परिभाषा म आत्मतत्त्व को सत्य और प्रकृति (जगत) को माया बताया है तथा सर्वात्मवाद की परिभाषा म आत्मतत्त्व की सत्यता के साथ ही जगत का भी सत्य कहा है ।<sup>२</sup> अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद के कारण टेनिसन ने अपने अद्वैतमूलक भाषा को डायर पविशज्म के नाम से अभिव्यक्त किया है ।<sup>३</sup> अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इस भेद के उप

१ सप्तगीर्वा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात ।

स भूमि विश्वतो वत्वात्यतिष्ठन्नात् गुणम ॥—ऋग्वेद १ ६०।१

2 Pantheism--The religious belief or philosophical theory that God and the universe are identical ( implying a denial of the personality and transcendence of God the doctrine that God is everything and everything is God

James Murray A New English Dictionary of Historical Principles Vol VII P 430

3 Idealiam--The atma is the sole reality with the knowledge of it all is known there is no plurality no change Nature which presents the appearance of plurality and change is a mere illusion

Pantheism--The universe is real and yet the atma is the sole reality for the atma is the entire universe

Paul Deisson The Philosophy of the Upanishads p 40j

4 The Sun the moon the stars the seas the hills and the plains Are not these O Soul the Vision of Him who reigns?

रात भारतीय विचारधारा के प्रतिकूल दिशाधारा में सर्वात्मवाद व सिद्धांत को आचारगत एवं व्यापारिक उत्पादन का प्रेरक भी बताया गया है।<sup>1</sup> छायावाद के कवियों ने आधुनिक श्रद्धावादी जिनमें सर्वात्मवाद भी सम्मिलित है क साथ साथ अंग्रेजी कवियों वगैरह, अतिरिक्त आत्मीयता की सर्वात्मवादी भावनाओं से भी प्रेरणा प्राप्त की है अतः यहाँ पर सर्वात्मवाद व सामाजिक पक्ष का सम्यक् विवेचन कर लेना समीचीन दृष्टांत है।

### सर्वात्मवाद (पन्थिइज्म)

सर्वात्मवाद अंग्रेजी शब्द पन्थिइज्म का अनुवाद अथवा पर्याय है। पन्थिइज्म का शाब्दिक अर्थ है—एक—(सब), धीयोज—(ईश्वर), अर्थात् सब कुछ ईश्वर है। इस सिद्धांत के अनुसार ईश्वर और जगत अभिन्न और अवियोज्य ( Inseparable ) हैं—ईश्वर ही विश्व और विश्व ही ईश्वर है। इसमें एकात्मवाद ( Monism ) और नियतिवाद ( Determinism ) दोनों का होना अनिवार्य माना गया है।<sup>2</sup> परम तत्त्व एक है इस दृष्टि से यह एकात्मवादी है और ईश्वर के लिए विश्व का होना अनिवार्य है, इस दृष्टि से यह नियतिवादी है।

Speak to Him thou for He hears and Spirit with Spirit can meet—Closer in He than breathing and nearer than hands and feet God is law say the wise O Soul, and let us rejoice And the ear of man cannot hear and the eye of men cannot see But if we could see and hear this Vision were it not He? Hallam Lord Tennyson The Works of Tennyson 1913 P 239

- 1 The conception of Nature as being a direct expression of the Divine character is responsible for the moral and spiritual perversions that are everywhere associated with polytheistic or pantheistic Nature worship  
E Herman Tn. Meaning and Value of Mysticism 3rd Edition p 231
- 2 Pantheism ( Pan 'all, and theos God ), the name given to that system of speculation which in its spiritual form identifies the universe with God Chambers's Encyclopaedia Vol VII 1926 p 732
- 3 In order that there may be pantheism monism and determinism must be combined  
Flint Anti Theistic Theories p 336

आदि मुनियों जगत को ब्रह्मरूप प्रमाणित करती हैं । किंतु वेदांत जगत को ब्रह्मरूप मानते हुए भी ब्रह्म को जगत तक ही सीमित नहीं रखता । वेदांत का ईश्वर विश्वरूप होते हुए भी विश्वातीत है ।<sup>१</sup> यही पर वेदांत अथवा अद्वैत दर्शन सर्वात्मवाद से पथक अथवा भिन्न हो जाता है । सर्वात्मवाद जगत को ईश्वर रूप मानते हुए भी ईश्वर की विश्वातीतता को स्वीकार नहीं करता ।<sup>२</sup> ईश्वर के विश्वातीत स्वरूप को न तो उसमें कोई कल्पना ही मिलती है और न स्थापना ही ।

भारतीय अद्वैतवाद जो मुख्यतः सांकर वेदांत अथवा अद्वैत के नाम से प्रसिद्ध है जगत को माया अथवा मिथ्या प्रमाणित करता है । किंतु सर्वात्मवाद में जगत माया अथवा मिथ्या न होकर सच जगत् और सचदत्ता में मात्र मत्पररूप है । अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद को दृष्टि में रखकर पाल् ग्रहसन ने अद्वैतवाद की परिभाषा में आत्मतत्त्व की सत्य और प्रकृति (जगत) को माया बताया है तथा सर्वात्मवाद की परिभाषा में आत्मतत्त्व की सत्यता के साथ ही जगत को भी सत्य कहा है ।<sup>३</sup> अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इसी भेद के कारण टेलिसन ने अपना अद्वैतमूलक भावों को डायर पथिइज्म के नाम से अभिव्यक्त किया है ।<sup>४</sup> अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद के इस भेद के उप

१ स०म०गीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात ।

स भूमि विश्वतो वत्वात्पतिष्ठन्नात् गुलम ॥—ऋग्वेद १० ६०।१

२ Pantheism—The religious belief or philosophical theory that God and the universe are identical (implying a denial of the personality and transcendence of God) the doctrine that God is everything and everything is God

James Murray A New English Dictionary of Historical Principles Vol VII P 439

३ Idealism—The atma is the sole reality with the knowledge of it all is known there is no plurality no change Nature which presents the appearance of plurality and change is a mere illusion

Pantheism—The universe is real and yet the atma is the sole reality for the atma is the entire universe

Paul Detsson The Philosophy of the Upanishads p 403

४ The Sun the moon the stars the seas the hills and the plains Are not these O Soul, the Vision of Him who reigns?

राज्य भारतीय विचारधारा के प्रतिष्ठित पञ्चाङ्ग विचारधारा के अनुसार  
के सिद्धांत को आचारगत एवं आध्यात्मिक अन्वेषण का प्रकट रूप दिया  
गया है।<sup>1</sup> छायावाणी के कवियों ने धार्मिक दृष्टिकोण से अनेक  
भी सम्मिलित है, क साथ साथ अंगरेजी कवियों के अनेक दृष्टिकोण को भी  
समावेश्य भावनाओं से भा प्रेरणा प्राप्त का है अतः यहाँ पर अनेक  
दार्शनिक पक्ष का सम्यक् विवरण कर लेना समाधान होगा।

### सर्वात्मवाद (पॅनियिइज्म)

सर्वात्मवाद अंगरेजी में पॅनियिइज्म का अनुवाद होता है।  
पॅनियिइज्म का शाब्दिक अर्थ है—एक (एक) यात्रा—(एक), अर्थात्  
कुछ ईश्वर है।<sup>2</sup> इस सिद्धान्त के अनुसार एकर और अलग अलग  
अविद्योय ( Inseparable ) हैं—एक ही विश्व और विश्व ही ईश्वर है।  
इसमें एकात्मवाद ( Monism ) और नियतिवाद ( Determinism ) दोनों  
का होना अनिवार्य माना गया है।<sup>3</sup> परम तत्व एक है इस अर्थ में  
एकात्मवादी है और ईश्वर के लिए विश्व का होना अनिवार्य है, अर्थात्  
वह नियतिवादी है।

Speak to Him thou for He hears and Spirit with Spirit  
can meet—Closer in He than breathing and nearer than  
hands and feet God is law say the wise O Soul  
us rejoice And the ear of man cannot hear and the eye of  
men cannot see But if we could see and hear then  
were it not He? Hallam Lord Tennyson The Wreckers  
Tennyson 1913 P 239

- 1 The conception of Nature as being a direct  
and spiritual perversion that are everywhere as  
with polytheistic or pantheistic Nature worship  
E Herman Tennyson Meaning and Value of Mysticism  
Edition p 231
- 2 Pantheism ( Pan all and theos God ) the name  
to that system of speculation which in its spiritual  
identifies the universe with God Chambers's  
Encyclopaedia Vol VII 1926 p 732
- 3 In order that there may be pantheism monism and  
minism must be combined  
Flint Anti Theistic Theories p 336

यूरोपीय विचारधारा में सर्वात्मवाद के कई स्रोत बताये गये हैं, जिनमें दशन और धर्म प्रधान हैं। हीगल हनु अथवा प्रत्ययवादी है अतः उसके सर्वात्मवाद का आधार दशन है। शिनाजा धर्मपरायण है अतः उसका सर्वात्मवाद दार्शनिकता से ओत प्रोत होते हुए भी धर्म भावना प्रधान है। तीसरे ढग का सर्वात्मवाद का यमूलक सर्वात्मवाद है जिसका आधार कवि का प्रातिभान है।

सर्वात्मवादी प्रकृति की शक्ति एव नियमों को ईश्वर की अतः शक्ति की सात अभि यक्ति मानता है। वह इस नाम कात्मक शक्ति में सब विषय सब शक्ति का दशन करता है। पाश्चात्य सर्वात्मवाद की इस भा यता का आधार ईसाई आस्तिकवाद है जिसका अनुसार विश्व ईश्वर के अधीन है और ईश्वर उसमें अनुस्यूत है।<sup>1</sup>

सर्वात्मवाद की प्रायः सभी परिभाषाएँ ईश्वर और विश्व में एकता स्थापित करती हैं। वाटरलण्ड ने अनुभार ईश्वर और प्रकृति अथवा ईश्वर और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की अभिन्न एकता का नाम सर्वात्मवाद है यहाँ तक कि उसके मत में मानवात्मा भी ईश्वर का रूपभेद मात्र है।<sup>2</sup> जेम्स हेस्टिंग्स के निकट सर्वात्मवाद से अभिप्राय उस सिद्धांत से है जिसके अनुसार सत्ता तात्विक रूप में एक है साथ ही चेतन और अचेतन भी।<sup>3</sup> विलियम फ्लेमिंग के दशन में सर्वात्मवाद जीवात्मा और परमात्मा के अनिर्वाय एव साशयतः सृष्टिस्तित्व का सिद्धांत है। येनर द्वारा सम्पादित रहस्यवाद का कोश का अनुभार सर्वात्म

- 1 To regard natural forces as the finite exercise of infinite power or natural laws as the finite expression of infinite wisdom is only to assert such a dependence of the world on God and such an immanence of God in the world as are consistent with Christian theism  
Encyclopaedia of Religion and Ethics Edited by James Hastings Vol IX 1917 p 612
- 2 It supposes God and nature or God and the whole universe to one and the same substance one universal being in so much that men's souls are only modifications of the Divine substance Waterland Works Vol VIII p 81
- 3 By pantheism we mean that doctrine which conceives reality as one in essence and form and thinks of this unity somehow rational or divine  
( Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol IX p 613 )

वाद वह सिद्धांत है जिसमें सभी वस्तुएँ एक ही परम तत्त्व के प्रकार अवयव आकृति अथवा विस्तार मानी गई हैं।<sup>1</sup>

उपयुक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि प्रायः सभी सर्वात्मवादी विचारक इस बात में सहमत हैं कि प्रकृति और परमात्मा मूलतः एक हैं। साथ ही ईश्वर एक ऐसी सत्ता है जो जगत् में पृथक् और उसमें परे नहीं है प्रत्युत उसी में अनुस्यूत है। वास्तविक जगत् इश्वर की आत्माभि-पत्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सृष्टि त्रम काल निरपेक्ष अथवा चिरतन है।

सर्वात्मवाद आत्मा और परमात्मा के सहअस्तित्व का तो स्वीकार करता है किन्तु उसमें अभेद स्थापित नहीं करता। अतः इस दृष्टि से वह भारतीय अतत्वात् से जिसके अनुसार आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है,<sup>2</sup> भिन्न है। सर्वात्मवाद आत्मा की परमात्मा का अंग मानता है और अंग के अंगी में विलयन पर ध्यान देता है। उसका कथन है कि केवल ईश्वर ही सत् और चित्त है, अतः मनुष्य को इस लोक में अपने भीतर की पवित्र धारा के प्रवाह को मंद नहीं पड़ने देना चाहिए। हमें अतिरिक्त उसे और कुछ नहीं करना है। हाँ यदि सम्भव हो तो उसे अपने स्व को भी उसी में विलीन कर देना चाहिए।<sup>3</sup>

उपयुक्त विवेचन के आधार पर सर्वात्मवाद की निम्न विशेषताएँ हो जाती हैं—

- (१) जगत् ईश्वरमय है, और ईश्वर ही जगत् है।
- (२) ईश्वर सर्वानुस्यूत है, किन्तु विरवालीत नहीं है।
- (३) ईश्वर निगुण और चिरतन है।
- (४) ईश्वर अंगी है और जगत् व समस्त पदार्थ उसके अंग मात्र हैं।

1 Pantheism The doctrine that reality comprises a single being of which things are made moments, members appearances or projections  
Dictionary of Mysticism, edited by Frank Gaynor, p 135

२ अयमात्मा ब्रह्म १—ब० उ० २।५।१६

वह ब्रह्माग्नि १—ब० उ० १।५।१०

3 God alone remains real and living Man has nothing else to do in this world than to let the torrent of the Divine life flow within him and lose himself in it he can  
M. Emile Sausset, Modern Pantheism, 1813, P 8



में प्रकृति की नाना भाव भंगिमा को एक ही ब्रह्म (हरि की) व्यापक छवि के रूप में विभक्त किया है। जिस प्रकार हरित बौद्ध की आँसुगी उसी एक के विविध रंगों से सतरंगी आभा धारण करता है उसी प्रकार यह ब्राह्म जगत भी उसी एक की अनेक रूपात्मक अभिव्यक्ति है। निखिल सृष्टि के भीतर से परब्रह्म परमेश्वर की वही ही नाना गुरों में प्रतिफल बजती रहती है। आधुनिक युग में विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का काव्य भी वस्तुतः के सर्ववाद को ही दर्शाकरके उपस्थित हुआ।<sup>१</sup> असीम के प्रति अभूतपूर्व जिज्ञासा का भाव उनके काव्य का मौलिक स्वर है। अतः उक्त आधार पर हम कह सकते हैं कि छायावादी द्वारा अपनी साहित्यिक परम्परा से प्राप्त सर्वात्मवाद के पक्ष को सौम्य चेतना के अनुरूप हृदयगत कर लेना अत्यन्त स्वाभाविक था।

यहाँ पर हम उस लोक चेतना अथवा परिस्थितियों का भी थोड़ा परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए जिनमें छायावाद-काव्य की सर्वात्मवादी भावना का विगम प्रेरणा मिति। छायावाद-युग एक उसकी पूवपीठिका में भारत का प्रायः सभी महान् चिन्तक दार्शनिक वैज्ञानिक एवं कवि युग की आवश्यकताओं के अनुरूप वैदिक साहित्य की नवीन व्याख्या करने में सलग्न था। भारत का शरीर पराधीनता के पाग में जकड़ा अवश्य था किन्तु उसकी आत्मा ने हार स्वीकार नहीं की थी। पश्चिम ने जब उसके भौतिक शरीर पर अधिकार जमाने के पश्चात् उसकी सांस्कृतिक निधि पर भी हाथ लगाया और उसे नष्ट भ्रष्ट कर अपने सांस्कृतिक मूर्खता की गरिमा भारत की आध्यात्मिक भूमि में स्थापित करने का दुष्साहस किया तब बद्ध भारत की उदबुद्ध आत्मा विद्रोह कर उठी, और स्वामी दयानन्द विवेकानन्द तिलक अरविन्द गांधी आदि युग विभूतियों के रूप में स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा अपने सांस्कृतिक आत्माओं की रक्षा के लिए सतत सन्नग हो गई।

उपरोक्तभी गताङ्गी में भारत की दृष्टि योद्धा के अघाघुघ अनुकरण की ओर थी जिनमें कालान्तर में भारत का सबस्व लट जाने की आशंका

१. ये प्रथम प्राण

एकद्वे वेग जगाइए गापन सचारे

रस रसधार

मानव गिराम आर सहर ठाँगे

एकद्वे सन्तर छँ उमपेर अणुन अणन ।

—गानात्रिजि



थी ।<sup>१</sup> अतः मुग की उभरती हुई चेतना द्वारा उसकी तीव्र प्रतिबिम्बिता अवश्य प्रभावी थी । भारतीय मस्कृति के पोषक स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य सभ्यता के भोगवान् को भारत के लिए अत्यन्त अशुभ एवं अहितकर सिद्ध करते हुए उसके समयका वो इन श्लोकों में फटकारा—

‘ यदि कोई भारतवर्ष में भोग सुख को ही परम पुरुषार्थ कहकर प्रचार करे, यदि कोई जड़-जगत को ही भारतवासियों का ईश्वर कहकर प्रचार करे तो वह मिथ्यावादी है । पाश्चात्य सभ्यता में चाहे कितनी ही चमक दमक क्या न हो वह चाहे कितनी ही अदभुत व्यापार करन में समय क्यों न हो मैं हम सभा के बीच खड़ा होकर उनसे साफ साफ कह देता हूँ कि यह सब कवन भ्रान्ति और मिथ्या है । एक मात्र ईश्वर ही सत्य है एक मात्र आत्मा ही सत्य है, एक मात्र धर्म ही सत्य है । इसी सत्य को पकड़ रहो ।<sup>२</sup> स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय जनता को चेतावनी दत्त हुए यह भी कहा था—

यदि तुम धर्म को छोड़कर पाश्चात्य जाति की ‘गर्वान्’ सबसब सभ्यता के पीछे दौड़ोग तो तीन पीढ़ियों में तुम लोगों का विनाश निश्चित है ।<sup>३</sup> श्री अरविन्द ने भी अन्तीसवीं शताब्दी के भारत द्वारा यारव की प्रत्यक्ष क्षति में अष्टपानुकरण नाति का सन्दर्भ किया और भारत की सावर्जनिक उन्नति के लिए धार्मिक चेतना एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण को अत्यन्त आवश्यक ठहराया ।<sup>४</sup> उन्होंने भारतवासियों से सानुसंधि कहा कि ईश्वर की यत्न इच्छा है

1 The nineteenth century in India was imitative self forgetful artificial. It aimed at a successful reproduction of Europe in India forgetting the deep saying of the Geeta— Better the law of one's own being though it be badly done, than an alien Dharma well followed death in one's own Dharma is better, it is a dangerous thing to follow the law of another's nature (Sri Aurobindo—Awakening Soul of India—from speeches and writings of Eminent Indians edited by M M Bhattacharya M A Ph D P 117)

२ विवेकानन्द, स्वाधीन भारत ! जय हो ! पृ० ८-९

३ वही पृ० १४

4 Religion and politics the two most effective and vital expressions of the nation's self having been nationalised the rest will follow in due course. The needs of our religion and political life are now vital and real forces, and it is

कि हम योरप का बजाय अपना आत्मा का पहचानें । हम अपन ही भारत जीवन गति तथा जीवन स्रोत ढूढना होगा । भविष्य की उन्नति के लिए हम अपने अज्ञात को पहचानना और तदनुकूल आचरण करना होगा । अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुए हम भारत की प्रकृति एवं गान्धत जीवन के नियमानुकूल अपना सवाङ्गीण विकास करना होगा ।<sup>१</sup> इस प्रकार हम दखत है कि छायावाद के जन्म काल में देश में पारवात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रति अनास्था का भाव पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न हो चुका था और जनता अपने उन्नयन के लिए अतीत की ओर आगा भरी दृष्टि से दगने लग गई थी ।

पश्चिम का अपनी वनानिक उन्नति पर गव था । उमन प्रकृति को बनी कर भौतिक समृद्धि का यग गान गाया था ।<sup>२</sup> उसा के आधारभूत उसने बढ-बढ साम्राज्यो एवं उपनिवेशो की स्थापना की थी । कि तु प्रकृति के पालने में पली भारत की संस्कृति उससे निवाचन भिन्न थी । उसन भौतिकता का अति प्रमण कर चिरतन सत्य की खोज की थी । अन जहाँ पश्चिम में भौतिक समृद्धि के लिए प्रकृति को प्रतिपक्षी ( Rival ) के रूप में स्था वहाँ भारत ने

these needs which will reconstruct our society recreate and remould our industrial and commercial life, and found a new and victorious art literature science and philosophy which will be not European but Indian

(Sri Aurobindo—Awakening Soul of India—from Speeches and writings of Eminent Indians edited by Dr M M Bhattacharya P 115

- 1 We say to the nations It is God's will that we should be ourselves and not Europe We must return and seek the sources of life and strength within ourselves We must know our past and recover it for the purposes of our future Our business is to realise ourselves first and to mould everything to the law of India's eternal life and nature

( Sri Aurobindo Awakening Soul of India from speeches and writings of Eminent Indians edited by Dr M M Bhattacharya P 115

- २ प्रकृत दक्षि तुमग यत्रा स गव की छीनी ।

गणप कर जीवनी बना दी अत्रर गाना ।

प्रश। बामायना, त्रितीय संस्करण प० २०

उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने में सुख एवं आनन्द का अनुभव किया। प्रतिभा सम्पन्न कृषिमा द्वारा जिम अध्यापिका का प्रवर्तन हुआ वह अपने पवहार पक्ष में सम वय एवं मानवतावाद की उन्नत भावनाओं से सिक्त है। अतः वह विद्वान् मया स साध प्रेरणा ग्रहण करने वाल छायावाद युग में लोगों के भीतर समस्त भूतव्यक्त क प्रति साहचर्य की भावना जन जन जाग्रत हो रही थी।

छायावाद-युग में राजनीतिक आ दालना में बहुत जोर पकड़ लिया था। पराधीन भारत को स्वतन्त्रता प्राप्ति एवं संस्कृति की रक्षा के हेतु एकता की निता त आवश्यकता थी। उसका मूल दगन उसे अपनी पुण्यभूमि में ही मिल गया। वह मूल दगन था उसका अनुभव सिद्ध अद्वैताधित परम्परागत सर्वात्म वाद। उसी की पंछाधार बनाकर भारत ने युग युग तक विश्व प्रेम और विश्व व भुत्व का पाठ पढाया था। उसी को पुन स्वतन्त्रता के अभिलाषी भारत के मनापिमो ने दगन एकता की भावना जाग्रत करने के लिए अमोध मन्त्र के रूप में अपनाया। स्वामी विवकानन्द ने पा चात्य सभ्यता के विरोध के साथ माय वेदातिक अद्वैत के आवरण में व्यक्तवादी प्रवृत्ति का भी प्रोत्साहित किया था। वेदान्त के 'एक सत्' के आधार पर उन्होंने कहा था— जब मैं सोचता हूँ अहं ब्रह्मास्मि तब कबन मैं ही बतमान रहता हूँ मर अनिरिक्त और किसा का अस्तित्व नहीं रह जाता। यही बात औरों के विषय में भी है। अतएव प्रत्यक्ष ही वही पूण ब्रह्म तत्व है।<sup>१</sup> लोकमाय तिलक ने भी गीताधम के आधारभूत यह प्रतिपादित किया कि ज्ञान वह है जिसमें यह बात ज्ञात हा जाती है कि स्रष्टि के अनन्त व्यक्त पदार्थों में एक ही अग्र्यक्त मूल द्रव्य है।<sup>२</sup> बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में आय समाज का भी बडा जोर था। स्वामी दयानन्द ने अवतारवाद और मति पूजा का सण्डन करके वैदिक ब्रह्मवाद की स्थापना की थी। अतः आय समाज के प्रचार में जनता पौराणिक प्रभाव से निकल कर अवतारवाद की एक शीम उपासना के स्थान पर निराकार ब्रह्म की सावभोम भावना को अपना रही थी। महात्मा गांधी पर उपनिषद् गीता और राम-चरितमानस का गहरा प्रभाव था ही। सत्य और अहिंसा के साथ साथ उन्होंने जो मन्त्र धर्मों के साथ समान अधिकार यहाँ तक कि गन्तु के साथ भी मनीषूण

१ विवकानन्द विविध प्रसंग पृ० ६०

२ निरुक्त, गीता रहस्य, चारहवाँ संस्करण, आठवाँ प्रकरण, पृ० ३७०

व्यवहार का आदेश किया उसकी तरह में उपनिषदा के 'एक सत् का दार्शनिक सिद्धान्त ही काम कर रहा था।<sup>१</sup> सवात्मवाद के ही 'वावहारिक स्वरूप की महात्मा गांधी ने जनता जनादन की सेवा का केन्द्रबिन्दु बनाया और उसे राष्ट्र नीति में प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयोग किया। उहाँ दिना वैज्ञानिक जगत में भी एक अपूर्व घटना घटी। जहाँ पश्चिम के वैज्ञानिक भौतिक पदार्थों को भिन्न-भिन्न शाखाओं ( रसायन विज्ञान प्राणि विज्ञान वनस्पति विज्ञान आदि ) में विभक्त कर विशेष अध्ययन ( Specialisation ) पर जोर दे रहे थे, वहाँ भारत का आत्मा प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बोस के रूप में अपने गणित आध्यात्मिक सत्य चित्त में ही ससार को प्रयोगों द्वारा सिद्ध करने में सफल हुई। सर जगदीश चन्द्र बोस ने अपने स्व निर्मित यंत्रों द्वारा जड़ वनस्पति एवं प्राणि जगत् में एक ही चेतन मत्ता के अस्तित्व को प्रमाणित कर ससार को चकित कर दिया।<sup>२</sup> फिर तो भारत का हृदय अपने दार्शनिक

१ (क) अगर इस्लाम के लिए ही सूदा को तथा उसके पगम्बरों की अनन्त परम्परा का मानना काफ़ी हो तो हम सब मुसलमान हैं, इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं।

देसिए— हिंदी नवजीवन पत्रिका, २८-९-१९४४, पृ० ५४

(ख) ईश्वर निरचय ही एक है। वह अगम, अगोचर और मानवजाति के बहू-जन-समाज के लिए अपात है। वह सबव्यापी है। वह बिना भाँषा के दसठा है बिना कानों के सुनता है, वह निराकार और अभेद है। आदि

देसिए, हिंदी नवजीवन पत्रिका, २ -९-१९४२, पृ० ५३

2 Indian through her habit of mind is peculiarly fitted to realise the idea of unity, and to see in the phenomenal world an orderly universe. This trend of thought led me unconsciously to the dividing frontiers of different science and shaped the course of my work in its constant alternations of the theoretical and the practical, of the investigation of the inorganic world and that of organic life and its multifarious activities of growth of movement and even of sensation. This series of investigation has fully established the fundamental identity of life relations in plant and animal seen even in a similar periodic inextensibility in both corresponding to what we call sleep, and in death spasm, which

सत्य की भौतिक विज्ञान द्वारा भी पुष्टि होते देख एक अलौकिक आनंद एक कौतूहल से नाच उठा। इस प्रकार छायावाद-युग में दर्शन का संनवाद धार्मिक एक राष्ट्रीय पुनर्जागरण तथा भूत विज्ञान का योग पाकर प्रावहारिक जीवन के प्रत्येक क्षण में विशय रूप से उतर आया।

बालक एक दीर्घ विभाग की, जिसमें भावना की एकता पाई जाती है युग के नाम से अभिहित किया जाता है। एक ही भावना के वायुमण्डल में श्वास लेने के कारण युग जावन के आंतरिक अनुभवा की अभिव्यक्ति के साधना-गान-साहित्य कला आदि-में समान ही प्ररणा होती है। किसी युग विज्ञान में लोगों के धार्मिक विश्वास, नतिक दृष्टिकोण आचार विचार और जावन दर्शन लगभग समान ही होते हैं जिसके परिणाम स्वरूप जन समुदाय सामंजस्य के मंगलमय सूत्र में बंधा रहता है। वास्तव में व्यष्टिगत चेतना मग की समष्टिगत चेतना का ही अंग हानी है। इस दृष्टि से देखने पर छायावाद में समस्त भूतो की समष्टि प्रकृति में चेतना का आरोप और उससे तात्कालिक की भावना युग की सामूहिक चेतना जो निश्चयतः सर्वात्मवादी (समवयवादी)<sup>१</sup> थी की ही छायावादी प्रतीत होगी। छायावादो कवि का यत्नित जीवन चाह कसा भी रहा हो, किन्तु जीवन के जिन मूल्यों को उसने अपने काय में बाणी दी वह युग की सर्वात्मवादी, आस्तिक एवं स्वातंत्र्य भावना की ही प्रतिध्वनित करती है।

ईसा की १९ वीं शताब्दी में रहस्यात्मक कविता का जो पुनरुत्थान योरप के कई प्रदेशों में हुआ उसमें संनवाद (Pantheism) का-ग्रह और जगत का एकता का-भी बहुत कुछ आनास रहा। वहाँ उसकी ओर प्रवृत्ति स्वातंत्र्य और नाक सत्तात्मक भावा के प्रचार के साथ ही माय लिये पढ़ने लगी। स्वातंत्र्य का वहाँ भारी उपामक अगरेज कवि शाली में उस प्रकार का संनवाद की शक्ति पाई जाती है। आयरलैंड में स्वतंत्रता की भाषण पुनार क

takes place in the plant as in the animal (The Voice of life by J. C. Bose) from speeches and Writings of Eminent Indians edited by Dr. M. M. Bhattacharya p. 8-9

- १ सत्ति के विद्वत्करण जो व्यस्त विज्ञान बिखरे हैं हो निरुपाय, समवयव उसका करे समस्त विज्ञानिनी मानवता ही जाय।

वीथ ईटस (Yeats) को रहस्यमयी कवि वाणी भी सुनाई देती रही है। ठीक समय पर पहुंच कर हमारे यहाँ क कबीर भी यहाँ के मूर में सुर मिला जाय था। पश्चिम के समानोचका की समय में वहाँ क इस काव्यगत तत्ववा का सम्बन्ध प साकसत्तात्मक भावों क साथ है। इन भावों के प्रचार के साथ ही रघुल गोचर पत्थरों क स्थान पर सूक्ष्म अगाचर भावना (Abstractions) की प्रवृत्ति हुई और वना का-प्रसन्न में जाकर भठपीली और अरफूट भावनाओं तथा चित्रा क विधान क रूप में प्रकट हुई।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि योरप क रोमाण्टिक कविया और हिन्दी क छायावादी कविया क सवधानी दृष्टिकोण क मूल में स्वातन्त्र्य भावना अथवा लोवत्तात्मक भावा का विशेष हाथ रहा है। इस हम यो भी कह सकत हैं कि जिस प्रकार योरप में साकसत्तात्मक भावों के आधारभूत सवात्मवाद न काव्य में स्थान पा लिया उसी प्रकार अध्यात्म समवित स्वातन्त्र्य भावना से प्रेरणा प्राप्त कर छायावाद क कवि न सर्वात्मवादा भावनाओं और विचारों का युग प्रवृत्ति क अनुरूप अपनी रचनाओं में स्थान दे लिया। स्वातन्त्र्य भावना की इस पृष्ठभूमि में उसने शला बहस्वध, शार्डनिंग आदि अंगरेज कविया की सर्वात्मवादी भावनाओं का स्वागत अथवा समादर किया और यत्र-तत्र जान अनजान उन्हें अपनी भावना का अंग बना लिया। इस प्रकार छायावादा सर्वात्मवाद में भारतीय परम्परागत अद्वैतपरक सर्वात्मवा का ही विकास मिलता है। पाश्चात्य सर्वात्मवाद का प्रभाव प्रायः शला अथवा अभि वक्ति तक ही सीमित है। कारण पाश्चात्य सववाद में कोई ऐसा विनिष्ट तत्व नहीं है जो भारतीय अद्वैतवाद क किसी-न किसी रूप में व्यक्त न हुआ हो।

१ वाचाय रामचन्द्रशुक्ल, जायसी-प्रभावली, तृतीय संस्करण भूमिका, पृ० १५०

The passion for intellectual abstractions, when transferred to literature of imagination becomes a passion for what is grandiose and vague in sentiment and in imagery

The great laureate of European democracy Victor Hugo exhibits at once the democratic love of abstract ideas the democratic delight in what is grandiose (as well as what is grand) in sentiment, and the democratic tendency towards a poetical pantheism

—Dowdell's *New Studies in Literature* (Introduction) quoted by Pt Ram Chandra Shukla in *Jayasi Granthawali* (Introduction) p 152-53

छायावादा का कवि सस्कार से ही भारतीय अद्वैताग्रित सर्वात्मवाद के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान था । वह किसी न किसी रूप में भारत की किमी न किसी अन्तवादी परम्परा अथवा धारा से प्रभावित था । प्रसाद जी पर उपनिषदों का प्रभाव तो था ही प्रत्यभिज्ञा दर्शन भी जिससे उ होने समरसता और आनन्दवाद के सिद्धांत ग्रहण किये अद्वैतवादी दर्शन ही है । निराला पर विवेकानन्द के "यावद्धारिक अद्वैतवादा" का प्रचर प्रभाव है । पत और महादेवी ने भी वेदांत दर्शन का गहन अध्ययन किया है । पत जी के मत में ईशानस्य मन्द सब यत्किञ्च जगत्या जगत के मनन मात्र से ही जीवन क प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है और हृदय में जिनासा उठती है कि किस प्रकार इस क्षणभंगुर ससार के दर्पण में उस गावत के मुल का बिम्ब देखा जा सकता है ।<sup>१</sup> ससार के दर्पण में उस गावत के मुल का बिम्ब देखा जा सकता है ।<sup>२</sup> ससार छायावादा की मुख्य प्रवृत्ति है । इसी प्रकार छायावादा के कवि को दर्शन के ब्रह्म का ऋणी<sup>३</sup> घोषित करने वाली महादेवी जी के इस कथन से कि जब प्रकृति की अनेकरूपता में परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसे तारतम्य को खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके समीप हृदय में समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अणु एक अणु किञ्च व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा<sup>४</sup> से भी छायावाद काव्य के सर्वात्मवादी पक्ष की पुष्टि होती है । ईश्वराद्वयवाद के आधारभूत छायावादी रहस्यवाद को प्राकृतिक सौन्दर्य द्वारा अह (आत्मा) का रूढ (प्रकृति) से सम्बन्ध करने का सुन्दर प्रयत्न<sup>५</sup> वहकर प्रसाद जी ने भी प्रकारांतर से भारतीय अद्वैताग्रित सब वादा का ही समर्थन किया है ।

१ पत गद्य पद्य प्रथम सस्करण प० १७

२ मा । वह त्वि कव आयेगा जब मैं तेरी छवि देखूंगी

जिसका यह प्रतिबिम्ब पडा है

जग के निमल दर्पण में ?

पन्त धीणा ग्रथि त्ति यावत्ति १९४२ प० ३२

३ महादेवी वर्मा दीप गिता प्रथमावत्ति चि तन कं कृच्छ क्षण प० १३

४ महादेवी वर्मा यामा ततीय सस्करण, अपनी वात प० ८

५ प्रसाद, काव्य और कला, रहस्यवाद नीयक संख, प० ५९

हिन्दी कविता में सर्वात्मवाद का सोल बभी तीव्र और बभी मात्र गति में निरन्तर प्रवाहित होता आया है। सत्त पात्रय धारा में इसका तीव्रतम वेग हम देखते हैं। किन्तु वहाँ पर वह साधना अथवा भक्ति के परिवर्ण में ही व्यक्त हुआ है। अतः वह छयावाणी के प्रकृतिमूलक सर्वात्मवाद में बहुत कुछ भिन्न है। सत्ता और छायावाणी कविता के सर्वात्मवादी दृष्टिकोण में हम भेद का आचाम नन्दुलारे वात्रपयो न बह हा स्पष्ट दा नो में इस प्रकार व्यक्त किया है—

जहाँ पूर्ववर्ती भक्ति काव्य में जीवन का लौकिक और ध्यावहारिक पहलुओं की गौण स्थान देकर उनकी उपमा की गई थी वहाँ छायावाणी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य और सामयिक जीवन परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। इस दृष्टि से वह पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य की प्रकृति निरपगना और ससार मिथ्या की सङ्घातिक प्रतिप्रियाओं का विरोध भी है। छायावाद मानव जीवन-सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है। उन अर्थों की वृत्ति पर बलिदान नहीं कर देता।<sup>१</sup> परपरिण अध्यात्म प्रायः पुरुष स प्रकृति का ओर प्रवर्तित होता है—एक चेतन कन्द्र से नाना चेतन कन्द्रों का सृष्टि करना है। किन्तु छायावाणी काव्य प्रकृति की चेतना सत्ता में अनुप्राणित होकर पुरुष या आत्मा के अधिष्ठान में परिणत होता है। उसकी गति प्रकृति सपुरुष की ओर शून्य से भाव की ओर होती है। और इस दार्शनिक अनुभूति का अनुरूप काव्य बन्तु चयन करने में छायावाणी कविता ने प्रकृति का अथर्वश्रेष्ठ से यथार्थ सामग्री ग्रहण की है।<sup>२</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाणी सर्वात्मवाद का मूलाधार प्रकृति सौन्दर्य और उसके भीतर निहित रहस्य की प्रकृति ही है। वह उसकी धर्म साधना का पत्र न होकर उसकी वाच्य साधना अथवा सौन्दर्य अनुभूति का ही प्रतिफल है। नाम रूपात्मक जगत में तथा कल्पना भूमि में रमण अथवा विचरण करके ही छायावाणी के कवि ने सर्वात्मवाद का गन्तव्य को अपनाया है। व्यक्त जगत का आधार लेकर ही वह समष्टिगत चेतना एवं सूक्ष्मतम सौन्दर्य सत्ता का ओर उन्मूल हुआ था। इसी से छायावाणी की सर्वात्मवादी धारा में अतः जगत और अदृश्यगत का विकास तथा बहिरतर प्रान्तिता का प्रादुर्भाव ही है।<sup>३</sup>

१ आचाम नन्दुलारे वात्रपयो, आधुनिक आह्विय प्र.सं. ५० ३२०

२ आचाम नन्दुलारे वात्रपयो आधुनिक आह्विय प्र. ३० ५० ३२५

३ बहिरतर की मर्यादों का जगत् जीवन में कर परिणय  
 ऐहिक आधुनिक बन्धु स जगत् मगल ११ नि मशय ।

पत्र, स्वयं विरण, प्रथम मन्दरन, ५० २०



किन्तु रूढ़िगत अध्यात्म अथवा वगवग सिद्धांतों का प्रायः अभाव सा पाया जाता है।

छायावादी सर्वात्मवाद मुख्यतया प्रकृति से ही आघारित है, जो प्रकृति रहस्यवाद का ही एक पक्ष है अतः उसका विवेचन हमने आगे रहस्यवाद के भीतर प्रकृति रहस्यवाद के अंतर्गत किया है। अतः यहाँ पर छायावादी कविता में अंगरेजी कविता अथवा पाश्चात्य सर्वात्मवाद के प्रभाव को ही स्पष्ट कर देना अभीष्ट है।

जसा कि हम ऊपर कह आये हैं कि पाश्चात्य सर्वात्मवाद में कोई ऐसा तत्व नहीं है जो भारतीय अद्वैतवाद के किसी एक किंवा रूप को परिधि में न आ जाय। अतः जहाँ तक सिद्धांत पक्ष का सम्बन्ध है छायावादी कवियों पर पाश्चात्य सर्वात्मवाद का प्रभाव नगण्य सा ही है। हाँ भाव अथवा विचार-साम्य की दृष्टि से उसके प्रभाव का छायावाद के कवियों विशेषकर पं. जी ने अवश्य स्वीकार किया है। इसी से उ. होने कहा है कि विश्ववाद सर्वात्मवाद आदि का प्रभाव छायावादी कवियों में अधिकतर कबाल रवींद्र से (जो भारतीय औपनिषदिक तथा कबीर की ही परम्परा में आते हैं) और जगत शशी आदि अंगरेजी कवियों से ग्रहण किया।<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में पं. जी ने लिखा है कि मैंने १९ वीं शती के अंगरेजी कवियों में शशी वडस्वय कीटस और टनिसन का विचार अध्ययन किया है और मैं कवि मुझे अत्यन्त प्रिय भी लगते हैं। किन्तु इन सब कवियों में कीटस मेरा सबसे प्रिय अंगरेजी कवि रहा है और उसका ओडस और मॉनेटस का मेरी कविता पर खूब प्रभाव पड़ा है। कीटस और टनिसन का काव्य ही मुझे शान्ति, चमन और शान्ति से ही का बाध हुआ। शीला पत्तनव गुजरात काल की मेरी कविता का कलात्मक पक्ष इन दो कवियों से प्रभावित हुआ है। वडस्वय की कविताएँ विशेषकर उनकी इम्मारटलिटी ओडस का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। शशी भी मुझे प्रिय रहा है।<sup>२</sup> इसी प्रकार रामकमार वर्मा ने स्वयं स्वीकार किया है कि शशी के काव्य में उसका विद्रोहात्मक आदर्शवादी चिन्तकी सुन्दर अभिव्यक्ति उसके आन्तरिक ब्यक्तित्व में हुई है, मुझे बहुत प्रसन्न आया। लक और

१ पं. जी गणपत आन की कविता और मैं - नीपक निबन्ध पृ० १३३

२ रवींद्र तहाय वर्मा की कविता पर आत्म प्रभाव प्र० स० परिशिष्ट

वीर वडस्वयं की रहस्यवादी कविता मुझ बहुत प्रिय रहा है ।<sup>1</sup> अतएव हम देखते हैं कि छायावादी कवियों पर अंगरेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों वडस्वयं, घाली लक थादि, जिनकी गणना सर्वात्मवादी कवियों में की जाती है, का पर्याप्त प्रभाव पडा है । क्वॉट्र रवींद्र का काव्य भी, जिससे छायावादी कवियों में प्रेरणा प्राप्त की गयी गली के आदर्शवाद से प्रभावित था ।<sup>2</sup> अतः यह सहज ही कहा जा सकता है कि अंगरेजी कवियों की सर्वात्मवादी भावनाओं को छायावाद के कवियों ने कुछ तो सीधे उनकी रचनाओं द्वारा और कुछ अप्रत्यक्ष रूप में टगौर की गीतात्रयि द्वारा अपनी रचनाओं के चयन में अवश्य अपनाया है ।

प्रकृति रहस्यवाद और प्रतीकवाद की चर्चा करते हुए इज ने कहा है कि प्रकृति परम सत्ता को आधा छिपाय और आधा व्यक्त किया हुआ है, और इसी भाव दृष्टि से उसे उसका ( ईश्वर का ) प्रतीक माना जा सकता है ।<sup>3</sup> अंगरेजी के सर्वात्मवादी कवियों ने प्रकृति को इसी रहस्यात्मक भावदृष्टि से देखा है । अतएव उन्होंने उस एक प्रकार का शीला आवरण माना है जो आत्मा का आधा छिपाय तथा आधा व्यक्त किया हुआ है ।<sup>4</sup> प्रकृति के इस आवरण में उसने ईश्वर का दान भी किया है ।<sup>5</sup> घाली को विश्व के प्रत्येक अणु परमाणु

१ रवींद्र सहाय वर्मा, हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव प्र०स० परिशिष्ट पृ० २८०

2 Brownings influence was considerable during his most prolific period But his deepest admirations have been for Shelley and Keats among English poets  
Heroy Kumar Bhattacharya The philosophy of Rabindra nath Tagore p 21

3 Nature half conceals and half reveals the Deity and it is in this sense that it may be called a symbol of Him  
W R Inge Christian Mysticism 6th edition 1925 p 231

4 For words, like Nature half reveal  
And half conceal the soul within  
(The works of Tennyson edited by H Lord Tennyson see in Memoriam p 248

5 God is seen  
In the star in the stone, in the flesh in the soul and the  
clod The—poetical works of Robert Browning Vol II  
1912 edited by Augustine Birrel p 305

म एक वयापक चेतन सत्ता का अनुभव ज्ञाता है । उसके समीप वही एक चिरनन है शेष सब अस्थायी और परिवर्तनशील है ।<sup>1</sup> और वही अघकार और प्रकाश बनस्पति तथा प्रस्तर सब म अनुभव करने तथा जानने योग्य है ।<sup>2</sup> वसी प्रकार वडस्वथ प्रकृति के प्रत्येक पत्थ म आ मा का स्पन्दन देता है ।<sup>3</sup> उसने अपनी प्रसिद्ध आत्मचरितात्मक रचना प्रिल्यूड ( Prelude ) म अनुभव किया है कि प्रकृति म एक अतश्चेतना परि याप्त है जिसम समस्त प्राणियों का सहअस्तित्व है और जो स्वत ईश्वर हैं तथा महापूण म स्थित है ।<sup>4</sup> उमके निकट भौतिक जगत ईश्वर की अभि यक्ति के अनिरस्त और कुछ नहीं है । वसी से उस पूण परितोप उस समय हुआ जब उसम समस्त अड-चेतन पदार्थों म ईश्वर की निव्य गति का अनुभव कर लिया ।<sup>5</sup> ब्राउनिंग भा समस्त यह चेतन पदार्थ म अपना हा आत्मा का स्फरण देखता है तथा उससे तादात्म्य स्थापित करता है ।<sup>6</sup> वम प्रकार अगरेजी रोमाण्टिक कविता म सर्वात्मवाद

1 The one remains the many change and pass The Poetical works of P B Shelley Vol II 1807 edited by Mrs Shelley P 139

2 He is a pre ence to be felt and known  
In darkness and in light from herb and stone  
Ibid p 139

3 And tis my faith that every flower  
Enjoys the air it breathes  
The poetical Works of Wordsworth edited by Thomas Hutchinson 1933 ( Early Spring ) p 482

4 The one interior life  
In which all beings live with God themselves  
Are God existing in the mighty whole —  
Quoted by Gereld Bullett in The English Mystics p 212

5 I was only then  
Contented when with bliss ineffable  
I felt the sentiment of Being spread  
O'er all that moves and all that seemeth still —  
The Poetical Works of Wordsworth Book Second edited by Thomas Hutchinson (The Prelude) p 648

6 Nature 'animate inanimate  
Its parts or in the whole there's something there  
Unlike that somehow meets the man in me  
The Poetical works of Browning Vol II Edited by A Birrel

की बड़ी ही विगत अभिव्यक्ति देशन का मिलती है। अतः स्वभाव से ही सर्वात्मवादी विचारा के पोषक होने के नाते रोमाण्टिक अंगरेजी कविता के अध्ययन से छायावादी कवियों की सर्वात्मवादी भावनाओं को बड़ा उत्तजन मिला। अतः पाठ जी की आत्मा है सरिता व भी २ 'गाश्वत नभ का नीला विक्रम, गाश्वत गति का यह रजत हास ३ काम रूप घनश्याम अमर, ३ रूप नहीं है नश्वर सुन्दर है वह अमर ४ जसी पत्तियों पर बहस्रवध, गली, बाटस आदि का प्रभाव दूढ़ा जा सकता है। बादल, ५ छाया ६ जसी कविताओं में चेतना की प्रेरणा भी गली व बादल (cloud), वस्तुविण (west wind) जसी कविताओं से प्राप्त की हुई मानी जा सकती है। इसी प्रकार 'उड़ते पत्तों' और 'सहरों से लघु हाथ' में ईश्वर दर्शन का प्रवृत्ति पर भा वदस्रवध और टनिसन का प्राकृतिक पदार्थों में ईश्वर दर्शन का प्रवृत्ति का प्रभाव माना जा सकता है।

रामकुमार वर्मा की निम्न पत्तियाँ पर—

यह तुम्हारा हास आया ।

इस पटे में बादलों में

कौन सा मधुमास आया ? ७

जिनमें वह विगो अलौकिक सत्ता का आभास पाते हैं धली का 'I laugh when I pass by thunder का दृष्ट छाप है।

बस निराला जी व बाल्य राग की विराट भावना पर ऋग्वेद का उदास, निवृत्त, व्यथारहित, मध का ही विशिष्ट प्रभाव है, किन्तु बाल्य

१ पन्त, युजन तृतीय संस्करण, पृ० १४

२ पाठ, पत्तियों प्रथम संस्करण प० १२२

३ पन्त, 'बाल्य सापक कविता पृ० ३६

४ पन्त, युगवादी, पृ० ६२

५ पाठ, पत्तियों पृ० ३२

६ बहा पृ० १७ २९

७ कभी उड़ते पत्तों के साथ मुझ मिलते मरे सुकुमार

बहार सहरों से लघु हाथ बुलाते फिर मुझको उस पार ।

पन्त, पत्तियों, पृ० ६९

८ रामकुमार वर्मा आपुनिक कवि (३) पृ० १४

राग' का पार न चल मुझको<sup>१</sup> जना पत्तिया पर गली के 'विस्टविण्ड' का प्रभाव माना जा सकता है।

छायावाद के रोमाण्टिक कविता के पारश्चात्य सर्वात्मवाद से प्रभावित होने का एक महान कारण था कि पारश्चात्य सर्वात्मवाद भारतीय सर्वात्मवाद का ही एक रूप था। जमनी और इगनड में जो रोमाण्टिक जागरण हुआ, उसके पीछे बुद्ध न-बुद्ध भारतीय प्रभाव भी था, ऐसा मानने का सुनिश्चित आधार है। श्लीगल-न घुओ<sup>२</sup> जमन भाषा के द्वारा यूरोप में भारतीय मान का अपरिमित आख्यान किया। उन उपनिषद् भगवद्गीता और मनुस्मृति तथा शकुंतला और क्रतुसंहार को स्पेकर जमनी के कवि और विद्वान अभिभूत थे। श्लीगल न जब भगवद्गीता पढ़ी तब भगवान कृष्ण की स्मृति में उसके मुख से एक पूरी गद्य कविता ही फूट पड़ी कि ओ ईश्वर के 'याख्याता' ओ इस काव्य के कर्ता! अथवा सत्यों के बीच तुम्हारा जो भी नाम हो तुम्हारी वाणी के प्रभाव से मनुष्य का हृदय एस अकथनाय आनंद की भूमि पर पहुँच जाता है जो अत्यन्त उच्चता पर अवस्थित तथा सनातन और ईश्वरीय है। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ और तुम्हारे चरणों पर अपना अभिमान नष्ट करता हूँ।<sup>३</sup>

इगनड के शैली बड़ स्वयं और कारलात्तल में भारतीय प्रभावों के स्पष्ट लक्षण विद्यमान हैं। कारलात्तल पर वेदांत का प्रभाव जमनी हाकर पड़ा था। ओइ आन इटीमंग ग आव इम्मारटलिटी नामक अपनी कविता में बड़ स्वयं आत्मा के पृथक् जन्म की ओर संकेत करता है जो स्पष्ट ही भारतीय प्रभाव है। उसने वनस्पतियो में जा चेतना के हाने (तथा प्रकृति और मानवामा के ऐक्य)<sup>४</sup> की बात कहा है वह भी जन विचारों (और उपनिषदों)

१ निराला परिमन अष्टमावलि पृ० १४८

२ देखिये रवीन्द्र सनाय कर्मा हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव प्रथम संस्करण पृ० १७३

३ श्री रावजीमन के लेख में उद्धृत अंग का अनुवाद (मानव इच्छिया एण दि वेस्ट)  
द्वितीय रामधारा सिंह दिनकर' सस्कृति के चार अध्याय तृतीय संस्करण पृ० ४२६

४ To her fair works did Nature link  
The human soul that through me ran

W Words worth written in Early Spring Stanza II

का छाया सी लगती है। शलाक अदोनाय (Adonais) नाम्नी कविता की कल्पना उपनिषदों पर आधारित है। एवं उक्त कविता के कितने ही भाव शुद्ध यदा त के हैं।<sup>१</sup> इ ल्यु० बी० स्टैसन भी अपनी इण्डियन अपान गाड तथा 'इण्डियन टु हिज लव' आदि रचनाओं में भारतीय भाव व्यक्त किए हैं। उसी उपनिषदों के अनुशासन भी निकाले थे जिस काय में श्री भगवान पुरोहित नामक एक भारतीय विद्वान् उमके सहायक थे।<sup>२</sup>

इस प्रकार १९ वीं शताब्दी में पश्चिम में जो विश्व मानवतावाद का आन्दोलन चलता उस पर परोक्ष रूप में भारतीय सर्वात्ममूलक आध्यात्मिक मानवतावाद का भी प्रभाव पड़ा। ऐसा मानने में कोई अडचन नहीं है। अस्तु जब २० वीं शताब्दी में हिंदी के छायावादी कवि पश्चिम के रोमांटिक कविता के सम्पर्क में आये तब आदान प्रदान के सिद्धांत के आधारभूत उनके सर्वात्मवादमूलक मानवतावादी दृष्टिकोण पर पाश्चात्य विषयमानवतावाद का भी प्रभाव पड़ा, विशेषकर पतंजली पर। इस सम्बन्ध में आचार्य विनय मोहन शर्मा लिखा है कि पतंजली पर विवेकानन्द का प्रभाव अमित्र रूप से पड़ा है। इसीलिए वे अद्वैतवाद के मूल सिद्धान्त विभिन्नता में एकता (Unity in diversity) का दान करते हैं। पाश्चात्य मानववाद भी अद्वैतवाद के इसी सिद्धान्त की प्रतिध्वनि है। पतंजली की ज्योत्स्ना में यही मानववाद है जिसका विकास 'योगशास्त्र' के शब्द 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में विनाश रूप से हुआ है।<sup>३</sup> पाश्चात्य मानवतावाद भारतीय अद्वैतवाद की प्रतिध्वनि अवश्य है, किन्तु यह उससे (भारतीय अद्वैत अथवा सर्वात्ममूलक मानवतावाद से) बहुत कुछ भिन्न भी है। अतः यहाँ पर दोनों (भारतीय मानवतावाद तथा पाश्चात्य मानवतावाद) का अन्तर स्पष्ट कर लेना आवश्यक है।

भारतीय मानवतावाद का मूलाधार, जसा कि हम कह चुके हैं एकमात्र अद्वैतमूलक सर्वात्मवाद अथवा अध्यात्म है त्रिमय अनुसार सभी एक हैं—ब्रह्म ब्रह्म परिमाण और मात्रा के तारतम्य में है। अतः भारतीय

१ रामधारी गिहू 'दिनकर सस्कृति के चार अध्याय द्वि० सं० पृ० ४२३  
See also the Poetical works of P. B. Shelley edited by  
Mr. Shelley, Vol III Adonais LX, p 131 LXXVIII  
p 137, LXI p 138 XLII, p 139

२ रामधारी गिहू 'दिनकर सस्कृति के चार अध्याय द्वि० सं० पृ० ४२८

३ आचार्य विनय मोहन शर्मा, दृष्टिकोण, पृ० १९१

मानवतावाद पश्चात्त्य मानवतावाचन की भाँति केवल प्राणिमात्र का यथाशक्ति और यथासम्भव कष्टनिवारण ही नहीं करता,<sup>1</sup> प्रत्युत गीता के अनुरूप यह विश्वास करता है कि समस्त भूतो में समभाव से स्थित ईश्वर की सव्य समान भाव से दखा जा सकता है तथा सम दर्शन द्वारा ही सुख माय की प्राप्ति हो सकती है ।<sup>2</sup> इस प्रकार भारतीय दृष्टि से प्राणिमात्र में भगवद्बुद्धि रखकर उस विराट भगवान की सबत्र देसना मानवता का सत्यस्वरूप है । इश्वर से प्रेम भक्तो से भत्री, अपनाी पर कृपा दुष्टो के प्रति उपेक्षाभाव मानवता का यथायथ स्वरूप है ।<sup>3</sup> भारत का मानवतावाद यह स्वीकार करता है कि जो सम्पूर्ण भूता को आत्मा में और सबमे आत्मा का दर्शन करता है वह किसी से घणा नहीं करता ।<sup>4</sup> कारण विश्वव्यापी प्रभु के प्रत्यक्ष ज्ञान से विश्वप्रेम और विश्वप्रेम से सेवाभाव का आविर्भाव जाता है । सेवा रूप में भारतीय मानवतावाचन प्राणिमात्र के प्रति मैत्री तथा कृपा पर विशेष बल देता है । सर्वस्ववादी बर्दिक क्रपि ने स्पष्ट कहा है कि मनुष्या का प्रथम कर्तव्य है कि वे निरद्वन्द्व भाव से मानवता का समादर करते हुए दूसरा का रक्षा और उप्रति में सहायक हो ।<sup>5</sup>

1 Humanitarian movements have been chiefly directed towards preventing recognizable physical cruelty to men or animals or both

Encyclopaedia of the Social Sciences

Vols VII VIII p 544

२ यम परधन हि स्वत्र समयस्थितमाश्वरम् ।

न हिनयात्मानमान ततो याति परा गतिम् ॥

गीता १३।२८

३ सवभूतेषु य पश्येद् भगवद्भावमात्मन ।

भूतानि भगवत्वात्मन्येव भाववतोत्तम ॥

ईश्वरे तन्धीनषु बालिगषु स्थितम् च ।

प्रेम मत्री कृपापणा य करोति स मध्यम ॥

रामदमायवत ११।२।४५ ४६

४ यस्मिन् मर्वाणि भूतायात्मवाभूजिजात ।

ई० उ० ६७

५ पुमान् पुमास परिपात विश्वत ।

शृंग० ६।७५।१४

सर्वात्मवाद पर आधारित भारत का मानवतावाद भीतर बाहर के द्वन्द्वा को मिटाना चाहता है—समस्त भेद भावों एवं अंतरायों को दूर करने का उपक्रम करता है। एतदर्थ वह विश्व को खण्ड रूप में नहीं देखता प्रत्युत एक ही परम सत्ता से प्राप्त सम्पूर्ण भूतव्यय का एक ही सूत्र में विरोधा हुआ देखता है। यही कारण है कि भारतीय अद्वैतमूलक मानवतावाद का पथवसान अथवा परिपाक व्यावहारिक जीवन में अहिंसा, विश्व-शुद्धि, विश्व-प्रेम, चरित्र की उत्थाता, श्याम, सेवा समरसता, सबके प्रति विश्वास सब प्राणियों में प्रीति, समस्त पशु पक्षियों में प्रीति, सब वस्तुओं में प्रीति आदि आध्यात्मिक गुणा में होता है। सक्षम में भारतीय मानवतावाद सबभूतहिते रना की भावना से ओत प्रोत है और उसका मूलाधार सर्वात्मवादी अथवा आध्यात्मिक है। किन्तु पश्चात्य मानवतावाद के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती।

दार्शनिक दृष्टि से पश्चात्य मानवतावादा प्रकृति दंगल तथा निरपेक्ष-वादा दोनों का विरोधी है।<sup>1</sup> भारतीय मानवतावाद की भाँति यह अध्यात्मवादी तथा निरपेक्षवादी न होकर निश्चयात्मक रूप से सापेक्षवादी है, अतएव सत्य की विश्वासीता में उसका किंचित विश्वास नहीं है।<sup>2</sup> वह केवल इतना ही स्वीकार करता है कि जो सत्य और वास्तविकता मानव की पहुँच के भीतर हैं वे ही मनुष्य के लिए पर्याप्त हैं।<sup>3</sup>

आचार सास्त्र की दृष्टि से पश्चात्य मानवतावाद दया विना करुणा विषयक सिद्धांतों का एक गम्भीर प्रमथ (सास्त्रीय) अध्ययन है, साथ ही

- 1 Humanism in philosophy is opposed to naturalism and absolutism  
Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings, Vol VI 1913, p 830
- 2 Humanism is confessedly a relativism and as such is a denial of the transcendence of the real and true  
Ibid p 830
- 3 It holds on the contrary that the truth and reality for man which are attainable by man are also sufficient for man  
Ibid, p 830



यह यत्न करने का प्रयत्न भी है कि यदि दया आचार का मूलाधार नहीं तो उसका अभिन्न अंग अवश्य है।<sup>1</sup> पार्श्वचार्य मानववाद का उपयोगितावाद मूलतः एक विज्ञान है जबकि मानववाद सामान्यतया एक दार्शनिक दृष्टिकोण है।<sup>2</sup> पश्चिम का मानववाद यह घोषित करता है कि मनुष्य वस्तुतः उसी तरह प्रकृति का एक अंग है जिस तरह कोई अन्य जीव अतः मनुष्य को प्रकृति से बिलकुल परे समझना दार्शनिक दृष्टि से गलत तथा आचार की दृष्टि से निषिद्ध है।<sup>3</sup> इस प्रकार पार्श्वचार्य मानवतावाद का विकासवाद से भी सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अतः वह विकासवाद के सिद्धांत का ही व्यावहारिक रूप माना गया है जो प्राणिमात्र के प्रति साहचर्य की भावना पर आधारित है तथा पूर्व और पश्चिम की भावसरणियों को मिलाता है।<sup>4</sup> इस सम्बन्ध में ध्यान देने की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पार्श्वचार्य मानवतावाद का दया सम्बन्धी सिद्धांत भारतीय आध्यात्मिक कल्याण की भांति ही सावभौम सहानुभूति की विस्तृत भूमि पर अधिष्ठित है।

- 1 Humanitarianism in the ethical sense is the deliberate and systematic study of humane principles the attempt to show that humaneness is an integral part if not the actual basis of morals  
Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings Vol VI 1913 p 86
- 2 To pragmatism Humanism is closely related But pragmatism is intrinsically a theory of knowledge while Humanism is a more general philosophic attitude  
Ibid p 830
- 3 Man is as truly a part and product of nature as any other animal and the attempt to set him up as an isolated point outside of it is philosophically false and morally pernicious Ibid p 838
- 4 Humanism then is the application of an evolutionary doctrine founded on the kinship of life which unites the sentiment of East and West  
Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings Vol VI 1913, p 837

जिसकी भीमा के भीतर मनुष्य तथा मनुष्यतर सभी प्राणी आ गये हैं ।<sup>१</sup> इस प्रकार पारचात्य मानवतावाद का उद्देश्य यथाम और आत्म में सामन्स्य स्थापित करना है, पाप के साथ करुणा की मन्त्री बिठाना है और इस तथ्य की खोज करना है कि किस प्रकार मानवमात्र के प्रति सहानुभूति प्रकट की जाय और उस सहानुभूति को किस प्रकार मानव के हितार्थ काय रूप में परिणत किया जाय ।<sup>२</sup> इस दृष्टि से पारचात्य मानवतावाद मुख्यतः एक प्रियागील करुणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।<sup>३</sup> मानवतावाद के उक्त स्वरूप का ही वह सबथ गली आदि अंगरेजी के आधुनिक कविषा ने अपनाया और अपनी रचनाशा में स्थान दिया ।<sup>४</sup> अंगरेजी कवियों के प्रभाव से छायावादी के कविषा ने भी पारचात्य मानवतावाद के स्वरूप को अपनाया, क्योंकि वह भारतीय करुणा के मेष में था । किन्तु भूलना न हाया कि पारचात्य मानवतावाद भारतीय सर्वात्मवादी मानवतावाद में बहुत कुछ भिन्न है ।

- 1 The first point which needs to be emphasized is this— that the principle of humaneness is based on the broad ground of universal sympathy, not with mankind only but with all sentient beings —Ibid p 837
- 2 It is the function of humanitarianism to reconcile the ideal with the actual to unite compassion with judgment, and to discover not only how we feel or ought to feel towards our fellow beings but also to what extent and with what limitations we can put those feelings into practice  
Ibid p 837
- 3 humanitarianism is nothing more than conscious and organized humaneness  
Encyclopaedia of Religion and Ethics, edited by James Hastings Vol VI 1913, p 806
- 4 It is sufficient to mention such names as those of Thomson, Pope, Goldsmith, Cowper, Burns, Shelley, and Wordsworth to show how largely our modern poets have been concerned in this humanizing process Ibid p 837

ईसाइ धर्म हम बात को स्वीकार नहीं करता कि जानवरो में भी वही आत्मा है जो मनुष्य में अतः उसने जानवरो की भलाई की किंचित चिन्ता नहीं की।<sup>1</sup> धर्म की इस कमी को पूरा करने के लिए पश्चिम में मानवतावादी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जिसका मुख्य उद्देश्य विनाश रूप में बच्चा और जानवरो की रक्षा करना है।<sup>2</sup> किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय सर्वात्मवादी मानवतावाद की भाँति पश्चात्य मानवतावाद सर्वतोभावन हिंसा का निषेध तथा अहिंसा का समर्थन करता है। सच तो यह है कि पश्चिम का मानवतावाद भारतीय ब्राह्मण अथवा ब्रह्मवाद के समान सर्वविधि हिंसा का प्रतिषेध नहीं करता वह केवल अनावश्यक रूप में तथा लापरवाही, अज्ञान और व्यसनवश की जाने वाली जीव-हत्या का ही विरोध करता है। इस प्रकार पश्चात्य मानवतावाद का भारतीय मानवतावाद के उभय पक्ष से कुछ भी लगाव नहीं है जिसमें अहिंसाव्रत के पालन के लिए सबस्व त्याग की गिम्नासी गयी है<sup>3</sup> और जिसका छायावादी कवियों ने खुलकर समर्थन किया है।<sup>4</sup>

1 Christianity denied souls to animals and therefore had little care for their welfare

Encyclopaedia of the Social Sciences Vol VII VIII 1954,  
p 545

2 Humanitarian movements have been directed to the special protection of children and animals  
Ibid, p 546

3 For example, it is not Brahmanism What is condemned is not the taking of life, as such but the unnecessary or want on taking of life through callousness ignorance or force of habit and there is no point whatever in applying to humanitarianism the true story of the Hindu whose principles forbade him to drink water when the microscope had revealed to him the infinitesimal creatures that inhabit it

Encyclopaedia of Religion and Ethics Edited by James Hastings Vol VI 1913 p 837

४ नहीं जानता युग विषय में होगा कितना जन दाय पर मनष्य की सत्य अहिंसा दृष्ट रहेंग निश्चय ।

सक्षम में छायावादी के मानवतावाद का मूलाधार भारत का चिर-परिचित आत्मवादी का सिद्धान्त है जो लोक और परलोक (सापक्ष और निरपक्ष) दोनों का अपनाता हुआ चलता है। इसी से छायावादी का कवि एक और मानव<sup>१</sup> तथा मानवेतर सृष्टि में ईश्वर (निरपेक्ष सत्य) की खोज करता है और दूसरी ओर लोक भूमि में समस्त भूतों के हित साधन की कामना करता है।<sup>२</sup> उसका समीप 'जन हिन ही धम नीति और सत्ताचार का सच्चा मूल्यांकन है।<sup>३</sup> सर्वात्मवादों दृष्टिकोण अपनाते के कारण छायावादी का कवि समन्वय के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए मानवता के लिए अपक्षित एकता समता समरसता प्रेम आदि उदात्त भावनाओं को अपने काव्य में बाणी देना है जिसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हम छायावाद की कविता में कामायनी काव्य के रूप में उपलब्ध होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी का मानवतावादी सर्वात्मवादी होने के कारण आध्यात्मिक भावना से सिक्न अथवा परिपूर्ण है जिसका पारंपारिक मानवतावाद में नितांत अभाव है। यही कारण है कि जहाँ छायावाद का मानवतावाद अहिंसा अथवा करुणा की<sup>४</sup> जीवन की साधकता के

- १ मानव की समझो है देवा के आराधक  
मानव को भीतर ईश्वर ही अविरत साधक ।

—पत, अतिमा प्रथम संस्करण प० ४६

- २ विद्या धर्म, गुण विगिष्टता  
भूषण हा मानव के,  
जीव प्रेम के बिना किंतु ये  
दूषण हैं मानव के ।

—पत युगवाणी १९३६, प० ३०

- ३ धम, नीति और सत्ताचार का  
मूल्यांकन है जनहित —

—पत युगवाणी १९३९ प० ३५

- ४ शक्ति के विकृरण जा व्यस्त विकल विश्वरे हैं हा निरुपाय  
समन्वय उमका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय ।

—प्रसाद कामायनी, शि० स० पु० ६७

- ५ करुणा ही तो हान साधक  
य जन्म मरण सध्या प्रभान ।

—पत, युगवाणी १९३९, पृ० ९५

रूप में स्वीकार करता है वहीं पश्चात्त्य मानवतावाङ्ग उसे उपयोगितावाङ्ग तक ही सीमित रखता है।<sup>१</sup> आत्मवाद की व्यापक भूमि पर सडा होने के कारण छायावाङ्ग का मानवतावाद पश्चात्त्य उपयोगितावादी तथा विकासवादी मानवतावाद के तर्कों—महयोग सहानुभूति प्रेम सहअस्तित्व तथा समानता आदि को भी स्वन अपनाये चलता है।<sup>२</sup> इस प्रकार हम दखते हैं कि छायावाद का मानवतावाङ्ग सार्वत्रिकवाद की विस्तृत भूमि पर अधिष्ठित है और उसका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन में साधक बनाना है। पश्चात्त्य मानवतावाङ्ग की भाँति वह दुबलों का धर्म नहीं है।<sup>३</sup>



1 Encyclopaedia of Religion and Ethics edited by James Hastings Vol VI 1913 p 830

२ आत्मा की महिमा से मडित होगी नव मानवता ।

—पठ पुणवानी १९३९ पृ० १३

3 It ( Humanitarianism ) is unavoidably a religion for the weak

Encyclopaedia of the Social Sciences Vols VII VIII, 1954 p 548

## छायावादी काव्य में रहस्यवाद

पूर्वोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद पर कतिपय दशकों का स्पष्ट प्रभाव है। उनमें से कुछ अति प्रभावित करने वाले दशक अद्वैतवाद (सर्वरूपवाद) और उसके विभिन्न रूप-संज्ञा, विंगिष्टाद्वैत आदि हैं। इन दशकों का परिणाम पूर्व और पश्चिम दोनों की रहस्यानुभूतियों में दया जा सकता है। पूर्वों का अद्वैतवाद और उनका सामरस्य वाला रहस्य सम्प्रदाय, बौद्धों का माधुय भाव और उनके प्रेम का रहस्य तथा कामकला की सौन्दर्य उपासना का उद्गम वेदों और उपनिषदों के श्रुतियों की वे साधना प्रणालियाँ हैं, जिनका उद्दोने समय समय पर अपने सघा में प्रचार किया था।<sup>१</sup> सधन में अद्वैतवादी छायावादी आदि श्रुतियों के प्रकाश में जिस रति प्राप्ति युक्त भक्ति का विकास भारतीय रहस्यवादियों ने किया उसका स्वरूप अद्वैतवादी था।<sup>२</sup> सूफ़ी रहस्यवादियों ने भी सधन अद्वैत का पक्ष लिया है। उनमें अद्वैत के भी उसी प्रकार कई पक्ष हैं जिस प्रकार भारतीय अद्वैत के।<sup>३</sup> उनकी विभिन्न विचारधाराओं में कितनी ऐसी हैं जिनका साम्य अद्वैतवादी विंगिष्टाद्वैतवाद आदि के साथ है।<sup>४</sup> अतः अद्वैत विंगिष्टाद्वैत सवाद्वैत आदि दशकों

१ प्रसाद, काव्य और कला तथा अन्य विचार, रहस्यवाद-शोधक संस्थान, पृ० ३४

२ प्रसाद काव्य और कला, दण्डि रहस्यवाद-शोधक संस्थान पृ० ४४-४५

३ आचार्य चन्द्रबन्दी पाण्डित्य तमस्युष्य सधन सूफ़ीमत १९४५, पृ० १४५

४ प ११मपूजन तिवारी सूफ़ीमत-साधना और साहित्य प्रथम संस्करण, पृ० ३०६

से विनोद रूप में प्रभावित होने के कारण छायावादी काव्य में भी रहस्यवाद का समावेश हुआ। रहस्यवाङ्मय के अनेक रूप हैं—

(१) प्रकृति रहस्यवाद (२) प्रमथरक रहस्यवाङ्मय, (३) दार्शनिक रहस्यवाङ्मय (४) धार्मिक रहस्यवाद आदि। किन्तु उक्त अनेक रूपों में छायावाद में अभिप्रेत रूप प्रकृति और प्रमथरक रहस्यवाद के हैं क्योंकि ये कवि-मुनिम रहस्यवाद हैं साधनाप्रसूत रहस्यवाद नहीं।

### छायावादी रहस्यवाद का विश्लेषण

पिछले अध्यायों में हम अद्वैतवाङ्मय के त्रिविध रूपों और छायावाङ्मय पर उनके प्रभाव को देख चुके हैं। उनमें हमने अद्वैतवाद के सिद्धान्त अथवा चिन्तन पर विचार बल दिया है। किन्तु अद्वैतवाद का एक दूसरा पक्ष भी है— भावात्मक—जहाँ वह रहस्यवाद की कोटि में आ जाता है। वास्तव में दर्शन के अद्वैतवाद की ही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाङ्मय की मज्जा देखी जाती है।<sup>१</sup> इस प्रकार अद्वैतवाद और रहस्यवाद में मूलतः कोई भेद नहीं उभरता। इनमें बीच की विभाजन रेखा चिन्तन की अधिकता अथवा अल्पता मात्र मानी जा सकती है। अर्थात् दर्शन में चिन्तन की अधिकता और रहस्यवाङ्मय में भावना की अतिशयता होती है। वरन् जगत के नानात्व एवं आत्मा में निहित नित्य चिन्तन सत्ता से सांप्रिध्य अथवा तादात्म्य स्थापित करना दोनों का इच्छा है। इसी से स्पेन्सियन<sup>२</sup> ने कहा है कि रहस्यवादी, चाहे किसी देश और काल का क्यों न हो भगवान् कृष्ण के शब्दों में कहेगा—

सर्वभूतेषु येनैव भावभङ्गमीक्षतः।

अविभक्तं विभक्तेषु तन्मानं विद्धि सात्त्विकम् ॥ —गीता १८।२०

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव हृदय अथवा ज्ञान की वह उन्मुक्त दशा जिसमें सभी वस्तुएँ एकता के तार में गुम्फित प्रतीत होती हैं रहस्यवाद और दर्शन दोनों का मूलाधार है। यही कारण है कि रहस्यवादी ससार की किसी वस्तु को नगण्य नहीं मानता। उसके यहाँ ससार का कण कण अनिवार्य रूप से युक्त है। इसी भावना में अभिभूत होकर प्रसिद्ध रहस्यवादी ब्लेक ने सिकता के एक कण में सम्पूर्ण विश्व और एक सामान्य गुण में स्वयं

१ जो चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाङ्मय है वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाङ्मय है।

२ रामचन्द्र शुक्ल जायसी प्रभाषणी प्र० सं०, पृ० १९५

३ Spurgason *Mysticism in English literature* 1927, p 3

को देखने की परिकल्पना की है।<sup>1</sup> इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि समस्त विभिन्नताओं में एकता तथा सात में अनन्त की भावानुभूति का जो दार्शनिक सिद्धांत है वही रहस्यवाद का नी पक्ष है।<sup>2</sup>

### रहस्यवाद और दर्शन में भेद

अनेकता में एकता या सात में अनन्त की खोज दान और रहस्यवादी दोनों को अभीष्ट है। किन्तु इस सत्य को दान अनुभवों की व्याख्या और रहस्यवाद आत्मा की आन्वितर उड़ान ( Inward Flight of the soul ) द्वारा पहचानना चाहता है। दान अपनी सत्यता के लिए बाह्य प्रमाण की अपेक्षा रक्ष करता है, किन्तु रहस्यवादी अनभव स्वतः सिद्ध अपने में परिपूर्ण होता है। उसे अपनी सत्यता के लिए कथमपि बाह्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। दान और रहस्यवाद में एक महान् अन्तर यह है कि दान के अनुसार परम तत्व का साक्षात्कार उस समय तक संभव नहीं है जब तक कि अविद्या अज्ञान अथवा माया का निराकरण नहीं हुआ जाता। किन्तु रहस्यवाद के अतगत अविद्या, अज्ञान अथवा माया आदि समस्त धर्मों या नाग परम तत्व के अनभव के उपरान्त ही सम्भव हो सकता है।<sup>3</sup>

### धर्म और रहस्यवाद

जिस प्रकार दर्शन और रहस्यवाद का लक्ष्य पूण को पाना अथवा हृदयगम करना है उसी प्रकार धर्म भी पूण को प्राप्त करना चाहता है। दार्शनिक और रहस्यवादी की भाँति धार्मिक भी अस्तु और अगिब पर सत और गिब की विजय धारित करता है। कोई भी सच्चा धार्मिक—मनोवैज्ञानिक अथ म यन् साम्प्रदायिक अथ म नहीं—रहस्य वति अथवा रहस्यवानुभूति से अछूना नहीं रह सकता और कोई भी रहस्यवादी धार्मिक के अनिश्चित और सुष नहीं हो सकता।<sup>4</sup>

- 1 To see a world in a grain of sand  
And a heaven in a wild flower Ibid p 11
- 2 The mystic rejoices in the definite passing off into indefinite Mabendranath Sircar Hindi Mysticism, p 25
- 3 P D Ranade Pathway to God in Hindi literature  
p 103
- 4 E Underhill Mysticism, 17th Edition, 1944 p 70



धम का यह सिद्धांत कि अहम के उपगम द्वारा मनुष्य उ मुक्त दशा  
 यथा अपार आनंद का अनुभव कर सकता है सम्पूर्ण रहस्यवादी दशन के  
 मूल में निहित है।<sup>1</sup> इस प्रकार रहस्यवाद, सही अर्थों में धम के क्षेत्र की वस्तु  
 हो जाता है। अवश्य ही अपने इस व्यापक अर्थ में धम एक रूढ़िगत विश्वास  
 न होकर वह अनभूति है जिसमें एक सचेतन शाश्वत सत्ता समस्त विश्व में  
 व्याप्त साथही उसके परे भी प्रतीत होती है।<sup>2</sup> उसी सचेतन सत्ता में निमग्न  
 होकर धार्मिक अथवा रहस्यवादी अपने वास्तविक स्वरूप को पाना चाहता है।  
 इस प्रकार धम और रहस्यवाद एक दूसरे से अभिन्न हैं। अतः धम की भांति  
 ही रहस्यवाद भी एक जीवन दशा है कोरा सिद्धांत मात्र नहीं है। किंतु  
 दशन के क्षेत्र में जहां रहस्यवाद भौतिकवाद और सदृष्टवाद का विरोधी है  
 व धम के क्षेत्र में वह कोरे कमवाण का भी विरोधी है।<sup>3</sup>

## रहस्यात्मक अनुभव की विशेषताएँ

### प्रातिभज्ञान

दाशनिक और रहस्यवादी दोनों परम तत्त्व का साक्षात्कार करना  
 चाहते हैं। किंतु तक और धारणाओं से जेलते रहने के कारण दाशनिक परम  
 तत्त्व को पहचान नहीं पाता<sup>4</sup> और रहस्यवादी उसे प्रातिभज्ञान द्वारा सहज ही  
 हृदयगम कर लेता है।<sup>5</sup> इसे हम यों भी कह सकते हैं कि दाशनिक सत्य के  
 साक्षात्कार के लिए साधना और प्रातिभज्ञान आवश्यक है।<sup>6</sup> प्रतिभा रहस्यवादी  
 के लिए वह कजी है जिसकी सहायता से वह उस महान के कपाट खोलने में  
 समर्थ होता है जिसमें अयुक्त सत्ता निवास करती है। इस प्रकार प्रातिभज्ञान

1 Gerald Bullet *The English Mystics* p 17

2 Gerald Bullet *The English Mystics* p 19

3 W R Inge *Christian Mysticism sixth edition 1935* p 22

4 An intellectualist plays with words concepts and categories  
 but misses the truth and reality

Radhakrishnan *The Philosophy of Tagore* p 152

5 *The ultimate Reality is known in a flash of intuition*  
 —Ibid p 157

6 *To eat in sight of the philosophical ideal we require medi-  
 tation and mystic insight* —Ibid p 152

रहस्यवाद का सार सत्य है। जो कुछ रहस्यवादी कहता है वह उसके प्रातिभ ज्ञान का परिणाम है। प्रातिभज्ञान व प्रकाश म ही वह चिरंतन सत्य को हृदय गम करता है। उभी के पासव म वह चरम सत्य को प्रकृति के प्रत्यक्ष पदार्थ म तरंगित दलता है। इस प्रकार रहस्यवादी प्रातिभज्ञान को ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट साधन मानता है।<sup>1</sup> किन्तु यह समझना भूल हांगी कि प्रातिभज्ञान बुद्धि इच्छा शक्ति ( Will ) तथा भावना का विराधी है। यस्तुत य ( बुद्धि इच्छा शक्ति और भावना ) सभी प्रातिभज्ञान के पारव म उपस्थित रहत हैं और रहस्यानुभूति म सहायक होते हैं। बुद्धि रहस्यवादी के सकल्प को दूर करती है इच्छा शक्ति उसे क्रियाशील बनाती है और भावना उसे अपन आराध्य से एकाकार हान म महायक हानी है।<sup>2</sup> इस प्रकार हम दलत हैं कि रहस्यवाद अथवा रहस्यानुभूति म प्रातिभज्ञान की प्राथमिकता प्राप्त है। यही वह दिव्य शक्ति है जिससे ससार व समस्त रहस्यवाद्या को एक अदृष्ट किन्तु स्यायी सूत्र म बांध रखा है।

### छायावादी कवि का रहस्यवादी स्वरूप

इतना जान लेने के उपरान्त कि रहस्यात्मक अनुभव व लिए आध्यात्मिकता प्रातिभज्ञान सात्त्विक बुद्धि चतुर्विध इच्छा शक्ति और भाव भावना नित्य आवश्यक हैं, यह प्रश्न उठता है कि क्या छायावाद के तपस्वचित रहस्यवादी कवि रहस्यवादी को विनाशनाश म युक्त हैं? यदि शाय व नेत्रो से देखा जाय तो छायावादी कवियों की जीवा चर्मा और साधक रहस्यदृष्टियों को भावन चया म दा भ्रमा का अंतर दिखाई पडगा। वस्तुत छायावादी कवियों को साधका की श्रमा म विगना द साहस का काम हागा। किन्तु इतना नि मकोच कहा जा सता है कि छायावादी कवियों का शुरुवा प्रारम्भ से ही जाध्यात्मिक अधिदक्षनी की आर था। उनक इस शकाव व शोध स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामताप श्री अरवि, तिनक गायी तथा टपीर का व्यापक प्रभाव था। इन मनापिया और युग दृष्टाया व प्रभाव व उपरा उ प्रसिद्ध छायावाद्या-प्रसा निराला वत

1 Spiritualists consider intuition to be the only effective organ of knowledge Ibid p 152

2 R D Ranade Pathway To God in Hindi literature 1959 p 3

महादेवी-नेवद उपनिषद् गीता, शिवदशन बौद्ध-दान आदि का गहन अध्ययन करके त्रैलोक्य सिद्धांतों को आत्मसात करने का भरपूर प्रयत्न किया था। उसके अतिरिक्त अस्थिर स्वरूपों में स्थिर अरूप-तत्त्व की ओर संकेत करने वाला तथा प्रेम को साधन और साध्य समझने वाला सत एव भवत कवियों के प्रति भी वे परम श्रद्धालु थे। इस प्रकार आध्यात्मिक भूमि में विचरण करने के कारण उनका ध्यान अद्वैत दशन के मूल सिद्धांत अभिन्नता जो रहस्यवाद का भी मूलमंत्र है का ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। अतः अद्वैत दशन की छाया में उन्होंने विश्व के निम्नलिखित सौंदर्य में विराट का दान रूप और स्थूल में अरूप और सूक्ष्म का भावन अचिर में धिर का अवेपण और अलौकिक प्रेम का आरोप किया। आध्यात्मिकता के आग्रह से ही वे निरपेक्ष साधना, कष्ट सहिष्णुता दुःख सुख में समरसता अथवा समत्व बुद्धि अनाद्य, अहिंसा सेवा ग्रहण कर्म भत्री मुदिता उपेक्षा आदि रहस्यात्मक जीवन की प्रमुख विशेषताओं की ओर बड़ वेग से बढ़े। मध्ययुगीन सतों और भक्तों के प्रभाव से उन्होंने पावन प्रेम और माधव भाव की गंगा भी बहाई। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी कवियों का जीवन साधकों के समान चाहे पवित्र न रहा हो किंतु पवित्र जीवन के तत्वों को आत्मसात करने की तालसा उनमें सदा बनी रही और जस जस समय बीतता गया वसे वसे वे और अधिक समीप अथवा श्रुती बन्त गये। यही कारण है कि १६१७ की सफर रूसी प्राति का भारतीय राजनीति पर प्रभाव पड़ने के पश्चात् भी छायावाद के अध्यात्मप्रयोग, ऊँचगामी कवियों ने हिंसात्मक प्राति का स्वर मन्वर नहीं किया। इतना हाते हुए भी छायावादियों के रहस्यात्मक भाव श्रुतियों और सतों की प्राति साधनाप्रगुण प्रातिभज्ञान की उपज नहीं मान जा सकत। वे उनकी में बानभूति अथवा रविधम के ही परिणाम हैं। इसी से उनकी कृतियों में श्रुतियाँ और सतों की अपेक्षा कर्तापवना और काल्पनिकता की ही प्रधानता है। अतः तटस्थ दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि छायावादी कवि कवि पहिले और रहस्यवादी बान में हैं और कबीर दादू तुफाराम श्री अरवि आदि साधक रहस्यवादी पहले और कवि बान में हैं। साधकों द्वारा का य को अपनाते का कारण यह है कि धननाता रहस्यात्मक अनुभवा को व्यक्त करने के लिए काव्य में वर अ य कोई साधन नहीं हो सकता। किंतु छायावादी कवियों की अनेकता में एकता एव सत में अनन्त प्राति रहस्यात्मक अनुभूतियाँ अथवा अभिव्यक्तियाँ ठीक उसी स्तर की हैं जिन स्तर की १९ वी

शताब्दी की स्वच्छन्दतावादी अंगरेजी कवियों की रहस्यभावना, जिन्हें मूलतः रहस्यवादी नहीं माना जाता।<sup>1</sup> वे रहस्यवाद इसलिए जान पड़ते हैं कि कवि और रहस्यवादी दोनों घट्टि में समष्टि और नश्वर में अविनश्वर को खोज करते हैं। अभिप्राय यह कि छायावादियों की रहस्य भावना रोमानी काव्यगत रहस्यवाद की बोटि की है साम्प्रदायिक अथवा साधनात्मक रहस्यवाद की बोटि की नहीं। स्वच्छन्दतावादी कविसूत्र में रहस्यवाद में प्रायः प्रकृति और प्रमत्तक रहस्यवाद की ही प्रधानता होती है अतः छायावादी रहस्यवाद में भी उक्त दोनों रूपों की प्रधानता है। यहाँ पर छायावादी काव्य में उनकी मर्मक विवेचना के पूर्व मक्षप में उनका विशेषताया पर प्रकाश डाल देना साम्प्रदायिक सिद्ध होगा।

### प्रकृति रहस्यवाद

प्रकृति रहस्यवाद एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। ईश्वर की अभिव्यक्ति होने के कारण प्रकृति विराटरूप है विराटरूप प्रकृति के समस्त अवयव आध्यात्मिक सत्य के प्रतिरूप हैं, अतः वे परम सत्ता के ही किमान किसी गुण को प्रकाशित कर रहे हैं।<sup>2</sup> अनेक सत्तारूप प्रकृति में एकता निहित है। एक ही उसका अर्थ और एक ही उसका अर्थ है।<sup>3</sup> इसी भावनाओं में प्रेरित होकर प्रकृति रहस्य

- 1 The mystical apprehension of a unity in multiplicity, of eternity in time, runs like a thread of light through the works of many nineteenth century poets not regarded primarily as mystics

Gerald Buller *The English Mystics* p 124

- 2 Both poet and mystic are concerned to find the universal in the particular, the eternal aspect of temporal things  
Idid p 18<sup>1</sup>

- 3 The great Mysticism is the belief that all symmetrical natural objects are types of some spiritual truth or existence  
Every thing seems to be full of God's reflex if we could but see it

W R Inge *Christian Mysticism*, p 27

- 4 (a) Unity underlies diversity This is the basic fact of Mysticism

C F E Supergaon, *Mysticism in English Literature, 1927*

वादी प्रकृति का परम पुजारी बनता है उसके साथ तात्कालिक स्थापित करता है और भावयोग से उसके मध्य ईश्वर की स्पष्ट-अस्पष्ट झाँकी देगता है ।

प्रकृति रहस्यवादी प्रकृति के माध्यम से ही इश्वर का साक्षात्कार करता है । अतः वह प्रकृति के भौतिक पक्ष की उपेक्षा कर उसके आध्यात्मिक पक्ष का चिन्तन करता है । इसी से उसका उद्देश्य यथाथ म आदम अथवा मन समुदाय में अध्यात्म का उदघाटन करना होता है । उक्त उद्देश्य के परिणामस्वरूप उसके समीप प्रकृति का प्रत्येक रूपखण्ड परम सत्ता का प्रतीक बनकर उपस्थित हो जाता है और निखिल प्रकृति उसके लिए परम ज्योति का मन्दिर बन जाती है । इस मनोदशा में उस साधारण असाधारण पार्थिव अपार्थिव, अपूर्ण पूर्ण और सत्ता अनन्त प्रतीत होने लगता है ।

इसके मतानुसार प्रकृति रहस्यवादी एक ऐसा विश्वास है जिसमें प्रत्येक वस्तु या वृद्ध भी वह है उससे अधिक की ओर संकेत करता हुई प्रतीत होती है ।<sup>1</sup> अतः पहाड़ से गिरती हुई पत्तियाँ उसे जगत की क्षणिकता और परिवर्तनशीलता का ही बोध नहीं कराती प्रत्युत निकट भविष्य में ही उनके-फूल पत्तों से लद जाय अथवा मासल जीवन का मंदेश भी देती है । जल उसके शरीर का मल ही नहीं धोता उसके हृदय को सिकुट स्वच्छ करता है । उससे समीप ऊँचा पहाड़ पत्थर का ढेर नहीं है वह गविन है जो गुरुवाक्यण को अभिमूक्त कर रही है उस बोझ का प्रतीक है जो नीचे खींचने वाली परिस्थितियों को ठोकर मार कर उठाता है वसंत में बली नहीं चटकती, गिरि में पत्तियाँ नहीं झरती श्राद्धी और रौद्री गविन्याँ काम करती हैं कमल किञ्चनक के बीच में भौरा मधुपान नहा करता नक्षत्री अमृत के कलश लुढ़काती है ।<sup>2</sup> इस प्रकार प्रकृति रहस्यवादी का अपने कामन और दुःख दानों दोनों में नवीन जीवन की संश्लेषणात्मक सत्य का दमन तथा एक ही चेतन सत्ता से ओत प्राप्त प्रतीत होती है ।

(b) The unity of all existence is a fundamental doctrine of mysticism W R Inge Christian Mysticism p 28

1 The true Mysticism is the belief that everything in being what it is is symbolic of something more

W R Inge Christian Mysticism p 200

२ डा० सम्पूर्णानन्द चिन्तासप्तकानन्द काशी, २० ११ ० २१

प्रकृति को परम चेतन का अविवास मानने के कारण प्रकृति रहस्यवादी प्रकृति के विभिन्न मापारो यथा पत्रों के ममर त्रिपर के ख और विहग व द के कलरव म ई वर का पुनान सगीत सुनता है । प्रत्येक पुष्प उसके लिए पूजा का प्रताक बन जाता है जिससे वह दिव्य रस का पान करता है । यहाँ तक कि सामान्य दूर्वादि में भी वह अलौकिक गति का अनुभव करता है । इस प्रकार प्रकृति उसके लिए त्रिमानुभूति का आधार परमानन्द का सात एव असौम का प्रतीक बन जाता है ।

रहस्यवाद का विवचन परत हुए कुमार अटरलिन ने लिखा है—  
'प्रकृति में ईश्वर का दान प्राकृतिक पदार्थों में अपाचिब अलौकिक दानि मान जाना का अनुभव ईश्वर का अद्यत महज और सामान्य रूप है । अधिकतर लोग तौल्य और भाव के बगीभूत होकर ही इस प्रकार की चेतना की प्रारम्भिक धरक का अनुभव करते हैं । जहाँ इस प्रकार की चेतना की पुनरावृत्ति होती रहनी है वहाँ पर उस अनन सत्ता की जो समस्त भूता का अन्तरात्मा है और जिसे आधुनिक जगत्काल प्रकृति रहस्यवाद का नाम से गौरवाचित किया है अगत क्षलर मिलती है ।<sup>1</sup> उक्त स्थापना का आधार भूत प्रकृति रहस्यवाद की निम्न विगपताएँ स्पष्ट हा जानी हैं—

### प्रकृति रहस्यवादी

- (१) प्रकृति में चेतना का आरोप करना है ।
- (२) प्रकृति में ईश्वर का दान करता है ।
- (३) उसका उक्त दान स्पष्ट नहीं होता—उस ईश्वर की केवल अस्पष्ट मलक ही मिलती है ।

I To see God in nature ' to attain radiant consciousness of oneself as of natural things is the simplest and commonest form of illumination. Most people, under the spell of emotion or of beauty have known flashes of rudimentary vision of this kind. Where such a consciousness is recurrent there results that partial yet often overpowering apprehension of the Infinite life unmanifest in all living things which some modern writers have dignified by the name of Nature Mysticism.

F Underhill, *Mysticism* 17th Edition, 1944, p 234

(४) उसकी इस प्रकार का श्लोक का आधार उसकी भावुकता तथा प्रकृति का अपार सौंदर्य है ।

इसके अतिरिक्त प्राकृतिक पदार्थों में अपारिधिव की खोज करने के कारण वह भौतिकता की उपधा करता है। सर्ववतनावादी होने के कारण अनेकता में एकता का दर्शन करता है और प्रकृति के रूपखण्डों को ईश्वर रूप मानने के कारण प्रतीकवाद होता है ।

### प्रेमपरक रहस्यवाद

यों तो रहस्यवादी का दृष्टिकोण ही प्रेमी का दृष्टिकोण है<sup>1</sup> और रहस्यवाद में प्रेम का नग्न ईश्वर में तादात्म्य स्थापित करना है । किंतु प्रेमपरक रहस्यवाद में प्रेम ही परमेश्वर है ।<sup>2</sup> प्रेम का अवलम्ब लेकर ही आत्मा अपने मूलस्रोत की ओर प्रवृत्त होती है । इस प्रकार प्रेम रहस्यवाद का सिद्धांत और आधार दानो है ।<sup>3</sup> प्रेम को सर्वस्व मान लन से इस बोधि के रहस्यवाद में यह भी कहा जाता है कि हृदय ही हम ईश्वर तक ले जाने में सफल काम हो सकता है बद्धि में यह सामर्थ्य नहीं है ।<sup>4</sup> प्रेम ही ईश्वर है अतः स्वर्ग और सप्तार दोनों में प्रेम से अधिकतर सुन्दर प्रदलतर उच्चतर वदतर तथा पूणतर कुछ भी नहीं है । ईश्वर के समस्त चमत्कार प्रेम के ही चमत्कार हैं और अध्यात्म प्रेम का ही अदृशास है ।<sup>5</sup> इस प्रकार प्रेम रहस्यवादी

1 The mystics outlook indeed is the lover's outlook  
E. Underhill Mysticism 17th Edition 1944 p 89

२ (क) सर्वव्यापी प्रेम ही ईश्वर है ।

विवेकानन्द प्रमयोग त्रितीय संस्करण जून १९२० पृ० १२२

(ख) स ईश्वर अनिवचनीय प्रेम स्वरूप ।—नारद सूत्र

3 The business and method of mysticism is love  
E. Underhill Mysticism 17th Edition 1944 p 85

4 It is the heart and never the reason which leads us to absolute

E. Underhill Mysticism 17th Edition 1944 p 86

5 The wonders of God are wonders of love Spirituality is the laughter of Divine Love

L. L. Watkin Poets and Mystics First published 19०3

व लिंग आनन्द का स्रोत, जगत का रहस्य और समस्त भूता की जीवन शक्ति है ।<sup>१</sup> प्रेम रूप म ही ईश्वर मनुष्य म निहित है । अतः प्रेम ही मनुष्य की पवित्रतम अभूति और जीवा का सार तत्व है । प्रेम क द्वारा ही मनुष्य अपने स्व का पहचानता तथा इश्वरीय गुणों को आत्मसात करता है । अतः रहस्यवादी पुकार पुकार कर कहता है मर भगवान मरे प्रियमम<sup>२</sup> तुम पूणत मर हा और मैं पूणत तुम्हारा हू । देव ! मुझ या तो प्यार करन दो या मरी मृ सीना ममाप्त कर दो ।<sup>३</sup> इस प्रकार प्रेम रहस्यवादी जीवन का प्रारम्भ, मध्य और अन्त सब कुछ है । पूण आत्मसमर्पण उसका मूल मंत्र है ।<sup>४</sup> अतः रहस्यवादी अपने का ईश्वर के प्रेम म उसी तरह खो देता है जिस तरह बंद सागर में विलीन हो जाता है । इस प्रकार रहस्यवादी के लिए प्रेममय जीवन स बन्कर कोई और जीवन नहीं है । जो प्रेमरस का नहीं पाता उसका जीवन व्यर्थ है । किन्तु रहस्यवादी प्रेम सामारिक प्रेम म नितात निम्न होता ह । वह प्रेम का प्रतिहार नहीं चाहता । ईश्वर का प्रेम नैसर्गिक प्रकाश और समार का प्रेम कृनिम प्रकाश ह ।<sup>५</sup> ईश्वर के प्रेम म वाता<sup>६</sup> और 'छोटा फ लिए स्थान नहीं जाता ।<sup>७</sup> किन्तु सामारिक प्रेम से भिन्न होते हुए भी यह रहस्यवादी प्रेम इस नियम का अपवाद नहीं है कि हमारे सुख का तीन चौथाई भाग दुःख ही है, क्योंकि दुःख का अन्त होते ही प्राप्ति का अन्त भी हो जाता

1 For him it (love) is the source of joy, the secret of the universe the vivifying principle of things

E Underhill, *Mysticism* 17th Edition 1944, p 36

2 The cry of the mystic is my God my love Thou art all mine and I am all Thine 'O let me love or not live

E Underhill, *Mysticism*, 17th Edition p 83

3 Love is the beginning middle and end of virtue  
Its essence is complete self surrender

W R Inge *Christian Mysticism*, p 193

4 The true light is love of God the false light is love of the world

W R Inge *Christian Mysticism*, p 199

5 The true mysticism claims no promises and makes no demands

E Underhill *Mysticism* 17th Edition, 1944, p 92



है।<sup>1</sup> अतः रहस्यवादी दुःख को प्रेम का पूरक मानता है और दुःख और प्रेम के युगल पक्षा पर बठकर ईश्वर तक पहुँचना चाहता है।<sup>2</sup> रहस्यवादी के हृदय में कठना की अजस्र धारा के फूट जाने का कारण यही आध्यात्मिक प्रेम है।<sup>3</sup> समस्त देगा तथा कालो के रहस्यवादी साहित्य के अनमाल मोतियों की आभा हमी अलौकिक प्रेम में लियाई पढती है।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर प्रमपरक रहस्यवाद की निम्न विशेषताएँ मानी जा सकती हैं —

- (१) प्रम परमेश्वर है अन सव याग है।
- (२) ससार म सवत्र ईश्वरीय प्रेम की लीला चन रहो है।
- (३) प्रमरूप ईश्वर मनुष्य क हृदय म मौजूद है।
- (४) अहम क नाग और नि स्वाथ सवा से उसका साक्षात्कार हो सकता है।
- (५) दुःख प्रेम या ली पूरक है
- (६) सम्पूर्ण आरमसमपण इसका मूलमत्र है।

अन्तरहित के अनुसार अपना सजातीय स्वच्छ प्रेमी की भाँति रहस्यवादी भी बिना किसी फल की आशा के अपने आराध्य की सेवा करता है।<sup>4</sup> अतः आध्यात्मिक वातावरण से गमिभूत छायावाद के स्वच्छ द प्रम का रहस्यवादी प्रेम के स्तर को स्पष्ट करना अत्यंत स्वाभाविक है।

प्रकृति और प्रेमपरक रहस्यवाद के उक्त सक्षिप्त परिचय के उपरान्त अब हम यह देखा है कि छायावाद वाग्य के भीतर उनकी अविति किस प्रकार और किन रूपों में हुई है।

- 1 Love is no exception to the rule that our joys may be three parts pain for where pain ends gain ends too  
W R Enge Christian Mysticism p 319
- 2 Watching life he sees in pain the complement of love and is inclined to call these the wings on which mans spirit can best take flights towards the Absolute  
F Underhill Mysticism p 19
- 3 'Mercy is the circle of divine Love  
E I Watkin Poets and Mystics p 59
- 4 I like his type the devout lover of romance then the mystic serves without hope of reward  
E Underhill Mysticism 17th Edition, 1944 p 93

## प्रकृति रहस्यवाद

छायावाद की प्रवृत्तियों और समकालीन पद्यभूमि में हम देख चुके हैं कि किस प्रकार छायावाद—युग में उन्नीसवा गता शी के सांस्कृतिक नवोदयान के परिणाम स्वरूप वेगो और उपनिषदों के कुछ विरतन सत्यान पुवारा ज न गया । हम यह भी जात है कि छायावाद का य को प्ररणा देने वाल प्राय सभी महान वित्तों—विश्वकान्द तिलक, गाधी अरवि रदगार आदि ने उपनिषदा की गिगा को ही भारतीय जीवन का नवनीत मानते हुए जन समाज में यह प्रचारित किया कि सदि के अनेक यवन पणार्थों में एक ही अत्यन्त मून द्रव्य है ।<sup>१</sup> उसी का सा तात्कार भारतीय जीवन का परम उद्देश्य रण है । स्वामी विश्वकान्द ने अपन व्यावहारिक बदान द्वारा जन मन में यह भाव अचोी तरह भर गया कि आत्मा के स्वर का जीवन ही सवा जीवन है, अय सब स्तरों का जीवन मत्यु स्वरूप है ।<sup>२</sup> इसी स उाीन प्रकृति के मुह का घुघ्ट ह्याकर कम म-रम एक बार उस देगकालातात सत्ता क दशन का यन करना ही हि दू नाति का स्वाभाविक गुण बनाया ।<sup>३</sup> ऋषियों मनिषों भक्ता और सन्ता ने अपन जीवन में इसा सत्ता का सागात्कार किया था । इस प्रकार जड चेतन की एकता और प्रकृति में ईश्वर की व्यापकता छायावायियों के लिए कोई नई वम्न नही थी । यह सिद्धान्त उाह परम्परा में ही प्राप्त था । अत युगचतना क अनुरूप समस्त भूतो की समदि प्रकृति में चतना क आरोप तथा उसस साक्षात्कार की गालसा उनक मन में सहज ही उत्पन्न हा गई । यही कारण है कि राजा राममोहन राय विश्वकान्द, तिलक और गाधी की भाति हम छायावाद कालीन कविता में भी वदा और उपनिषदा क मनातन सिद्धान्त—अनकता में एकता और समस्त भूतममूनाय में ईश्वर की अाधि आि—का पुणरूप स जीविन पात है । प्रमा पन निराना और महावी वमा की कविता की आधारगिता भारत क इो प्राचीन सत्या की अनमूनि है । इन कविदो ने अपन निवघो और भूमिकाजा में बार बार यह कहा

१ अत्यन्तता पर पुरुषो—अध्यक्ष ब्रह्म निराकार रूप में सवत्र व्यापक ह ।

कठानिषद तनीय वानी ८

२ विश्वकान्द विविध प्रसंग, पृ० ३५

३ , स्वाधीन भारत ! जय ह । प० ८

है कि छायावादी के मूल म भावों का सम्बन्ध उपनिषद् के भावों से है।<sup>१</sup> अतः उपनिषद् के आधारभूत जब प्रकृति की अनेकता में परिवर्तनशील विभिन्नता में ( छायावादी ) कवि ने एने तारतम्य को खोजने का प्रयत्न किया जिसका एक छोटी असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम में समाया था तब प्रकृति का एक एक अलग अलौकिक यत्न लेकर गगन उठा।<sup>२</sup> यही कारण है कि इस युग की प्रायः सब प्रतिलिपि रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी मिलता रहता है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतना का आरोप भी।<sup>३</sup>

### प्रकृति में चेतना का आरोप

महादेवी जी के शब्दों में हमारी अतः शक्ति भी एक रहस्य से पूर्ण है और घाह्य जगत का विकास हम भी अतः जीवन में ऐसे अनन्त क्षण आते रहते हैं जिनमें हम रहस्य के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इस रहस्य का आभास या अनुभूति मनुष्य के लिए स्वाभाविक रही है अर्थात् हम सभी देवों

१ (क) प्रकृति के अस्तित्व सौन्दर्य में रूपप्रतिष्ठा बिलंबे रूपों में गुण-प्रतिष्ठा फिर इनकी समष्टि में एक व्यापक चेतन की प्रतिष्ठा और अन्त में रहस्यानुभूति का जसा क्रमबद्ध इतिहास हमारा प्राचीनतम काव्य देता है वसा अद्यतन मिलना कठिन होगा।

महादेवी वर्मा दीपशिखा प्रथमावृत्ति १९४२ चिन्तन के क्षण पृ ११

(ख) छायावादी का कवि धर्म के अर्थात् स अधिक दर्शन के ब्रह्म का श्रेणी है जो मूल और अमूल विश्व को मिलाकर पूणता पाता है। वही पृ १३

(ग) ईशावास्यमिह सव के मनन मात्र से ही जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है और हृदय में जिनासा उठती है कि किस प्रकार हम क्षणभंगुर सत्ता के क्षण में उस शाश्वत के मुख का चिह्न देखा जा सकता है।

पत गद्य-पद्य, पृ १७५ ७६

२ महादेवी वर्मा यामा तृतीय संस्करण १९४७, अपनी बात, पृ ८

३ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१), स० २००६, अपने दृष्टिकोण से

के समझ साहित्य में किसी न किसी रूप में रहस्य भावना का परिचय न पाने ।<sup>१</sup> इस कथन के अनुसार रहस्यभावना मनुष्य जीवन के विशिष्ट क्षणों की स्वाभाविक अनुभूति है । अनुभूति की तीव्रता में ही प्रकृति मनुष्य को अनौपचारिक वाणी में सम्भाषण करती हुई प्रकट होती है ।<sup>२</sup> या कहा जा सकता है कि छायावाद में प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति कुतूहल और उसमें चेतना का आरोप भावप्रवण मानव मन का स्वाभाविक बलि अथवा नीचानुभूति का परिणाम है । किंतु जैसा कि हम देख चुके हैं प्रकृति के दिए हुए म चेतन की सहज और प्रथम अनुभूति बलि ऋषिया को हा हुई थी । अतः प्रकृति से अभिभूत हो कर ही ऋषि ने उसमें परम चेतन का देगा किया था । हम यह भी देख चुके हैं कि छायावाद के सौन्दर्य द्रष्टा कवि यन्त्रि ऋषि के प्रति परम आस्थावान् थे । अतः उनकी स्वाभाविक रहस्यभावना को प्राचीन ऋषियों की स्वाभाविक रहस्यभावना से विशेष योग मिला, एसा कहने में कोई बाधा नहा जान पड़ती । ऋषिया की स्वाभाविक रहस्य भावना में प्रकृति संप्रान और चतन है, माय ही मानवीय चेतना से अनुप्राणित और विराट भी । अतः ऋषियों के प्रभाव से छायावाद का कवि प्रकृति में अपनी आत्मा के चेतन को क्षीरने के लिए उद्यत हुआ तीर म्यूल प्रकृति में समष्टि रूप से चेतना का आरोप कर उसमें विराट की क्षीरकी दलन लगा ।

इस प्रकार ब्रह्म और उपनिषदों के प्रभाव से छायावाद की प्रकृति में चेतना का आरोप हुआ<sup>३</sup> और छायावाद के कवि ने जट का चेतन से सम्बन्ध जोड़ा ।<sup>४</sup> अतः छायावाद का कवि यह अनुभव करता है कि जट में चेतना का

१ महादेवी वर्मा, आधुनिक कवि (१) सं० २००६ अपन अटिक्कोण से

२ When our emotions are deeply stirred even Nature speaks to us with voices unheard before

W R Inge Christian Mysticism p 31

३ बालों की साने बाल मरतगण की उपयोगिता जान लने वाला ऋषि जब व हूँ बीर रूप में उपस्थित करता है तब हम उसके प्रकृति में चेतना के आरोप से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते ।

महादेवी वर्मा दीर्घिका, प्रथमावृत्ति १९४२ दिल्ली के कुछ क्षण

४ चेतना में जट का ब्रह्मण यही सृष्टि की हृत्कम्पन ।

बीज निहित है जो जड़ के अर्धना की तोड़कर बाहर निकल आता है।<sup>१</sup> उस यह भी अनुभव होता है कि जड़ चेतन और चेतन जड़ बन बन कर सजन प्रलय का अभिनय रचते रहते है।<sup>२</sup> अपना इसी भावना के आधारभूत वह प्रकृति के अणु अणु को जीवित पाता है<sup>३</sup> और उसमें अपने ही उर की चाह का दर्शन करता है।<sup>४</sup> इसी भावभूमि में वह अपने चारों ओर फटी हुई प्रकृति की वस्तुओं में अपना ही परिचय पाता है।<sup>५</sup> अतः वह घोषित करता है कि सरिता के भी आत्मा है<sup>६</sup> और जलद सामान्य भेष न होकर जीवनद है क्योंकि वह जगज्जीव मत को जिलाता है।<sup>७</sup> इस प्रकार छायावाद का कवि प्रकृति के पदार्थों में चेतना का आरोप कर उ ह आत्मवत् देखता है और उनके साथ तादात्म्य सुख का अनुभव करता है।<sup>८</sup>

### प्रकृति साहचर्य

प्रकृति में चेतना का आरोप तथा उस आत्मवत् देखने के उपरांत छायावाद के कवि में प्राचीन ऋषियों की भाँति प्रकृति साहचर्य की भावना

- १ वही उसमें जीवन अक्षुर जो ताड़ निखिल जग के अर्धना पाने को है निज सत्व मुक्ति जड़ निष्ठा स जग कर चेतन।  
पत पल्लविनी प्रथम संस्करण पृ २५४
- २ जड़ चेतन चेतन जड़ बन बन रवने चिर सजन प्रलय अभिनय।  
पत पल्लविनी, प्रथम संस्करण, पृ ९४
- ३ देखो हे ऐश्वर्य प्रकृति का उसका अणु अणु जीवित।  
पत, स्वर्ण किरण प्रथम संस्करण पृ० २२
- ४ वही चाह है कण कण में जा मरे उर में निश्चय। —वही पृ० ६६
- ५ ज्योतिमय चारों ओर परिचय सब अपना ही।  
निराला परिमल अष्टमावृत्ति पृ० २३३
- ६ पत गु जन तृतीय संस्करण पृ० १४
- ७ जनद नहीं —जीवनद, जिलाया  
जयकि जगज्जीवनमत को  
निराला परिमल अष्टमावृत्ति, पृ० ७४
- ८ तम में कवि का मन गया समा तम कवि का मन की हा सुपमा  
हम दो भी हैं या निरपेक्ष एक ? तब कोई बिगरो सके दम ?  
पत, पल्लविनी प्रथम संस्करण छाया पृ० २८

भी जगी । प्रकृति साहचर्य का बड़ा ही भव्य और मार्मिक रूप हम वन्द्य ऋषियों में देखने को मिलता है । उनके उपा, मरन, वरण आदि के वर्णन प्रकृति-साहचर्य की भावना से सित्त है । ऋषि स्वयं-पुत्री उपा से निवेदन करता है—

दधि, प या की तरह अपने अंगों को विकसित कर, तुम दानपरायण और दीप्तिमान सूप क निकट जाओ । तदनंतर युवती की तरह अत्यंत प्रकाश सम्पन्न होकर, कुछ हसती हुई सूप के सामने अपना हृदय-श्रेया उघारो ।<sup>१</sup> क्या भाँति पृथ्वी पर उगने वाली वनस्पतियों पर मातृत्व का आरोप कर सिंगु हृदय ऋषि कहता है—

ह मातृरूप औपधियो तुम्हारे जन्म असीम हैं और तुम्हारे प्ररोहण परिमित हैं । तुम सौ कर्मों वाली हो । तुम मुझ गारोग्य प्रदान करो ।<sup>२</sup>

ऋषियों के इस उदात्त प्रकृति साहचर्य का प्रभाव अतीनोपासक छायावादी कवि की प्रकृति पर भी पड़ा । अतः उसने प्रकृति को जीवन की चिरसगिनी के रूप में वर्णन किया तथा उसे विभिन्न मानवीय सम्बन्धों में बाँधकर देखा । इस प्रकार छायावादी की प्रकृति देवि, मा, सहचरि, प्राण आदि अनेक रूपों में प्रकट हुई है ।

छायावाद के कवि न माहर्ष्यावस्था में प्रकृति को कभी छोड़ा करते हुए<sup>३</sup> कभी अम्बागत की सेवा और स्वागत करते हुए<sup>४</sup> कभी किसी की प्रतीक्षा

१ कवचतवा सागानां ऽपि दधि देवमिमं क्षमाणम् ।

सस्मयमाना युवति पुरस्तादाविवेगासि शृणुषु विभाती ॥

‘ऋषयः’ १८।१२३।१०

२ शत वा अम्ब घामानि महसमूत वा इह ।

अथागतश्रीं सूपमिमं मे अगदु वृत ॥ ‘ऋषयः’, ७।६७।२

३ उष फँसी हरियाली में  
कौन खरेली खेल रही मा,  
वह अपनी बय बामो में—

पञ्च आधुनिक कवि प्रथम गहराण पर्यालोचन, पृ० २

४ हाँ उम जाना में मिले हुए तुम

करते हुए<sup>१</sup> तथा कभी प्रसन्नवदना<sup>२</sup> कभी म्लानमना<sup>३</sup> कभी हतभागिन<sup>४</sup> आदि विभिन्न स्थितियों और मुद्राओं में देखा है ।

विचार विनिमय और भावों का आदान प्रदान भी छायावादी कवि और प्रकृति के बीच प्रचर मात्रा में देखने को मिलता है । 'तारे से वह भ्रातृत्व भाव से पूछता है कि तुम किसकी राह देखते हो ? वह परदेगी कौन है जिसके लिए तुम इतने 'याकुल हो रहे हो ?' इसी प्रकार वह उपा से पूछता है कि तुम यहाँ पर किसकी बात मानकर आती हो ? तम्हें यह दि य रूप किमने दिया है ? तम किस वस्तु को इस लोक में सबसे अधिक चाहती हो ? त्याग का सरलतामय भाव तुमने किससे पाया है ?' किरण से पूछता है कि तुम आज क्यों बिछरी हो और किसके अनुराग में रगी हो ?' ऋतुपति से प्रश्न करता है कि तुम पुष्पा के प्यास में किसका धीवन भर भर कर मधुकर की पिला रहे हो ?<sup>५</sup> और खद्योत से जानना चाहता है कि वह पोपन के तह में नीचे किसे खोजता रहता है ।<sup>६</sup> प्रकृति से वह अपने नाना प्रश्नों का

सजे बज करते थे सबका स्वागत

घूँघट का पट रोल खिलाते उस प्रकृति का मुखड़ा

जिम समचले थे अम्यागत ।

निराला परिमल अष्टमावृत्ति, पृ० ११२

१ कब से बिचोक्तो तुम को उपा आ बानायन से ?

पट, गु जन, ततीय सस्करण प ४५

२ तह तह बीरुध-बीरुध तण-तण

जाने क्यों हसने मसण मसण

जसे प्राणों से हुए उच्छ्वण कुछ लस ५८,

निराला, तु/मीदास प्रथम सस्करण पृ ११

३ कौन कौन तुम परिहृत वसना म्लानमना भू पतिता सी ?

पट परलविनी प्रथम सस्करण पृ० २९

४ अहा ! अभागिन हो तुम मुझ सी —वही पृ० २९

५ सरस्वती १९२१ जनवरी दिसम्बर भाग २२ स० ४, पृ० २४७ ४८

६ वही पृ० २३४ ३६

७ प्रसाद क्षरना आठवाँ सस्करण, पृ० २६

८ पञ्च वीणा ग्रथि त्रितीयावृत्ति, पृ० २०

९ वही पृ० २६

उत्तर ही नहीं चाहता, उसमें अपनी मनोकामना की पूर्ति भी चाहता है। अतः कभी 'वाद' से कहना है कि मुझ गणन का वह सधन छोर दिखाओ<sup>१</sup> और कभी छाया में प्रायना करता है कि मरे मन का नाप हरो<sup>२</sup> और पर पीडा से पीटित होना सिखाओ।<sup>३</sup> कवि का स्थिति यह है तो प्रकृति भी उसके सामन अनावत रूप में खड़ी हो जाती है और उसमें अपना प्रश्न का उत्तर तथा कामनाओं की पूर्ति चाहती है। कलियों निम्न, गिरि, नक्षत्र आदि के मिस प्रकृति कहती है—

'इन सम्पुटा में कौन छवि जिसको नहीं हम खोजती ?  
गाओ उस भी गीत में — यो बात कवियों ने कहा ।  
जिसके लिए घर से चली कवि ! धल वन वन छानती  
वह प्राणबल्लभ है कहाँ ? वह निखरी रोने लगी ।  
गिरि ने तूरी मुझ से कहा— द्रष्टा ! कहां मरी यथा  
वह कौन विस्मय है, जिसे मैं देखकर निर्वाण हूँ ?  
बाल नखत—'जलते विपल हम किस निठर का गह में ?  
हर प्रातः बनकर आस धू पड़ते पिघल किस पीर में ?'<sup>४</sup>

इस प्रकार क प्रकृति और कवि के बीच विचारों और भावों का आदान प्रदान अनुनय वितन, हास विलास आदि के रागि रागि उदाहरण हम छायावाद की कविता में मिलेंगे।

उपर हम कह आये हैं कि छायावादी कवियों ने प्रकृति-माहचय की प्रेरणा प्राचीन ऋषियों से प्राप्त की। सामान्यतः ऋषिया और छायावादीयों के प्रकृति सम्बन्धी भावादधार अनभूतिजय तथा कल्पना प्रसूत है परन्तु दोनों में एक अंतर भी है और वह यह कि छायावादीयों का प्रकृति का काव्य की पृष्ठभूमि में सामाजिक विवर्णता के विरुद्ध दृष्टिकोचर होना है जबकि ऋषिया का उन्नीसों में उनका नितांत अभाव है। ऋषिया का सामन प्रकृति का साथ सम्बन्ध स्थापित करने में किसी सामाजिक विवर्णता का प्रश्न नहीं था। प्रकृति का प्रागण में स्वच्छ विचरण करने के परिणाम स्वरूप ही प्रकृति उसी सद्गुरी बन गई और उसमें अपना सम्पूर्ण रहस्य उजाग सामन गाल दिया। किन्तु छायावादी कविता का प्रकृति माहचय ऋषिया का भीति आरप्य

१ निराला, परिमन, अष्टमावलि पृ० १४८

२ वन पल्लविकी प्रथम संस्करण प० ३०

३ वही २४

४ रामपारोहिण्ड गद्दकर, हुकार नवम संस्करण प० २० ८१



जीवन का परिणाम नहीं कहा जा सकता। वह मुख्यतः उनकी सामाजिक एवं व्यक्तिगत परिस्थितियों की देन है। वास्तव में छायावाद का कवि 'एक प्रकार से अनात कुलशील बालक रहा जिसे सामाजिकता का अधिकार ही नही मिला। फलतः उसने आकाश तारे फूल निशर आदि से आत्मोपमा का सम्बन्ध जोड़ा और उसी सम्बन्ध को अपना परिचय बनाकर मनुष्य के हृदय तक पहुँचने का प्रयत्न किया।<sup>१</sup> उसके इस प्रयत्न के परिणाम स्वरूप उषा, संध्या फूल कोपल कलरव ममर ओसा के वन और नदी, निशर उसक एकाकी किंगोर मन को सदब अपनी ओर आकर्षित करते रहे और वह जो दय के अनेक सद्य स्फुट उपकरणों में प्रकृति की मनोरम मूर्ति रचकर उस काय मंदिर में प्रतिष्ठित करता रहा।<sup>२</sup>

### प्रकृति सन्देश

इस प्रकार सामाजिकता के अधिकार से वंचित छायावाद के कवि ने जब प्रकृति की सन्नधि प्राप्त की तब उसमें रहस्यद्रष्टाओं की भाँति ही प्रकृति से अनौकिस देग सुनने की भी इच्छा प्रकट हुई।<sup>३</sup> अतः उसने प्रकृति से घूँट उठाकर कुछ बालन तथा अलौकिक स देग सुनाने का आग्रह भी किया।<sup>४</sup> फलतः उसके स्नेहिल आग्रह से स्नेहवत्सला प्रकृति बोल उठी—

लो मैं अमाम का लार्न हूँ स देग तुम्हें।

आआ फिर तुली प्रकृति की गोदी में बठो।

इस प्रकार जब छायावाद का कवि सुनी प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ तब प्रकृति के रूपवत् अर्थित कली किसलय पुष्प डालियाँ मोरे हिलोरें पवत सरिता निशर मध साँझ ऊषा आदि उस कवि का दश दिलाते भेन भरे स देग सुनाते ' तथा गूढ सकेतो में अस्फुट वात कहते-स जान पड़।<sup>५</sup> प्रकृति के इन गूढ सकेतों तथा संदेशों में छायावाद के कवि ने जीवनोपयोगी एवं

१ महादेवी वर्मा क्षीपणिका प्रथमावृत्ति चिन्तन के कुछ क्षण प० १६

२ पन्त, रश्मिद्वय प्रथम संस्करण परिदृशन प० २

३ लाये कौन सन्देश नये धन।

महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण, प० ६६

४ क्या साती हो ? स देग किसका है ? कौकिल बोला तो।

माखनलाल चतर्वेदी हिमशिरोटिनी, तृतीय संस्करण, प० १४

५ पन्त अतिमा, प्रथम संस्करण पृ० १२६

६ पन्त, गुञ्जन तृतीय संस्करण पृ० ७३

७ पन्त गुञ्जन, तृतीय संस्करण, पृ० ७४

आध्यात्मिक दोना प्रकार के तत्वा अथवा आत्मा को सचित किया है । जीवनाश के क्षण म वह एक बार साथ और उपा के आगन म जीवन क हास अधुमय होने का आभास पाता है<sup>१</sup> तो दूसरी ओर हिलोरा' स हंस हस कर जन्म मरण के आलिंगन का संगीत सुनता है ।<sup>२</sup> इसी तरह मालती कुज में चन्द्रिका और अधरा का मिलते देखकर वह मन म मुख और दुख दोना क स्थित होने का ज्ञान प्राप्त करता है ।<sup>३</sup> प्रकृति क इा व्यापारा स गिाया ग्रहण कर वह इस सिद्धान्त तक पहुँचता है कि मुख दुख क मधुर मिनन स ही यह जीवन परिपूर्ण हो सकता है ।<sup>४</sup> इसी प्रकार प्रकृति म जीवन के उपास सिद्धान्तों को अपनाते क कारण वह उठनी हुई लहरो म अम्य उसाह का पाठ सीखता है ।<sup>५</sup> 'जग स मुन्दर सुखमय जग जीवन की कहानी मनता है ।<sup>६</sup> फूल म त्याग तथा सेवा का भाव ग्रहण करता है'<sup>७</sup> और ओस स विश्व के सुगन्ध, विगन्ध एवं प्रेममय होने का मन्देश सुनता है ।<sup>८</sup>

आध्यात्मिक क्षण म वह प्रकृति से जगत की नश्वरता एवं शाश्वतता दोनों की गिाया ग्रहण करता है । अतिबाला उम यताती है कि यह जगत केवल अमार स्वप्न है ।<sup>९</sup> विरस डालिमा यह स्मरण कराती है कि यह जग

- १ पन्त, पल्लविनी, प्रथम संस्करण पृ० २५
- २ फिर जन्म मरण को हस हसकर हम आलिंगन करती पल पल फिर फिर अतीम स उठ उठ कर फिर फिर उमम हा हो आगल ।  
पन्त, पल्लविनी, प्रथम संस्करण पृ० १२७
- ३ निपटे सोते ये मन म, मुख दुख दोनो ही एने ।  
चन्द्रिका अधरी मिनती मानती कुज म जन्म ।।  
प्रसाद, अमू द्वाय संस्करण, पृ० ४८
- ४ पन्त पल्लविनी, प्रथम संस्करण पृ० २२४
- ५ उठ उठ लहरों पड़ता यह हम कुन विनोक्त न पायें,  
पर इग उमम म बह बह निरत आग बानी जावें ।  
पन्त, गुंजन, तृतीय संस्करण प० ११
- ६ गाथा रग प्रात उठकर गुन्दर, सुखमय जग जीवन । -व०, प० ०
- ७ हसमुख प्रसून सितलाने पन भर है जो हस पात्रा  
अपने उर की सौरभ स जग का आगन भर जाओ ।  
पन्त गुंजन, तृतीय संस्करण प० ३१
- ८ पन्त, पल्लविनी, प्रथम संस्करण, प० २२०
- ९ पन्त पल्लविनी प्रथम संस्करण प० ६

परिवर्तनशील तथा क्षणभंगुर है।<sup>१</sup> किंतु जगत की उक्त क्षणभंगुरता और परिवर्तनशीलता में वह शुभ और चिरंतन का दान भी करता है। निदान यह कहता है कि कटीवरी डाल जीवन की गाली की सूत्रिका है<sup>२</sup> और यह अनित्य जगत् नित्य का ही नतन है।<sup>३</sup> इस प्रकार सिद्धांत रूप में यह कहता है कि अचिर में चिर का अवयव ही विश्व का तत्त्वपूर्ण दान है।<sup>४</sup> इसमें यह स्पष्ट है कि छायावाद का कवि प्रकृति को नश्वर और शाश्वत दोनों रूपों में अपनाता है।

प्रकृति से जीवनोपयोगी एवं आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करना तो प्रकृति रहस्यवाद का प्रधान पक्ष ही है किन्तु छायावाद की प्रकृतिमूलक नश्वरता अथवा क्षणिकता पर गकराचार्य के मायावाद और बौद्धमत के क्षणिकवाद का तथा उसकी गत विषयक शाश्वतता अथवा सत्यता की दृढ़ भावना पर उपनिषद् गवदान और हांगल के दान का जो गत को सत्य प्रमाणित करते हैं प्रभाव माना जा सकता है।

### अनेकता में एकता

इस प्रकार प्रकृति से सदेश देने के लिए जब छायावाद का कवि प्रकृति के बाह्यरूपों से हटकर उसके अंतर्गत में प्रवृत्त हुआ तब उसे निश्चित प्रकृति यह कहती हुई प्रतीत हुई कि उसमें अमृत सत्य अंतर्हित है।<sup>५</sup> अतः उसने अपने चारों ओर फीकी हुई जड चेतन रूप प्रकृति में एक ही तत्त्व की प्रधानता घोषित की।<sup>६</sup> फलतः वह जन थल मारुत याम आदि में उसी एक तत्त्व की याप्ति का अनुभव करने लगा और सम्पूर्ण प्रकृति उस एक ही कर से अनवरत रगा यात्र अनेक कुसुमों का गुधा हुआ एक सुन्दर हार

१ हम भी हरी भरी या पहिल पर अब स्वप्न हुए वे स्नि।

पल्लविनी प० ८

२ पत गुंजन ततीय सस्वरण प २२

३ पत पल्लविनी प्रथम सस्वरण प० ८४

४ पत पल्लविनी प्रथम सस्वरण प० ८४ ८५

५ निमित्त प्रकृति कहती रे उसमें अमृत सत्य अंतर्हित।

पत स्वर्ण विष्णु प्रथम सस्वरण प० २१

६ एक तत्त्व की ही प्रधानता कहो उसे जड या चेतन।

प्रसाद, कामायनी द्वितीय सस्वरण प० ११

७ तल धन मारुत व्योम में जो छाया है सत्र ओर।

प्रसाद स्वप्नगुप्त, सप्तम सस्वरण प्रथम अंक, प ४५

प्रतीत होने लगी ।<sup>१</sup> इस प्रकार छायावाद के कवि ने प्रकृति की अनेकता में एकता का भावना कर एक को ही इस जगत के विविधाभास का धारण बनाया<sup>२</sup> और उमा 'एक' में अनन्त का विकास देखा—

उसमें अनन्त का है निधास  
वह जग जीवन में ओत प्रोत ।<sup>३</sup>

अनन्त उमा यह स्पष्ट अनुभव हान लगा कि उस एक के छोटे उर (सूक्ष्म) में ही स्पष्ट प्रकृति के समस्त अवयव जल पात स्वच्छ मूल पत्र, रूप रंग आदि-दिग्गुण हैं<sup>४</sup> जो सृष्टि काल में जगत के प्रपञ्च में बल जाते हैं ।<sup>५</sup> इस प्रकार सूक्ष्म में स्पष्ट और स्पष्ट में सूक्ष्म की अनुभूति द्वारा छायावाद का कवि जीवन और प्रलय दोनों में एक ही प्रकार सन्तुष्ट है ।<sup>६</sup> अनन्त जसा कि प्रकृति रहस्यवाद का पक्ष है छायावादी का कवि यह घोषित करता है कि हम भी उसी ज्योति के रूप हैं जिसमें हम जगती का आगमन प्राप्त है<sup>७</sup> तथा अप्रमाण मन आत्मा आदि उस परम ज्योति अथवा सत्य के ही भाग्य हैं, अथवा इन सबमें एक ही चिर तन सत्य ईश्वर प्राप्त है ।<sup>८</sup> कविका इगी आख्यामित्र दूष्टि के कारण छायावाद की प्रकृति घट रूप आदि में भरे जल को एक रूपता के समान अनन्त रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई (अनन्त) प्रकृति के लघु लृण और महान बल कोमल कलियाँ और स्थिर पवन निविड अचकार और

१ जग का एक देखा तार ।

बन सुमन, बहु रंग, निमित्त एक सुन्दर हार,  
एक ही कर सगुणा, उर एक गोभा भार ।  
निराला गीतिका प्रथम सस्वरण प० २२

२ एक ही तो असाम उल्लास, विषय में पाता विविधाभास,—

पत पल्लव, चतुर्धावति प० ८०

३ पल्ल पल्लविनी, प्रथम सस्वरण, प० २५५

४ पल्ल, पल्लविनी प्रथम सस्वरण, प० २५५

५ या ही अनेक रूपी अनन्त कभी पुत्राया  
सीता उसी की जग में सबमें बही समाया ।

प्रमाण कानन-कुसुम पंचम सस्वरण प० ६

६ महादबी कर्मा आपुनि कवि (१) चतुर्थ सस्वरण, प० ५२

७ पत्र पत्रविनी, प्रथम सस्वरण, प० १५६

८ अप्रमाण मन आत्मा कवन भाग्य हैं सत्य के परम  
इन सबमें चिर व्याप्त ईश के मुक्त सच्चिदानन्द तिरन्ता ।

पल्ल स्वर्णविरण, प्रथम सस्वरण प० १३३

उज्ज्वल विद्युत् रेखा मानव की नघुता विगलता कीमलता कठोरता चचलता निश्चलता और माह ज्ञान का बबल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट से उत्पन्न सहोदर प्रतीत होने लग ।<sup>१</sup>

### प्रकृति में विराट का आरोप

इस प्रकार जब छायावाद के कवि को प्रकृति के सर सगित नदी नद च द्र नभत्र, पवत पुष्प आदि विराट क सहोदर प्रतीत होने लग तब उसके लिए प्रकृति में विराट पुरुष तथा विराट प्रकृति नारी का सौंदर्य देखना अत्यन्त सहज और स्वाभाविक हो गया । उसकी इस भावना को पनपने के लिए भारतीय दशन वेदात् की उबर भूमि भी मिल गई । अतः हम छायावाद की कविता में कल्पना और विचार के सहार उपा<sup>२</sup> वसत मूय गणि तारे, तुषार<sup>३</sup> पुष्प<sup>४</sup> सागर<sup>५</sup> बादल<sup>६</sup> वण<sup>७</sup> सध्या<sup>८</sup> आदि के आधारभूत विराट पुरुष तथा विराट प्रकृति नारी क बड ही प्रचण्ण मार्मिक अथवा हृदयग्राही रूप देखने को मिल जाते हैं । इस प्रकार प्रकृति में विराट का आरोप कर छायावाद का कवि उसकी हर समय बदन कराने की कामना करता है ।

### ईश्वर दशन

वेदात् के अनुसार प्रकृति का यह विराट रूप ईश्वर का ही प्रकट रूप है और इसी में ईश्वर की आभा तरंगित होती रहती है । छायावाद का प्रकृति प्रेमी कवि वेदात् के उक्त सिद्धा त<sup>९</sup> का अपनाकर प्रकृति में ईश्वर की खोज करता है ।<sup>१०</sup> अतः विश्व क समस्त भूत समदाय में उस ईश्वर का प्रकाण निखाई देता है । इसी अलौकिक प्रकाण में कभी उस उडते पत्तों के साथ उससे

१ महादेवी वर्मा सा। पगीन चतुर्थ सस्करण अपनी बात पृ ८

२ देखिए पत स्वणकिरण, प्रथम सस्करण पृ २१

३ शोणा ग्रियि न्तितीयावति पृ० १०

४ " पल्लव चतुर्थविति प० ७३ ७४

५ प्रसाद कामायनी न्तितीय सस्करण पृ० ३४

६ , निराला, परिमम अष्टमावति प० १५०

७ वही पृ १४५

८ , पत रश्मिवध प्रथम सस्करण, प० ६४

९ यह विराट ससार तामु प्रकट रूप है ,

या में अगन की आभा राजत अनूप है । -प्रसात् प्रेम राज्य

१० तुम्हें सोजने छाया वन में अब भी कवि विध्यान ।

पन्त, गुञ्जन तृतीय सस्करण, प० ६६

सुकुमार' मिल जाते हैं<sup>१</sup> कभा द्रुम, पल्लव, सुमन आदि म ईश्वर की निखी हुई कथा दिखलाई पड़ जाती है<sup>२</sup> और कभा विश्व-जनता के बाच उम अपन 'प्यारे का दशन हो जाता ह'<sup>३</sup> इस प्रकार यह विश्व छायावाद के कवि क लिए ईश्वर का 'अनंत मंदिर ह'<sup>४</sup> जिसम वह मंदिर के नाम 'ईश्वर का निरम दगन किया करता ह ।<sup>५</sup> इस मंदिर के समस्त उपकरणों—सागर नदी लहर चाँद तार, सूर्य आदि—म वह ईश्वर का मगीत और गुणगान<sup>६</sup> भी सुनता है जो उन उसका आत्मा क अमरत्व का बाध नी कराते है ।<sup>७</sup>

जसा कि पहल कहा जा चुका है छायावाद का कवि विवेकानन्द से प्रभावित था । स्वामी विवेकानन्द न ईश्वर की आदि शक्ति रूपिणी जगन्मवा क रूप म भी देखा था । अत उनक प्रभाव म छायावाद का कवि प्रवृत्ति म ईश्वर का दगन जगन्माता के रूप मे भी करता है । यह प्रवृत्ति निराला पन्त' और 'दिनकर' म स्पष्ट दिखाई पड़ती है । निराला जी का प्रतीत हाता है कि जगन्माता ही पत्रा के झुरमुट म नूतन स्वर सुनाया करती है<sup>८</sup> और पत जी<sup>९</sup> और दिनकर जी<sup>१०</sup> ता उसकी ज्यातित छ्वा का दशन भी करत पाय जाने हैं ।

१ पन्त पल्लविनी, प्रथम सस्करण प० ६९

२ द्रुम-द्रुम मे परलव पल्लव म सुमन सुमन म वन वन म,  
कथा तुम्हारी लिखी हुई है सारे जग के जीवन म ।

गोपालचरण सिंह आधुनिक कवि १९४३ प० ३८

३ सख विश्व-जनता म प्यारे हम तमका पाते हैं ।

प्रसाद, कानन कुसुम पंचम सस्करण, प० ६१

४ प्रसाद, कानन-कुसुम, पंचम सस्करण प० ६

५ वही प० ४

६ वही प० १२

७ दूर वन के ओ राजकुमार ! अखिल उर उर म तेरे गान  
मधुर इन गीता से सुकुमार, अमर मेरे जीवन ओ' प्राण !

पन्त, गु व्रत, तृतीय सस्करण प० ८३

८ निराला शीतिका प्रथम सस्करण, प० ६४

९ शीण शापाकर की छाया म नखिली बन, की बरुण-सुकार,  
माँ ! तय तूने मुझ लिखाई अपना ज्यातित-छटा अपार ।

पन्त, शीणा प्रथि, शिनीपावति, प० ५०

१० गाल दृग दला प्राची और अतक चरणो का शृ गार,  
तुम्हारा नव उन्नित रूप व्योम म उठता कुन्तल भार ।

रामपारा सिंह 'दिनकर' रसवन्ती, प० १०

## इश्वर दशन की अस्पष्टता

किन्तु प्रकृति रहस्यवादियों की भाँति ही छायावादी कविया का प्रकृति में ईश्वर का उक्त दशन प्रायः अस्पष्ट ही रहता है। दूसरे गानों में उसे प्रकृति में किसी अलौकिक सत्ता का आभास तो मिलता है किन्तु साक्षात्कार नहीं हो पाता। इसी से छायावाद की कविता में कतूहल अथवा जिज्ञासा की भावना की प्रधानता है। इस कतूहल और जिज्ञासा के मूल में छायावाद क कवि की प्रकृति में ईश्वर के स्पष्ट दशन की असमर्थता ही है जसा कि निम्न पक्तियों से स्पष्ट है—

हहर गया क्या तरु पूज यो अचानक है  
 किसलिए घहर उठा यो घनघोर है ?  
 कप उठे हृप से दिभोर हो क्या शल सभी  
 मच गया सागर में क्यों बड़ा हिलोर है ?  
 बोल उठ पादप के कोटरो में क्यों विहग  
 मोद मत्त हो क्यों नाच उठा मोर है ?  
 मैं न देख पाया वह आया किस ओर से था  
 और किस ओर गया मरा चित चोर है ।<sup>१</sup>

इस प्रकार छायावाद का कवि अपने चित चोर का ठीक ठीक पता न पाने पर अरे कहीं देखा है तमने मुझ प्यार करने वाले को ?<sup>२</sup> की रट लगाता है और यदि कहीं संयोग से उसके ठौर ठिकाने का पता लग गया तो बार बार 'खोनी प्रियतम खोली द्वार ३ की पुकार लगाता है। और अत्यंत आतुरता और विकलता से कहता है—

मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्रान समा जा रे ।<sup>४</sup>

किन्तु उसके प्रिय गान का यह सारा प्रयत्न विफल जाता है क्योंकि उसका प्रियतम प्रायः कनक किरन के अंतरान से लुक छिपकर ही चलाता है ।<sup>३</sup> यदि अत्यधिक अननय विनय के उपरान्त वह सामने आता भी है तो गणि मुख पर घूघरा टाले हो ।<sup>५</sup> अतः वह अपने प्रियतम की स्पष्ट आँकी देखने में असमर्थ ही रह जाता है। इसी से वह उसके गणि मुख के स्थान पर उसकी निम्न गीतों छाया को देखकर ही सन्तुष्ट हो जाता है। अन वह

१ गोपालगण सिंह आधुनिक कवि १९४३ आत्मव्या ५० ४

२ प्रसाद लहर तृतीय बार ५० ३८

३ कवी क्षरणा आठवाँ संस्करण ५० १६

४ कवी लहर तृतीय बार ५० ३८

५ कवी चन्द्रगुप्त नाटक का एक गीत

६ कवी, आसू दशम संस्करण, ५० १९

प्रवृत्ति से अधिक से अधिक स्तना ही जान पाता है कि—

ह विराट । ह विश्वम्ब । तुम  
कुछ हो एसा होता भान—  
मद गभीर धीर स्वर सयुक्त  
यही कर रहा सागर गान ।<sup>१</sup>

और यदि कभी उसका चिन्तमान उसे अबोध और अज्ञान जानकर उसके सुख दुःख का सट्टकर बन भी जाता है तो वह उसे अपने अज्ञानवश पहचान नहीं पाता ।<sup>२</sup> कभी ऐसा भी होता है कि उस उसका प्रियतम मध्या क आलाप में हसता हुआ फिसाई दे जाता है किन्तु जब वह उसका गुणगान करने लगता है तो वह सद्य आँखों से ओझल हो जाता है ।<sup>३</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाणी कवि का चिर परिचित प्रियतम प्रायः छायारूप में ही उनके सामने आता है ।<sup>४</sup> अतः हम कह सकते हैं कि छायावाणी कवि को प्रवृत्ति में सामान्यतः ईश्वर की अस्पष्ट थलक हा मिलती है उसका स्पष्ट अथवा खलबल दशन नहीं होता ।

### प्रतीकात्मकता

प्रवृत्ति रहस्यवाणी प्रावृत्तिक सौम्य के माध्यम से मन और आत्मा यहाँ तक कि ईश्वरीय सौन्दर्य का भी अनुभव करता है । किन्तु उसका यह अनुभव बणनागत होता है । अर्थात् उसकी अभिव्यक्ति भाषा में, चाहे वह श्रितनी ही विकसित क्यों न हो सम्भव नहीं है । जिन भाषा की वाग्मयिक अभिव्यक्ति नहीं हो सकती उनकी अभिव्यक्ति प्रतीका द्वारा ही हो सकती है

१ प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण, पृ० ३४

२ न जाने कौन, आय छुतिमान । जान मुझको अबोध अज्ञान,  
मुझने तो तुम पथ अनजान फूक दते छिन्ना में गान  
अहं सुख दुःख के सट्टकर मौन । नहा कह सकती तुम हा कौन ।  
पन्न पत्रव, चतुर्थावलि पृ० २२

३ हुआ था जब सध्या आताक  
हम रहे थे तुम पश्चिम ओर  
विहंग खबनकर मैं चिन्चोर  
गा रहा था गुण किन्तु बगर  
रह तुम नहा वहाँ भी शोर ।

पन्न वागा-शशि द्वितीयावलि पृ० १३

४ मन्दि कौन तम में परिचित सा, मुधि सा छाया सा आता ?

महाश्वी वर्मा यामा ननीन ४० पृ० ९८



क्याकि प्रतीक उस सत्य क प्रकाशक है जिनके प्रकाशन म वाणी अममथ होती है । इस प्रकार भूर्तिमत्ता रहस्यवादी भाषा की आत्मा है इस कारण जिस भाव की अभिव्यक्ति असम्भव है उसकी जोर सकेत ही किया जा सकता है । रहस्यवाद म प्रतीको का प्रयोजन वषणातीत आत्मानुभूतिया को नाटकीयता एव चित्रात्मकता द्वारा हमारी ग्राहक कल्पना के भीतर जाना है ।<sup>1</sup> उस प्रकार प्रतीका की सायकता उनके उन रूपा म नहीं है जिन रूपो म वे हमारे सामन ह प्रत्युत उस सत्य म है जिसकी ओर वे सकेत करत हैं ।<sup>2</sup> अर्थात् वे व्यक्त म किसी विषय तत्व का अथवा विषय म सामान्य का या सामान्य म किसी सावभौम सत्ता का आभास देते है और इन सब के ऊपर नश्वर म अनश्वर की याको लिप्याते है ।<sup>3</sup> इसी म रहस्यदण्डा ऋषिया ने कहा था—

पश्य त्वेवस्य कायम<sup>4</sup>

अर्थात् तम प्रकृति देवी क सौम्य को जो मूत रूप म भगवान का काय है देखो और उसम प्रसन्नता प्राप्त करो ।

हर देव जोर वान क रहस्यवाल्या ने अपनी रहस्यमयी भावनाओ का प्रतीका के माध्यम म व्यक्त किया है । छायावाद का काय भी उस दृष्टि म बहुत समझ है । अनभति जोर कल्पना के बभव द्वारा छायावादी कविया— प्रसाद पन्त निराना महाश्वी रामकुमार वर्मा माखनान चतुर्वेदी आदि न जनकानक रहस्यात्मक अप्रस्तुत विधाना की सृष्टि की है ।

- 1 The function of symbolism is to bring metaphysical ideas within reach of the imagination by presenting them in a dramatic or pictorial form

Gerald Bullett The English Mystics P 16

- 2 Symbol is some form of external existence immediately presented to the senses which however is not accepted for its own worth as it lies thus before us in its immediacy but for the wider and more general significance which it offers to our reflection

Hegel The Philosophy of Art Vol II 1916 P 6

- 3 A Symbol is characterized by a translucence of the special or of the universal in the general above all by the translucence of the eternal through and in the temporal (Coleridge)

The Stalemans Manual Complete Works  
Vol 1 P 407 8

छायावादी व रहस्यात्मक काना में स्वप्नपरक प्रतीका की बहुतायत है।<sup>१</sup> परम्परागत प्रतीक यथा चालक शीपक शलभ बुलबुल फर<sup>२</sup> हंस<sup>३</sup> आदि का प्रयोग भा जात्मा परमात्मा व सम्बन्ध का चक्र हुआ है।<sup>४</sup> किन्तु छायावादी में रस का एक प्रतीक प्रायः प्रकृति व अधरक्षेत्र में ही लिया गया है और य उनमें ही नवीन व जितनी नवीन छायावादी कवि का कल्पना।

छायावादी कवि की लालसा थी कि रूप की लघु विराट कल्पनाएँ समार व सुन्दरतम रंगों में जिम तरह अंकित थी उसी तरह रूप तथा नाव ताजा व अल्प में साधक अवस्थान भी आवश्यक है।<sup>५</sup> इन छायावादी में उद्धत पता चहरा के हाथ<sup>६</sup> सरिता व प्रवाह का प्रतीका से मह्य और उसकी महिमा की आर वड ही मार्मिक रूप में गहन किया गया है।<sup>७</sup> शान्त, रजनी 'सन्ध्या' आदि के आधारभूत विराट की वडो ही सन्तारम काल्पनिक सृष्टि है। रहस्यवादी काव्य में इस वा व प्रतीका का वडा महत्व है और यह हिन्दी के रहस्यात्मक साहित्य का श्यावाद का एक वडा दन है।

### प्रेमपरक रहस्यवाद

छायावादी युग में साहित्यिक जातीयता के परिणाम स्वरूप एक साधनात्मक सतुलामय त्याग और चारित्र्य का विकास हुआ जिमका व्यापक प्रभाव छायावादी का प्रेम भावना और उसका अभिव्यक्ति पर भी पडा। स्पष्ट है कि छायावादी का कवि योगी अथवा रत्ना नदी था किन्तु विवकान्त अरवि<sup>८</sup> और टगोर आदि के प्रभाव में वह काविक प्रेम का अपना वास्तविक रूप में ही स्वीकार नता कर सकता था। एक अतिरिक्त रीतिकान्त कविता में प्रेम जसो कुछ सू में विन्दु चिरस्त्रन वस्ति व परन पर भी वह काव्य या अन उसकी प्रतिभिया स्वरूप वह पत्रिय निश्चय अथवा निरपन प्रेम की

१ दमिए महादेवी वमा थापुनि कवि (१) चतुर्थ मन्तरा पृ ५५

२ वनी,

३  
 ४ राजहंस ' यज्ञ रीत चान  
 नू पिजरवद्ध चना जेन  
 वनन अपना ही जाय काम ।

सामहृष्ण दास उवाचन सरस्वती नवम्बर १९१०

५ प्रगा कावापना त्रितीय मन्तरा पृ० ३३

५ निगारा प्रथम-मध्य त्रितीयकवि पृ० ११६

६ का पत्रिका प्रथम १० पृ

७ अन्त धोला-शक्ति, नितावावति पृ ५६

ओर उन्मुख हुआ। यही कारण है छायावादी कविता का मूढम अतीन्द्रिय प्रम तथा सौन्दर्य स अनुप्राणित होने का। उस प्रकार जब छायावाद का काविक प्रम भी इन्द्रियातीत प्रम की परिधि में पहुँच गया तब वह रहस्यात्मक प्रम के स्तर को स्पष्ट करने लगा और उसमें एन्द्रियता की मात्रा स्वल्प हो गई।

जसा कि हम देख चके हैं रहस्यवादी प्रम उस ओर उन्मुख जाता है जहाँ स्वाय और कामना का स्थान नहीं है जहाँ आत्मात्मक की कामना जीवन का मोल है जहाँ दुःख प्रम की परधार्ई है जहाँ वह प्रभु का रूप धारण करता है और जहाँ प्रम की बसोटी अपन अस्तित्व का मिटा कर प्रिय के प्रति पूण आत्मसमर्पण कर देना है। कहन की आवश्यकता नहीं कि छायावाद का प्रम काय भी इस प्रकार की निमग्न रहस्यात्मक प्रम भावनाओं से परिपूण है।

प्रमपरक रहस्यवादी में प्रम ही परमेश्वर है इस सिद्धांत का छायावादी का कवि बड़ मनोयोग से अपनाता हुआ पाया जाता है। उत वह दन्ता के साथ कहता है—

ज मैं प्रम जहाँ प्रीति जहाँ एकरसता  
समता सहानभूति वहाँ ब्रह्म प्रसता।<sup>१</sup>

रहस्यवादी की भाँति ही छायावादी का कवि प्रम के क्षेत्र में क्षणभंगुर काविक सौन्दर्य से दूर रहने और ईश्वर के स्निग्ध शान्त गम्भीर तथा शाश्वत महासौन्दर्य पर रीजन की सीख देता है—

क्षणभंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मन देतो ' देतो' !  
उम सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में धार्ई है—

ओर उसी सुन्दरतम का सुन्दरता में प्रतिक्षण स्नान करने की कामना करता है—

मैं सुन्दरता में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण  
वह बन न बर्गन।<sup>२</sup>

क्याकि उमरा अनुभव है कि प्रम मुनीय में स्नान करने में ही मन पवित्र और उत्साहपूर्ण हो सकेता है—

१ डा० देवराज प्रणयगीन पृ० ६५

२ प्रगाँव प्रम काविक तनीप मन्तरण पृ० ३०

३ पन्न उतरा प्रथम संस्करण पृ १३०

सद्यः स्नात हुआ मैं प्रम सुतीथ म—  
मन पवित्र उत्साहपूर्ण—सा हो गया १

अतः वह चनावनी देता है कि रूपजय सासारिक प्रम किंवा मोह कभी भी पवित्र, अकल्पित निष्काम ईश्वरीय प्रम का स्पर्धी नहीं हो सकता। कारण सासारिक प्रम यत्किंगत होता है किन्तु ईश्वरीय प्रम अत्यन्त उत्तर और अनन्त है। उसमें ( सासारिक प्रम ) और इसमें ( ईश्वरीय प्रम ) शल और सरिता का सा अंतर है—

यह जो केवल रूपजय है मोह न उसका स्पर्धी है  
यही यत्किंगत होता है पर प्रम उत्तर अनन्त अहो  
उसमें इसमें शल और सरिता का सा कुछ अंतर है।<sup>२</sup>

इस प्रकार छायावाद का कवि सासारिक प्रम का तिरस्कृत कर ईश्वरीय प्रम को जो रहस्यवाद का पक्ष है अपनाता हुआ पाया जाता है। इसीलिए प्रम उसका लिए प्राणों का वध नहीं है प्रत्युत सजन और मुक्ति है<sup>३</sup> अतः स्वतः सत्य शिव मुक्ति और आनन्दमय है—

प्रम सत्य शिवसार प्रम म र आनन्द समाया।<sup>४</sup>  
इस प्रम का अभाव में मनुष्य जीव मन है अपन आप से ही सीमित है। इस अपना कर ही वह अमरत्व प्राप्त कर सकता है—

प्रम बिना जन ह जीवमृत  
प्रम बिना अपन म सीमित  
मित्रता जहाँ प्रणय चरणामृत  
मत्य न आती पास तहाँ<sup>५</sup>

प्रम की एग्री विशाल व्याख्या करके छायावाद का कवि ईश्वर म याचना करता है—

हम ही बहाँ मन लोक म उस लोक म भू लोक म  
तव प्रम पय म ही चलें ह नाथ ! तव आलोक म।<sup>६</sup>

- १ प्रमा सरना आठवाँ संस्करण पृ० १८
- २ प्रमा प्रम पयिक तनाय संस्करण पृ० २२
- ३ पन स्वणभूति, प्रयम संस्करण पृ० १४४
- ४ पन स्वणभूति प्रयम संस्करण पृ० ३३
- ५ पन स्वणभूति प्रयम संस्करण पृ० १४६
- ६ प्रमा कानन-कमुम पवित्रा संस्करण पृ० ४१

## प्रेम सवव्यापी ह

प्रमदपरक रहस्यवाङ्मय प्रम की परमशक्ति है जो वह सवव्यापी है । उसी की शक्ति जगत में सवव्यत्र चल रहा है । उस तत्त्व का अभिव्यक्ति प्रसाद जो त नामावली में स प्रकार की है—

यह शक्ति तिसरी विक्रम चला

यह मूल शक्ति थी प्रम का ।<sup>१</sup>

प्रम प्रकाश पन्न जो पन्न श्रीडन आभिनव मदन आराधन जाति प्रम की कविता का जो किलरन हुम पान है । उनके निरुद्ध प्रम ही बचपन का हास यौवन का विनास प्रौढता का युद्ध विकास जरा का अतनयन प्रकाश तथा जन्मति का हुनास जीर मरुत का दीप निश्वास है ।<sup>२</sup> इस प्रकार वह हर शक्ति में और हर जगह प्रम का दशा करते हैं—

जनिन सा नोक नार म

वहाँ नहीं है प्रम साँस सा सज क उर म ।<sup>३</sup>

उनका यह भी विश्वास है कि प्रम का कामन नार स ही विश्व का सम्पूर्ण जीवन बधा हुआ है । यदि यह प्रम न हाता तो जगत में चारों ओर हाहाकार मत्र जाता—

बध है जोवा नार

सबम छिपी हुई है यह झकार ।

हो जाता समार

नहा ता दारुण हाहाकार ।

प्रम की अन्वयता और सापेक्षता की दृष्टि से प्रसाद का प्रम पवित्र आत्म रचना है प्रम पवित्र का प्रम सव व्यापी और अनन्त है । उसका कही ओर नार रहा है वह अपरिमित है कपानि प्रभु का स्वरूप है अत एक शक्ति में बध कर न । र सता । ईश्वर रूप हान के कारण वही जगत का धारण है और उसका क जापण में निच कर मिट्टी का तत्रपिण्ण सभी त्रि रात फेरा किया करने हैं । मरु धरणी गिरि सिन्धु सभी अपन अन्तर में उसी की गर्मा आन संहित गग हुए हैं ।<sup>४</sup>

१ प्रसाद कापायनी त्रितीय संस्करण, पृ० ८६

२ पन्न पन्नव त्रुयावति पृ ६

वहा पृ० ७

३ पन्न पन्नविनी प्रथम संस्करण पृ० १५१

४ पन्न पन्नव त्रुयावति पृ ७

५ प्रसाद प्रम पवित्र तृतीय संस्करण पृ २०२

पन्त और प्रसाद के उस प्रेम दर्शन पर स्वामी दिवकानन्द का प्रेमयोग का, जिसमें प्रेम को ईश्वर और सब-यापी बना गया है और जिसके बिना यह सत्कार क्षण भर में लूण हो जायगा स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।<sup>१</sup>

### दुःख प्रेम का अंग है

रहस्यवादी जीवन में दुःख की बड़ी भूमिका है क्योंकि वह हम मानव-आत्मा का नित वा मधुमय भाजन है।<sup>२</sup> अतः रहस्यवादी दुःख को सह्य अपनाता है। दुःख के घटाटाप वापना में ही वह अपने प्रिय के दर्शन की आशा करता है—

मर वियाग के नभ में कितना दुःख गी वातापन ।

क्या बिह्वल विद्युत ही में होगे प्रियतम के दर्शन ?<sup>३</sup>

दुःख का अपना ही यह प्रवृत्ति छायावादी के प्रायः सभी कवियों में समान रूप में पाई जाती है। पन्त जा के यहाँ यहाँ प्रेम अंग है तो पीडा अंग प्रेम और पीडा की अलग-अलग मत्ता नहीं है। यही तब कि प्रेमा ही रग रग पीडा की बनी हुई है और व्यथा प्रेम की ही परछाई है—

पीडा की प्रेमा की रग रग

व्यथा प्रेम की ही परछाई ।

इन पीडा की विशेषता यह है कि वह रहस्यवादी को एक क्षण भी अपने प्रियतम को भूलने नहीं देता—

एक क्षण भी है उस भूलने में दली कभा

धय धय मर मानस को पार है।<sup>४</sup>

माथ ही वह प्रेम का रहस्य खोलने में भी सहायक होती है—

प्रेम रहस्य जान सकते है केवल विरह-व्यथित प्रेमी जन।<sup>५</sup>

इस प्रकार पीडा (विरह) का प्रताप में रहस्यवादी सबके अपने प्रियतम का दर्शन करता है—

पहले तब मैं बस एक टोर दसता था

देता है सब टोर तबका जुलाई में।<sup>६</sup>

१ गिए दिवकानन्द प्रेमपाप पृ० १२१

२ पन्त सुजन ततोय सस्तरण पृ० २०

३ रामकुमार वर्मा विवरण ६०वाँ गीत

४ पन्त स्वणधनि, प्रथम सस्तरण, पृ० १४१

५ गणानन्दरण मिश्र आधुनिक कवि १९४३ आत्म-कथा, पृ० ९

६ गणानन्द विपानी स्वप्न आत्मीय मस्तरण, पृ० ५

७ गणानन्दरण मिश्र आधुनिक कवि १९४३ आत्म-कथा पृ० ९

यही कारण है कि पत जी का मन पीडा से पुनर्कित होता है और आसू के कण मुख से गिरते रहते हैं—

पीडा में पुलकित होता मन  
सख में गलत आँसू के कण ।<sup>१</sup>

प्रमाद जी को पीडा (या विपाद) इसलिए प्रिय है कि वह सुग्न का कण है<sup>२</sup> कल्याणी शीतल ज्वाला है जत निमग्न जगती को मग्नमय उजेली<sup>३</sup> तथा पाप को पुण्य बना देन वाली है ।<sup>४</sup> दुःख महात्मी जी के मानम में असीम जग का आमंत्रित कर जाना है<sup>५</sup> जत विरल में उह चिर सुख का अनुभव होता है ।<sup>६</sup> इस प्रकार उनके लिए—

जनना ही रहस्य है युगना—  
है नसर्गिक बात ।<sup>७</sup>

सम्भवतः नसीनिए उनका यह ग्लम्वप है—

पर गप नहीं हागी यह मेरे प्राणो की पीडा  
तुमको पीडा में डूना तुममें डू डू गी पीडा ।<sup>८</sup>

इस प्रकार छायावाद का कवि दुःख को प्रेम का अभिनय मान कर दुःख में ही ईश्वर का साक्षात्कार करता है—

जीसा के अविरल जन को  
मत रोना मन ! मन रोको !  
इस भीषण घन में सुन्दर  
छिपा हुआ है मुक्तावर  
इसी अनु-जन में वह मुग्न  
अवनोका मन ! अवलोका !

तम तम में ही है प्रियमम  
अवलोको मन ! अवलोको ।<sup>९</sup>

१ पत स्वर्णघनि प्रथम सस्वरण ७७

किसी हृदय का यह विपाद है छोले मत यह सुख का कण है ।

प्रसाद करना आत्मी सस्वरण पृ० २९

३ प्रसाद आँसू दशम सस्वरण पृ० ६२

४ वही पृ० ७४

५ ७ तथा ८ महात्मी वर्मा यामा तृतीय सस्वरण, प्रथम

पृ० सख्या ७४ २१८, ७८ तथा ३२

६ पत बीणा-प्रिय त्रिनीपावति पृ० ४०

## जीवन उत्सव की अभिलाषा

छायावाण का कवि ईश्वर-क्षण के हनु बन्ना, विरह और दुःख को अपना कर प्रेम माग म त्याग तथा निस्वार्थ सेवा भाव की प्रतिष्ठा करता है क्योंकि प्रेम-यत्न म स्वार्थ और कामना का हवन करके ही वह अपने प्रियतम को प्राप्त कर सकता है ।<sup>१</sup> ईश्वर प्रेम का मन्त्रि का ध्याना पीन की इच्छा म ही प्रमाण के प्रेम पथिक का वासनात्मक प्रेम निष्काम ईश्वर प्रेम म बदल जाता है जिसम वह अखण्ड शान्ति प्राप्त कर नेता है ।<sup>२</sup> इसी प्रकार पन्त जी भी मात्र आत्म-त्याग की जगत म सखप्रद<sup>३</sup> बताकर जग-माता के प्रेम म मसार क समस्त सुखा की तिलाजति दे देते हैं ।<sup>४</sup>

### आत्म समपण

प्रेमपरक रहस्यवाणी दुःखसहन एव आत्म-त्याग द्वारा अपने अह पर विजय पाता है अह का शमन कर वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है और शाश्वत प्रेम रूप ईश्वर म तात्कालिक व्यापित करता है । इस तात्कालिक के लिए वह अपना सबस्व अपने प्रिय क प्रति अर्पित कर देता है । यही आत्म समपण उसरी प्रेममाधना का मूल मंत्र है ।

छायावाण के कविया ने अपनी प्रमानभूतिया म आत्म-समपण का सर्वाधिक महत्व दिया है । इसी म वह कामनारहित रहस्य-गणा म निश्चयन आत्मसमपण की प्रतिष्ठा करता है<sup>५</sup> और तत्पश्चात् अनभव करता है कि-

आत्म-समपण करो उसी विश्वात्मा को पुनर्जित होकर  
प्रवृत्ति मिला दा विश्व प्रेम म विश्व स्वय ही ईश्वर है ।<sup>६</sup>

१ प्रेम-यत्न म स्वार्थ और कामना हवन करना हागा  
तब तम प्रियतम स्वर्गविन्दारी हान का पन्त पाओग ।

प्रमाण प्रेम-पथिक तत्काल सस्वरण पृ० २०

२ देगिण प्रेम पथिक तत्काल सस्वरण पृ० ३१ ३०

३ तैलिए पन्त युगवाणी १९३९, पृ० ९५

४ तू कितनी ध्यारी है मुगका जननि कौन जाने इगका

यह जग का मंग जग का द दे अपने का क्या मुग क्या दुम् ?

पन्त, बीना-पथिक त्रितीयावृत्ति पृ० ४

५ यह कामना रहित रहस्य-शाण केवन निश्चयन आत्म समपण ।

पन्त, उत्तरा प्रथम सस्वरण पृ० १ ३

६ प्रमाण प्रेम पथिक तत्काल सस्वरण पृ १०



उसका यह गढ़ा विश्वास है कि पूण आत्म समर्पणसे उसकी समस्त कामनाओं की सिद्धि हा जायगी—

पूण समर्पण कर दें प्रभु को लगे सकन सवार ।<sup>१</sup>

अत वह घड़ी आस्था के साथ कहता है—

तुहिा विष्णु बन कर सुन्दर

कुमुद किरण से सहज उतर

माँ ! तेर प्रिय पदपदमो मे

अपण जीवन को कर द ।<sup>२</sup>

### सूफी रहस्यवाद

प्रमपरक रहस्यवाद का सर्वोत्कृष्ट रूप हम सूफी रहस्यवाद में देखने का मिलता है। छायावाद की प्रम भावना पर सूफी रहस्यवाद का भी प्रचुर प्रभाव पड़ा है अत यहाँ पर सक्षम उसका विश्लेषण कर देना उचित होगा।

सूफी रहस्यवाद्या न आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को प्रम के रूपक द्वारा व्यक्त किया है। भारत के लिए भी यह भावना नितान्त भिन्न नहीं थी। साध्य दर्शन के प्रकृति और पुरुष विश्व की प्रम जोना में स्त्री और पुरुष के हा प्रतीक है। उपनिषद् में भी परमात्मा के साथ जीवात्मा के मिलन की तलना का प्रमिया ऋ आनिगन से की गई है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि किस प्रकार कोई पुरुष अपनी प्रियतमा द्वारा आनिगन होने पर सभी बाहरी या भीतरी बाता को एकत्र मल जाता है उसी प्रकार जावात्मा भी परमात्मा के साथ मयुक्त हो जान पर सभी बाहरी और भीतरी बातों का गान यो देना है।<sup>३</sup> बृहण की प्रमिया गापियाँ बदिन ऋपिया की प्रतीक मानी जाती या और उनका प्रम एतना उग्र था कि भगवान के साथ अति निकट का सम्पर्क रने देना उह गतोप नी न था।<sup>४</sup> सन्त आत्मान ने जो एक बहुत प्राचीन छानवार सन्त बवपित्री थी अपन गीता में विष्णु के साथ सम्पर्क हुए विष्णु का स्वप्न देखा था।<sup>५</sup> बृहण भक्त बणव कवियों ने यहाँ भी मधुर भाव अथवा प्रमरग का रण मन्द्य है। सन्त आत्मान की भाँति ही मीरासाई न भी कहा है—

१ पन्न म्बणधति प्रथम मस्करण पृ० ९२

२ पन्न दीणा-प्रिय त्रितीयावति पृ० २

३ बृहदारण्यक उपनिषद् ४।१।२९

४ ग बृहणान द्विती बाण्य में निर्गण सम्प्रदाय

प्रथम मस्करण, पृ० ३५४

५ की पृ १।१

मरे तो गिरिधर गोपान दूसरा न कोई ।  
जाक गिर मोर मुक्त मरो पति सोई ।<sup>१</sup>

बलराम सम्प्रदाय का सिद्धान्त है कि पुरुषोत्तम ही एकमात्र पुरुष है और  
जा कोई उसमें प्रेम करते हैं उन्हीं स्त्री समझना चाहिए ।<sup>२</sup> कबीर दासू गानों  
में भी परमात्मा का पुरुष तथा अपन का पत्नी रूप माना है ।<sup>३</sup> इस प्रकार हम  
देखते हैं कि अध्यात्म प्रेम में छायावादी कवि के सामने बष्णव भक्ता सूफी तथा  
निगणपथी सन्ता की आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध को स्त्री पुरुष के रूप-  
द्वारा व्यक्त करने का एक अत्यन्त परम्परा विद्यमान था । इसी परम्परा में  
प्रभावित होकर छायावादी कवियों ने अपनी सामान्य रति का भी परम रति  
का स्थान दे दिया ।

सूफ़ीमत में स्त्री कबल महल पत्नी या प्रेमिका न होकर ईश्वरीय प्रकाश  
का एक किरण किंवा मष्ठा की आत्मा मानी गई है ।<sup>४</sup> उधर छायावादी-युग  
का प्रभावित करने वाला स्वामी दिवंगत न भा अपन व्यावहारिक बदलने  
द्वारा यह प्रचारित किया कि जिस दिन मैं तुम नर-नारिया में ईश्वर दखन  
लगाऊँ उसी दिन मैं तम्हें धार्मिक बनाऊँगा । अतः युगधर्म के अनुरूप ही  
आध्यात्मिक उन्नति में छायावाद का कवि अपन शैक्षिक प्रेम-पथ में सामा  
जिक आशावादी तथा स्वधारा के कारण जमझल हो सूफी प्रेम भावना से  
जिगसा लक्ष्य लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रेम का निरूपण है ।<sup>५</sup>  
विशेष रूप में प्रभावित हुआ । इस प्रकार उसका वागनात्मक प्रेम भी परिमा  
जित होकर सूफ़ियों के परम प्रेम-सा प्रतिभावित मान लगा और उसका शैक्षिक

१ श. तबरी, पृ० २४

२ दासू गानों बष्णवों की शान्ति पृ० ४१७

३ कबीर कबार हम गाने हैं पुरिधि एक अविनाशी ।

कबीर श्यापत्नी पृ० ८

४ म मन नारि एक भरनाग मव काई तन कर निगार ।

शान्ति (पाठ सागर) पृ० २

५ A woman is a ray of God not a mere mistress  
the Creator's self as it were

F Handland Davis The Persian Mystics P 69

६ दिवंगत व्यावहारिक जीवन में बदलने पृ० ५१

७ शैक्षिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रेम का निरूपण तो सूफ़ियों का  
प्रतिपाद्य विषय है ।

८ कबीर श्यापत्नी तमन्दा अधवा सूफ़ीमत १०४२ पृ०

विरह मिलन मे भी सूफिया के चिर परिचित विरह और 'वस्तु की चेतना मिलने नगी ।

## विरह

सूफीमत मे प्रेम वह शक्ति है जो जीव का उसक विरह की अनुभूति कराती है और प्रेम मे ही प्रेरणा पाकर जीव उस सत्ता मे फिर मे मिन जान का प्रयास करता है जिस सत्ता से वह सृष्टि की प्रकृति मे वियक्त हो गया है ।<sup>१</sup> इस प्रकार सूफीमत मे विरह की बड़ी महिमा है । मफियो के इस विरह का आभास हम छायावाद के कविया मे भी मिनता है ।<sup>२</sup> महादेवी जी ने स्पष्ट ही जन्म को विरह की रात<sup>३</sup> और जीवन को विरह का जलजात<sup>४</sup> कहा है । उनके लिए जीवन बरदान न होकर सुप्त यथाज्ञा का उमीलन मात्र है ।<sup>५</sup> प्रसाद जी ने भी खुलकर कहा है—

हम अलग हुए हैं पूण से यक्त हो के  
वह स्मृति जगती है प्रेम की नीद सो के

और अपने आँसू के प्रसंग मे उस महामिशन को स्मरण भी किया है—  
य सब स्फूर्ति है मरी  
इस जवानामयी जन्म के  
कुछ शय चिन्त है बवल  
मरे उस महामिशन के ।<sup>६</sup>

१ रामधारी सिंह दिनकर ससृष्टि के चार अध्याय

द्वितीय संस्करण पृ० २५२

२ कबीर ने प्रेम की बंधनी और विरह की आकुण्ठता का जो मार्मिक बणन किया उससे हिन्दी मे एक नई परम्परा का आरम्भ हो गया अथवा यो कहना चाहिए कि भारतीय भावुकता कबीर के हाथ मे इतना भी भावुकता से मिलकर एक नए रंग मे खन पड़ी जिसकी लौकी हम मीरा बोधा और धनानन्द से लेकर छायावादी कविया (विशेषतः महादेवी) तक मे मिलती है । रामधारी सिंह दिनकर ससृष्टि के चार अध्याय के संस्करण पृ० २५६

३ महादेवी वर्मा, यामा तृतीय संस्करण प० ०३

४ वहाँ पृ १२८

५ महादेवी वर्मा रश्मि १९३८ पृ० ४८

६ प्रगाण्ड बाना कुमुद पंचम संस्करण पृ० ६

७ प्रगाण्ड आँसू दशम संस्करण पृ ९

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादी का कवि सषी भक्ता के समान ही जन्म से पहले के ईश्वर के साथ सयोग की यात्रा कर हम जीवन को विरह के रूप में अपनाता है। किन्तु सूफिया का उक्त विरह निष्प्रयोजन नहीं होता। विरह उनके लिए बरतान स्वरूप है। विरह के द्वारा ही वह अपने प्रियतम का सापेक्ष प्राप्त करता है। सफियों की भाँति छायावादी कविता की भी विरह अत्यन्त प्रिय है।<sup>१</sup> क्योंकि वह उसके प्रियतम की याद जिलाना रहता है।<sup>२</sup> महात्मी जी के लिए तो विरह आराध्य का प्रतीक ही बन गया है।<sup>३</sup> अतः वे उसमें चिर सुग का अनुभव करती हुई पाई जाती हैं।<sup>४</sup> सूफिया की भाँति छायावादी का कवि विरह द्वारा प्रिय अथवा ईश्वर-दर्शन की कामना अथवा आशा भी करता है—

य दुख क दिन  
काट है जिसन  
गिन गिन कर  
पल छिन निन तिन ।  
आँसू की लख माती क हार पियोर  
गन डान कर प्रियतम के  
सखन को गशिमग  
दुख निगा म  
उज्जवल अमनित्त ।<sup>५</sup>

विरह की ज्वाला में जनन का रहस्य वह निम्न शब्दों में व्यक्त करता है—

- १ किसी हृदय का यह विषाद है छन्दों में यह सुग का कण है।  
उत्तजिन कर मत दीडाओ करणा का विमल चरण है।
- २ प्रसाद धरना आठवाँ सस्करण पृ० २९  
क स्मृति बन कर मानस में सज्जा करत है निगि नि  
उनकी इन निष्ठरता की त्रिसम में भून न जाऊ ।
- ३ विरह बना आराध्य त कया कसी बापा ।  
महात्मी वर्मा रसिम १९३८ पृ० ७३
- ४ मितन का मन नाम न में विरह में चिर हूँ ।  
महात्मी वर्मा यामा तनाय सस्करण प० २१३
- ५ निराना अचना १९५० ६२ वाँ तीन

इस ज्वाला में जनन का है अलि विचित्र इतिहास ।  
उन्नि उबल बन गया जशु कण नदी सख नि श्वास  
प्रिय दशन है साध हृदय की प्रिय की छत्रि उल्लास  
प्रियतम तन मन धन सखि प्रियतम जीवन मरण विकास ।<sup>१</sup>

छायावाद का कवि प्रिय दशन के अभाव में अपना करुण यथा का  
सबन लेकर ही जीवित रहना चाहता है—

हृदय नहीं मेरा शून्य रह  
तुम नहीं आओ जो इसमें तो तब प्रतिबिम्ब रह  
मिलन का आनन्द मिले नहीं जा इस मन को मेरे  
करण-व्यथा ही लेकर तेरी जिसे प्रेम के डर ।<sup>२</sup>

वह अपनी वेमुघ पीड़ा का उस समय तब अपने हृदय में सजोये  
रखना चाहता है जब तक कि उसका प्रियतम उसके पास न आ जाय—

ठहरो वेमुघ पीड़ा को मरी न बहो छूटना ।  
जब तब वे जा न जगावें सब सानी रहने देना ।<sup>३</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद का कवि अपने उर के यथा भार और  
अदन गायन से अपने करुणावान का रिगान तथा उसके साथ तमय होने  
का सतत प्रयत्न करता है ।<sup>४</sup>

### प्रियतम की निष्ठुरता

मूर्खिया का प्रियतम बठोर बनता है पर वही किसी को मना नहीं  
पाना । अन्त में वह जीव मात्र का निस्तार कर देता है ।<sup>५</sup> टीफ यही दशा  
छायावादी कवियों के प्रियतम की भी है । छायावादी कवि सदा प्रिय क वियोग

१ भगवती चरण वर्मा मधुक्कण पृ० ५०

२ प्रभात बानन कुमुद पत्रम सस्करण प० ९३

३ महादेवी वर्मा यामा तृतीय सस्करण पृ० २७

४ अग अग में हृदय उद्धतता  
राम राम में प्रणय मितकता  
तुम में तमय होने का उर  
करना शून्य गायन ।

पान उताग प्रथम सस्करण पृ० १८

५ प० ३३३ का पाण्डय तग उर जयदा गूफीमन १ / १ पृ० ७५

में रोता रहता है ।<sup>१</sup> वह उस रिज्ञान के लिए आराधना प्रार्थना पूजा विनाप कलाप सब बुद्ध करता है किन्तु वह इतना निर्मोही है कि पमीजता नहीं—

आराधना प्रार्थना पूजा प्रमाजति विनाप कलाप  
तेरा हूँ तेरे चरणों में हूँ पर वहाँ पमाजे आप ।<sup>२</sup>

इस टुसट पीना में बन्द धीरे में करा उठना हूँ कि मुझका कभी प्यार नहीं  
मिना ।<sup>३</sup> और जब कभी श्वीभत शायर हमका प्रियतम आन का वचन भी  
देता है तो युक्त रूप हीन जान हूँ फिर भी वह नया आना ।<sup>४</sup> और यदि कभी  
उसके सामने आता भी है तो कुछ दूरी पर ही कपन के ताग में गुंथा हुआ  
सा लहराता रहता है—अति निकट नहीं आता—

दूर नया हात माना  
पर पाम न । आन न ।  
कपन के ताग में गुंथ  
में तरलता है ।<sup>५</sup>

प्रियतम के डम निष्ठुर व्यापार में छायावादी कवि के मन्ताप का बांध टूट  
जाता है जिसमें हमका सम्पूर्ण अनुनय विनय विनाप कलाप उपात्तम्भ में बन्द  
जाता है ।<sup>६</sup>

१ मन राधा की करता क्या अपन एकाकीपन पर ?

मन्तव्यी बर्मा यामा तृतीय मस्वरण प ६७

२ माधनवान चतुर्वेदी किमकिरीटिनी तृतीय मस्वरण प० ६८

३ प्रसाद सहर तृतीय बार प० ३५

४ व कल जा गय रत आन का  
समि रत गय विनय कलाप ।

निराजा अचना १९५० ४७वाँ गीत

५ माधनवान चतुर्वेदी किमकिरीटिनी तृतीय मस्वरण प० १०४

६ (क) अति बचाते हैं

तो क्या आन है ?  
काम हमारा बिगड़ गया  
शिया रूप जब कभी नया  
कहाँ तम्हारी मन्ता देया  
क्या ममताएँ हो ?

निराजा अचना १०५० ४ वाँ गीत

(ग) मन्तव्यी बर्मा यामा तृतीय मस्वरण प० ६४

तुम मन में हैं कि मुझ अन्तर्गत है गारा ममार ।

मन्तव्यी बर्मा, यामा तृतीय मस्वरण प० ६४

## मिलन

उपालम्भ की इस स्थिति में उमका निर्मोही प्रियतम पमीज जाता है और उसके साथ प्रेम-वेलि करने लगता है ।<sup>१</sup> अतः उसके प्राणो में रागिनी छा जाती है<sup>२</sup> और उसे सष्टि में चारा जोर उल्लास ही उल्लास दष्टिगत होने लगता है—

तुम आये कनकाचन छाये  
ऐ नव-नव किमनय फनाय ।  
शतशत बल्लरिया नत मस्तक  
झक कर पुष्पाघर मुसकाय ।<sup>३</sup>

प्रियतम व उक्त मितन से उसका हृदय कमन जलौकिक आनन्द सखिल उठता है और उसका दरद न्य दूर हो जाता है—

तुम से जा मिने नयन  
दूर हण दरित शयन ।  
खिन अग अग अमन  
सर के प्रात शतदन  
पावन पवनोक्तन पन  
अलक मन् गध वपन ।<sup>४</sup>

यहाँ पर ध्यान देने की बात यह है कि छायावाद के कवि न जनीविक विरह मितन को मानवीय प्रेम-गम्ब-धा के अतिरिक्त प्रकृति के रूपको द्वारा भी बड ही कनात्मक तथा मनोरजक रग से व्यक्त किया है जिसका सुन्दरतम उदाहरण हम निराना जी की जुही की कवी में मितता है । उसमें पवन (परमात्मा) जही की कवी (आत्मा) के साथ अनीविक वेलि कनाप करता हुआ चित्रित किया गया है ।<sup>५</sup> कहने की आवश्यकता नहीं कि छायावादी कविया का प्रिय के साथ यह प्रेम मितन अथवा प्रेम-वेलि सूफी साधना के प्रियतम के साथ मितन अथवा प्रेम-नीना के अत्यन्त समीप है । अन्तर बेकन धनना हो है

- १ इस हमारे और प्रिय के मितन में  
स्वग आकर मेरिनी में मित रहा

प्रसाद सरना आर्या मस्करण पृ ५४

- २ तुम मिने प्राण में रागिनी छा गई ।

मारननान चतुर्वेदी समपण प्रथम सस्करण प० ।

- ३ निराना अचना १९५० ८६वाँ गीत

- ४ वही ५५वाँ गीत

- ५ देखिए निराना परिमन, अष्टमावति, पृ० १६३-६५

कि मूर्धिया ने अपन अलौकिक प्रम-सम्बन्धों का लौकिक प्रम क रूपका द्वारा व्यक्त किया है और दापावानी रिया ने अपन लौकिक प्रम सम्बन्ध का अलौकिक प्रम क आवरण म अभिपक्त किया है । किन्तु तहाँ तक प्रम-नय का उद्गानना का सम्बन्ध है दाना म किञ्चित भू नया है ।

डा० बुट्ट न जो सूफीमत के विश्वासों की मूची तयार की है उसके अनसार मूर्धिया का एक विश्वास यह भी है कि आत्मा शरीर क पिजड म क है किन्तु पिजडा पीछे बना और पत्नी (आत्मा) पत्र मे ही मौजूद रहा है । पिजडे क टूट बिना पत्नी स्वाधीन नया हा सकता । अनएत्र मत्यु का म्य है क्याकि मत्यु क बाद हा आत्मा परमात्मा का प्राप्त कना है ।<sup>१</sup> इन विश्वास के आधारभूत मूर्धिया का दासनिज सिद्धान्त यत्र उजा कि जीव ब्रह्म म विष्टुता हुआ है एव ब्रह्म मित्रन का सम्ब दह मरन क वाप पा मरता है । इसम दूसरा सिद्धान्त यह निकला कि शीघ्र स शीघ्र मर कर ब्रह्म का प्राप्त करना चाहिए । भारत का बौद्धमत भी जीवन क लीपक का बुना न की अपना परम उद्देश्य मानता है और जनमत तो दापर क गुणन क पूव शरीर का अधमरा करव ही रखन का पगपानी है । किन्तु मत्यु का म्य है यत्र वात किना न नी क्षत्रकर नगी कही । हाँ कबीर का सूफीमत की त्रर म जत्र ब्रह्म वियाग की प्रसर अनुभूति हुई तब क अनुभव करन तग कि मय त्वाज्य नही का म्य है—

जिन मरन म जग डर गा मरे जात ।

पत्र मरिह कब दसिह पूरण परमात् ।<sup>२</sup>

किन्तु मूर्धिया क प्रभाव के पूव भारतीय भक्तिभावना म मत्यु का म्य नहा थी । भारत के भक्त कवि यह उपपत्त दत आ रह क कि जीवन का उपयोग भगवान की सेवा करने म करना चाहिए और सेवा का आनन्द उाकी दष्टि म एतना उत्तम था कि उमक जाय क मुक्ति को भी तुच्छ ममलन थ । मुक्ति अथवा आत्मा का परमात्मा म विनयन क विष्ट इत कविया का तब यह था कि जीव ब्रह्म म लीर हा जल क उपरान्त ब्रह्म न करन रह कर उमकी सेवा करन म कचित रह जाया, अत उाताने मुक्त कण म गाया—

दवा ! तेरी भक्ति न टाया मुक्ति न माया

तब जग मना गुनार्थी ।<sup>३</sup>

१ रामधारी गिः त्रिनकर ममृति क तार अध्याय

श्रीनाथ सम्हरण प० १८

२ कही प० ३१८

३ कही प० ३१८



मृत्यु का काम्य और मोहक मानने की भावना भारत देश में सूफियों के प्रभाव से पत्नी और बन्ते बढ़ने वह छायावाद युग तक भी पहुँची। रबीन्द्रनाथ ठाकुर ने—

मरते चाहिना आमि सुन्दर भुवने  
मानवर माले आमि वाचिवारे चाइ ।<sup>१</sup>

कहकर जीवत और जगत के प्रति घनी आसक्ति अवश्य प्रकट की है किन्तु भानुसिंह ठाकुर पदावली की मरण शीपक कविता में सूफीमत के प्रभाव<sup>२</sup> से उद्धान मृत्यु को अत्यन्त मोहक चित्रित किया है—

मरण र  
तु हु मम श्याम समान ।  
मधवरण तुल्य मेघ जटाजुट  
रगत कमलकर रक्त अधरपुट  
तापविमोक्ष कर्ण कोर तव  
मृत्यु जमत करे दान ।  
त हु मम श्याम समान ॥<sup>३</sup>

इसी प्रकार नबूत की मृत्यु शीपक कविता में भी रबि बाबू ने मृत्यु के प्रति अपेक्षित प्रेम प्रकट किया है—

मृत्यु प्रभाते  
मइ अचेतार मुख हेरिबि आमार  
मुहूर्ते चेतार मता । जीवन आमार  
एत भानो वासि व ने ह्यद्य प्रत्यय  
मृत्यु एमनि भानो वासिब निश्चय ॥

- १ रबीन्द्रनाथ ठाकुर मञ्जिना ( विश्वभारती प्रकाशन ) पृष्ठ संस्करण (दशम) कवि ओ योमन की प्राण-शीपक कविता पृ० ४२
- २ रबीन्द्रनाथ पर सूफी सन्तार का प्रभाव सूफी कविताओं से पढ़ा होगा। ब्रह्म-समाज में सूफी कविताओं का काफी प्रचलन था। राजा राम मोहन राय जी महर्षि रबीन्द्रनाथ ठाकुर पर हाफिज आदि फारसी कवियों का परा प्रभाव था। ये योग पूजा-समाज के समय मन्त्री के साथ फारसी की गजलों भी गाते थे। ब्रह्म-समाज के दूररे नता बंशवचन्द्रमन भी हाफिज के प्रमी थे।

रामधारी गिर दिनकर मरुति के चार अध्याय पृ० ५०

पृ० ५९ ०

रबीन्द्रनाथ ठाकुर मञ्जिना पृष्ठ संस्करण पृ० २९

स्नन हन तुल निन कीं गिगु डर  
मूर्त्तों आश्यास पाय गीय स्तनाउर ॥<sup>१</sup>

जब मय्यु प्रथम छायावाणी कविता में भी बद्ध तो सीधे बन्धीर आदि सूफी कवियों और बृद्ध रवि वाबू के प्रभाव से व्यक्त हुआ।<sup>१</sup> किन्तु इस भाव का पूरा अभिप्राय छायावाणी कविता में महात्मी वर्मा ने ही की है। मय्यु काव्य है मय्यु विनाय है, यह भाव उनका कविता में बार-बार आया है।<sup>२</sup>

### पाश्चात्य रहस्यवाद

छायावाणी कवियों के अमरजी के समानिक कवियों (बनब बडमवध आदि) के सम्पर्क में जो ज्ञान के कारण उत्पन्न रहस्य भावना पर उक्त कवियों की रहस्य भावना का भी प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव छायावाणी कवियों की शिगुभावना पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। वह सबथ में अपना ज्ञान एटीमरम आव रम्मारटनिटी फाम गिद ववशम आव अनी चाइरु म गिगु एव मशव का रहस्यभरी शक्ति में दत्ता है। उसमें मत में गिगु उच्चतम सामनिक और अर्थों की आव है जिस गायन मय की अनुभूति होती रहती है शिगु में ही शाश्वत गता निवास करती है और वह मगन स्वकूल (प्राक्)

१ रीजनाय ठाकुर मकविता पद्य मस्कण प० ४६४

२ महा मय्यु मय का अब कारण,  
महा दु म मशय का शन -  
निधन द्वार बर पार  
मुक्त है गया आज मन  
पा नव जीवन दशन ।

पद्य वाणा प्रथम मस्कण प० ६०

(क) जमरता है चीजन का हास  
मय्यु जावन का चरम निदान ।

महात्मी वर्मा टायुनिक कवि (१) चतुर्थ मस्कण प० ४

(ग) रहन दा ह दव । अर यह करा मित्त का अरिगर ।

व० प० ३

(घ) शक्ति का है यत्र अमित विधान एक मित्त में ही यज्ञान

—प० प० ३

(ङ) मित्त वाचा का निष्पन्न । उमुद अरविनी दगा ।

—प० प० ६०

एक तत्त्वद्रष्टा है ।<sup>१</sup> बड़ सबध की शिशु विषयक उक्त रहस्यभावना से छायावाचकी कवि पन्त टिनकर और गानालशरण सिंह विशेष रूप में प्रभावित हुए हैं ।<sup>२</sup>

बड़ सबध का बालक स्वर्ग के समीप होने के कारण शशवकी आनन्दानुभूति में स्वर्गिक प्रकाश का अवदीकृत वर्तता हुआ पाया जाता है ।<sup>३</sup> पन्त का बालक भी स्वर्ग ही स्मृति में आनन्दविभार में उठता है—

बालक के कल्पित अधरो पर  
किस अतीत सुधि का मूढ हास  
जग की इस अविरत निशा का  
करता निन रह रू उपहास ?

जिस प्रकार बड़ सबध<sup>४</sup> को उसी प्रकार पन्त की को भी प्रकृति के रूपवर्णन स्वर्गिक आत्मा से प्रदीप्त प्रतीत होते हैं—

आज शिशु के कवि का अनजान  
मिन गया अपना गान ।

1 Thou best Philosopher who yet dost keep  
Thy heritage thou Eye among the blind  
That deaf and silent readst the eternal deep  
Haunted for ever by the eternal mind —  
Mighty Prophet ! seer blest !  
The Palgrave's Golden Treasury Wordsworth's  
Ode on Intimations of Immortality From  
Recollections of Early Childhood 8th Stanza

२ अतः डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा का यह कथन कि हिन्दी कवियों में कवन उन्होंने (पन्त जी ने) बाल्यावस्था में एक गम्भीर रस्य पाया है गत है । डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा हिन्दी काय पर जगिन पाठक प्रथमसंस्करण पृ १९१

3 But he beholds the light and whence it flows He sees  
it in his joy —  
Wordsworth's Ode on Intimations of Immortality Fifth  
Stanza

४ पन्त काय चतुषाक्षरि ५० २४

5 There was a time when meadow grove and stream  
The earth and every common sight,  
To me did seem  
Apparell'd in celestial light  
The glory and the freshness of a dream  
Wordsworth's Immortality Ode First Stanza

खोल कनिया न उर क द्वार  
द टिया उसका छवि का दम  
धजा भीरा न मधु का तार  
कह लिए भ्रम भर सन्ध

गूढ सक्ता म टिल पात  
कह रह जस्पुट बान,  
आग कवि क विर चंचल प्राण  
पा गए अपना गान ।<sup>१</sup>

बह सवध क समान ी पन जी भी प्रौढवस्था म बाल्यावस्था की स्वर्णिक  
आभा के विनुप्त हा जान पर विगुघ हा उठते है—

यौवन क मात्क गथा न  
उम कनिका का खोल अजान  
छोन तिया हा । जाम विन् सा  
मरा मधुमय तुनला गान ।

अन क दयामय म अपन छान गय बचपन की पुन लीला देन की प्राथना  
करत है—

इम अभिमानी अचल म फिर  
अकिा कर दा विधि । अक्लक  
मरा लीला वातापन फिर  
करत । नगा न मर अक ।<sup>२</sup>

बह सवध न गिगु का महान दामनिक ताववना आदि रूपा म रेखा है । पन  
का गिगु भी अनुन अभिनव अभिराम गड गहन अपान और निरुपम है—

कीन तुम अनुन अरुप अनाम ।  
अय अभिनव अभिराम ।

१ पन पल्लविनी प्रथम मङ्करण पृ १७

२ Heaven lies about us in our infancy ।

At length the Man perceives it die away  
And fade into the light of common day  
The Pilgrave's Golden Treasury Wordsworth's Ode on  
Intimations of Immortality Fifth Stanze

पन पल्लविनी प्रथम मङ्करण पृ ६८

कोन तुम गूढ गहन अजात ।

अह निरुपम नवजान ।<sup>१</sup>

बड सवध के मत म मनुष्य व्यावास्या म स्वर्गिक आभा स धिरा हाता है ।<sup>२</sup>

यही भाव दिनकर की निम्न पक्तिया म वक्त हुआ है—

बहने है शिशु को मन देखो जगम्भीर भावा म

अभी नही ये दूर कद्र से परम गूढ सत्ता के

जानें क्या कुछ देख स्वप्न म भी हसते रहत है ।<sup>३</sup>

बड मवध और छायावाङ्मय कवियों की शिशु भावना म अन्तर यह है कि बड स

वध शिशु म कवन ईश्वरीय शक्ति अथवा शाश्वत सत्ता का अनुभव करता है

जवकि छायावाङ्मय कवि उसके स्वरूप म साक्षात् दर्शन करत है ।—

गुभ । सत्ता शिशु के स्वरूप म ईश्वर ही आत ह ।<sup>४</sup>

वह है जकाम नाम से है उम नाम नही

भाता जिस जो है उस देना वही नाम है ।

उसकी उपासना म तीन रहता है ताव

कित्त वत् वासना विहीन जविराम है ।<sup>५</sup>

अग्रजी के रोमांटिक कवियों का रहस्यवाङ्मय का यगत ( Poetic )

हान के कारण असाम्प्रदायिक और भावात्मक है । छायावाङ्मय रहस्यवाङ्मय भी

जपन म कबीर तानक दादू आदि के रहस्यवाङ्मय की भांति साधनात्मक अथवा

साम्प्रदायिक न हाकर का-यगत ( Poetic ) ही है अत वह स्वरूपत अग्रजी

के असाम्प्रदायिक स्वच्छन्दतावाङ्मय रहस्यवाङ्मय के अत्यन्त ममाप है । सन्त कवियों

और छायावाङ्मय कवियों के रहस्यवाङ्मय के सम्बन्ध म महात्मी वर्मा का निम्न

मत द्रष्टव्य है—

कबीर के रहस्य भर पत्त हमार हृदय का स्पश कर मीर बुद्धि न

टकरात है । अधिकतर हमम उनके विचार ध्वनि हा उन्त के भाव नी जो

गीत का तद्वय है ।<sup>६</sup> छायावाङ्मय के गीतात्मक रहस्यवाङ्मय के सम्बन्ध म उ । न

१ पन्न पत्तविनी प्रथम संस्करण पृ १

Hsaven lies about us in our infancy ।

२ Wordsworth's Immortality Ode Fifth Stanza

३ रामधारी सिंह त्रिपुर चवथी प्रथम संस्करण पृ ११५

४ कवी पृ० ११७

५ टागोर गाथावतरण मित्र जायनिक कवि १९०६ शिशु

गायन कविता पृ ८

६ महात्मी वर्मा यामा तृतीय संस्करण अगनी वात पृ० ३

लिखा है कि यह युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित और बंगाल की नवीन काव्यधारा से परिचित था ही साथ ही उसके सामने रहस्यवाद की भारतीय परम्परा भी रही।<sup>१</sup> अतः भारतीय और पाश्चात्य दोनों रहस्यवादी परम्पराओं से प्रभावित होने के कारण छायावादी रहस्यवाद में भारतीय रहस्यवादी अनुभूति का जन्म एक सिद्धांत मात्र ही नहीं हृदय की बोधमय भावनाओं में प्राणप्रतिष्ठा पाकर तथा प्रेममार्गी मूर्खता मन्ना के प्रेम में अतिरजित हाकर ऐसे कलात्मक रूप में अवतारण हुई जिसने मनोप्य के हृदय और बुद्धिपथ दोनों का सन्तुष्ट कर दिया।<sup>२</sup> इस प्रकार हम अपने हैं कि छायावादी का रहस्यवादी उपनिषद गीता अथवा सम्प्रदाय मूर्खता की अतमूलक विगणता अथवा उपकरणता में युक्त होना हुआ भी अभिव्यक्ति की दृष्टि से अत्यन्त भिन्न अथवा अनात्मक है और उसके स्वरूप बौद्धिक और साम्प्रदायिक न हाकर आवात्मक और असांम्प्रदायिक है।



१ मराठी वर्या आपुनिक कवि (१) अतप मन्वरा  
अपन लिखित म, पृ० १०

२ वही

## छायावादी काव्य में निराशावादी दर्शन की अभिव्यक्ति

आशावाद और निराशावाद—जीवन के दो दृष्टिकोण

सामान्यतः आशावाद और निराशावाद शब्दों का प्रयोग अंगरेजी के प्रभाव के कारण जीवन के प्रति दो दृष्टिकोणों के अर्थ में होता है। साधारणतः मनुष्य किसी मिथ्याता के आधार पर नयी प्रत्युत् परिस्थिति में स्थिति स्वास्थ्य स्वभाव अथवा आर्थिक दशा के कारण ही आशावादी अथवा निराशावादी हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि जो व्यक्ति सामान्य जीवन में निराशावादी है वह अध्यात्म पथ में भी निराशावादी ही रहे। ईश्वर में चिर विश्वास रखने वाले सुख दुःख को उसी की इच्छा का परिणाम समझने वाले व्यक्ति पर भी किसी विपत् घटना का अनन्त अनन्त प्रभाव पड़ सकता है और पश्चात् भी है। उदाहरणार्थ यदि कोई राष्ट्र आर्थिक संकट में पड़ गया है साथ ही उसकी आन्तरिक राजनीतिक स्थिति भी डीवान्तेन है और इसी में सट्टा किसी बाहरी शत्रु का आक्रमण हो गया तो एक पक्ष संकट वाले में साहस और धैर्य से काम लेकर शत्रु का श्रेष्ठ कर सामना कर सकता है और साथ संकट है कि शत्रु शक्तिशाली और समर्थ होने पर भी कभी ऐसी भारी भूत कर सकता है कि विजय उसके हाथ में निकल कर अपने हाथ में आ जाय। और दूसरा उसी आक्रमण से घबरा सकता है कि उसकी मति मारी जाय और बुद्धि ठीक में काम न कर उम्र हम संकट वाले में अपने राष्ट्र के पतन के अनिश्चित रूप से और कथन सत्ते। अतएव ऐसी स्थिति में एक ही घटना के आधार पर पढ़ने के दृष्टिकोण को आशावादी तथा दूसरे के दृष्टिकोण को निराशावादी कहा जायगा और उठ प्रथम आशावादी तथा निराशावादी कहा जाता है। तो भी अध्यात्म पथ में दोना का यह विश्वास बना रह सकता है कि जो बुद्ध मगार में होता है ईश्वर की इच्छा से अच्छे के लिए ही होता

है और अन्त में इससे भी कुछ अछूटा ही होगा। अतएव यह भी अन्त में सक्रिय आशावादिता का ही स्वरूप है। किन्तु उनमें मनुष्य की शक्ति मरिचक सखट के निवारण का उपाय करता है आशा के सहार ऊपर का उठना है और दूसरा पहले से ही यह मान बैठता है कि किसी प्रकार वर्तमान सखट से मुक्ति होना साध्य नहीं।

अस्तु इस काटि की आशा और निराशा का आधार भी मनुष्य का प्रकृति ही है। प्रकृति में ही कुछ ताप कम होने हैं जो सामान्यतः प्रत्यक्ष वस्तु और प्रत्यक्ष स्थान में शीतल और शुभ का दर्शन करते हैं और कुछ कम कि उनके विरुद्ध और बीभत्स पक्ष पर ही दृष्टिपात करते हैं तथा कोई स्वभाव से ही इतना सरल और सीधा होता है कि सट दूसरा का विश्वास कर जाता है और सब में गुण ही गुण कहता और पाता है। दूसरा उपर मानव के दुःख पक्ष पर ही दृष्टि डालता है। वह परन्तु चान्द है कि किसी के मनुष्य बासन्ती व्यवहार में कुछ अर्थ अथवा अर्थ तो नहीं विफल होता है। एका प्राणी भी मनुष्य को मनुष्यत्व अथवा निराशावादी दृष्टिवाण से दण्डित है। अतएव व्यवहार में एसी निम्न रावना रखत हुए भी विद्वान् में इनका प्रकार का मनुष्य का आशा एव ही सजना है और मानव मात्र का प्रतिपूण आस्थातया उनका उरम विकार में दण्ड विश्वास ही मकता है।

यह रहना ठीक नहीं कि दुःख सब मनुष्य का निराशा का आधार में ही स्वेचना है। एक व्यक्ति भी पाए जाते हैं जो चञ्चल में ही अपना भगवान् और स्थित हैं। दुःख की कामना तो सम्भवतः व भी नहीं करत परन्तु आपत्ति आ जाने पर उसका परिणाम काल समय कतएव पर पर और भी दण्डता का साथ जगत्तर हात हैं। कममय में अरुण आत्मबल और पीरप का जोर स्थित ज्ञान भविष्य का भय बान का व आकाश करत है इसलिए धारण करत उन किसी तन्त्र में बाधता व वन गृहमय ही बनता है। ऐसी जीव भी आदिन सखट, ज्वर स्वास्थ्य शीत शरीर और स्वभाव की सहिष्णुता का कारण आशा रथ में विचलित हो जाते हैं और कुछ दार का निराशा की धूमिल गीत में फिर आते हैं किन्तु इनकी यह निराशा स्थानी नहीं है। दण्ड का निराकरण का साथ ही उनका जीवन में फिर आशा का मकार हो जाता है और फिर उनकी आशावादिता प्रसरत हो उठती है।

निराशा का एक दूसरा पक्ष भी है। मनुष्य जीवन अनुभव की दृष्टि पर्यटन पर गहरा है। प्रतिदिन की नवान घटनाओं उसकी विचारधारा में गहरा

१ मनुष्य का धारण के जीवने मनुष्य ही गुणत है।

मनुष्य सुखियों का स्थिति किम्बत में जाना।—पदवन्त



पवन मचाती रहती है। जो कुछ उमकी आँखा व सामन हाता है अथवा जो कुछ उस पर बीतती है उसका प्रभाव उसके मन और मस्तिष्क पर पडता रहता है और उन्ही के अगुकूल यह अपने जीवन को बनाता और उन्की तह म किसा दशन वा निर्माण करता है। विकासवाद जो युग वम समथने वाला प्राणी भी स्वभाव की विलक्षणता के कारण अपने नित्यप्रति के जीवन म युद्ध अथाय, घणा जुगुप्सा र्पा द्वेष कराह आदि जमानपिक कृत्या को दखत सुनते जीवन म मरणा के निण उदासीन हो सकता है। इस प्रकार स्वभाव स्वास्थ्य और अन्भव पर जाधारित निराशा क्षणिक भी हा सकती है जीव स्थायी भी।

मन अतिरिक्त निराशा वा जायात्मिक पक्ष भी है जनावन विशिचन वाङ्मय का रूप धारण करती है। प्रत्येक प्राणी का एक निजी दशन होता है। जिम तग वा नीव वन हागा उमी ढग वा दशन भी वन ढू ढ निकालेगा। किंतु जिम शन विशप ता वन एक वार अपना रंगा उमी के अनरूप उमका दष्टि राग ती हो जायगा। शरविन राग प्रतिपाशित विकास मिद्धात म विरवास रगन वाता यति सदव रा वान पर वन देगा कि मानव जाति निरन्तर प्रशाण की जाव वर रही है। असन्ताप को वह ईश्वर की तरम्पा इमनिण ममन्ता है कि उमके वाग्य ही यह भूत और वतमान म असतुष् रहनर नरिष्य व इत विनाम के नवीन मिद्धातो का अवेपण करता है। किंतु ठीक उपक प्रतिक्रम वन प्राणी जो जम को ही भारी भूत या पित्रने वम का परि णाम मानता है वभी इसी दशा म भी आशावाशिता का समथन नहीं कर गयता। उमके यर्ग मानव जीवन का इतिमम भूत भविष्य वतमान तीना राती म राग म ही परिपूण रयेगा। पतत वह जीवन को रेखा अथवा विरम्पा व अतिरिक्त तीर कुछ भी न। समय मकगा।

यह तो ठीक ही है कि एणणा के कारण मनष्य जीवन म प्रवृत्त जाता है। एणणा ही मनुष्य को सामारिक प्रशाभना और बनना म गयती अट कानी और उन्गाती रहती है। प्रिय-अप्रिय मित्र-अमित्र योग वियोग पर अपर आदि ता भेद भाव एणणा ही का अनुपम सन है। एणणा ही राग की जननी है। पर दष्ट के अभाव म शुन और निराशा का हाता अनिवाय है। अन एणणा सिवा तपणा का नाग करव ही मनुष्य वास्तविक आनन् का अनु नव अथवा उपभोग कर सकता है। एम विचारका की दष्टि म मानव जीवन निमगन हेव और कटु होगा और प्रकृति का सम्पूण मिनाम तीर वभव सुग का साधन न होकर दस का ही कारण हागा। एग काटि व दाशनिको के हृदय म विशय की बहुमूल्य विभूनिणी आशा का मचार नहीं कर सकेंगा। एम विचारक निवृत्तिमार्गी हा हागे जीव प्राणा का मसार अपने हृदय म वमारद

उसी में सुख और आनन्द की राज करेगे। अवश्य ही एक पारदर्शी प्राण जीवन का घुम स्मृति से नहीं देख सकते। किन्तु जिन दाशनिवा की दृष्टि में मानव जीवन निम्नगत आनन्दमय है मनु के बीच की कड़ी है जो सच्च आनन्द की उपलब्धि करता है उनकी समझ में यह समझ मुख्य का आधार है। जिसमें जितना शक्ति है उतना वह सुख मन्वय में समथ है। ये समझ और दुःख के स्वस्थ सन्तुष्ट पर ही चार स्तर हैं और इन समझ में मुन्दरतरी तिमो दूमेरे समझ की कल्पना नहीं करते। इस प्रकार छायावादी निराशावादी का गम्य अन्त दाशनिव सिद्धांत से जुड़ा है।

### हिन्दू दशन में निराशा का दाशनिव पक्ष

भौतिक सुखवाद का निषेध—

हिन्दू दशन परम सुख आत्मानन्द का गोज करता है जो उनमें मय वा (Hedonism)<sup>1</sup> का आधुनिक निषेध पाया जाता है। यशस्वि उमक द्वारा आधुनिक दुःख निवृत्ति अथवा मोक्ष असम्भव है। अन्त कर्तव्य अज्ञान धम माय का जो जाम सुख का साधन है प्रथम माय में जो सासादिक सब भाग का साधन है अन्त प्रमाणित करना है। अन्त मन का सन्तुष्टम प्रतिवादन अन्त कर्तव्यनिषेध में मितता है। कर्तव्यनिषेध में सब के दा भाग बनाए गए है। फलता धम यथा सत्ता के विना सब प्रकार के दुःख में सबका छुटकर निवृत्त आनन्द स्वरूप परब्रह्म का प्राप्त करन का माय और अन्त प्रथम अज्ञान स्त्री पुण्य धन यथा एतय आदि अन्त गोक के सुख भाग का प्राप्त करन का माय। य दाना माय मनष्य के सादन आत है बुद्धिमान मनष्य अन्त दाना स्वरूप पर अष्टी तरु विचार करक अथ अज्ञान परम कल्याण के साधन का गणना है और मन्त बुद्धि वाला मनष्य भौतिक माय शम का स्वरूप में भाग के साधन अन्त प्रथम को अगनाता है। किन्तु कर्तव्य के माय अथ का अन्त करन यान का कर्तव्य होता है और सासादिक उन्नति के साधन प्रथम का स्त्रीकार करन याना यथाय सान में अन्त हा जाता है। अन्त ग मन्वक प्रयत्न निवृत्तता यमगज के वार-वार पत्र पीम हाथा घाट गार्डे सगति भूमि आदि अन्तारेण दुःसाध्य सासादिक भाग का अन्त प्रथम अन्त गण पर भौतिक अन्तरेण नही हाता प्रयुक्त अन्त सुख समझकर उपलब्धि करना

1 Hedonism properly denotes the creed or theory that pleasure is or should be the sole end and aim of human action or conduct. 'Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol 6 P 567

है।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि त्रिचिक्तेता का यह जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण भौतिक सुखवाद के प्रति अत्यन्त निषेधात्मक तथा सामान्य मनुष्य के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण से नितान्त भिन्न है।

### निराशावाद

सखवाङ्मय का यह आत्यंतिक निषेध ही जीवन के प्रति निराशा का भाव उत्पन्न करता है। उपनिषद् मन्त्र अनेक स्थला पर भौतिक सुख समृद्धि को निषिद्ध अथवा त्याग्य घोषित किया गया है। ब्रह्मसूत्रोपनिषद् मन्त्र स्पष्ट ही स्वर्ग के प्राणियों के सुख के सामन एतन्मय जीवन के सुख को नगण्य अथवा हेय प्रमाणित किया गया है। वहाँ पर हम देखते हैं कि त्रिचिक्तेता सामाजिक सुख भोगों का अस्थायी जयवा क्षणभंगुर समझकर स्वर्गलोक के भयंकर मृत्यु चक्रवर्ती सुख प्राप्त जादि मनुष्य स्वर्गलोक के निवासियों के आनन्द की कामना करता है।<sup>२</sup> इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् मन्त्र आत्मा के सुख के सामन जीवन के समस्त सुखभागों के प्रति विरक्ति उत्पन्न की गयी है। पाण्डित्यमय मन्त्रोपनिषद् मन्त्र भी मानवत्वयं गं पूछती है कि भगवन् ! यदि यह धन मे सम्पन्न सारी पृथ्वी मरी हो जाय तो क्या मेँ उससे अमर हो सकती हूँ अथवा नहीं ?<sup>३</sup> बृहदारण्यक स्पष्ट उत्तर देते हैं कि नही भोग सामग्रियों से सम्पन्न मनष्या का जगा जीवन होता है क्या ही तरा भी हो जायगा धन से अमरत्व की आशा है ही नहीं।<sup>४</sup> इस पर मन्त्रोपनिषद् का उत्तर यह है कि जिससे मेँ अमर नहीं हो सकती उस लंकर मेँ क्या करूँगी ? श्रौतमान जा कुच्छ अमरत्व का साधन मानते हैं वही मुन बननावेँ।<sup>५</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदांत दर्शन में सखवाङ्मय का आत्यंतिक निषेध करके आत्मानन्द की प्रतिष्ठा की गई है। अतः भौतिक सुख की कामना को दृष्टि में रखात की शिक्षा अवश्यमय निराशावादी सिद्ध होती है।

### सत्यास माग

श्री निराशावाङ्मय सत्यास माग का अति निकट का सम्बन्ध है। मनुष्य उस समय से जीवन से विमुक्त नहीं हो सकता जब तक कि वह जग (जीवन) निराशा अथवा उदामीन दृष्टि से न दम। सामाजिक

१ ब्रह्मसूत्रोपनिषद् प्रथम अध्याय प्रथम बल्ती २३ १४ ५

२ ब्रह्मसूत्रोपनिषद् प्रथम अध्याय प्रथम बल्ती १२ १५

३ बृहदारण्यक उपनिषद् चतुर्थ अध्याय पंचम ब्राह्मण २

४ वही ३

५ वही ४

सुखा में असंतोष अथवा अतृप्ति का अनुभव कर के ही मनुष्य शाश्वत सुख अथवा परमात्म तत्त्व की कामना करता है। जत सद्यस्त धर्म का स्वरूप बर्णन करते हुए बह्मरूप्यक उपनिषद् कहती है कि आत्मलाभ की इच्छा करने वाले पुरुष इस राक का मद्य कुल त्याग कर देते हैं। वे सन्तान की इच्छा नहीं करते। वे साचते हैं कि हम मन्ताने । क्या बना है हम तो आत्मलाभ अभीष्ट है। जत वे पुत्रपत्नी विधायिका तथा राकपत्नी र व्यत्यान कर भिभाचर्या करते हैं।<sup>१</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि बदाश दृष्टान आत्मण का ससार से विनकुल विरक्त हो जाने का ज्ञान करता है।

मर्यादी का जीवन र इस प्रकार विरक्त होना का मय कारण बदाश का वह सिद्धांत है जिसके अनुसार मनुष्य का जन्म जगत्प्रवृत्त तथा यह मसार अनित्य और सत्तरांत है। महाभारत में भी कहा गया है कि इस जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख ही अधिक है और इस दुःख का मूल कारण तृष्णा है। तृष्णा से ही दुःख उत्पन्न होता है।<sup>२</sup> महाभारत गात्रि पत्र में यह भी निर्देश किया गया है कि राम अर्थात् वामना की तृप्ति जान ग जा सत्य जाना है और जो सुख स्वयं में मितेता है उन दाना मला का याच्यता तृष्णा के क्षय होने का सुख के सोलहवें हिस्से के बराबर भी नहीं है।<sup>३</sup> इस प्रकार जबकि सदात्म धर्म में हम नममय सष्टि के समस्त ध्यवहार तृष्णामूक अतएव वे समय हैं। जत उमय अघात जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पान के लिए मनुष्य को अकाम त्रिप्याम तथा जल्पनाम गार मासारिक कर्मों का मवधाय त्याग करते हुए आत्मनिष्ठ चिन्ति में मया निमग्न रहना ज्ञान आवश्यक है। इन प्रकार हम देखते हैं कि हिंदू धर्म का शाश्वत माग साधारिक सुख भोग के प्रति अत्यन्त उदासीन अत घार निराशावादी है।

### पारमार्थिक दृष्टि से निराशावाद का सण्डन

किन्तु पारमार्थिक दृष्टिकाण में हिंदू दृष्टान निराशावादी को किंचित् प्रथय नहीं देता। हिंदू दृष्टान बनगा जीवन के आध्यात्मिक असन्ताप पर

१ बह्मरूप्यकापनिषद्, चतुथ अध्याय षडुषुष ब्राह्मण, २०

२ मत्तात्पुत्रर दुःख जावित माम्नि सगय ।

महाभारत गा० प ०५६ ३२० ६६

३ तृष्णाविप्रभव मय ।

महाभारत गात्रि पत्र २४ १ १०४ १०

४ मया कामागम राहस्येन चिन्त्य मन्त मगम ।

तृष्णापदमुपगम्य नान्तर पाशा कनम ॥

महाभारत गा० प १०४, ४८, १०० ४६

अवलम्बित है जत वह सामारिज मत्र की अपेक्षा पारमार्थिक सुख को अधिक महत्त्व देता है। हिन्दू दशन अस तथ्य का मानकर चलता है कि जब तक जीवन मरण का चक्र चलता रहगा मनष्य देख म छुटकारा नही पा सकता। अत उम पर निराशावाद के प्रचारक होना का आरोप लगाया जाता है। किन्तु विचार करने पर यह आरोप मिथ्या सिद्ध होता है। हिन्दू दशन अपनी प्रारम्भिक अवस्था म अदृश्य निराशावादी है यथाकि वह जीवन का दुःखमय मानकर आग बन्ता है। किन्तु वह वहा समाप्त नही हो जाता प्रत्यत वह एम देख-बहुन जगत के वास्तविक स्वरूप का समझने तथा उसके उद्धार के निरूपण म अपनी सारी शक्ति लगा देता है जिसम अस निराशामय जगत म जाशा का संचार हान गता है और कदेश का सोत आनन्द के प्रवाह म परिवर्तित हो जाता है। अत एम दशन का जो शाश्वत आनन्द की राज करता है निराशावादी नहा कहा जा सकता। निराशावाद के पक्ष म हम अधिक स अधिक यही कह सकते ह कि इन्द्रियगम्य जगत का अस्वीकार करने के कारण हिन्दू-दशन अथवा बन्त निराशावादी है किन्तु इन्द्रियातीत प्रकृत जगत को स्वीकार करने क दृष्टिकोण म वह मात्र जाशावादी ह।<sup>१</sup>

बन्त दशन की इस विपत्ता क कारण बन्तित अतवाद स प्रभावित छायावाद की कविता म इन्द्रियातीत आत्मानभूति की अभिव्यक्ति हान लगी और उसकी प्रवृत्ति अन्तम स्वी हा गई। छायावादी कविता म जो सासारिकता के प्रति उपमा का भाव प्रचुरता म मिलता है उसका एक महान कारण बदात-दशन की अपायितता भी बनी। उपनिषत् का प्रभाव न छायावाद के कवि का जीवन की विपत्ता तथा नश्वरता का सत्य मान उन क लिए बाध्य किया। वास्तविक जीवन म अपनी निजी मामल च्छाया क स्वप्ना का टटा नेव उसम यह भावना और बढमून हा गई कि जीवन म सुख ही सुख है। एमी परिस्थिति म स्वामी विवेकानन्द के व्यापहारिक बन्त की यह शिक्षा कि वास्तविक सुख की प्राप्ति क लिए प्रवृत्तिमाग का त्याग कर उम निवृत्तिमाग का आश्रय लेना हागा<sup>२</sup> बन्त कुछ मय प्रतीन हान गता। इस प्रकार उपनिषत् क अध्याय तथा विवेकानन्द के प्रभाव म छायावाद का कवि यदि मन कम म नही तो कम-अ-कम विचारा म ही कुछ आता तन एक निष्प्रिय स्यामी बन गया। किन्तु तिनक अरविण गाती टगार आदि क प्रवृत्तिमार्गो अथवा मान्यतावादी दृष्टिकोण तथा स्वय विवेकानन्द के प्रचार

१ विवेकानन्द विविध प्रमग पृ० ८५

२ विवेकानन्द स्वाधीन भारत। पृ ८१ पृ १

के कारण कि 'सकाम काम ही निष्काम काम की ओर ल जाता है' यह कथार तादू नानस्य की भाँति जीवन म पूणत विरक्त न हो सका । युग शन की धारा प्रवृत्ति माग की ओर झुक जान म यह दार्शनिक स्तर पर प्रवृत्तिमाग का भी प्रयत्न समथन बना रहा ।

### जन और बौद्ध धर्मों का निराशावादी दृष्टिकोण

जन धम तथा बौद्ध धम भी औपनिषदिक निराशावादा की ही परम्परा म पान है । य उम परम्परा अथवा विचारधारा का रावन वान स्वल्प शन अथवा धम नहा ह । ब्राह्मण धम क कामवाण तथा पानवाण अथवा साम्य्य धम और गसास धम अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दोना शाखाओ क पूण तथा ल हो जान पर इनम सधार करन के निण इन नाना धर्मों का अ्य हआ है । मी कारण है कि इनम वृष्ण क दुर्पारणामो तथा उनक याग का बडा हा विना वणन मितना है ।

हिंदू धम की भाँति ही जन और बौद्ध धर्मों म भी समाज का आपत्ताओ का धर कहा गया है ।<sup>१</sup> अन य भी जन्म मरण क बधन स स्या क निण मुक्त हो जान का माग निर्धारित करत ह । इस प्रकार जन धम साधुगया क निण ध्याना का त्याग कर निराशा को अपनाता का आश करता है । काणि 'सने मन म समस्त सासारिक दुःखा का मूल आशा ही है ।' अन ज पुश्य समस्त आशाओ को त्याग कर निराशा का अवलम्बन करता है । उमका मन निमी कात म परिग्रह ह्या लम म तिण नहा हाता । बुद्धदेव का भा यह निश्चित मन है कि जीवन दुःखमय है और तप्या का जबतक शमन नया हाता तब तर मनस्य को धार धार जन्म लना पडना है । अन बौद्धमत का एकमात्र

१ विवकानन्द, म्याभीन भारत । जय हो । पृ ८०

२ निरव गीता सम्य बारहवीं मस्वरण गीता की बहिरंग परीणा  
भाग ६ पृ ५०५

३ भवार्थप्रमवा सर्वे सम्बन्धा विपनाम्पम । १ ।

निगम्बर जनाचार्य की शुभव्याचार्यविरचित पानापत्र पृ० १३

४ आगा मूनानि दु गानि प्रभवन्ताह दहिताम । ३ ।

वही मन्तन प्रकरणम, पृ० १८२

५ सर्वाणा यो निराहृत्य नराश्रयमवन्मवने

तस्य श्रवचिन्दि न्यान्त मपवन नियमो । १० ।

वही मन्तन प्रकरणम पृ० १८५

मिद्धात यही है कि निर्वाण के लिए समार का शीघ्रातिशीघ्र छोड़ कर स्याम न बना चाहिए ।

दुःख की व्याख्या करत समय तथागत का कथन है—हृ भिक्षुगण दुःख प्रथम आय सत्य है । जन्म भी दुःख है । वृद्धावस्था भी दुःख है । मरण भी दुःख है । शाक परिवेष्टना दीमनस्य ( उदामीनता ) उपायास ( हैरानी ) सब दुःख है । अप्रिय वस्तु के साथ समागम दुःख है । प्रिय के साथ वियोग भी दुःख है । इप्सित वस्तु का न मिलना भी दुःख है । सक्षय म वह सबते है कि राग व द्वारा उत्पन्न पाचा म्बध ( ह्य वन्ना सत्ता सस्कार तथा विगान ) भी दुःख है । आशय यह कि जगत क प्रत्येक काय प्रत्येक घटना म दुःख की मत्ता बनी हुई है ।<sup>१</sup> दुःख की एसी व्याख्या करत बुद्धदेव ने समार को जतन ह्य घर के समान बताया जिसमे आमोत्त प्रमोद क लिए किंचित स्थान नहा है ।<sup>२</sup> उनके समीप मानव जीवन पानी क बुनबुन जयवा मगमरीचिका क सन्श था ।<sup>३</sup> समार क प्रम रति काम राग तृष्णा आदि को व गोक और भय ता जनक मानते थ ।<sup>४</sup> और यह भी कहने म सकीच नही करते थ कि जा व्यक्ति जीवन को अपनाता है वह मिथ्याभाषण चोर और अभिचार स किमी प्रकार नही बच सकना ।<sup>५</sup>

इस प्रकार बौद्ध दशन म सब अनित्य है । इसी अनित्यवाद को बौद्ध नाशतिका न क्षणिकवात् कहा है । बौद्धमत म जो सत है वह भी क्षणिक है ।<sup>६</sup>

१ महासति पट्ठान सुत्त ( दाष० २।९ )

२ भरतसिंह उपाध्याय बौद्धशासन तथा अन्य भारतीय दशन प्रथम भाग

प्रथम मस्करण स० २ ११ वि० पृ० २९२ पर उद्धृत  
कौनु हासी किमानन्ते निच्च पज्जिते सति । —धम्मपत् १४६

३ यथा बुबुनक् पस्म यथा पस्मे मरीचिक । —धम्मपत् १७०।४

४ पियता जायता साका

पियता जायती भय —धम्मपत् २१२।४

रनिया जायती सोका

रनिया जायती भय —धम्मपत् २१६।

कामतो जायती सोका

कामतो जायती भय —धम्मपत् २१।१३

५ या पागमति पानेति मुमानात्तव भामति ।

तां जन्ति आत्थियति परत्तरं इ गच्छति । —धम्मपत् २६५।१२

६ मतं मत्तं तं क्षणिकं —अणभग १।१ ( पान थी )

राहुन माम्बत्पायन बौद्ध दशन द्वितीय मस्करण पृ १४८

एक प्रकार सत्ता मात्र में नाश (धम) निहित है ।<sup>१</sup> अतः समाज की प्रत्येक वस्तु क्षणिक अथवा क्षणभंगुर है । इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्धधर्म समाज का दुःख तथा क्षणिक घातित कर इसके प्रति घोर निराशा की भावना का ही पट्ट करता है ।

बौद्ध दर्शन के एक दुःखवाद तथा क्षणिकता का प्रभाव शंकराचार्य से लेकर आधुनिक युग तक किसी न किसी रूप में भारतीय जीवन पर पड़ना आया है । किसी के मन्त कवियों का काव्य विशेष कर कबीर का काव्य बौद्ध धर्म के प्रभाव तथा तर्जनिन वर्णा में प्रभावित है । छायावाणी कवियों पर कबीर दादू जगन्नि रमन् कवियों का प्रभाव तो था ही उन्होंने बौद्ध साहित्य और मस्तुति का भी गहन अध्ययन किया था । अतः अपना निज परिस्थितियाँ और स्वभाव के अनुकूल तथा समाज के अनुरूप उन्होंने अपने काव्य में बौद्धमत के सिद्धांतों का विशेषकर उसके दुःखवाद-समाज की अनित्यता और क्षणिकता तथा अमम उत्भूत करणा और मध्यम प्रतिपद का स्तवन किया है ।

### पाश्चात्य निराशावाद

निराशावाणी के तत्त्व ईसाई मत तथा ईसाई रहस्यवाद में भी निहित है किन्तु वहाँ पर भी भारतीय धर्मों तथा रहस्यवाद की भाँति निराशा की परिणति आशावाणी में ही सिद्धाई गई है । इस प्रकार पाश्चात्य दर्शन में भी निराशावाद का एतन्त्रित निरूपण हम सबप्रथम शोपनहार के दर्शन में मिलता है । शोपनहार ने हीगन के अर्थन के एक पत्र का कि निम्नलिखित शक्ति अर्थन शक्ति मात्र है बड़ा प्रथम समयन किया है । उनके लिए निवेद्य दृष्टा शक्ति विचारनीय तथा निरुपेक्ष है अतः दुःखमय है । मसार भी अभी शक्ति का एक रूप (चित्र) अतः वह भी अभी के समान दुःखमय है । मनष्य की

१ प्र० बा० ११२७२- तत्तामाशानुर्विचितात् नागस्य

पृ० पृ० १८०

२ Christianity is a profound philosophy of pessimism the doctrine of original sin ( a section of the will ) and salvation (denial of the will) is the great truth which constitutes the essence of Christianity

Will Durant The story of Philosophy, cordinal edition

19०3, P 338

3 Separation from God is the source of all misery  
Therein lies the pain of hell

W R Inge-Christian Mysticism, P 185



इच्छा दुःख की ही एक दशा है अतः उसकी तृप्ति दुःख का निपथमात्र है ।<sup>1</sup> इस प्रकार शापनहार के मत में सुख की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है, सुख इच्छा की धार्मिक तृप्ति भर है । ससार में यथाथ (भावात्मक) सुख की प्राप्ति असम्भव है । दुःख ही जीवन का एकमात्र सत्य है । इसी से वह जीवा को भूल रूप में स्वीकार करता है जिसमें सबत्र खोखलापन ही खोखलापन दृष्टिगोचर होता है ।<sup>2</sup> ससार को वह ईश्वर की सर्वात्म और सफा कृति इसलिए नहीं मानता कि एक ता उसमें सबत्र दुःखा का ही आधिक्य है और दूसरे उसकी सर्वोत्कृष्ट सृष्टि मनुष्य भी अपूर्ण ही है ।<sup>3</sup> ससार के प्रति अपने उक्त निराशावादी दृष्टि कोण के कारण शापनहार गद्यात्म दर्शन के सर्वात्मवाद में विश्वास नहीं करता । सर्वात्मवादियों के अनुसार जगत के समस्त पदार्थों में एक ही चीज सत्ता ईश्वर निहित है । किन्तु ससार में दुःख शोक तथा मनुष्या एक पशुओं का एक दूसरे का आहार बनते देख कर शापनहार कहता है कि वह ईश्वर जिसने अपने को वर्तमान जगत के रूप में अभिव्यक्त होने का निश्चय किया होगा उसमें ही शतान द्वारा सताया गया रहा होगा ।<sup>4</sup>

अपने निराशावादी समय में शापनहार ब्राह्मण धर्म बौद्धधर्म तथा पाशागोरम आदि ग्रीक दार्शनिकों को भी स्मरण करता है जिनके मत में मनुष्य का जन्म पूर्व जन्म के कर्मों तथा अपराधों का परिणाम है जिनका दण्ड भागने के लिए उन्में एक दुःखमय जगत में आना पड़ता है ।<sup>5</sup> इस प्रकार हम देखते हैं

- 1 Schopenhauer emphasizes the pessimistic side of Hegel's thought. The universe is merely blind will, not thought. This will is irrational, purposeless and therefore unhappy. The world being a picture of the will is therefore similarly unhappy. Desire is a state of unhappiness and the satisfaction of desire is therefore merely the removal of pain. Encyclopaedia Britannica Vol 17 P 638
- 2 Bailey Saunders studies in Pessimism Schopenhauer P 37
- 3 Ibid P 24
- 4 Frederick Copelston Arthur Schopenhauer Philosopher of Pessimism See chapter IV (The Tragedy of life)
- 5 I refer not to my own philosophy alone but to the wisdom of all ages as expressed in Brahminism and Buddhism and in the sayings of Greek philosopher like Empedocles and Pythagoras as also by Cicero in his remark that the wise men of old used to teach that we come into this world to pay the penalty of crime committed in another state of existence.

Bailey Saunders, studies in Pessimism Schopenhauer, P 27

निःसहायता तथा बौद्धिकता के समान ही आपनहार भी इच्छा किंवा कृपा का समस्त दुःख का मूल कारण घोषित करता है तथा उसके अंत में अथवा निषेध पर जोर देता है। किन्तु वह बुद्धि के समान दर्शन की आत्यंतिक निवृत्ति का कोई शुभ माप नहीं दे सकता। अतः उस स्थान में बोरिसोव अथवा निर्वाण मुख जमा कोई तत्व नहीं मिलता। उसके मन में मनष्य जीवन पमल सिमी एसी वस्तु की तलाश में रहता है जो उस सगा बना सब किन्तु या ता का वस्तु उस प्राप्त ही नहीं। हानी या यदि प्राप्त भी हो गनी ह ता टिकाऊ नहीं हो पाता। इस प्रकार कालान्तर में वह भी दर्शन का ही वारण बतती है। इस प्रकार आपनहार तार्किक दृष्टि में दुःख और सब में काई भेद नहीं करता।<sup>1</sup> अतः उसके मन में जीवन की अनिच्छा का ही दूसरा नाम गामास है और मृत्यु ही जीवन का सर्वोत्तम उपहार है।<sup>2</sup>

इस प्रकार आपनहार की दृष्टि में आशावादी मानवजीवन के दुःख का क्रूर अटटहास मात्र है।<sup>3</sup> जीवन में बुराई ही बुराई है और दुःख ही एकमात्र भावार्थक सत्ता है। जीवन का अनुभव यह बताता है कि 'उम सब्र ईष्या सदां कनह और सघप का ही रात्र है। निमी अच्छी दस्त की सामना तथा उसके लिए प्रयत्न करना व्यर्थ है—यान विष्मयना है। कारण मनष्य को उदाए अनन्त हैं और उनकी पूर्ति के साधन अत्यन्त सीमित हैं। उन यदि एक इच्छा की पूर्ति होता भी है ता उसका साथ दस एगा इच्छाए बना होता है जिनका पूर्ति नहीं हो पाती। इस प्रकार मानव जीवन भिरक की समता का समान है जो उम आन वान कन की यातना महान के लिए जीवित रहती है। अतः जब तक मनुष्य इच्छाया का दास बना हुआ है तब तक उम शान्ति अथवा शाश्वत सुख नहीं मिल सकता। ज्ञान विज्ञान भी उम दुःखों का निवारण नहीं कर सकता। कारण ज्ञान की वृद्धि के साथ साथ दुःखों का भी वृद्धि होती जाता है।<sup>4</sup> इस प्रकार आपनहार के मन में मानव जीवन एक दुःखमय नाटक के अनिर्दिष्ट जोर में ही है।

1 Ibid P 35

2 Asceticism is the denial of the will to live Ibid, P 26

3 Will Durant, the story of Philosophy, P 343  
(The greatest boon of all is death)

4 Optimism is a bitter mockery of Men's woes  
Will Durant The story of Philosophy p 327

5 The more distinctly a man knows the more intelligent he will be more pain he has the man who is gifted with genius suffers most of all  
Will Durant The story of Philosophy, p 325

गोपनहार का यह निराशावाद युग की पराजित आत्मा तथा ध्वस्त जीवा की पुकार थी। तत्कालीन यारोपीय गरीर म आत्मा निकल चुका था। उच्च वर्ग के अधिकांश लोगो का धर्म में विश्वास खिग गया था अतः वास्तविक जीवन की कुरूपता और बटुता को विस्मय कर देने वाला धार्मिक आधार भी छिन गया था। लोगो को यह विश्वास करना असम्भव हा रहा था कि यह अपार दुःखा से परिपण जगत मान तथा करणा के धर्म श्रद्धा द्वारा निर्मात्रत है। उह यह अनुभव हान गया था कि जगत म आध्यात्मिक नियम तथा दवी आशा जसी कोई वस्तु नहीं है। और यदि ईश्वर है भी तो निग अधा है।<sup>1</sup>

गोपनहार एसे ही युग की उपज था। युवावस्था म उस अत्यन्त साधारण धार्मिक शिक्षा मिली थी। स्वभाव से भी वह अपन समय की धार्मिक संस्थाया का विराधी था। धर्मापदेशका को यह घणा की दृष्टि से देवता था और धर्म का साधारण नामो का तत्त्वज्ञान घापित करता था।<sup>2</sup> अतः दुःख परिस्थितिया म धर्म में शांति ढूढना उसके लिए असम्भव था। अपन यत्कि गत जीवन में भी उस माँ पत्नी सन्तान परिवार मित्र आदि में से किसी का सुख अथवा सहानुभूति प्राप्त नहीं थी।<sup>3</sup> जीवन के अन्तिम क्षण तक उस निरमग जीवन चलीत करना पदा। उसका कृतिया का भी उसके जीवनकाल में उचित समाप्तर नहीं हुआ। यहाँ तक कि उसकी अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तक 'द इण्डिग विण एन्ड आन्डिया के प्रकाशन के सोनह वष पश्चात उस सूचित किया गया कि उसकी अधिकांश प्रतियाँ रहीं व भाव बिकी ह।<sup>4</sup> यह

1 That there was no divine order after all nor any heavenly hope that God if God there was was blind Ibid p 302

2 In youth he had received very little religious training and his temper did not incline him to respect the ecclesiastical organisations of his time He despised theologians and described religion as the metaphysics of the masses  
Will Durant--The story of Philosophy p 338

3 He had no mother no wife no child no family no country He was absolutely with not a single friend Ibid, p 304

4 Sixteen years after publication schopenhauer was informed that the greater part of the edition had been sold as was epaper Ibid, p 305

और जावन का इस विषमता और विषाद न उस विकट विश्वाही तथा अन्वानी दना लिया। सामाजिक जीवन में भी तत्कालीन औद्योगिक स्थिति में उत्पन्न बहुमूल्यक जनता की निधनता धराजगारी तथा अराजकता का विद्वेषण का उमके ऊपर बना ही गणुभ प्रभाव पडा।<sup>1</sup> अतः बाह्य और व्यक्तिगत दाना जीवनमरणिया में दुःख की सपना का अनन्य करके वह जीवन की बाड़ी हार बठा। जीवन में उस सबन्ध मत्य ही मत्य लिखाइ पन्न नगी। अगुड क कवि बाबरन, शाली अरनाल् फिजजरल् तथा रुम क शुश्विन आर जमनी क साआपाँ भी एस ही विपात्मय तथा विपात्त वानावरण की उपन हैं।

छायावादी का कवि भी जिस सामाजिक वानावरण में सोम ल रना था वह बडा हा कठार और कटु था। भारत का वह मजानि वान था और जीवन क प्राय सभा क्षत्रा में महान परिवर्तन ना रह य। कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था का ढोवा ढट रहा था और उसका स्थान पूंजीवादी व्यवस्था न रही थी। उत्त प नावादा व्यवस्था में मध्यवर्गीय छायावादी क कवि की आशा आवागात्रा का परी तरण पनपन अथवा पूण हान का अवसर ना मित। राजनानिक तथा सामाजिक जीवन में भी नम पराजय अथवा नव हा नुग लिखाई लिया। एम प्रकार सामाजिक तथा व्यक्तिक जीवन क अनुभवा का इतिहास उसक लिए बडा ही करण प्रमाणित हुआ जिसा नमकी सट्टज जावन धनीत करन का भावना का भीषण आघात पहुचा। पन्त उन मनार नवर<sup>2</sup> अथवा क्षणभगुर लिखाई पडन लगा \* सुग सरना और नाक समरु प्रनीत हान लगा \* जम क मधुर रूप में मृत्यु लिखाई दन नगी<sup>3</sup> और बमल क कमुमिन आवरण क भीतर पलसड का अस्थिपजर खरकन लगा।<sup>4</sup> एम प्रकार नगी तव छायावादी कवि के जीवन का मृत्यु क अट्टहास क रूप में दान उनका कामना करन नागत्रिक सुखा का क्षणिक मानन तथा मृत्यु का

1 Ibid P 300 301

2 पन्त, पल्लविना पृ ८०

3 मजन हा है मार। —वही पृ ८५

4 वही सुग सरना नाक मुमरु वही पृ० ८४

5 भावना इपर जम नाचन,

मूनी उपर मृत्यु क्षण क्षण —वही पृ० ७५

6 दगा, वही पृ० ७३

शापनहार का यह निराशावाद युग की पराजित जात्मा तथा ध्वस्त जीवन की पुकार थी। तत्कालीन योरापीय शरीर में जात्मा निकल चुकी थी। उच्च बग के अधिकांश लोगो का धर्म में विश्वास टिंग गया था अतः वास्तविक जीवन की कुरूपता और कटुता को विस्मय कर देने वाला धार्मिक आधार भी छिन गया था। सागो को यह विश्वास करना असम्भव हो रहा था कि यह अपार दुःखा से परिपूर्ण जगत तान तथा कष्टों के धाम ईश्वर द्वारा नियंत्रित है। उह यह अनुभव हान गया था कि जगत में आध्यात्मिक नियम तथा दबी आशा जसा कोई वस्तु नहीं है। और यदि ईश्वर है भी तो निराशा है।<sup>1</sup>

शापनहार ऐसे ही युग की उपज था। युवावस्था में उस अत्यंत साधारण धार्मिक शिक्षा मिली थी। स्वभाव से भी वह जपन समय की धार्मिक गस्थाओं का विरोधी था। धर्मोपनिष्ठा का यह घणा की दृष्टि से देखता था और धर्म को साधारण सागो का तत्त्वज्ञान घोषित करता था।<sup>2</sup> अतः दुःखद परिस्थितियों में धर्म में शांति ढूँढना उसके लिए असम्भव था। जपन चर्चित जीवन में भी उसे माँ पत्नी सन्तान परिवार मित्र जाति में किसी का सुख अथवा सहानुभूति प्राप्त नहीं थी।<sup>3</sup> जीवन के अंतिम क्षण तक उस निरमग जीवन यतीत करना पड़ा। उसका कृतिया का भी उमक जीवनकाल में उचित समालोचन नहीं हुआ। यहाँ तक कि उसकी अत्यंत प्रसिद्ध पुस्तक दि बंड एंड विन एंड जाटिया के प्रकाशन के सोलह वर्ष पश्चात् उस मूचित किया गया कि उसकी अधिकांश प्रतियाँ रही के भाव विकी हैं।<sup>4</sup> युग

- 1 That there was no divine order after all nor any heavenly hope that God if God there was was blind Ibid p 302
- 2 In youth he had received very little religious training and his temper did not incline him to respect the ecclesiastical organisations of his time He despised theologians and described religion as the metaphysics of the masses  
Will Durant—The story of Philosophy p 338
- 3 He had no mother no wife no child no family no country He was absolutely with not a single friend Ibid p 304
- 4 Sixteen years after publication schopenhauer was informed that the greater part of the edition had been sold as was epaper Ibid p 305



चिरतन सत्य स्वीकार करने का प्रश्न है<sup>१</sup> वहाँ छायावाङ्मय के निराशावाङ्मय पर बौद्ध धर्म के मन में जाने वाले शापनहार के निराशावाङ्मयी सिद्धान्त (अनित्यता क्षणिकता दुःख तथा मृत्यु की एकमात्र सत्यता आदि) का प्रभाव माना जा सकता है। किंतु जहाँ पराजित आत्मा में उत्पन्न निराशावाङ्मय का सम्भव है वहाँ शापनहार के निराशावाङ्मय की छाया भी छायावाद की निराशा में देखने को नहीं मिलती। छायावाङ्मय का अद्वैतवाङ्मयी तथा भक्तिपरायण कवि शापनहार के मर्म कथन में कि मानव जीवन के सुख अपूर्ण और अस्थायी हैं राहमत होत हुए भी यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता कि मनष्य के लिए इस जीवन में शाश्वत सुख अथवा आनन्द की प्राप्ति संभव नहीं है। इसी से वह जीवन की कटुताजय निराशा पर विजय प्राप्त कर आत्मानन्द और जीवन सौन्दर्य का गान गाता है। शापनहार की पराजय को निरपेक्ष की तय में गौरवाविवृत करता है। इस प्रकार छायावाङ्मय के कवि के लिए विना दुःख के सत्य सुख निस्सार तथा प्रिया आँसू के जीवन भार—स्वरूप है।<sup>२</sup> इस प्रवृत्ति का कारण छायावादी कवि की रहस्यात्मकता है जिसका शापनहार के यहाँ नितान्त अभाव है। रहस्यात्मक प्रवृत्ति के कारण ही वह ससार के समस्त रहस्यवादियाँ की भाँति दुःख का परम सुख का अभिन्न अंग मानता है। उनके समीप दुःख और सुख परस्पर आवृद्ध हैं<sup>३</sup> अतः वह ससार में दुःख की सत्ता को स्वीकार करने के साथ ही सुख की सत्ता को भी स्वीकार करता है। इस प्रकार इच्छा (काम) उसके लिए अभावात्मक अथवा दुःखात्मक नहीं होकर मगन में मग्नियत प्रय है<sup>४</sup> अतः वह शापनहार की भाँति जीवन के प्रति अनिच्छा

१ मृत्यु अती चिर निद्रा । तरा अक हिमानी सा शीता

अकार के अष्टास मी मुखरित मजन चिरतन सत्य  
छिपी सष्टि के कण रण में तू यह सुन्दर रहस्य है नित्य ।  
जीवन तरा क्षुण्ण अंग है अतः नीत घन माना में  
सौभागिनी-सधि सा सुन्दर क्षण भर रहा अज्ञान में ।

प्रसाद कामायनी त्रितीय संस्करण पृ ७ ७

२ पल पलव धनुर्वावृत्ति १९४५ पृ ८९

३ अमुभा में रहता है राम हाथ में अशुभना का भाम  
शवास में छिपा अमुभा उच्छ्वास और उच्छ्वासा में हा शवाम ।

पल पलव धनुर्वावृत्ति १ ४५ पृ ७

४ काम मगन में मग्नियत प्रय मग्न अक का अ मग्नियाम ।

प्रसाद कामायनी त्रितीय संस्करण पृ ६१

की भावना का न अपना कर जीवन म अनुरक्त होने का प्रयत्न करना है ।  
 उसी तरह सर्वात्मवादी हान के जाने छायावाद का कवि शापनहार के उस  
 सर्वात्म विराधी विचार कि यह दुःख समय समार अवश्य ही शतान द्वारा सनाय  
 गय ईश्वर की उक्ति है का भी समयन नही करता प्रत्युत वह इस जगत का  
 आनन्दमय मूल की आनन्दमय सृष्टि ही घापित करना है ।

### रोमांटिक निराशावाद

दार्शनिक निराशावाद का एक महान कारण आत्मवादी युवक की  
 स्वच्छता जयमा रामायवादी प्रवृत्ति है । इस प्रवृत्ति के भीतर यह अपने  
 दाह्य मसार से सम्पूर्ण विच्छेद कर अपने अन्तः के तत्त्वा की ओर उभर  
 जाता है ।<sup>1</sup> इस प्रकार रामायवादी आत्मवाद की ही एक गम्यता है । आत्म  
 वादी हान के कारण ही रोमांटिक कवि विश्व का आन्तर्भावित व्यवस्था  
 की परदेह नही करता । जगत के अन्तः के ही एक मात्र प्रधानता इन के  
 कारण वह अपनी ही आशा याकाशाओं जयवा स्वप्ना म जीन रहना है और  
 मसार बहुत कुछ पा लने की आशा करता है । उल्लाह की बात आन पर वह  
 अपने आशों की पूर्ति के लिए प्राचीन ऋषियों परम्पराओं नियमा तथा  
 व्यवस्थाओं की उपास करता है तथा शीघ्र एवं शक्ति की भावनाओं का  
 समार और आह्वान करता है । किन्तु भावुक और कल्पनाप्रिय जग के  
 कारण वह मनुष्य की स्थिति म बहुमा बहुत कम रहता है । अतः यथाथ  
 जगत म जब उमर आत्मलाक की आशाएँ अभिजाताने माकार नही हा पाती  
 तब वह आन्तर्गत निरास होता है । किन्तु उसी दशा म भी वह अपनी शक्तिया  
 की छायाधीन रहा करता । जिस समय को यह अनुभव होने लगता है कि  
 उसके मुख का आत्म ही वास्तविक दुःख का स्पर्शन मन रहा है उस समय  
 वह अपने आप को दोषा न मान कर सम्पूर्ण समाज को अपने तथा अपने  
 आशों के प्रति अवाग्य प्रमाणित करता है ।<sup>2</sup> इस परिस्थिति म वह निरास  
 एकाकीपन का अनुभव करता है । पृथ्वी की सभी मनोःशा म वह निरास को  
 मांन तथा मरु को अपना उदारण मान लेता है । उगकी यही भावना जब

1 Romanticism is that attitude of mind in which it withdraws itself from communion with the outer world and turns in upon things which it finds within itself

Aborombic Romanticism second edition p 22

2 When the romantic discovers that his ideal of happiness works out into actual unhappiness he does not blame his ideal. He simply assumes that the world is unworthy of a being so exquisitely organised as himself  
 Will Durant The Story of Philosophy, p 345



घनीभूत होकर स्थायी रूप पकड़ लेती है तब वह शास्त्रीय निराशावाद का रूप धारण कर लेती है जिमस मट्टि के कण-कण में उम दख की 'याप्ति का अनुभव होने लगता है। छायावाद की कविता में भी इसकोटि के निराशावादी तत्वप्रचुरता से मिलते हैं।

स्वच्छन्दतावादी होने के कारण छायावाद का कवि स्वभाव में ही स्वतंत्र अथवा स्वच्छन्द विचारों तथा अछूते सी-दय का प्रमी था। उसमें अहं भाव की भी प्रधानता थी। स्वामी विवेकानन्द की इस शिक्षा से कि तम जनन्तस्वरूप हो तुम्हारे स्वरूप की तुलना में देवता भी कुछ नहीं है तुम्हारी तो च्छा द्रोगी बही कर सकते हो<sup>१</sup> सुम सबशक्तिमान हा उसके अहंभाव को जीर उत्तजन मित्त। अगरेजी शिक्षा के प्रभाव में भी उसके भीतर स्वच्छन्द विचारा ही अभिव्यक्ति तथा स्वतंत्र प्रेम की इच्छा उत्पन्न हुई। किन्तु तत्त्वानी मर्यादावादी अथवा नतिकतावादी समाज उसकी इस स्वतंत्र प्रेमभावना के प्रति अत्यन्त जनुदार अथवा असहिष्ण प्रमाणित हुआ। कम व्यवधान की प्रतिनियम स्वरूप उसने परम्परागत प्रमरुत्तियों का प्रतरोध भी किया। किन्तु रोमा वक्ति के कारण मधय की कठोरभूमि पर उसका कदम अधिर देर तक जम न सके। उसकी स्थिति प्राय जीवन मधय में पराजित एक योद्धा की भी रही<sup>२</sup>। निदान आशावादिता की उमग में उसने अपने युग की सस्वृति जीर सामाजिकता को ही निष्प्रय और निष्प्राण कह कर सन्तोष करना चाहा।<sup>३</sup> किन्तु उसका यह दृष्टिकोण भी उमे बाह्य जीवन अनित निराशा से बचा नहा सका। जीवन मधय के आघात से जम जमे उमके मुनहन स्वान टूटत गय वमे वमे उमका प्रमोमा अथवा उत्साह भी फीका पन्ना गया। धारे धीर उमम यत् गिरात भी दू होना गया कि प्रम प्रारम्भ में ताह तिनना ही मोहक और मधुर क्या न हो अन्त में वह दया का राजा सिद्ध होता है। इस मना दशा में उसे दशन की यत् उक्ति कि आशा ही परम दय और निराशा ही परम गुम ह<sup>४</sup> गत्य प्रतीत होने लगी। और उसकी सम्पूर्ण महावाकाया गयवा सम्पूर्ण उन्नास निराशा के तिलास में परिवर्तित हा गया।<sup>५</sup> य। ता

१ 'यावत्पारिव जीवन में वेगान पृ० १६

२ मन्ग्रेजी वमा आधुनिक कवि अपने दृष्टिकोण में पृ० ३१

३ आशा कि परम त्व नराश्य परम सत्वम। श्री भा० ११।८।६६

४ पूज में टनराकर सुकुमार

कर्मगी पीला हाताकार

शिपर रर वन वन में हो याप्त

मय वन छा उगी गमार।

मन्ग्रेजी वमा यामा पृ० २८

'लहर' आदि के गीतों तथा आँसू मया उनक चन्द्रगुप्त स्कन्दगुप्त आदि ऐतिहासिक नाटकों तथा कामायनी काव्य के पात्रों में देखने को मिलते हैं।

'लहर' के गीतों में प्रसाद जी ने जगत का आँसू के वन<sup>१</sup> तथा ज्वालना<sup>२</sup> के रूप में देखा है। साथ ही उन्होंने जगत को उस प्रचण्ड ज्वाला में जलता हुआ भी घोषित किया है।<sup>३</sup> इसी प्रकार अशोक की चिन्ता में उन्होंने मारी बसवा का भुनत तपत तथा सष्टिमात्र को दुखिया बताया है।<sup>४</sup> और आँसू में अपने निजी अनुभव के आधार पर स्पष्ट कहा है कि यह जगत् निमग्न स्थित<sup>५</sup> बननावाला<sup>६</sup> तथा सत्य में सूता<sup>७</sup> और व्यथा से परिपूर्ण है।<sup>८</sup> प्रसाद जी का जगत विषयक दृष्टात्मक अनुभवों को जीवों में लिख कर कामायनी के मनु दोहराते हुए जान पड़ते हैं। 'जबमान और निराशा के क्षणों में मनु को यह विश्व दुःख की आधी और पीड़ा को लहर में उद्वलित पतीत होता है।'<sup>९</sup> उनका निरासंगार में एक आरमोन् निराशा विवस तथा अघकार ही अघकार निरवाई देता है तो दूसरी ओर अमरता का तिरोभाव तथा मृत्यु की ही चिन्ता और सत्यता सिद्ध होती है।<sup>१०</sup> इसी प्रकार उनका नाटकों

१ लहर तृतीय वार पृ० ३६

२ वही पृ० ११

३ वही पृ० २९

४ भुनती बसवा, तपत नग,  
दुनिया है मारा जग  
कटर मित्र है प्रति पग  
जानी सिवना का यह गग ।

वही, पृ० ५०

५ आँसू दशम सस्वरण पृ० ६३

६ वही पृ० ५१

७ वही पृ० ६०

८ वही पृ० ७०

९ वही पृ० ५८

१० कामायनी तृतीय सस्वरण, पृ० २३१

११ मीन । नाश । विध्वन । अघेरा ।

गूँज बना जो प्रगट अभाव  
वह मृत्यु है अरी अमरन ।  
तुझको यहाँ वहाँ अब टाव ।

वही पृ० ७६

उह ससार म मत्यु और छाया ही छाया लिखाई पन्नी है<sup>१</sup> और बिन्दु म दम का चरित्र अथाह उमडता हुआ प्रतीत होता है।<sup>२</sup> निराला जी ने भी ससार को दुःखम अनान राज्य कह कर उम दुःखमय बताया है।<sup>३</sup> उह भी ससार म चारा आर मत्यु के ही विवर दष्टिगत हाते ह—

मैं रूगा ा गह के भीतर  
जीवन म ह मत्यु के विवर<sup>४</sup>

इसी प्रकार छायावाद-युग क ज्ञ कविया जस रामनरसत्रिपाठी रामकुनार वमा<sup>५</sup> जाति न भी जगत का दुःखमय पाया औरघापित लिया है।

आलोचका न छायावादी कवियो विगपकर प्रसाद और महादवी पर बौद्ध दशन के दुःखवाद का प्रभाव डूढा ह। इसम सन्दह नहा कि प्रसाद जी बौद्ध सम्भ्यता एव मस्कृति क एक योग्यतम विचार्या थे इस विषय म उनका विशद अध्ययन और पान था। अत बौद्ध दशन म अध्ययन म उनकी सार गही दष्टि न यह अनुभव किया कि व्यावहारिक दष्टि न यह जगत दुःखमय है। अपन च द्रुगुप्त नाटक म उहाने स्पष्ट ही कहा है कि मैं स्वय हृदय म बौद्धमत का समथक हूँ क्वल उसकी दशनिक सीमा तन-स्तना ही कि ससार दुःखमय है।<sup>६</sup> किंतु अपने वास्तविक रूप म प्रसाद जी भारतीय आध्यात्मिक दशन क अध्यता और अनयायी हैं। वे सुख और दुःख को तात्विक वस्तु मानन के विरोधी हैं। सुख और दुःख की मायताजा के ऊपर प्रतिष्ठा पान वाल आनन्द तत्व का प्रमाद जी न आदश निरूपण किया है। उहान समस्त दुःखता का परिहार वसी आनन्द के अतगत किया है।<sup>७</sup> अत बौद्ध दशन की इस मायता अथवा सत्य ता कि ससार दुःख अथवा दुःखमय है प्रमाद जी सिद्धांत रूप म स्वीकार नही करते। वह उम उसा सीमा तक स्वीकार करते है जहाँ तक कि

१ यामा पृ १०

२ यामा पृ० ८०

३ पश्चिम अष्टमावति पृ २३२ १६८ १०२

४ गीतिका पृ ०३

५ चारा आर वही पर विस्तृत कवन दुःख ही दुःख ह।

दम का है वह जाल दीयता वही दशनिक जो मुख है।

पयि १ पृ० १८

६ विश्व अःखमय या उममे निकली चित की चष एर फिरल

स्परानि (१०३३) पृ २१

७ चन्द्रगुप्त पृ ७१

८ नन्दनाने वात्रपयी आधुनिक साहित्य पृ० ७

वह उनका आनन्दवाद में सहायक सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार दुःख उनके समीप ईश्वर का रहस्य बरदान है जो अपने भातर सुख का नवन प्रभाव दिये हुए है।<sup>१</sup> इसी प्रकार पन्त निराला जीर मन्नादेवी भी जगत में दुःख की स्थिति जीर उसकी व्यावहारिक सत्ता को तो स्वीकार करते हैं किन्तु उसका पयवसान व जानद में हा करत है<sup>२</sup> अवश्य ही वह आनन्द मूलत आधिभौतिक न होकर आध्यात्मिक है। आध्यात्मिक आनन्द की लानसा रखन व कारण हो छायावाद का कवि सृष्टि में जा कुछ भी—सुख दुःख जय पराजय उन्नति या ह्याम—है उम अभिराम घापित करता है।<sup>३</sup>

### प्रकृति में दुःख और क्षणभंगुरता का आरोंप

छायावाद के कवि का प्रकृति व साथ अत्यन्त निकट का सम्बन्ध था, अतः व्यावहारिक दृष्टि में जगत व दुःख की व्याप्ति तथा क्षणभंगुरता को स्वीकार कर लन पर उमन प्रकृति में भी दुःख तथा क्षणभंगुरता का आरोंप

१ प्रसाद कामायनी श्रिताय मस्वरण, पृ० ६१

२ (क) कौटा स कुटिल मरी हो यह नटिन जगत की डाली  
मम हा ता जीवन व पन्नव का फूटा लाला।

दुःख थावा म नव-अकुर पाता जग जीवन का बन  
करणा विश्व की गजन बरमाही नव जीवन-कण।

पन्त, गुजरात तृतीय मस्वरण प २२

(ख) मस्त-शून्य म ऊपर मन का जीवन ही व अन्धवन।

पन्त, गुजरात तृतीय मस्वरण प० २०

(ग) प्रतिपन्न पराश्रित भी अप्रतिहत बन्धा रहा

पहुंचा मैं तन्म पर।

अविचल निज घालि म

बनानि तव सा गई—

निराला परिमल अष्टमावलि, १९६० प० २३३

(घ) मज व पन्न छू बहने मर मर

कण कण न जागू व निर्झर

हो उठता जावन म उबर

पपु मानम म वः अमीम जग का आमन्त्रित कर ताता।

मन्नादेवी बर्मा जापुनिक कवि (१) प० ७

३ (क) सृष्टि में मव कद्र है अभिराम सुभी न है प्रति या ह्याम।

मन्नादेवी बर्मा अष्टमावलि प० ६६

किया। इस प्रकार अचिरंत मधो मे घिरा हुआ नभमण्डल उसे अज्ञात वेदनाओं का आगार प्रतीत होन लगा<sup>१</sup> गगन के उर मे भी घाव खिखार दन लगा<sup>२</sup> सरिता अपना दावन अश्रु कणा स भिगाती हुई जान पडने लगा।<sup>३</sup> और पवन ठणो आह भरता हुआ<sup>४</sup> तथा समुद्र मिसरता हुआ मुनाई पना लगा<sup>५</sup>। छायावाद की कविता मे प्रकृति के रूपखण्डो (जस नीन गगन, घन आदि<sup>६</sup>) को विषाद अथवा दुख के प्रताक क रूप अपनाये जाने के राशि राशि उदाहरण ढूढ जा सकते है।

हिन्दूधम तथा बौद्धधम के दुखवाद जीर स्वामी विवकानन्द और रामतीथ के प्रकृति दर्शन के प्रभाव स छायावाद क कवि को जो सिद्धान्तरूप मे क्षणभंगुरता का भान हुआ उसका आराप उसन प्रकृति क बीच भी किया।<sup>७</sup> अत इस प्रकार के भाव कि—

अचिरता दय जगत की आप  
गूँय भरता समीर निश्वास  
डानता पाता पर चपचाप  
ओस के आँसू नीलाकाश

१ (ख) घिर कर अचिरंत मधो स जब नभ मण्डल झुक जाता  
अज्ञात वेदनाओं स मरा मानस भर आता।

मन्मथेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्धावृत्ति पृ० ४०

सरस अभिराम पतन उत्थान—

दया भय हृष प्राध अभिमान

दुख-मुख-तपणा जानाज्ञान।

निराना परिमाण अष्टमावृत्ति पृ १००

२ गगन के उर मे भी है घाव ~ पत पल्लव, चतुर्धावृत्ति पृ० १७

३ आँसू कण-कण स छल छन-सरिता भर रही दगवल,

प्रसाह सहर ततीयवार पृ० ४८

४ अनिभ भा भरती टण्ड आह। ~पल्ल, पल्लव चतुर्धावृत्ति पृ० १८

५ मिमकते है सम प मन वही, पृ० १७

६ इग नीन विषाह गगन मे—मुख चपला-सा दुख घन मे

प्रसाह सहर ततीय वार, पृ० ४८

७ स्वामी विवकानन्द और रामनाथ के अध्ययन से प्रकृति प्रेम के साथ हा मर प्राकृतिक दर्शन क गान और विश्वास मे भी अभिवृद्धि हुई। परिवर्तन मे दग विचारधारा का काफी प्रभाव है। जब मे सोचता

मिमक उठत समुद्र का मन,  
मिहर उठते उठुगन ।<sup>१</sup>

बसा वह प्रप्रेष है मिमम एक उपा वह भी नश्वर है  
उज्रवन एक तन्त्रि है जिसका जीवन भी केवल पल भर है ।<sup>२</sup>

छायावाद की शक्ति में प्रचुरता में पाय जात है ।

वाक्य में उमड़न और मिटन चीजों में उल्टप हाने और छिपन चीजों में जागने की वृक्षने<sup>३</sup> मधुमास में शिशिर में परिवर्तित होने, आदि प्रकृति-वापारा में जागरूक जीवन और जगन की क्षणभंगुरता में गिड़ान्त की नीमामिक अभिव्यक्ति और विणक कल्पना में छायावाद की कविता में अपने का मिलती है । प्रकृति में क्षणभंगुरता का यत्न आरोप केवल मीथे दृग में ही शेर प्रश्न किंवा जिनामा के रूप में भी हुआ है । जिनामा रूप में प्रकृति का क्षणभंगुरता का बला ही हृदयदाही विषय हम निम्न पत्तियाँ में मिलता है-

हूँ कि प्राकृतिक दशन जो एक निष्कियता की हृद तक सहिष्णुता प्रदान करता है और एक प्रकार से प्रकृति को सवशक्तिमयी मानकर उसका प्रति आत्मसमर्पण मिलाना है वह सामाजिक जीवन के लिए स्वास्थकर नहा है ।

एक सौ बप नगर उपवन - एक सौ बप विजन धन ।

यही ता है असार मनार - मजन मिचन, सहार ।

आदि भावनाओं में नुप्य की अपन कर्त्र से च्युत करने के बाद किसी सविन सामूहिक प्रयाग के लिए अक्सर नहीं करतीं बनि उमे जीवन की क्षणभंगुरता का उपप्रेष भर देकर रह जाती हैं ।

पन्त आपुनिक कवि प्रथम सस्करण, पर्मानोपन, पृ० ३४

१, पन्त पन्तव चतुर्थावृत्ति, १९४२ पृ० ७०

२ रामदुमार बर्मा विप्रेरखा द्वितीय सस्करण, परिशिष्ट पृ० ७०

३ विचगने मुरसाने का पून उल्टप होता छिपने की बला शून्य होने की भरते मधुमास जलना होने की मन्द यही विचारा अनल्य जीवन? अरे अस्थिर छोटे जीवन ।

महादेवी बर्मा आपुनिक कवि (१), पृ० १८

४ शात्रु की गौरव का मधुमास शिशिर में भरता गुनी गाँव ।

पन्त पन्तव चतुर्थावृत्ति, १९४२ पृ० ७०

जब पल भर का है मिलना  
फिर चिर वियोग म झिन्नता  
एक ही प्रात है बिलना  
फिर सूख धून म मिलना  
तब क्यों चटकीला मुमन रग ?<sup>१</sup>

किंतु प्रश्न किंवा जिज्ञासा तथा समाधान लेनेो रूपो म प्रकृति के माध्यम स व्यक्त होने वाले क्षणभंगुरता के भाव सामान्यतया छायावाणी कवि के व्यक्तिगत जीवन के निराशाजनित विराग ही हा बरुण मधुर झकृतियाँ है। अत निराशा और विराग के क्षणा म तो उस रूप जात का मद अस्थिर लगता ह और जग की सदरता अशु स्नात जान पडती है।<sup>२</sup> किन्तु आशा और उल्लास के क्षणा म प्रकृति उम हसती मुस्कराती और गाना गाती हुई<sup>३</sup> सुन्दर उगार<sup>४</sup> और सुगन्धी-सौरभ स परिपूर्ण<sup>५</sup> प्रतीत होती है।

१ प्रसाद नहर ततोय वार पृ० ८९

२ अस्थिर है रूप जगत का मद

जग की सदरता अशु स्नात -

पत युगवाणी १९३० पृ० ९४

३ (क) पुष्प म है अनन्त मुस्कान त्याग का है मास्त म गान  
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ सस्करण पृ० १३

(ख) मुस्कुरा दी थी क्या तुम प्राण मुस्कुरा दी थी आज विहान?  
पन्त गुजन ततीय सस्करण पृ० ४६

(ग) कुसुमो के जीवन का पल हसता ही जग म देवा -  
पत गुजन ततीय सस्करण पृ० २१

४ (क) नील नभ म शोभन विस्तार प्रकृति है सुन्दर परम उगार।  
प्रसाद शरणा आठवा सस्करण पृ० ३०

(ख) प्रिय मुने विश्व यह सचराचर  
तृणनरु पशु पक्षी नर सुरवर  
गुन्दर अनादि गुम मष्टि अमर  
पन्त गुजन ततीय सस्करण पृ २६

५ प्रिये कनि-कुसुम गुमम म आज मधुरिमा मधु सपमा सुविक्राम  
तुम्हारे रोम रोम छवि-व्याज द्या गया मधुवन म मधुमास।  
पन्त, गुजन, ततीय सस्करण पृ० ५८

## जीवन में दुःख और निराशा का आरोप

प्रकृति जिवा सम्पूर्ण जगत का दुःख अथवा दुःखमय मान लेने के उपासक छायावादी के कवि न जीवन को भी अपने बटु अनुभवा के आधार भूत दुःखमय घोषित किया। छायावादी कवि के जीवन को भी दुःखमय मानना का मुख्य कारण ये—एक ही अध्ययन द्वारा दुःखवादी दशना का उसके ऊपर प्रभाव और दूसरा उसके यत्नित मध्यमय जीवन की विफलताएँ। छायावाद के प्रायः सभी प्रमुख कवियों का जीवन कठकाकीर्ण एवं विपाद्युक्त रहा है। प्रसाद जी को एक सम्पन्न पर ऋणग्रस्त प्रतिष्ठित परिवार में जन्म मिला और भाई बनना में कनिष्ठ हान के कारण कुछ अधिक मात्रा में स्तुति प्राप्त हुआ मरना। विशाखावस्था में वे एक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए योग्य खान और कृती लक्ष्मी और दूसरी आर्य मानसिक विकास के लिए कई शिक्षा से सज्जित फारसी अप्रजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करते रहे। परन्तु विशाखावस्था में उन्हें पारिवारिक कठोरता का अनुभव हुआ। पत्नी की नहीं उनके शिरोर कथा पर ही पारिवारिक उत्तरदायित्व अथ यवस्था और ऋण का भार आ पड़ा। ऐसा लगता है यही दुःख भार सारे पुत्र, स्वास्थ्य और विद्या का स्वाभाविक प्राप्य था।<sup>१</sup> निराशा जी के निकट माना वहन भाई भाषा के कामन माह्वय के अभाव का ही नाम भाव रहा है। जीवन का बसत ही उनके लिए पत्नी वियोग का पतझड़ बन गया। आर्थिक कारणों ने उन्हें अपना मातृजन सन्तान के प्रति कल्पित निर्वाह का सुविधा भी नहीं दी। पुत्री के अन्तिम क्षणों में वे निष्पाम दमक रहे और पुत्र को उचित शिक्षा से बचिन रखने के कारण उनकी उपयोग के पात्र बने।<sup>२</sup> पन्न जी के स्वभाव को जीवन के अनन्य चरित्र उतारते और सम रिपम परि न्यतिपास स सघय करना पता है और शरीर को न जान कितने रागा में जूना पता है। आर्थिक दृष्टि में सम्पन्नता की ऊँचा साक्षात् विफलता की अन्तिम साणी तक उन्होंने अनेक चढ़ाव-उतार भेग है।<sup>३</sup> एगो प्रकार अथ छायावादी कवियों का जीवन भी साक्षात्क दृष्टि में वस्तु कुछ अगन्तोपन्न और दुःखमय रहा है। अन्तु।

जब निराशा के हाथों ने छायावादी के कवि के मानस-कृत्रों में घुन

१ मन्मथी दर्मा पय के सादी प्रथम मन्मथण पृ० ३२ ३३

की पृ० १३

३ पन्ना पृ० ८६, ८९



चाक दी और वेदनाओं के अज्ञावात ने उसके जीवन फूल बिखरा दिये<sup>१</sup> तब उमकी सारी चाह आह। म परिवर्तित हो गई।<sup>२</sup> ऐसी परिस्थिति म, सुखी और आशाओं क अभाव म उसक जीवन म एक प्रकार की विरक्ति सूनापन तथा दुःख का साम्राज्य उपस्थित हो गया।<sup>३</sup> विरक्ति अथवा दुःख की अस मनोदशा म जीवन उसके लिए एक विकट पहनी बन गया<sup>४</sup> और प्रत्येक पल असफलता के भार म बोझित हो उठा।<sup>५</sup> जत जीवन म उमे सवन शाक<sup>६</sup> 'ब्रह्म' 'यथा',<sup>७</sup>

१ निराशा के चाक ने देव । भरी मानस कुञ्जी म धूल

अज्ञावात के अज्ञावात गए बिखरा यह जीवन पून ।

महादेवी वर्मा यामा तृतीय सस्वरण पृ० ४०

२ मरी चाह बदल रही नित जाहा म

क्या चाह और ?

निराशा परिमन अष्टमावृत्ति पृ० १४१

(क) किन्तु टूटत नी रन्त है आशाओं क तार

जीवन नी बन गया हाय र अब जीवन का भार ।

भगवती चरण वर्मा मधुवर्ण प० २७

(ग) पर मर सूने जीवन म आशा का संचार नहा ॥

होमवती अथ पृ० ९

(ग) प्र म ? हाय आशा का वह भी स्वप्न एक था

निष्पन्न हृत्प तो आज दुःख ही त्व दलता ।

निराशा परिमन अष्टमावृत्ति पृ० १३९

(घ) नित हमारे त्व गाथा म सुख का कछ आधार नही ॥

होमवती अथ पृ० ८

४ प्रसाद कामायनी तृतीय सस्वरण पृ० २३७

५ एन पत्र असफलता का भार

महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुर्थ सस्वरण पृ० ३४

६ शोक ब्रह्म के मिवा ससार म क्या मिल भवेगा ?

होमवती अथ, पृ० ३८

७ जीवन चिरवालि ब्रह्म । —निराशा अपरा, पृ० ७४

८ व्यथा व्यथा

ने जगन की प्रथा

जीवन क्या

यथा ।

पन्न, स्वर्णधूलि, प्रथम सुस्वरण प० १०२

अभिशाप<sup>१</sup> ताप<sup>२</sup> चातकार<sup>३</sup> हाहाकार<sup>४</sup> अचकार<sup>५</sup> और मर्मांतक दुःख<sup>६</sup> दिखाई देते लगे । अपन व्यक्तिक जीवन के इन सब अनुभवों का पुष्ट करने के लिए उक्त दुःखवाणी दशना विशपत्रर बौद्धज्ञान का मुक्त प्राधार भी मिल गया । इन दार्शनिक स्तर पर उसने जीवन का प्रत्यक्ष एक चिर अशान्ति<sup>७</sup> के रूप में देखा । केवल अपन ही जीवन का नहीं सबके जीवन को उमने आह उत्पान घात प्रघात और अशांति से परिपूर्ण बनाया । इतना ही नहीं,

१ जीवन में अभिशाप ताप में ताप भरा है ।

प्रमाण कामायनी श्लोक संस्करण पृ० १९०

२ (क) क्या जीवन ? जिसने आभू ही देते हैं मुझको न देखी  
चिर विद्याह का साथी है जो मधुर मितन की आस न देखी  
उमके भीतर बाहर दोनों घघन रही मरघट की ज्वाला

शिक्षमगत सिंह मुमने जावन के गान श्लोक संस्करण पृ० ५१

(ख) मैं शिता मरुंगा हृत्प चीर रममय उर में है चपन ज्वाले ।

रामकुमार वर्मा चित्ररत्ना द्वितीय संस्करण परिशिष्ट प० ७०

३ यह असह्य चातार और परवगना इनकी ।

प्रमाण कामायनी श्लोक संस्करण, प० १९८

४ गूजते हैं सबके तिन चार — मभी फिर हाहाकार ।

पल्ल, पन्नव चतुर्थावलि, पृ० ७७

५ अचकार हो अचकार है यह जीवन का भाग विषम ।

भगवती चरण वर्मा मधुरण पृ० १

६ (क) जग के दुख न जजर उर बस मृत्यु-ताप है जीवन ॥

पल्ल गुजन नृनीय संस्करण पृ० १४

(ख) अब । जीवन भर का विरनेय मरुती ही है निःशप ॥

पल्ल पन्नव चतुर्थावलि प० १९

७ चढ़ कर मर जावन तय पर, प्रत्यक्ष घन रहा अपन पथ पर ।

मैंने निज ज्ञान पन्नव पर, उमसे हारी हाह लगाई ।

प्रमाण स्वयंमुक्त साधम संस्करण पृ० १११

८ कहीं नश्वर जगती में शान्ति ? — मूर्ति ही का ताप अशांति ।

पल्ल पन्नव चतुर्थावलि प० ८२

९ अचिराम घात आपात

आह ! उलाहल ।

यहां जग जीवन के तिन रात ।

यो मरा इनका उनका सबका मर न

हाथ न मिला हुआ पन्नव ।

यो मरा इनका उनका सबका जीवन,

गंगा अशान्ति ।

निराशा परिमल अष्टमावलि पृ० १२३

दास दी और वेदनाओं के ज्ञानावात ने उसके जीवन फूल बिखरा दिया। तब उमरी सारी चाह आहा म परिवर्तित हो गई। ऐसी परिस्थिति म सुखा और आशाओं क अभाव म, उसक जीवन म एव प्रसारकी विरक्ति, मूनापन तथा दुःख का साम्राज्य उपस्थित हो गया।<sup>१</sup> विरक्ति अथवा दुःख की इस मनोदशा म जीवन उसक लिए एक विकट पहली बन गया।<sup>२</sup> और प्रत्येक पल असफलता के भार ने बोझिल हो उठा।<sup>३</sup> जत जीवन म उम सबत्र शोक \* क्रन्दन ? व्यथा \*

१ निराशा के बाका ने दब । भरी मानस कुञ्जों म घूल  
बन्नाभा के यज्ञावात गए बिखरा यत्न जीवित-फूल ।

महादेवी वर्मा यामा तृतीय सस्वरण पृ० ४०

२ मेरी चाहे बदल रही गिन जाहा म  
क्या राह और ?

निराशा परिमल अष्टमावति पृ० १४१

(२) त्रिन्तु टूटते श्री रत्न के आशाओं क तार  
जीवन ही बन गया हाय र अब जीवन का भार ।

भगवती चरण वर्मा मधुक्ण प० २७

(३) पर मेर मूने जीवन म आशा का सचार नहीं ॥

होमवती अर्थ पृ० ७

(४) प्र म ? हाय आशा का वह भी स्वप्न एक था  
बिफन हृदय तो जाज दुख ही र ख दलता ।

निराशा परिमल अष्टमावति पृ० १३९

(५) त्रिन्त हमारी र ग गाथा म मय का कुछ आधार नहीं ॥

होमवती अर्थ पृ० ८

४ प्रसाद कामायनी त्रितीय सस्वरण पृ २३७

५ एक पल असफलता का भार

महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) चतुथ सस्वरण पृ० ३४

६ शोक क्रन्दन के भिवा ससार म क्या भिन सवेगा ?

होमवती अर्थ पृ० ३८

जीवन चिरकानिक क्रन्दन । —निराशा अपरा, पृ० ७४

८ व्यथा व्यथा

ने जगन की प्रथा

जीवन क्या

व्यथा ।

पन्, स्वणधूति प्रथम सस्वरण, प० १०२

अभिशाप<sup>१</sup> ताप,<sup>२</sup> चीत्कार,<sup>३</sup> हाहाकार,<sup>४</sup> अघकार<sup>५</sup> और मर्मतिक दुःख<sup>६</sup> दिखाई देने लगा। अपन व्यक्तित्व जीवन के इन दुःख अनुभवों को पुष्ट करने के लिए उम्र दखाना ज्ञानों विषयकार बौद्धदशन का सुदृढ आधार भी मिल गया। अतः शक्ति स्तर पर उसने जीवन को प्रत्यय<sup>७</sup> एवं चिर अशांति<sup>८</sup> के रूप में देखा। केवल अपने ही जीवन को नहीं सबके जीवन को उसने आह उत्पन्न घात अघात और अशांति से परिपूर्ण बताया। इतना ही नहीं

१ जीवन में अभिशाप शाप में ताप भरा है।

प्रसाद कामायनी द्वितीय संस्करण पृ० १९९

२ (क) क्या जीवन ? किसने जामू ही देसे हैं मुस्कान न देखा  
चिर विद्या का साथी है ना मधुर मिनत की आस न देखी  
उमर भीतर बाहर दोनों घघक रही मरघट की ज्वाना

त्रिभुवन सिंह सुमन जीवन का गान द्वितीय संस्करण पृ० १०

(ख) मैं दिखा सकूँगा हृदय चीर रसमय उर में है चपत ज्वान।

रामकुमार वर्मा विप्ररत्ना द्वितीय संस्करण परिशिष्ट, प० ७०

३ यह असह्य चीत्कार और परवशना इतनी।

प्रसाद कामायनी तृतीय संस्करण, प० १९८

४ यह जत है सबके दिन चार — सभी फिर हाहाकार।

पल्ल पल्लव, अनुभावित पृ० ७३

५ अघकार हा अघकार है यह जीवन का माग विषम।

भगवती चरण वमा, मधुपत्र, पृ० १

६ (क) जग के दुःख उ जजर-उर, बस मृत्यु-उप है जीवन ॥

पल्ल गुजन मृगाय संस्करण पृ० ३४

(ख) अब ! जीवन भर का विरहय मधु है नि उप ॥

पल्ल पल्लव अनुभावित प० १९

७ यह कर भर जीवन रस पर प्रत्यय बन रही अपन पय पर।

मिने निज दुःख पल्लव पर उमसे हारा-गट मगा।

प्रसाद मधुपत्र, मृगाय संस्करण पृ० १११

८ कहीं नश्वर जगना में शांति ? — मूर्ति हा का शांति अशांति।

पल्ल, पल्लव अनुभावित प० ८२

९ अशिराम घात आघात

आह ! उगान।

यही जग जीवन के दिन रात।

यही मरा इनका उनका गकका मर न

हाह म मिनता हमा अशांति।

यही मरा इनका उनका गकका जाइत,

मग अशांति।

दुःखवादी दशन के प्रभाव से उसने यहाँ तक कह डाला कि सत्तार म जिनम दुःख नहीं भोगा उसका ईमान सच नहीं है।<sup>१</sup> इस प्रकार सिद्धांत रूप में उसने जन्म को ही दुःखा का घर धापिन किया।<sup>२</sup> जीव जीवन के पहल ही क्षण में अन्तिम क्षण का अनुभव किया।<sup>३</sup> एक दुःखवादी दशनिक की भाँति उसने यह भी उन्धोपणा की कि जीवन कर्णामय प्रवास है तथा मृत्यु ही शांति है।<sup>४</sup> जीवन में कुछ भी पूरा नहीं है।<sup>५</sup> जीवन भ्रमभ्रमुर है।<sup>६</sup> नश्वर है तथा सवनाश का घर है।<sup>७</sup> किन्तु दुःख अथवा निराशा के इस स्तवन के उपरान्त छायावाङ्मय के कवि ने आस्तिकता अथवा आध्यात्मिकता के आग्रह सदास का ईश के वरदान के रूप में ही अपनाया।<sup>८</sup> दुःख की इसी

- १ उसका सच ईमान नहीं है आज न जिसने दुःख भागा ।  
नरेश शर्मा मिटटी और फूल त्रितीय संस्करण पृ० ६३
- २ जन्म ही उस विरह की रात सुनावे क्या वह मिलन प्रभात ।  
महादेवी वर्मा आधुनिक कवि चतुर्थ संस्करण पृ० २२
- ३ जीवन के पहल ही क्षण में कसा अन्तिम क्षण है  
बाला क्या मरे जीवन में छिपा मृत्यु का कण है ?  
रामकुमार वर्मा चित्ररेखा त्रितीय संस्करण १६वाँ गीत परिशिष्ट  
पृ० ११४
- ४ है जहाँ मृत्यु हा शान्ति और जावा है कर्णामय प्रवास  
रामकुमार वर्मा चित्ररेखा द्वितीय संस्करण परिशिष्ट पृ० ६८
- ५ चिर पूरा नहीं कुछ जीवन में—पत बुगवाणी १९३९ पृ० ९४
- ६ (क) यह स्फूर्ति का मृत्यु एक पा आया बीता ।  
प्रसाद कामायनी त्रितीय संस्करण पृ० १९८
- (ख) जग ता है युग-युग की पूजा जीवन क्षण भ्रमुर दा न्ति का  
गापाल सिंह नेपाली पंचमी प्रथम संस्करण १९८२ पृ० ८८
- (ग) दुनिया में जीवन है केवल एक वृद्ध का क्षणिक समता—पृ० ८०
- (घ) क्षण भर जीवन भरा परिचय—बचन मधवाना पृ० १८
- ७ रूप शान्ति पर गव न करना जीवन ही नश्वर है  
छवि के इसी दुःख उपवन में सवनाश का घर है  
रामधारी सिंह त्रितीय संस्करण पृ० ८१
- ८ ईश का वह रहस्य वरदान कभी मन नसको जात्रा भूत  
प्रसाद कामायनी त्रितीय संस्करण पृ० १



चला कि परम उदारता प्रकृति के आडम जान न मानव जग के ऋदन स छूट  
कारा भिन सक्ता है तथा अपन चिर स्नेहानुर उर की यथा को भुनाया जा  
सक्ता है ।<sup>१</sup> कभी अभिप्राय न व्यक्त हूय छायावाद के कवि ने प्रकृति के  
प्रागण न प्रवेश किया ।

छायावाद के कवि का प्रकृति की आर मुडन का एक और महान कारण  
उसका आध्यात्मिक दृष्टिकोण था । जीवन और जगत की नश्वरता का अनु  
भव प्राप्त कर उसने यह भी अपनाया कि प्रकृति के एकान्त प्रवेश न विभु  
सी विभुता दया तथा निश्चल प्रेम की कथा सुनी जा सकती है । इस अभिप्राय  
में भी उसने अपने जीवन नाविक स इस कोनाहट की जगती का त्याग कर  
निजन प्रदण न जान का अनुरोध किया ।<sup>२</sup> इस प्रकार हम दमते हैं कि  
छायावाद के कवि न प्रकृति को अपनी मानसिक पीडा को दूर करने के लिए  
भी अपनाया और आध्यात्मिक सुख प्राप्ति के साधन रूप में भी ।

पलायनवाद का दूसरा रूप वह है जहां मनस्य ससार की विषमताओं  
और दुःख दशाओं स ऊबकर ससार की नश्वर वस्तुओं से प्रेम करना छोड़  
देता है और आध्यात्मिक जयवा उस पार के जीवन में चिर शांति की सोज  
करता है । छायावाद की कविता में पलायनवाद का यह आध्यात्मिक स्वरूप

- १ वना कहा जी करता मैं जाकर टिप जाऊ  
मानव जग के ऋदन में छटकारा पाऊ ।  
प्रकृति नीड में व्योम खगा के गाने गाऊ  
अपने चिर स्नेहानुर उर की व्यथा भुलाऊँ ।

पन्त ग्राम्या तृतीय संस्करण पृ० ७५

- २ न चल रहा भुनावा दकर  
मर नाविक धीर धीरे ।  
जिम निजन में सागर नहरी  
अम्बर के काना में गहरी—  
निश्चल प्रेम कथा कहनी हा  
तज कोनाहन की अबनी रे ।

जिस गम्भीर मधुर छाया में—  
विश्व त्रिभुवन चल माया में—  
विभुता विभु-सी पड त्रिखाई  
दुःख मुग वानी सारम बनी रे ।

प्रगाण परना तृतीय बार पृ० १४

भी बड़ी ही भावपूर्ण शैली में व्यक्त हुआ है। छायावाद के कवि न ससार की उदात्ता में, वन्दनापूर्ण स्थिति में व्याकुल होकर जावन की दुःखपूर्ण वास्तविकता में बचने के लिए उस पार के जीवन का आह्वान किया।<sup>१</sup> अन वह अपनी रचनाओं में उस पार के शाश्वत सुखमय जीवन की मनोरम शारी प्रस्तुत कर भौतिक ताप का भूत भयवा मिटान का प्रयत्न करता हुआ पाया जाता है। यहाँ तब कि उमरी रगीत कल्पना में कविता भी गाकार रूप धारण कर उमे 'उस पार' का संदेश सुनाती हुई जान पहती है।<sup>२</sup>

छायावाद के कवि ने विनोदकर पन्त जी ने भीतर-बाहर में, सुख दुःख में आशा निराशा और ममोग वियोग के अन्त में सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न को भी पनायन वक्ति के भीतर रखा है<sup>३</sup> और अपन इस प्रयत्न का धायी

१ वया र यह अरण्य चीत्कार शान्ति-सुख है उस पार ।

—पन्त पत्रक पृ० ८४

२ हम जाना है जग के पार ।—

जग नयना से नयन मित  
ज्योति के रूप मह्य विने  
मना ही बन्नी नव रस धार—  
वही जाना हम जग के पार ।

वना अधरा को हास हिला  
शाय अधरों में रहा मित  
साम में सहसा प्रेम त्रिला  
बना दना उर को उर-हार—

हम जाना जग के उस पार ।—निराशा परिमल अष्टमावृत्ति पृ० १३

३ भरा हुआ था हृदय प्यार में उसका,

उम कविता का  
वह भी निरद्वन्द्व अविचार  
अग अग में उगी तरंगों उमक  
ये पहली कवि के पाम कथा—

तुम चने बुनाया है उमन जन्नी तुमको उम पार'

निराशा परिमल अष्टमावृत्ति, पृ० १११-११४

४ नवीन गामात्रिक जीवन की वास्तविकता को प्रकट करने के पहले कवि कविता छायावाद के रूप में हास्यमय के शैलिक अनुभवों उच्चमूर्ती विभाग की प्रकृतियों, जीवन जीवत की आकांक्षाओं सम्बन्धी



दाशनिकता का रूप कहा है।<sup>१</sup> किन्तु अपने वास्तविक रूप में भीतर बाहर मख दुख आशा निराशा आदि द्विधा का उक्त सामजस्य थोधी दाशनिकता का रूप न होकर भारतीय दशन की समवयात्मक प्रवृत्ति का ही परिचायक है और उस दृष्टि में वह छायावाद काय की एक महान् देन है।

### निराशा अथवा वेदना का विलास

छायावाद का युवक कवि स्वच्छन्दतावादी तथा घोर अहवादी था, और निराशावात् अहवादी और अपने को सब कुछ समझने वाल युवक का विलास है—एक ऐसा युवक जो पढ़ने तो ससार की बुराईया पर बुरी तरह टूटता है और फिर निराश हाकर बार-बार अपने स्वप्नो और जीवनात्शो को छोड़ता चरना है।<sup>२</sup>

स्पष्ट है कि छायावात् ना अहवाती कवि जीवन के प्रत्येक क्षत्र में नवीनता और स्वतन्त्रता का प्रेमी तथा समाज में प्रचलित अनेक रूढियों का विरामी था। किन्तु अपने स्वप्ना और आत्शो की पूर्ति में वह प्राय असफल ही रहा अत उमे जीवन में बहुत निराश होना पडा। और जसा कि रोमाटिक

स्वप्नो निराशाआ और सम्वेदनाओ का अभिव्यक्त करने लगी और व्यक्तितगत जीवन सधप की कठिनाइयो से क्षुब्ध होकर पनायन के रूप में प्राकृतिक दशन के सिद्धान्ता के आधार पर भीतर बाहर में सुख दुग में आशा निराशा और सयोग वियोग क द्विधा में सामजस्य स्थापित करने लगी। सापेक्ष की पराजय उसमें निरपेक्ष की जय क रूप में गौरवाचित होने लगी।

पन्त आधुनिक कवि (२) प्रथम सस्करण पर्यालोचन पृ० ११

- १ जातीय दृष्टि से हम अपने स्वाभाविक आत्म रक्षण के सस्कारो (सॉफ प्रिजर्वेटिव इ स्किन्टस) को खो बैठे हैं और अपन प्रति क्रिय गय अत्याचारा को थोधी दाशनिकता का रूप देकर चुपचाप सहन करना सीख गय हैं। साथ ही हमारा विश्वास मनुष्य की सगठित शक्ति में हटकर आकाश बुमुभवत दवी शक्ति पर अटन गया है जिसक फल स्वरूप हम देश पर विपत्ति के युगा में सीढ़ी तर मीठी नीचे गिरते गय हैं।

- 2 Pessimism is a luxury of self conscious and self important youth youth that hurls it self madly against the wind mills and evils of the world and sadly shads utopias and ideals with every year

Will Durant The story of Philosophy, p 318

व्यक्ति के लिए स्वाभाविक है वरन्ता उनके लिए रत्ना अथवा विनास की वस्तु बन गई । उसे रान में मजा आने लगा ।<sup>१</sup> आसू प्रच्छन्न व्यथा वरन्ता य उमक अत्यन्त प्रिय शब्द बन गये और उनकी ओर बार-बार आने में वह शान्ति और सन्तोष का अनुभव करने लगा—'गान्ति वह जो जामुओ की धार बहाने में प्राप्त होती'<sup>२</sup> और मन्ताप वह जो उपेक्षा के भाव का वरण करने में प्राप्त होता है ।<sup>३</sup> इस प्रकार वेरन्ताप्रियता अथवा निराशा का विनास छायावादी कवियों का एक विशिष्ट गण अथवा लक्षण हो गया । वेरन्ता का यन् विनास छायावादी के प्रत्येक कवि में पाया जाता है ।

छायावाद का कवि वेरन्ता का सामान्य मनुष्य की भाँति अनिच्छित वस्तु में मानकर उस मुग्ध-सम्पन्नता का श्राव्य बनाना है<sup>४</sup> और उमम अपार उन्नाम<sup>५</sup> और अनोपे स्वा<sup>६</sup> का अनुभव करता है ।<sup>७</sup> अतः यह महज ही मन् जाना है कि यदि मनुष्य दुःख में रहना सीख सके तो वह मुग्ध में भी सुन्दर है ।<sup>८</sup> इसी उमम में वह दुःख में अमीम सुन और उन्नाम मानन का जाण करता है ।<sup>९</sup> वह यह यह कर मग्न अथवा आनन्दित होना है कि मैं पत्त इतना ही जानता हूँ कि ना मिट गया वह जो गया ।<sup>१०</sup> अतः मैं मिटन का अस्विकार की

१ मुपनी तो हार अधिका नाती

गिवमगन सिंह मुमन हि तोन द्वितीय मस्तरण पृ० ३१

२ कियो पर मरना यही तो दुःख है ।

उपेक्षा करना मुझे भी सुख है

प्रसाद करना आठवा मस्तरण, पृ० ८१

३ आज मैं सब नाति सुतसम्पन्न हूँ वरन्ता के इस मतीरम विदित में

पन्न बीगा-शक्ति निनावावति पृ० ९०

४ पा लिया मैंने कि यह इस वरन्ता का मधुर प्रथम ?

महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१), पृ० ४१

५ नाप मुझे नेक बोलो एग जनन में स्वा<sup>६</sup> क्यों है ?

सागरनाथ चतुर्वेदी, हिमकिरीटिना तृतीय मस्तरण पृ० ६०

६ दुःख में रहना सीख सके यदि तो वह मुग्ध में भी सुन्दर है ।

नरेन्द्र वर्मा पतागन्धन द्वितीय मस्तरण, पृ० ११

७ दुःख में भी मान अमीम सग्न बाग्य में विगरा उन्नाम ।

पन्न उताग प्रथम मस्तरण पृ० १०१

८ मैं ना पत्त यह जानता था मिट गया वह जो गया ।

गिवमगन सिंह 'मुमन हि तोन द्वितीय मस्तरण पृ० ३१

खोना नहीं चाहता ।<sup>१</sup> इसी प्रकार वह यह भी दावा करता है कि मेरी भग्न आशाएँ एकत्र होकर मुझे नवनवन नवल मुख और नूतन माज से मजानी रहती हैं ।<sup>२</sup> अतः वह नित्य नई व्यथा पानने के लिए उत्सुक रहता है ।<sup>३</sup> कभी कभी उसमें वेदनाप्रियता अपनी वर जाती है कि उसे शान्ति सह ही गगने लगती है मन अशान्ति म रमने लगता है उर को जतन सुहाने गगनी है और उत्पीडन म सुख मिलने लगता है ।<sup>४</sup> इस प्रकार वेदना और विफचना का स्वागत कर छायावाद का कवि उह दाशनिकता का रूप दे देता है—

नष्ट कव अणु का हुआ प्रयास

विफलता म है पूनि विकास ।<sup>५</sup>

किंतु इतना कुछ हाते हुए भी छायावादी कविया की वरना प्रियता जथा निराशा का विनास सबत्र वास्तविक और अनुभूत नहीं है । वह अविनाशत। उनकी विलासी प्रवृत्ति अथवा रामाणिक मुग्धा का परिणाम है । अतः आलोचको का यह कथन कि छायावाद के भीतर बार बार अमू वेदना निराशा उगसी जोर पीडा का जो आम्भ्यान मितता है उमे यन्ति या समाज की वास्तविक वरना का प्रतिबिम्ब समझन का कोई आधार नहीं है । यह मगुप्य नहीं का गार की वदना है जो सचमुच अनुभूत गही हुई है वरन जिसकी काल्पनिक अनुभूति म कवि कोमन कयिताए रच रहा है<sup>६</sup> एक ह तक सत्य ही है । फिर भी निराशा अथवा वरना का उक्त विनाम छायावाद की चरम परिणति ननी है । अपन स्वस्य क्षणा म छायावाद का कवि जीवन और जगत के प्रति

१ रने दो है देव । अरे यर मेरा गिटन का अधिकार ।

महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) पृष्ठ ०३

२ जब कि भग्न आशाए मेरी गयत्रित हो आज

मजाती हैं मुझको निर्व्याज

(नवल-वन नव मुख नतन-माज ।)

पन्त धीणा प्रियि त्तिथ्यावति पृष्ठ ५१

३ मैं नित नई पान व्यथा मेरी निरानी हो क्या

शिवमगन सिंह सुमन त्तिथोन त्तिथिय सस्करण प० ६१

४ अब शान्ति दुगह-सी लगती है अब मन अशान्ति म रमता है

अब जतन सुहानी है उर का अब मख मितता उत्पीडन म

नतन कर जतन कर नागिन मेरे जीवन क आगन म ।

बच्चन, सतरगिनी दूसरा सम्करण १ ४८ प० ४९

५ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) पृ० २६

६ त्तिवर, पन्त, प्रसा और भयिनीकरण

प्रथम सम्करण, पृ० ५९

पनी आसक्ति निव्वलाना है और आशा और आनन्द का गीत गीता है।<sup>१</sup> उन उसक विषय में यह मत कि छायावादी कवि जगत की अनित्यता और जीवन की दुवतताओं पर कबूत विपाद प्रकट कर मौन रह जाते हैं किसी शाश्वत जीवनकी कल्पना नहीं कर पाते मरना नहीं कहा जा सकता। हार्न विपाद अथवा वेदना के विषय में महादेवी जी की स्थिति छायावादी के अत्य प्रमुख कवियों में अग्र अवस्थ है। उह कल्पना कती प्रिय है कि वह उन विभा प्रकार किमी भी दशा में छोड़ना नहीं चाहती।<sup>२</sup> अपनी कल्पनाप्रियता के सम्बन्ध में उहाने स्वयं लिखा है कि जीवन में मरने वन्त बनार बनार और वदून मात्रा में सब कछ मिलता है उन पर पाषिषट्कृत की छाया नहीं पनी। कल्पित यह उसा का प्रतिश्रिया है कि कल्पना मुझ कल्पना मधुन गगन गगा है। मुन की प्रतिश्रिया मरुत कल्पनाप्रियता की यह प्रवृत्ति निराशा क विनाश क अनिश्चित और कृद्ध नहीं कही जा सकता। जहाँ नव महात्वा जी का कल्पना अथवा दुःख क शान्ति क अथवा रूप का प्रश्न है। जाचाय नन्तुनार वाजपथी का यह मत कि उहान दुःख क जाघ्यामिक स्वल्प और मुन क

१ (क) जग जीवन में उन्नाम मुझ  
नव आशा, नव अभिलाष मग  
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझ -  
पन्न गुञ्जन ततीय मस्करण प० ६

(ख) जीवन की लहर लहर में हम लव-भक्त रे नाविक।  
जीवन क अन्तस्वन में नित बूट-बूट क भाविक।  
पन्न, गुञ्जन ततीय मस्करण पृ० १८

२ टा० सम्भूताय पाण्डय आधुनिक कि काव्य में निराशावादी  
प्र० म० पृ० २६९

३ (क) मितन का मत नाम ल में विरह में चिर ह।  
महात्वा कमा आधुनिक कवि (१) पृ ८८

(ग) मर छाट जावा में दना न तपि का कन मर  
रहने लो ध्याती आन भगती धानू क गगनर।  
महात्वा कमा आधुनिक कवि (१) प० २८

महात्वा कमा पासा, तनाय मस्करण अनी धान प० १०

४ कवन में ही भगवान बुद्ध क प्रति लक्ष भक्तिमय अनुगम होन  
क कारण उनक सत्कार का दुःखामय समाधान प्राप्त होन में मरा  
अगमय हा परिचय हा गया था।

१० म मर निरह जावा का लक्ष लगा कारण है। जो मारे ममार का एक  
गृह में याप रगत की क्षमता रखता है। हमारे अमर मग हम पा

भौतिक स्वरूप का सामने रख कर विचार किया है। किन्तु इससे विपरीत सुख आध्यात्मिक और दुःख का भौतिक स्वरूप भी है जिसकी ओर उनकी दृष्टि गयी गई। दुःख की तामसिक राजसिक और सात्विक तीनों अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं उसी प्रकार सुख की भी। यह सब कुछ मन्वेदन पर अन्तर्निहित है जिससे सुख और दुःख का निःसरण होता है। महात्मा बुद्ध ने दुःखवाद का आध्यात्मिक अर्थ मँ लिया है उसी प्रकार भारतीय दशनाने आनन्द का आध्यात्मिकीकरण कर लिया है। इसलिए भौतिक आधार पर सुख और दुःख का जो यतिरेक (या कण्टास्ट) महादेवी जी ने लिखाया है उम में उनकी व्यक्तित्वगत सात्विकता का परिणाम मान सकता हूँ। उस दार्शनिक सत्य या काव्य की कसौटी माना क लिए मैं तयार नहीं हूँ। बड़ ही मन्त्रव का है।<sup>१</sup>

उपयुक्त विवचन के आधार पर निम्न रूप में हम वह सन्त है कि छायावाद काव्य के भीतर निराशावाद अथवा दुःखवाद के विभिन्न स्वरूपों का चयन दुःखवादी तथा सन्तसमार्गी दशनाने के आधार पर छायावादी कवि की रोमांटिक प्रवृत्ति के कारण हुआ है। किन्तु छायावाद का कवि उपनिषद् की आनन्दवादी धारा में विशय रूप में प्रभावित था अतः दुःख की चरम परिणति वह आनन्द में ही करता है। इसी से उसका कर्ण मन्त्र हमारे हृदय का स्पश करता है। उसके उत्तम उत्पत्तिका म मानसिक परिताप में केवल कामनाया में उसके आत्म निवृत्त विरह निवेदन और मधुमय समपण में म न अपूर्व सौन्दर्य धारण किया है। इसका कारण यह है कि छायावाद दुःख का भय और घणा की दृष्टि में नहीं देखता। वह उस मानव आत्मा का मधुमय भाजन मानता है और विश्वास करता है कि दुःख की पिछली रजनी के बीच सुख का नव न प्रभात विकसित होता है।<sup>२</sup>

मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सक किन्तु हमारा एक त्रुद और भी पीना को अधिक मधुर अधि उबर बनाय दिया जा गिर सकता। मनुष्य सत्त्व को अकृता भोगना चाहता है परन्तु दुःख मवका वाँट कर विश्व जीवन में अपन जीवन का निश्चयवन्ता में अपना वन्ता का इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जन्म विन्दु समुद्र में मिल जाता है कवि का मान है।

- १ गचीराना गुप्त महादेवी वर्मा द्वारा मन्त्रण जावाय नन्दुलार राजपयी का सप्त-यामा का दार्शनिक आधार, पृ० १८५
- २ गन गुप्त तनीय मन्त्रण पृ० २०
- ३ दुःख की पिछली रजनी के बीच विकसित सुख का नव न प्रभात एक परन्तु यह पीना नीच दियाय है जिसमें सुख गा। प्रसाद कामायनी तनीय मन्त्रण पृ० ११

## छायावादी काव्य में भोगवादी दर्शन

उमर खय्याम

भूमिदा

छायावादी-युग में उमर खय्याम की रचनाओं की घूम मा मच गई थी। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष 'प्रवामी माधुरा सरस्वती सुधा शीमा' आदि पद्य-निर्माताओं में उमर खय्याम पर अनेक सुन्दर चित्र और लघु प्रकाशित हुए। मणिलीकरण गुप्त, 'कवचप्रसाद पाठक बलचन्द्र प्रसाद मिश्र डा० गया प्रसाद गुप्त बच्चन आदि अनेक व्यक्तियों ने उमर की रचानियाँ का प्रामाणिक अनुवाद हिन्दी में प्रस्तुत किये।<sup>१</sup> ए० सुमित्रानन्दन पन्त ने 'मधु-वार' नाम से सन् १९२९ ई० में उमर की रचानियाँ का भाषानुवाद किया। इनमें ही में उमर के प्रति उच्च युग की ही प्रशंसा और साहित्यिकता की वास्तविक मनो-वृत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। उस काल की साहित्यिकता ने उमर के जीवन-काल में भारतीय जीवन-कार्य का शक्ति-पाथोस को अन्त में उमर की

- १ मणिलीकरण गुप्त का अनुवाद (प्रकाश पुस्तकालय बानपुर) १९३१, कवच प्रसाद पाठक का अनुवाद (इष्टियन प्रेस निमित्ठ जयपुर) १९२२, बलचन्द्र प्रसाद मिश्र का अनुवाद (सन्तान पत्रिका हाउस भूतनामा काशी) १९२२, निरिपर समा नवरत्न का अनुवाद (नव रत्न-नगरपत्नी भवन शास्त्राचार्य) १९३१ डा० गयाप्रसाद गुप्त का अनुवाद (हिन्दी साहित्य मण्डल पटना) १९२०, बच्चन का अनुवाद १९३२, सुधा इन्द्रयात्र वर्मा 'उमर का अनुवाद (इष्टियन प्रेस प्रसाद) १९३० रघुशंकरानन्द गुप्त का अनुवाद (विद्याविद्यालय प्रसाद) १९३१

ओर 'यूनाधिक मात्रा में विच उठे । जिस ममत्व की भावना से प्रेरित होकर छायावाद युग ने उमर का समादर किया उसका किंचित आभास यादू मधिसी गरण गुप्त के निम्न ग । म मिंग जाता है —

जहाँ तक माया के सौंदर्य मार्मिक व्यंग्य, उपासम्भ और प्रेम का सम्बन्ध है वहाँ तक उह ( उमर ) हम कवीर की कौटिका कह सकते हैं ।<sup>१</sup> उमर के जीवन दशन की गैर विद्वेग की दार्शनिक और धार्मिक विचारधारा से सगति बढाते हुए गुप्त जी ने यह भी कहा कि उमर के समीप गगत मिथ्या है । वेगो में उसका उल्लेख है बाइबिल में उसका वणन है । यह माया, यह अविश्वाम यह निरागावाद युग परिवतन के समय प्रत्येक जाति और समाज के सूक्ष्मगर्गी यत्तिया में दष्टिगोचर होता है ।<sup>२</sup> उमर के जीवन दशन की हिन्दू धर्म के मायावाद की भूमिका में रत्नकर परखने की इस प्रवृत्ति से हिन्दू समाज में उसके प्रति राग उत्पन्न हो गया गाथ ही छायावाद के क्षुभ और असन्तोषपूर्ण वातावरण में उसके प्रसार के लिए सुदृढ दार्शनिक आधार भी मिल गया ।

उमर की प्रतिभा बहुमुखी थी । व० एव महान चिन्तक विचारक ज्योतिषी और दार्शनिक कवि था । धर्म के क्षेत्र में वह एकेश्वरवादी था । भौतिक जगत की राज करते करते वह अध्यात्म की ओर भी उन्मुख हुआ था । दार्शनिकों की भाँति उसे भी यह जिज्ञासा हुई कि हम कौन हैं कहीं से आये हैं और कहीं जायेंगे कि नु बुद्धि द्वारा इन प्रश्नों का समुचित उत्तर न पाने के कारण वह सूक्तियों का रहस्य साधना की ओर उन्मुख हुआ । पर नु उसके निरागावाद को देखते हुए एगा प्रनात हाना है कि उस माग में भी उस ईप्सित तुष्टि नहा मिली । जिस अल्लाह में कोई बराई नही है उभी अल्लाह द्वारा निमित्त हम सगार में घुसाई कहीं और किरर से प्रगन कर गई यह विकट समस्या उसक सामन साग यती रही । अत यह जीवनपय न सन्नेहवाणी बना रहा ।

उमर स्वाधीन चिन्तन का पम्पवाती था । जिसा यात हो जो तत्कसम्मत न हो माग लेना उसके लिए कर्त्तव्य था । अत उमर धर्मगुरुभा के पाखण्ड

१ मधिसीगरण गुप्त द्वादश्यात उमर सध्याम शिीयावन्ति (२००६) आवन्त ५० २३

२ वही, पृ २२ २३

और धार्मिक अंधविश्वासों का खण्डन किया। ज्ञान के अगाध सागर में डुबती लगाकर उसने जीवन की निस्सारिता का अनुभव किया। समार की अखिरत का ज्ञेयकर वह अत्यन्त विचलित और विक्षिप्त आत्मा। सांसारिक आपत्तियाँ एक विनाशा से मुक्ति पाने के लिए उसने भोगवाद का सबल समर्थन किया। उमर की इन समस्त प्रवृत्तियों को मनन करने के लिए छायावादी के अध्यात्मवादी बुद्धिवादी निराशावादी, व्यक्तिवादी एवं विद्रोहवादी (प्रातिकारी) वातावरण में उमर भूमि मिल गई।

विचारा और मनोऽन्वेषणों को प्रभावित करने वाली बाह्यपरिस्थितियों के अनिश्चित अधिकांश चिन्तनगीत और विचारवान व्यक्तियों के जीवन काल में एक समय ऐसा भी आता है जब वे कह उठते हैं कि यह जगत मिथ्या है। उमर की कविता उमर के जीवन का चिन्तन करता है। स्पष्ट है कि छायावाद युग चिन्तन प्रधान युग था। अधिकांश छायावादी कवि भाव प्रवण हान के साथ साथ प्रबुद्ध चिन्तक भी थे। गम्भीर चिन्तन के क्षणों में उन्होंने जीवन के मिथ्यात्व का अनुभव किया था। अतः उमर का निराशावादी यत्न उन्हीं मम्मोहक प्रतीत हुआ तो कोई आश्चर्य नहीं। यों तो उमर के जीवन काल में छायावादी का प्रायः सभी कवि जिगो-न किमो रूप में प्रभावित हुए जिसकी प्रतिध्वनि उनका काव्य में यत्र तत्र देखने को मिलती। किन्तु छायावादयुग के एक प्रमुख कवि 'कवचन' ने तो उमर के भोगवाद का आधार लेकर हिन्दी काव्य में एक नया 'हानावादी' (भोगवादी) आन्दोलन का मूलपात भी किया जो कमभूमि भारत में पार्श्विक दर्शन की तरह अन्तर्निहित न था। कविता के क्षण में कवचन उमर आन्दोलन के एकाकी नेता थे, अनुयायी बाँट नहीं।

छायावादी पर उमर के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए यहाँ पर उसकी रचनाओं की कवचन विवेचना का उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा।

### समार एवं जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण

उमर के एक कविता 'द्वारा जिगम कह बुद्धि' से सवान जवाब करता हुआ पाया जाता है। उमर समार और जीवन विषय दृष्टिकोण का पता लगाता है। प्रयत्न के परिणाम स्वरूप वह जिस निष्कर्ष पर पहुँचा था उसका सारांश इस प्रकार है—

समार स्वयं है। वह आपत्तियों का अंगार है। वर्षों में यदि एक सप्ताह सुख है तो शेष दुःख ही सुख है। मनुष्य की ममत्त रक्षाओं का पद



वसान केवल दुःख में होता है । अतः उसे इस दृश्यमय ससार से कुछ सीख लेनी चाहिए ।<sup>१</sup>

उमर की दृष्टि जीवन के कृष्ण पक्ष पर अधिक टिकती थी । अतः जीवन की क्षणिकता ससार की परिवर्तनशीलता मनुष्य के परम पौरव की सीमाओं विफलताओं तथा परिश्रमों पुरजनों एवं इष्टमित्रों के निघन आदि को उमरने अपने काव्य का विषय बनाया । मानव जीवन उसे एक ऐसी पहिली प्रतीत हुआ जिसका न तो कोई ओर छोर है और न कोई लक्ष्य । ससार का उमरने एक ऐसे स्वर्ण पिंजर के रूप में देता जिसमें मनुष्य कद पक्षी की भाँति तडपटाना रहता है, किंतु द्वार नहीं पाता कि निकल भागे । इस पराधीनता के कारण उसके मन की मुराद पूरी नहीं हो पाती और वह निरंतर अशांति और असंतोष के गान गाया करता है ।<sup>२</sup> उमर का विश्वास था कि मनुष्य कुछ और सोचता है और ईश्वर कुछ और । किंतु ईश्वर भी इच्छा के सामने मनुष्य की इच्छा नगण्य है । अतः मनुष्य की इच्छाओं का अंतिम परिणाम दुःख ही दुःख है ।<sup>३</sup> जीवन और जगत के उक्त दृष्टिकोण ने उमर को घोर निराशावादी बना दिया ।

- १ रोमन ईतिहासिक दुनिया गणन खाविस्त या खयाले चन्द  
गणनम अज वे बेह हासिल अस्त वगो गुफन ददें सर व बत्राले चन्द  
गुफनम इ बहुस अहले दनिया चीस्त गणन बेहूदा कील व बाले चन्द  
गणनम चीस्त बतखुदाई गुफते हफनम ऐग व गुस्ता साले चन्द  
गुफनमग चीस्त गुफनये खय्याम गुफत पनेस्त हम्ब हाये चन्द

Quoted by Swami Govind Tirtha in his *The Nectar of Grace Omar Khayyam's life and works* (C) Qista Omar Khayyam on World and Life CXXVI

- 2 So in this snare as sparrows we are pent  
We feel so snappish and ever lament  
Perplexed we flutter round but find no door  
We reach no peace but chirrup discontent  
Ibid p 81
- 3 I wish one way He wills the other way  
So my desires will surely lead astray  
Since what He wills is wholly for my weal  
Then my desires in woes alone will pay  
—Ibid p 80

## उमर और निराशावाद

जीवन और जगत का घणा की दृष्टि से दखने के कारण उमर की द्वाइयों का मुख्य स्वर निराशावाद है। यह बार बार मनुष्य की विवशता, जीवन के उत्थान पतन और मृत्यु की अपेक्षरता को अपने काव्य में चित्रित करता है। मनुष्य के दुःख दाय एव दुःखी को देखकर यह विवश हो उठता है। सत्सार में मनुष्य के योग्य कीर्ति और मान पर की अस्थिरता उस जीवन की कमजोरी से विमूढ कर देती है। अन्त बड़ी व्यथा के साथ वह कहता है कि जन्म के पूर्व सत्सार ने हमारी आवश्यकता महसूस न की और मरण के पश्चात् भी हमारा अभाव नहीं खटवेगा। सत्सार पूर्ववत् चलता रहेगा।<sup>1</sup> जीवन से विवशुल निराशा होकर वह यही तक कह जाता है कि सुखा य है जिन्होंने जन्म दुःखमय सत्सार में कभी चरण नहीं रखा और यदि रखा भी तो गीघ्राणिगीघ्र यहीं से विगत हो गया।<sup>2</sup> उमर उस समय अत्यन्त विमन हो जाता है जब यह कल्पना करता है कि प्रत्येक वस्तु जो आज विच्छन्न नित्यताई पर रही है किसी समय अत्यन्त सुन्दर रही होगी।<sup>3</sup> एक क्षण में उसका हृदय में कफ़ा का अपार पारावार उमड़ पड़ा है।

उमर मृत्यु का आध्यात्मिक दृष्टि से कभी नहीं देख सका। जीवन पथ उ वह मृत्यु की अन्त्य दृष्टि से आनन्दित रहा। इसी में पारस के गति गा की सद्ग्राह बहरामगोर पर मृत्यु की विजय दिग्गकर उमर अपनी निराशा को और घनीभूत कर लिया है। अन्त में शक्ति जीवन-यात्रा के सुप्त जाने

1 The world will last long after my poor fame  
Has passed away year and my very name  
Aforetime are we come we were not missed  
When we are dead and gone, it will be the same  
Quoted by Otto Rothfeld in his Umar Khayyam and  
His Age p 78

2 Since all we gain in this abode of woe  
Is sorrows pang to feel and grief to know  
Happy are they that never came at all  
And they that, having come the soonest go  
—Ibid p 78 (337)

3 Days changed to nights are you were born  
or I  
And on its business ever rolled the sky,

की कामना ही उसमें गेप रह जाती है। जीवन के अवसान, कटुता विफलता और क्षणभंगुरता के कारण ही वह भोगवाद की तरफ लेता है—

When life s once gone what Balkh or Nishapur ?

What s sweet or bitter if the cup runs ov r ?

*Drink on,*<sup>1</sup> (134)

### उमर और भोगवाद

जीवन की जटिल समस्याओं यातनाओं और विडम्बनाओं से पराजित होकर ही उमर घोर निराशावादी हुआ। किन्तु कोई भी व्यक्ति यावहारिक जीवन में निरंतर निराशा का स्तवन नहीं कर सकता। दुखों से छुटकारा पाने के लिए वह कोई मांग अवश्य निकालता है। उमर का वह मांग इन्द्रिय सुख थाववा भोगवाद में सूत्र पडा। अतः बौद्धिक धार्मिक मानसिक विक्षोभ तथा काविक क्षधा को मिटाने के लिए उसने संगीत सरा और सुत्री का अचन पकडा। सुरा और मुदरी के प्रतिरिक्त ससार की और बाई वस्तु उम नहीं सुगई। जीवन की जाँच पडतान के पश्चात वह इस परिणाम पर पहुँचा कि नित्य सुख के अतिरिक्त ऐहिक जीवन का फल अत्यन्त तित्त और तीक्ष्ण है।<sup>2</sup> अतः किमी निशर के निकट निकुत्र में बठकर सरा संगीत और सुत्री के सवन द्वारा उसने कटकाकीण जीवन के विषाण को विस्मृत करने का प्रयत्न किया।<sup>3</sup> विगत के दाखण दुख को दूर करने और अनागत के भय को भगाने

See you tread gently on this dust, perchance

Twass once the apple of a beauty s eye (33)

Quoted by Otto Rothfeld in his *Omar Khayyam and His Age* p 79

1 Ibid p 85

2 I scan the world and

See

Save pleasure life yields naught but bitter fruits (66)

Ibid—p 82

3 Get minstrel wine and Hours if you can

A green nook by a streamlet if you can

And seek naught better babble not of hell

But find a better heaven if you can (79)

Quoted by Otto Rathfeld in *Umar Khayyam and His Age* p 83,

क अभिप्राय से ही उसने मन्त्रिपान का प्रचार किया । मरु की दुस्तायिनी चतना को समाप्त करने के लिए ही उसने मन्त्रि को महोपधि के रूप में अपनाया ।<sup>१</sup> कल का कोई ठिकाना न होने के कारण उसने वर्तमान के उप भाग पर बल दिया ।<sup>२</sup> मन्द्य के प्रयत्न का विफलता को दग्धर उसने सत्पाय धारण करने तथा मस्ती का जीवन बिताने का आग्रह किया ।<sup>३</sup> किमी युनबदन की मुताबी मुसकान में ही उसने जीवन की बनेवानक अपूणताओं की पूर्ति कर ली ।<sup>४</sup> इसलाम शराबगीरा का हराम मानना है और उमर उमर गम गलत करने का अपूव साधन घोषित करता है । इस प्रकार वह पम विद्रोही मिद्ध होता है । ऐसी अवसर पर वह अपना योग्य निदान कर इमलाम पर भीषण प्रहार करता पाया जाता है—

In paradise are Houris preach they so  
And fountains with pure wine and horey flows  
If these be lawful in the world to come  
What harm to love their likeness here below (180)  
Quoted by Otto Rothfeld in his Umar Khayyam and  
His Age, p 85

### उमर की विद्रोह भावना

एक महान विचार होने के नाते उमर इस बात में कभी भी विन्वास नहीं कर सकता था कि ममस्त सामाजिक अ-द्रोह का कारण अ-नाह है

- 1 Since Death is ever pre sing at your heels  
Tis best to drink or dream your life away (183)  
Ibid p 84
- 2 Since no one can assure thee of to morrow  
Rejoice thy heart to-day and banish sorrow (7)  
Ibid, p 82
- 3 Be content and in pleasure pass the world,  
For after all our schemes would only fail  
Quoted by Swami G and Tirth in his The Nectar of  
Grace 1911 p 81
- 4 A rosy smile or a dimple at the corner Of a loving lip  
can be the compensation a thousand times over for those  
insufficiencies Quoted by O to Rothfeld in his Umar  
Khayam and his Age p 81

और बुराई का कारण इवलीस । वह दविक दहिक और भौतिक सभी तापा का कारण एक मात्र अल्लाह को ही माता था । ईश्वर की सृष्टि को अपूण और सदिग्ध वरदान (doubtful blessing) के रूप में ही वह देखा रहा । उन समय समय पर उसने ईश्वर के प्रति अपना रोष प्रकट किया । जीवन सतग आकर उसने कहा था कि यदि उसे स्वतंत्रता होती तो इस नाटकीय जीवन को वह कदापि स्वीकार नहीं करता ।<sup>1</sup> इस दुखद जीवन के लिए ईश्वर ने मनुष्य की स्वीकृति नहीं ली थी अतः मनुष्य के पाप कर्मों का उत्तरदायित्व वह ईश्वर ही के सर पर देना है ।<sup>2</sup> उसका तर्क था कि जब ईश्वर ने मनुष्य के भाग्य का निपटारा पहले ही से कर रखा है तब वह निपिद्ध कर्मों के लिए मनुष्य को दोषी क्या कर ठहरा सकता है ।<sup>3</sup> उमर के इस विद्रोह का मूल कारण उसका भाग्य अथवा नियतिवाद था ।

### उमर और भाग्यवाद

उमर भाग्यवादी था अतः वह इस मत में विश्वास करता था कि जो कुछ ईश्वर ने मनुष्य के ललाट में लिख दिया है उस मिटाया नहीं जा सकता । उसका कहना था कि समार रूपी जाल में ईश्वर ने मनुष्य को फसा रखा है । हर नेकी व बदी जो ससार में चल रही है उसका कर्ता एकमात्र ईश्वर है । मनुष्य तो बवल उमके हाथों की कठपतली है । उस स्वतंत्र रूप में कुछ भी

- 1 I never would have come had I been asked ?  
When would I choose to go if I were asked ?  
I would forswear this world and would dispense  
With coming being going were I asked !  
The Quatrains of Omar Khayyam by E H Whinfield 490
- 2 Who framed the lots of quick and dead but thou ?  
Who turns the troublous wheel of heaven but thou ?  
Though we are sinful slaves is it for thee  
to blame us ? who created us but thou ?  
The Quatrains of Omar Khayyam by E H Whinfield 471
- 3 Who was it that did knead my clay ? not I  
Who spun my web of silk and wool ? not I  
Who wrote upon my forehead all my good  
And all my evil deeds ? in truth not I  
The Quatrains of Omar Khayyam by E H Whinfield, 311

करने का अधिकार नहीं है ।<sup>१</sup> जो कुछ भाग्य ने एकवार लिख दिया, उसमें वह कोई परिवर्तन नहीं करता । भाग्य के आग मनुष्य को कुछ भी नसीब नहीं हो सकता, इसी से उमर ने मनुष्य को व्यथ की चिन्ताओं अथवा क्षण्टा म न पढ़ने की चेतावनी दी है ।<sup>२</sup> भाग्य अथवा नियति की दासता से दाय होकर उसने कहा था कि यदि उसे ईश्वर को सलाह देने का अधिकार होता तो वह उसमें इस धरती और आकाश का अन्त कर एक नये सार के निर्माण की मांग करता जिसमें मनुष्य की हार्दिक इच्छाओं की पूर्ति की जाय। व्यथ सकती ।<sup>३</sup> भाग्य की क्रूरता से ऊबकर ही उसने प्रवृत्ति का छोड़कर निवृत्ति का सहारा लिया ।

### उमर और निवृत्ति-माग

जीवन की अनिश्चितता मानवात्मा में दारुण सत्य को पा लन की जिज्ञासा उत्पन्न करती है । प्रश्नों के इस जीवन में नियतिवादी उमर को मह भान हुआ था कि—

सासारिक लिप्ताए जिन पर  
जागा करते हैं हम लाग  
मिट्टी में मिन जाती हैं सब  
पाकर सौ विघ्नों का रोग ।

- १ सप्या अजल दाना चू र दाम निहा  
स वगिरिफ्त व आदग नान निहा  
हर नष व वं कि मी रष दर आलम  
आ मा बन व बहाना वर आम निहा

Swami Govind Tirth The Nectar of Grace p 81

- 2 The fate will not correct what once she writes  
And more than what is doled no grain alights  
Beware of bleeding heart with sordid cares  
For cares will cast thy heart in wretched plights  
The quatrains of Omar Khayyam by E H Whinfield 333
- 3 Had I the power great Allah to advise  
I'd did him sweep away the earth and sky  
Remake a better world where man might hope  
His heart's desire perchance to realise (3 9)  
Otto Rothfeld Umar Khayyam and His Age p 86

कही फूलती फनती भी हैं  
तो बस घड़ी दो घड़ी ही  
ज्यो मरु के धूसर मुख पर हो  
हिमकण की आभा का योग ।<sup>१</sup>

अतः नियति के प्रति असंतोष प्रकट करत हुए उसने कहा—

He brought me here first to my great surprise,  
From life I've gathered but a dim surmise  
I go perforce Why come ? Why live ? Why go ?  
I know the questions but hear no replies .<sup>२</sup>

इहा प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए वह आत्मवाद की ओर मुड़ा ।

क्याकि उसका दृढ विश्वास था कि—

जिसने तुम्ह उछासा है इस  
प्रातर म किसलिए ? इसे  
वही जानता, वही जानता  
वही जानता है सब कुछ ।<sup>३</sup>

इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए उसने तत्त्वज्ञान की छान बीन की ।  
तत्त्वज्ञान के आलोक म उसकी प्रबुद्ध आत्मा ने यह अनुभव किया कि ससार,

- १ मणिलीकरण गुप्त रुबाइयात उमर खय्याम, द्वितीयावृत्ति २००९  
पृ० ३७
- २ Quoted by Otto Rothfeld in his Umar Khayyam and his Age p 59
- ३ Advance and scan the tablet of your soul,  
Where master wrote his word when there was nought  
Quoted by Swami Govind Tirth in his The Nectar of Grace p 81
- ४ Maithili Sharan Gupta Rubaiyat Umar Khayyam, p 55  
And He that tossed Thee down into the Field  
He knows about it all He knows He knows  
The palgraves Golden Treasury Rubaiyat Omar Khayyam 50

जिसमें प्रति क्षण जीवन की घूल उठा करती है, माया मान है।<sup>1</sup> इसी धारणा अथवा मायता के अनुसार उसने समस्त सासारिक प्रलोभनों की त्याग कर एकात्मता अथवा एकात्मता की हामी भरी, ताकि वह परम सत्ता का साक्षात्कार अथवा आत्मानन्द का अनुभव कर सके।<sup>2</sup> ज्ञान के आधारभूत जहाँ उसने विश्व का आन्त अथवा रहस्य तथा उसमें अनुस्यूत परम चेतन को जानने का प्रयास किया है वहाँ उसका कायम दार्शनिक रहस्य भावना में अनुप्राणित है।<sup>3</sup> किन्तु जहाँ उसने परम सत्ता की प्रथम रूप मानकर प्रथम ही द्वारा उस हृदयगत करने का आशय किया है, वहाँ वह मूर्च्छा की पतित में आ गया है। विद्वानों ने उसके रहस्यवाद पर रहस्यवादी अबू सईद की कृतियों का प्रभाव माना है।<sup>4</sup>

### उमर खय्याम और सूफीमत

जिम क्षण के प्याल को साक्षी के हाथ में पाकर सूफी सत्तार के रज व अलम को भूत जाता है उसी हाला की भाँति उमर भी अपनी रमणी में

- 1 For in and out above about below  
'Tis nothing but a Magic shadow show  
play'd in a Box whose Candle is the Sun  
Round which we phantom Figures come and go  
The palgrave's Golden Treasury Rubaiyat Omar  
Khayyam 46 181
- 2 Now the New Year reviving old Desires  
The thoughtful soul to solitude retires  
Where the white Hand of Moses on the Bough  
Puts out, and Jesus from the ground suspire  
The Palgrave's Golden Treasury Rubaiyat Omar  
Khayyam 4 16
- 3 His mysticism is that of the philosopher and his intoxi-  
cation that of Divine love  
E. H. Whinfield Quatrains of Omar Khayyam Foreword  
by Akba Haidari VI
- 4 There is no doubt that the writings of the saintly mystic  
Abu said has deeply impress'd him ( Omar Khayyam )  
Ibid, p 50



करता है ताकि उसके सेवन से वह ससार का दुख दब भूल जाय। सूफियो की तरह वह भी माधुय एव मादन नाव का भूखा है। उसके यहां भी सौन्दर्य का गुण गान होता है, प्रेम का प्रसंग छिड़ता है साकी की पुकार मचती है और जाम का दौर चलता है। किंतु दोनों के प्रमालम्बन तथा प्रेम-योजना में एक महान अंतर है। सूफिया का सौन्दर्य घाम अथवा प्रेम प्रतीक अमरद हाता है उमर का प्रेम प्रतीक कोई महवूबा है सूफियो के यहां जहाँ विरह के मामिक चित्रण की प्रचुरता है वहाँ उमर के यहां समागम अथवा संयोगा वस्था की मादकता का ही बोलवाला है। फिर भी दोनों का प्रेम व्यजना में बहुत कुछ समानता है। उमर ने अपनी प्रेम व्यजना के लिए सूफियो के प्रतीको तथा भावभंगिमा को ही अपनाया है। सूफी का य की भांति उसका काव्य भी साकी और सुरा में केन्द्रित है।<sup>1</sup>

उमर का विश्वास था कि इस परिवर्तनशील जगत में कोई अनेय सत्ता अवश्य है जो समस्त भूतों में अनुस्यूत है। परम सत्ता के अस्तित्व के सम्बन्ध में उसे किंचित सन्देह नहीं था। सूफियो के अनुसार परमात्मा प्रेम रूप है और वह अपने को प्रेम द्वारा ही इस ससार में अभिव्यक्त करता है प्रेमाकषण से ही जगत के समस्त भूतवग परस्पर आवद्ध और स्थिर हैं तथा विश्व में निहित चिरतन सत्य अथवा सत्ता का साक्षात्कार प्रेम द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार समस्त सूफी काव्य दिग्घ प्रेम की भावना से अनुप्राणित है। सूफियों का यह सिद्धांत कि परमात्मा का मानवात्मा से अटूट संबंध है उमर के दाशनिन सिद्धांत के तद्रूप था। अतः उसने अपने प्रेमोदगारों को सूफियों की भाषा शली में व्यक्त कर दिया है। इतना होते हुए भी वह कह देना कि उमर सही अर्थों में सूफी था कठिन है। उमर स्याम को रूमी और हाफिज की कोटि का सूफी नही माना जा सकता। स्वभाव तथा धारणा दोनों दृष्टियां से वह सूफियो की निवृत्ति एव सौन्दर्य भावना से बहुत कुछ भिन्न किंवा प्रतिकूल था। उसका साक्षात्कारी दृष्टिकोण मुश्किल से सूफिया के अंतर्भावों अथवा लिव्यानुभूतियों की स्वीकार कर सकता था। प्रेम काव्य जिसमें विरह का ताप तथा मिलन की मानवता का चित्रण पाया जाना है

1 See Whistfields 'The Quatrains of Omar Khayyam,

तत्कालीन काव्य की एक सामान्य प्रवृत्ति अथवा शैली थी। उसी प्रवृत्ति के अनुरूप और उसी शैली में उमर ने अपनी प्रेमानुभूतियों को अभिव्यक्त किया है। फिर भी उसका हृवाइयों में सूक्तियों के अन्तर्गत अथवा रहस्यवाद की शैली में तब दबने को मिल जाती है।<sup>१</sup>

अब निष्कर्ष रूप में हम यह देख लेना है कि छायावादी-युग के कवियों ने सत्यम के जीवन-दृष्टान्त को किन विगपताओं को और क्यों ग्रहण किया।

### निष्कर्ष

उमर ने अपने समय में धार्मिक विनोदवादी प्रवृत्ति तथा पारलौकिकता का विरोध किया था। सत्पुरुषों और गुरुविरा को गिल्ली उड़ाई थी तथा उनमात्रा की आध्यात्मिक ध्याना को निस्तार घोषित किया था। छायावादी-युग भी प्राचीन जज्ञर रूढ़ियों का विरोधी था। वस्तुतः उग्ररि के आधान से एक ओर भारत की प्राचीन मान्यताओं एवं मर्यादाओं की भित्ति टूट रही थी और दूसरी ओर योरोप की भोगवादी सम्प्रदाय भारतीय सम्प्रदाय के समय का बाध तोड़ने में सफल थी। भोग की लिप्सा के कारण पाश्चात्य विचारधारा में बहने वाले भारतीय युवक भी आचार की प्राचीन परम्पराओं एवं मर्यादाओं का श्रुत्वा विप्लव कर देने में प्रसन्न थे। बुद्धिवादी की चर्चा शीघ्र से उनके धार्मिक विश्वासों आस्थाओं एवं श्रद्धाओं में अन्तर अथवा कमी आ गई थी। उधर धर ही में उद्गू की महकित्त में साक्षी का नाम चल रहा था और लोग छक कर गूम रहे थे। रिशों (परहृत्रगारों) और नासिहो (उपदेशकों) पर श्रुत्वा कब्रतिया कमी जा रही थी और पीने बाल तथा काकिरों

1 The love poems signifying the pangs of separation and the joys of reunion with the loved one were part of the Common form of the poetry of the time.

Whinfield 'The Quatrains of Omar Khayyam' p 50

2 Some times he uses language which would imply entire concurrence with the rest of the Sufi doctrine namely the spiritual intuition the ecstasy and communion of the soul with the One

E. H. Whinfield 'The Quatrains of Omar Khayyam' p 50

(विद्याया) को खुल कर दाद दी जा रही थी। ऐसी परिस्थिति में हिन्दी काय में उमर खय्याम के भोगवाद तथा विद्रोहवाद का पापण प्रारम्भ हो गया। गराब और साकी का चस्का क्या नहीं कराता। अतः जब खुमार चला तब छायावाद-युग के उत्तरकालीन कवि हाता-प्याला में ऐसे खोये कि अपनी सुध बुध भूल गये आचार विचार में विमुक्त हो गये, यहाँ तक कि ईश्वर की सत्ता को भी चुनौती देने का दम्भ करने या दम भरने लगे।<sup>१</sup>

छायावाद के प्रवर्तक कवि रोमांटिक थे और निराशावाद रोमांटिक काय की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। रोमांटिक निराशा अथवा अवसाद का कारण आशा और यथाय का पारस्परिक संघर्ष है। छायावादी कवि स्वभाव में ही स्वप्नष्टा थे अतः जीवन के प्रत्येक मोरचे अथवा मोड़ पर ससार के कटु मत्वा का डटकर सामना करने की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। ऐसी दशा में व्यक्तित्वगत जीवन में उन्हें पग पग पर पराजित होना पड़ा था। अतः विक्षोभ में स्थिति से उत्पन्न दुःखानुभूतियों की उनमें यहाँ कमी नहीं थी। इसी से उनकी हृत्पत्रों का तार टूट गये उनके कल्याणकलित हृदय में विकल रागिनी बजने लगी और उनकी आशा जाकाशाएँ असमय में ही कुम्हला गई। उमर खय्याम की दृष्टान्तगत मनुष्य की जीवन के प्रति आसक्ति और जीवन की मनुष्य के प्रति उपेक्षा का गीत है।<sup>२</sup> अतः छायावादी कवियों में उमर की निराशावादी भावनाओं के प्रति समवर्तना का जागरित हो जाना अत्यंत स्वाभाविक था।

वासना के विनासी ससार के रोमांटिक कवियों ने अमफल हो दिव्य प्रेम के गीत भी गाये हैं। छायावाद के कवि भी प्रेम की धीर से पीड़ित थे। उन्हें अपने नैतिक प्रेम का आध्यात्मिक आवरण में पकत करना सूब जाता था। खय्याम ने अपने वासनात्मक प्रेम को सूफियों की भाषा में बड़ी ही सफाई और चतुराई के साथ व्यक्त किया है। इस प्रकार छायावाद के कवि को अपनी प्रमानभूतियों को घुमाव के साथ व्यक्त करने के लिए एक

१ मनुज पराजय के स्मारक हैं मठ मस्जिद, गिरजाघर,  
प्रायना मत कर मत कर मत कर।

बच्चन एकान्त मगीत पृ० १०४

२ बच्चन खय्याम की मधुमाला पाँचवाँ संस्करण ( तीसरे संस्करण की भूमिका ) पृ० ९

मजा मजाई गला हाम लग गई । अतः अपने लौकिक प्रेम का एक अलौकिक रूप देने के उद्देश्य से छायावादी कवि उमर द्वारा प्रयुक्त नूफा काव्य के प्रतीका ( साबी सुरा, सगर आदि ) का जहाँ तहाँ उपयोग करता हुआ पता जाता है ।

उमर के निराशावाद का छायावादी कविता द्वारा अपनाय जान का एक महान कारण भारतीय मायावादी की पृष्ठभूमि भी थी जिसके अनुसार सब कुछ मिथ्या है । कबीर और तलसी जग मन्त और भक्त कविता न भी जिनका छायावादी कविता ने समादर किया है मगर और जीवन की अमरता अथवा मिथ्यात्व का विंगण वणन किया है । इसके अतिरिक्त अपने प्रयत्नात्मक असफल-पक्षि को भाग्यवाद बड़ा हुआ कानिक और सन्तापप्र' प्रतीक हाता है । अतः भारतीय दशन का ये एक जीवन में प्राप्त मायावादी की पृष्ठभूमि में छायावाद के एहिक जीवन में पराजित कवि के लिए उमर के मायावादी को अपनी ही भावनाओं की उपज मान लेना स्वाभाविक था ।

किंतु उमर दय्याम के सम्पूर्ण जीवन दशन दणितता' नियतिवा' विनाहवा', भोगवा' आदि-का प्रबल और कुछ ह' तक अनिच्छाशी प्रभाव छायावादी-युग के उत्तरकालीन कविता-वचन तरङ्ग अथवा आरम्भोप्रना'सि' आदि-पर ही प' । छायावादी के प्रबल कविता-प्रसा' निशाला पन्त-के लिए उमर द्वारा प्रचारित दुखियों की फिलामफी १ को जीवन का एकमात्र सत्य मान लेना असम्भव था । कारण उनकी व्यापक एक अद्यात्मवादी दलि' निरन्तर निराशा अथवा पराजय का स्वयं नही कर सकती थी । वे स्पून का पराजय को मृ'म में अतभूत कर देने के प' म थ । अतः उनका जीवन दशन एहिक जीवन को निराशा में सबदा मुक्त न होना ह' नी अरनी च म परिणति में छायावादी और आगावा । यना रहा । इसी में चतर का न म मुन-पुन के मु'र सम'वय अथवा अनुनन के प्रति विंगण आ'द' मितता है । १

1 Omar's philosophy is not the philosophy of happy people but of unhappy people (G. K. Chesterton)  
Quoted by Bachha in his preface to Khavyam ki Madhu Shala V edition p 10

२ मुन मुन के मधुर मितन में  
यह जीवा हो परिपूजन,

किंतु स्थूलता अथवा भौतिकता के प्रति विरोध रूप से नागरिक छायावाद युग के उत्तरकालीन कवियों ने आस्तिकता अथवा आध्यात्मिकता के प्रति तीव्र उपेक्षा किंवा विरुद्ध के भाव ही प्रकट किये। अन्तर्गत एवं समष्टिगत जीवन सधम म निता त असफल होने पर वे किसी स्वस्थ आदर्शवादो जीवन दान की परिकल्पना नहीं कर सके। इस प्रकार सूक्ष्म के मधुमय दान' स जो एकात्मिक निराशा और विष का भी आशा और अमृत म बदल देना है व बधित रह गये। निदान जीवन के स्थूल घरातल पर भी निराशा पराजय, परवृत्ता क्षणिकता आदि स्थूल अथवा अद्व सत्या की ही उद्धाने जीवन का एकमात्र सत्य मान लिया। ऐसी परिस्थिति म उ ह उमर सध्याम का जीवन दशन जो एक उद्विग्न और आत आत्मा की पुकार है एक विपण्ण और विपन्न मन का रोदन है एक दलित गोर भग्न हृदय का प्रदन है<sup>१</sup> एक मात्र सत्य प्रमाणित होने लगा। इस प्रकार जहा सश्लिष्ट प्रवृत्तियों का का य होने के कारण छायावाद कतिपय दुबल तत्वों के हात हुए भी आस्था विश्वास सौ स्य और आस्तिकता का का य बना रहा<sup>२</sup> वहाँ हासो मुग्ध प्रवृत्तियों को अपनाते व कारण छायावाद-युग की उत्तरकालीन व्यक्तिपरक कविता अविश्वास अनास्था अतृप्ति अगाति अस्थिरता तथा जीवन के उद्दाम स्वरूप को ही अभिव्यक्ति नेन म सफल हो सकी।

स रेहवाणी एवं स्थूलता प्रमी छायावाद युग क उत्तरकालीन कवियों का प्रतिनिधित्व करने वाले कवि बचचन न स्पष्ट ग नो म क्दा है कि ' १९३० के पश्चात् मरे जीवन म जा भीषण तूफान आया और मरे विचारों और भावनाओं म जो प्रबल उषन-पुषल मची उसने मुझ ठीक उम मन स्थिति म रख लिया जिसम रनाइया उमर सध्याम मरे प्राणा की प्रतिध्वनि हो गई। एक-एक रबाइ एसी मानूम होने लगी जस मरे लिए ही लिखा गइ हो।<sup>३</sup> एसी प्रकार सामा य जनता पर उमर सध्याम के प्रभाव व सध्व ध म उहोने

फिर घन म ओझल हो शनि

फिर गणि स ओझल हो घन ।

पत पत्नी प्रथम संस्करण प० २२४

- १ बचचन, सध्याम की मधुगाला १९५६ भूमिका प० ९
- २ डा० गिबकुमार मिश्र नया हिन्दी-वाक्य, १९६२ प० १०२
- ३ बचचन सध्याम की मधुगाला पाँचवी संस्करण, भूमिका, प० ११

कहा है कि 'सन १९१०-१५ के बीच भारतवर्ष की परिस्थिति हा कुछ ऐसी थी जिसमें वह राजाध्यात का स्वागत करने का तयार था ।<sup>१</sup> प्रश्नोत्तर के रूप में इसे और स्पष्ट करते हुए ये कहते हैं—

जिम तरह मैंने कहा है कि व्यक्ति के जीवन में एक समय ऐसा आता है जब वह उमर सम्पन्न का विचारधारा की ओर स्वयं खिंच जाता है क्या इसी तरह दान के जीवन में भी ऐसा समय आता है जब वह 'म प्रकार की कविता सुनने को आतुर-आकूल हो उठता है ?

उत्तर है हा । ऐसा हो था १९२० का वह समय । आंध्र आन के पूर्व की गति में चठा हुआ आतिकाही दान एक ऐसा पन्थन रख रहा था कि जिसके द्वारा वह विदेशी शासन के सम्पूर्ण दुःख-संकटमय यम का पकड़कर चकनाचूर कर डाले और हृदय के स्वप्ना के अनुकूल एक नयन का विधान का निर्माण करे । सहसा हमारे सार दान के स्तर पर संवहना हुआ एक तूफान मह घोषणा कर चला 'जागा इधर सरदार भगतसिंह ने अमम्बली भवन के अन्दर बम फेंक दिया है जिसे हमारे गुनामी की जमीरें उठ गई हैं और उधर महात्मा गांधी ने अपने चरखे के ताग से ब्रिटिश सत्ता की मुल्तानो मोनार को फसा लिया है । माँ के साहसा । उगे दान-प्रम की मन्त्रि पाकर मन्थन में आ जाओ और करने में मोका हाथ में निकल जायगा । हमारी आँसों में एक अतीव मन्ती थी । हमारी आँसों की तहरा न आकाश छू लिया । सरकार ने नियति की दृढ़ता कठोरता और नियमता से हमारा दमन आरम्भ किया । हमारे ननाआ का पकड़ पकड़ कर मनरत्र के मोहरो का तरह जल में डालना शुरू किया । पर हम निरदमाह नहीं हुए । इपर माह अरविन के उत्तराधिकारी लाइ वलिंगडन ने आर्निंग रात्र पन्थ निधा और गांधी जी हिन्दुस्तान में आने ही गिरफ्तार कर लिये गए । राष्ट्रीय आन्दोलन विलकुल कुचन लिया गया और सर समुपन होर ने गांधी जी की गिरफ्तारी पर जब से कहा कि एक कुत्ता भी नहीं भौंका । सरकार की कट नाति न जगह-जगह हिन्दू-मुसलिम दंग करा लिये । और इस प्रकार मन्त्रि, दानि विभाजन और पराजित देग के ऊपर ह्यान्ट परर का विधान सा लिया गया । उसको जाग्रदयमान आगाए जिसे पर उठने न जान कितने नियों से भात तागय रखी थी सब का सब, रात दन कर न जाने किग ओर

१. बच्चन सम्पन्न की मधुगाता, चौथरी सहकरण भूमिका, पृ० ३५

उड गई । नियति ने भारत के भाल-शिलर पर जो लेख लिख दिया था उसका एक अक्षर भी भारत के गत-गत आसुआ की धारा स न घुल सका । एसा था वह नराश्यपूण समय और एसी थी वह गोकजनक परिस्थितियाँ, जिनम देग के वाने-कोने स उमर खय्याम की वाणी प्रतिध्वनित हुई ।<sup>1</sup>

इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन की आगाओ आकाशाओ की विफलता तथा सामाजिक आधिक एव राजनीतिक जीवन की असफलताओ स क्षुब्ध होकर छायावाद-युग के कनिषथ स देहवादी तथा स्थूनताप्रिय कवियो ने अपने मानसिक ताप अथवा विक्षोभ को मिटान के लिए उमर के नियतिवाद, भोग वाद तथा विद्राहवाद को स्वीकार कर लिया जिनम सबसे ऊचा स्वर 'बच्चन' का सनाई पडा ।

### उमर की नियति और छायावाद

उमर की नियति की कल्पना बडो ही भयकर और निराशावादी है । वह मनुष्य को कबल असमथ और विवग बनने का गुण रखती है अत अत्यन्त शूर है । सम्पूर्ण विश्व उसी क सकेत पर चन्द्रवत घूमता रहता है । मानव जीवन उसके लिए गतरज के खेल के समान है जिसम वह मनुष्य-जीवन को मू रो के समान घुमाया करती है और खन से जी भर जाने पर उस मुहरो के समान ही समट कर रख लेती है ।<sup>2</sup> मनुष्य को उसने अपना जीवन-पथ ढडने क लिए अघमति के अतिरिक्त और कुछ नही दिया ।<sup>3</sup> मनुष्य की समस्त प्रायनाए उसकी लौह सखनी स लिखा हुआ एक अक्षर भी नही मिटा सकना ।<sup>4</sup> विश्व के समस्त नर-गारी उसी क फूर हाथा के खिलौने है । वह उह गैर की तरह इधर-उधर ठुकराया करती है ।<sup>5</sup> किन्तु इस

१ बच्चन, खय्याम की मधुशाठा पाँचवाँ संस्करण १९५९ भूमिका, प० १४-१६

२ Palgrave The Golden Treasury Rubayyat of Umar Khayyam 9 196

३ Ibid 33 130

४ Ibid 51 202

५ दाए बाए जिधर खिलाडी  
है उद्यान देता सब कुछ

नियति क' चक्र से मुक्त होना असम्भव है । इस प्रकार उमर की यह नियति भारतीय कमवाद अथवा प्रारंभवात् स निनात भिन्न है । कमवात् अथवा प्रारंभवाद म उमर की नियति जसी कोई क्रूरता नहीं है बयोकि वह मनुष्य को पूवकृत कर्मों क' फलाफल को देने वाला है । उमर के साथ प्रारंभ कम का क्षणडा नहीं है । बयोकि वह जन्मांतरवात् और परलोकवात् म विश्वास नहीं करता ।<sup>१३</sup>

इस प्रकार उमर का यह नियतिवात् एक प्रकार का आकस्मिकवात् है, जिसम 'कृति' और पौरुष के लिए किंचित स्थान नहीं है । उसके अनुसार सभी घटनाएँ पूव से ही नियत हैं और वे ही घटित होती रहती हैं । दूसरे गानों म मानव-जीवन की सभी घटनाएँ नियति के अधीन हैं जिसम युक्ति अथवा तब के लिए विस्तुल स्थान नहीं है । अत उमर की नियति कमवात् की भाँति 'बाय कारण भाव का समथन नहीं करती ।

उमर की इस 'नियति' का बचन की प्रारम्भिक रचनाआ-मधुवाला मधुकलष, एकांत सगीत आदि— पर प्रकृष्ट प्रभाव पडा है । कवि ने अपने

क'दुःख उधर उछल जाता है

हाँ-ना करता है सब कुछ ।

मधिली शरण गुप्त, हवाइमात उमर मध्याम ितीयोवति प० ५५

१ (क) उमर क्या मपा स्वग की तपा ?

कहरना मात्र पूय अपवग

घरा पर ही यह जीवन स्वग ।

सुमित्रानन्तन पन मधुवाला, प्रथम शस्करण प० ८७

(ख) उमर की नर्ण स्वग की चाह

मरा म भरा स्वग का मार ।

सरालम राह स्वग की राह

सुरालम द्वार स्वग का द्वार ।

वही प० ११

(ग) स्वग की स्पहा, नरक का प्यान

मन्िर पितवन पर द जग बार

धूम अघरा की मन्िरा-घार

वही प० २८



को नियति के सामने अत्यन्त असहयावस्था में पाया है। नियति की क्रूरता जड़ता<sup>१</sup> तथा अघपन में भी उसका विश्वास है। उसकी नियति उदार मन स्थिति में भी निपट क्रूर है। वही से उसके द्वारा लिखित अपनी जीवन-कथा का पहला पन्थ पढ़ते ही उसका तन-प्राण काप उठता है, उसके स्वप्नों का सारा नुट जाता है और वह विकृतव्यविमूट हो जाता है। वह इस क्रूर नियति-चक्र से किसी प्रकार मृत्यु पथत छुटकारा पाने की कल्पना नहीं करता। अतः वह उसके सामने घुटने टेक देता है। नियति के इसी क्रूर स्वभाव को बच्चन ने अपनी निम्न पक्तियों में पुष्ट किया है—

कल्पना-पथ अनुसरण कर  
 मैं नियति क गह पधारा  
 आल मूदे लिख रही थी  
 एक पुस्तक वह उदारा  
 यह कथा तेरी कहा उसन  
 तथा वह पुस्तिका दी  
 खोलते ही पन्थ पढ़ना  
 कप उठा तन-प्राण सारा  
 भूमिका पत्र कर पढा रा  
 यह गगन स्वप्नाभिलाषी —<sup>२</sup>

हो नियति इच्छा तुम्हारी  
 पूण मैं चलना चलूंगा  
 पथ सभी मिल एक होंगे  
 तम धिरे यम के नगर में ।<sup>३</sup>

अपने निरागावाट के सम्बन्ध में बच्चन ने स्वयं बताया है कि मेरा निरागावाट भाग्य ( नियति ) और समाज क समस्त व्यक्ति की विवगता

१ रात त्नि-सा जड़ नियम है  
 बद्ध पतनोत्थान मेरा

बच्चन मधुक्लगा, पाँचवाँ सस्वरण प० २६

२ बच्चन, मधुक्लगा, पाँचवाँ सस्वरण १९४७ प० ३०

३ बच्चन, मधुक्लगा पाँचवाँ सस्वरण १९४७, प० ५५

अथवा लाचारी का परिणाम है।<sup>१</sup> नियति के सामने अपनी इस विवशता को उठाने अपनी कविता म भी यत्न किया है—

ध्याला है पर पी पाएँगे

है पात नहा इतना हमको

इस पार नियति ने भजा है

असमय बना कितना हमको।<sup>२</sup>

अतः उनका यह कहना स्वाभाविक ही है कि

हम जिस क्षण म जो करते हैं

हम याध्य वही हैं करने का।<sup>३</sup>

उमर के इस नियति का प्रभाव छायावाणी युग क अर्थ कविता मुमन गोपालसिंह नेपाली आदि पर भी पडा है। उनक उमर की पर नियति को

स्वाकार करने का कारण भा उनकी व्यक्तित्व जीवन की अमर्यता तथा जगत की नस्वरता और दुःसूयता ही है। निवमगत सिंह मुमन अपनी कविता को अपने उर म निहित यथा की ही एक कथा मानते हैं।<sup>४</sup> उमर की मति ही उहोन प्रथम म जलन क नियम का भी सत्य माना है—

प्रथम म जलना नियम है यह समयकर भूल ताओ प्राण मुझको भून जाआ।<sup>५</sup>

1 My pessimism is the individuals helplessness before society and Destiny  
—रवींद्र सहाय यमा हिता काय पर आगत प्रभाव प्रथम सस्करण परिशिष्ट प० २७७

२ कचन मयुवाना १९२६ पृ ७०  
३ कचन मयुक्ताग प० ११

४ मरे उर म जो निहित यथा कविता तो उमकी एक कथा छाना म रो गाकर ही मैं दाण भर को बुद्ध सग पा जाना —निवमगत सिंह मुमन हिलनोल त्तीय सस्करण पृ० २०  
बह हृदय नहीं  
त्रिमम नियम की चाह नही  
बह प्रथम नहीं

५ त्रिमम विरहानल दाह नहीं।  
—ममिमानान पन्त मयुवान प्रथम सस्करण प० ६६  
६ निवमगत सिंह मुमन, हि तोय प० ०

सुमन ने अपनी इस प्रणयजनित जलन का कारण अपनी क्रूर किस्मत को बताया है जो उमर की नियति का ही पर्याय है। इसी क्रूर नियति ने उनके पनिहारिन के प्रेम को विफल कर दिया है। इस प्रसंग में उ होने उस प्याली को भी याद किया है जो छूते ही हाथ से छलक गई थी—

जिस पनिहारिन की गगरी पर  
 मैं ललचाया वह दुनक गई  
 जिस जिस प्याली पर घरे अधर  
 वह वह छूते ही छलक गई  
 देखो मेरे प्रति मेरी ही  
 किस्मत है किन्नी क्रूर क्रूर  
 जिससे मैं मिलने को याकल  
 वह मुगस कितना दूर दूर ।<sup>१</sup>

यही नियति उमकी सारी गेखी को भी चूर कर देती है जिसमें वे अपने जागतिक प्रेम यापार में भ्रम का अनुभव करने लगते हैं।

जब नियति तनिक प्रतिकूल हुई  
 तब सारी गेखी धूल हुई  
 इस जग में आकर प्यार किया  
 मानव से इतनी भूल हुई ।<sup>२</sup>

इसा प्रकार गोपाल सिंह नेपाली ने अपनी 'नियति' को कटिन कहा है तथा जगती को काया को तिमिरप्रस्त और अपन जीवन को अघकार एव घूलि भरी मध्या के रूप में देखा है जिस पर कुटिन नियति की काली छाया निरंतर छाई रहती है

मग चाहिण ज्योति त्पि पर मिलती मुझको पीर घनेरी  
 जीवन का अघकार में अब पूछो, मैंने क्या पाया  
 जगती की सौम्य मूर्ति पर कुटिन नियति की काली छाया  
 ज्योति माँगती है चिर प्यासी तिमिरप्रस्त जगती की काया  
 मिनती उसको दक्षयोग से कभी न खुलने वाली माया  
 अभी पढा मैं वही जहाँ पर सध्या ने घी घूल बिखेरी ।<sup>३</sup>

१ निवमगन सि सुमन हिल्लोल, प० ३२

२ वही पृ० ६९

३ गोपालसिंह नेपाली, पंचमी १९४२ पृ० ११९

पन्त जी ने भी बाल्यकाल म ही अपनी मातहीनता के लिए कटिल नियति को ही दोषी ठहराया है—

नियति न ही निज कुटिल कर मे सुख

गाद मरे लाड की घा छान ली,

बाप ही म हो गई थी लुप्त हा ।

मात अचल की अभय छाया मुझे ।<sup>१</sup>

भगवतीचरण समा का भी खरपास की सात जीवन म बवल असफलता स ही परिचय हो पाया है—

अनजान दिना का मैं अनजाना पयो

बवल असफलता है जानी-गहचानी ।<sup>२</sup>

तथा इस राग रग और चहूँ रहल क सत्तार म उसी (उमर)<sup>३</sup> की तरह उठाने एकाकीपन का ही अनुभव किया है—

यह राग-रग यह चहूँ पटल सब कुट्ट है

पर अपन अन्दर मैं कितना एकाकी ।<sup>४</sup>

अत निश्चय स वाकित इस धरती पर उठाने नियति की परबगता को स्वीकार कर लिया है—

पल भर का जो अवसम्ब मुस दे सजता

एसी ता कोई पाह नही जीवन म ।

विचलित कर सकती जा कि नियति के प्रम को

एसी तो काई बाह नही जीवन म ।<sup>५</sup>

१ पल बीणा प्रिय द्वितीयावति, १८४७ प० ७९

२ From Mosqu an outcast and from Church a foe  
Out of what clay did Allah form me so ?  
Like unfrocked monk or ugly prostitute  
No hopes have I above no joy below 60  
Quo ed by Otto Rothfeld in his Umar Khayyam and His  
Age p 73

३ अमननाउ नागर भगवतीचरण समा प्रथम संस्करण पृ० १-

४ Seclusion is the only friend I find,  
To good or bad of folk my eyes are blind  
F H Whinfield The Quatrains of Omar Khayyam  
P XXXIII

५ अमननाउ नागर, भगवतीचरण समा प्रथम संस्करण पृ० ११

६ वही, पृ० ११

यही प्रकार नरेन्द्र शर्मा ने विकराल नियति के समक्ष अपने को अत्यन्त हीन और असहायतावस्था में पाया है। वह यह अनुभव हुआ है कि क्रूर नियति ने उनका समस्त कामनाओं को बर्जित बना लिया है<sup>१</sup> और उनका (नियति) हाथ उह गिर नर झुकाते जा रहा है।<sup>२</sup> किन्तु आगे चलकर जब इन निरुपाय नियतिवादियों ने यह अनुभव किया कि उनकी नियति उनका हासप्राय तथा क्षयग्रस्त हृदय का ही परिणाम है तब उन्होंने कुछ साहस और स्वस्थ मन से काम लेना चाहा।<sup>३</sup> फलतः उन्होंने नियति के साथ काय कारण का सम्बन्ध जोड़ा जिससे वह बहुत कुछ भारतीय कमवाद के समकक्ष की हो गई। नीचे की पक्तियों में नरेन्द्र शर्मा की नियति कमवाद की ही प्रतिरूप है—

बद बली सा राज न तेरे  
 खाले से यो खुल पायेगा  
 पर धीरज धर धीरे धीरे  
 होगा जो आगे आयेगा।  
 जहाँ कम कारण का बंधन  
 देर सही अ धर नहीं है।  
 गार्वत नियत नियति की गति में  
 बंधु अवेर सपर नहीं है।<sup>४</sup>

प्रस्ताव जो की नियति का दशन से सम्बद्ध है। उन्होंने उस भौतिक रूप भी लिया है। अतः उसका विवेचन शवाह्वयवाद के भीतर किया गया है।

### भोगवाद और छायावाद

उमर का भोगवाद भी उसकी क्रूर नियति का ही परिणाम है। अथ नियति के अधीन मनुष्य सबथा विवग और अपनी विवशता में ही निता त

१ अथकड़ी बड़ी बना दी नियति ने सय कामनाए।

नरेन्द्र शर्मा प्रवासी के गीत प० १८

२ मुझको झुकाते जा रहे हैं निष्ठर नियति के हाथ।

नरेन्द्र शर्मा काली-वन प० १७

३ आज मरी मिट्टी के पन भी जाग रहे वन चित्तगार।

मैंने भी क्या आज नियति के सम्मुख या हिम्मत हारी ?

नरेन्द्र शर्मा मिट्टी और फूल, त्रितीय संस्करण प० ६०

४ नरेन्द्र शर्मा पनास वन, द्वितीय संस्करण, प० ६२

करण है। उमर ने इस जड़ नियति की गतियों को सुनसाने का सतत प्रयत्न किया किंतु वह अपन प्रयत्न म नितान्त व्यसफन रहा। उमका समस्त बौद्धिक चिंतन मृत्यु और नियति के रहस्य क भटन म सवधा निष्पन्न गया।<sup>१</sup> इस प्रकार उसका सारा पुरुषाय निष्पत्त सिद्ध हुआ। पनत उस जगत की समस्त बागाए कया सम्पूर्ण जीवन ही निस्सार और क्षणिक प्रतीत हान लगा।<sup>२</sup> जग काटा स सकुल और छलनामय सिंहा<sup>३</sup> पडने लगा।<sup>४</sup> इस प्रकार उसक नीतर यह धारणा बद्धमूल हा गई कि जो क्षण नियति स प्राप्त हुए है एत<sup>५</sup> योग विलास में विताना जावन का एकमात्र सही माग है।<sup>६</sup> नितान निठर नियति की परव<sup>७</sup>ता का विस्मृत करने क टतु उसन हिनाहिन का त्याग कर मरिारस चसने का निश्चय किया।<sup>८</sup> और दा न्नि क इस जीवन म सरा प्याली का फनिन चल ही उमक जीवन का सिद्धान्त वाक्य हा गया।<sup>९</sup> पूजा पाठ और

1 Up from Earth's Centre through the Seventh Gate  
I rose and on the Throne of Saturn ate  
And many knots unravel d by the Road  
But not the knot of Human Death and Fate

2 Rubaiyat Omar Khayyam 31  
With then the seed of wisdom did I sow  
And with my own hand labour d it to grow  
And this was all the Harvest that I reap d  
I came like Water and like Wind I go

3 Rubaiyat Omar Khayyam 28  
क्षण क्षण यह मन नक तणाकुल  
जीवन का भग काटो स सकुल।  
-पन मृत्यु-वाल प्रथम मस्वरण प० ५४

4 Then to this earthen Bowl did I adjourn  
My lip the secret Well of life to learn  
And Lip to Lip it murmur d— while you live  
Drink I—for once dead you never shall return  
Rubaiyat Omar Khayyam 34

5 निठर नियति द्य हो कि कसकन यह किर ब्रविन्ति  
भग मरिार रस, हस र परवग त्याग हिनाहिन।  
पन मृत्यु-वान प्रथम मस्वरण प० २०

6 Awake my little ones and fill the Cup  
Before life's Liquor in its Cup be dry  
Rubaiyat Omar Khayyam, 2

धम कम उस यथ का पागनपन प्रतीत होन गगा । यहा तक कि वह ईश्वर और उसकी कृति को भी स दहात्मक दष्टि स देखने गगा ।<sup>१</sup> अत वह सबथ सबविध यह प्रचारित करी लगा कि नादान ! यथ की चि ता मत कर, मन्त्रिाघर का पान कर ।<sup>२</sup> पल पल इस क्षीण होते जीवन म सुरा का पान कर कन की चि ता मन कर ।

ईसा की उत्तीसवी गताी म फिटजजेरल्ड द्वारा उमर की खाइयो के अगरेजी अनुवाद द्वारा योरप मे उमर क भोगवाद का अत्यधिक प्रचार हुआ । वनानिक उन्नति तथा औद्योगिक क्रान्ति के कारण योरप म धम के प्राचीन विश्वासा के प्रति लोग म स न्ह उत्पन्न हो जाने से उमर के भोगवाद का बहुत बड पमान पर स्वागत हुआ । छायावाद युग क युग युवक गग को भी अगरेजी शिक्षा के सलभ हो जाने पर उमर की खाइया का रसास्वादन करने का सअवसर मिला । अगरेजी शिक्षा प्राप्त युवका की भावनाअ अथवा विचारो पर भी योरोपीय औद्योगिक क्रान्ति तथा वनानिक उन्नति म उत्पन्न धार्मिक अविश्वासा का प्रभाव पया । अत ईश्वर और आत्मा की सबगुणसम्पन्नता तथा

१ करो तुम जप पूजन उपचार  
नवाआ प्रभु का माय  
सुरा हा मुच सिद्धि साकार,  
मधुर साकी हो साथ ।

पल, मधुज्वाल प० ८२

२ पल मधवान प० ३०

३ कन का दुख केवल पागनपन  
पल पल बूना स्वप्नित जीवन ।  
स उर म हाता बाना भर  
सुरा पान कर मधा पान कर ।

—वगी प ६६

Ah make the most of what we yet may spend  
Before we too into the Dust descend  
Dust into Dust and under Dust to lie  
Sans Wine sans Song sans Singer and sans God  
Rubaiyat Omar Khayyam 23

सत्यता में उनका विश्वास थोड़ा बहुत विचलित होने लगा ।<sup>१</sup> व्यक्तिगत जीवन की कठिनाइयों तथा यातनाओं और तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की असफलताओं और अत्याचारों की दृष्टभूमि में उन्हें जीवन व्यर्थ लगने और निम्नतर प्रतीत होने लगा । ऐसी परिस्थिति में छायावाद युग के कतिपय कवियों ने नियति की निष्ठुरता के सामने अपने को सवथा अछाया और पशु पाया, अतः उनमें नियति के सामने आत्म समर्पण की भावना के साथ ही दार्शनिक मुक्ति में लिप्त रहने की मानसिक प्रवृत्ति भी घर कर गई । यद्यपि बच्चन के अनिर्दिष्ट छायावाद युग के कवियों ने उमर की नियति को पूणतः नहीं अंगन या किन्तु उसका भोगवादी चहुँको का बहुत प्रिय रगा । अतः छायावादी की कविता में हम एक सीमा तक भोगवादी की प्रवृत्ति का पोषण पाते हैं । छायावादी के निराशा कवि के लिए चार्वाक ज्ञान का यह सिद्धांत कि—

याउज्जीवेन मुरा जीवत ऋण कृत्वा घन विवेत ।

भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमन कुत ॥

उसकी भोगवृत्ति को उकसाने में कम सहायक न हुआ होगा ।

हिंदी में उमर के भोगवादी का सबसे अधिक प्रभाव बच्चन पर पड़ा है । इसका कारण यह है कि उमर की भीति का बच्चन ने भी अन्तर्मन के प्रति सचेतवादी दृष्टिकोण अपनाया । जीवन में उन्हें को विश्वसनीय मजिद सिद्धाई नहीं पड़ी । हताश होकर वे अपने मस्कारगत विश्वास का बंध । अतः उन्हें मदन अघवार ही अघवार सिद्धाई देने लगा—

तेज का विश्वास था उर में कभी अब तो सधरा

साज तो सँह गका ने लिया है डाव डेरा

पथ बनाये कौन, सब तो मैं मटकने भूतन-मे,

मच रहा है गोर, 'मन है डीक मेरा डीक मेरा ।

१ (क) भूल गया है ईश्वर जग को या मान्य अघवार ।

—नरेश चर्मा प्रमाणपत्री पृ० १०२

(ख) जार चलन दूर रहता है गायन क्षाम प्रवचन एक

—अचल, मधुलिखा

(ग) मैं अपना क्षाम विधाता हूँ, मरा भगवान गया है मर ।

—भारतीप्रमाण वि० मधुलिखा, पृ० ४८



हर दिशा की ओर बढ़ता, लौटता, फिर दौड़ता है  
है किधर मजिन्न न पाया जान जीवन यान मरा ।<sup>१</sup>

इस प्रकार पथभ्रष्ट होकर उ होने स्वर्ग और अमरता दोनों का ठुकरा दिया—  
अमरो ने अमृत दिखलाया  
दिखलाया अपना अमर लोक  
ठुकराया मैंने दोनों को ।<sup>२</sup>

इस मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि ईश्वर और स्वर्ग में विश्वास खोने के  
उपरा न उन्हें आत्मा की अमरता में भी सन्देह होने लगा, अतः उन्होंने कहा—  
भिट्टी का तन मस्ती का मन  
क्षण भर जीवन मेरा परिचय ।<sup>३</sup>

इस प्रकार ईश्वर परलोक और मरन के बाद जीव के अस्तित्व को  
अस्वीकार कर उ होने देहात्मवाद तथा इन्द्रियवाद को स्वीकार किया ।<sup>४</sup>  
किंतु इस क्षण में भी उन्हें निराशा ही होना पड़ा । उनकी कामना की तृप्ति  
यहाँ भी न हो सकी । अतः उ होने कहा—

अल्पतम इच्छा यहाँ  
भरी घनी घड़ी पडी है  
विश्व श्रीडास्यल नहीं रे  
विश्व कारागार मेरा ।<sup>५</sup>

१ बच्चन मधुक्लंग पाँचवाँ सस्वरण पृ० २०

२-३ बच्चन मधुबाला पृ० ३८

४ तन की क्षणभंगुर नीका पर चक्कर हरे यामी तू आया  
तूने नानाविध नगरों को होगा जीवन-तट पर पाया  
जब गुच्छ उन्हें देगा हागा रश्मि सीमित प्राचीरो मे  
जस नगरी में पायी होगी अपने उर की स्वप्निल छाया  
है दुष्क सत्य यदि उपयोगी तो सुखदायक है स्वप्न सरस  
सत्य भी जीवन का अंग अमर मत जग में डर, कुछ देर ठहर ।  
है आज भरा जीवन महल है आज भरी मेरी गागर ।

—मधुक्लंग, पृ० १०

५ मधुक्लंग पृ० १८

और यह ठण्डी आड़ भरी कि—

विश्व पूरा कर सभा है  
कौन मा अरमान मेरा ?<sup>१</sup>

इस प्रकार जीवन में वह मुग्न बर्गों के बदले दुःख के अश्रु-रूप ही शाय लग ।  
एसी ही विकट परिस्थिति में बच्चन ने उमर के शक्ति भोगवादी का आह्वान  
किया । जो उन्हें वास्तविक जीवन में प्राप्त हो सके उसकी पूर्ति उने  
हाला द्वारा करनी चाही । इसी से उन्होंने अपनी 'हाला की जोरा स्फूर्ति  
उत्साह प्रेम, सौन्दर्य वासना आदि का प्रतीक माना है ।' अतः उस ही उमर  
का भाँति जीवन के अवसान का विस्मृत करने के लिए पुकारा है—

मैं कहीं हूँ और वहाँ  
आत्म मधुवाता कहीं है ।  
विस्मरण दे जागरण क  
साय, मधुवाता कहीं है ।<sup>२</sup>

इस प्रकार बच्चन के 'हालावादी' का मूल उमर की भाँति ही जीवन के  
'हालाएन' में ही निहित है—

मुझे आदा है मधु का स्वाद  
हनाहल पी लन के वाँ ।<sup>३</sup>

जीवन की क्षणभंगुरता मरत्य आदि की भुलाने के साधन रूप ही उन्होंने सुरा  
और साकी को अपनाया है—

सुरा है जीवन का वह स्वप्न पड़कता देत जिसे ससार  
हनाहन जीवन का कट्ट सत्य जिम छू करता हाटाकार,

१ बच्चन मधुकला, पृ० २७

२ Wine for me in my earlier poetry is equal to like vitality  
vigour it also stands for love beauty, youth and passion  
डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा हिन्दी काव्य पर आधुनिक प्रभाव, बच्चन, का  
एक पत्र परिशिष्ट (ग) पृ २७७

३ Nay to attain deliverance from self  
Is the sole cause I drink and drink with wine  
Otte Rothfeld Omar Khayyam and His Age p 84

४ बच्चन मधुकला पृ० ३३

५ बच्चन, हनाहन पृ० १०

अमृत है जीवन का आदश मगर पाता है उसको कौन ?

और जो करता भी है प्राप्त साध वह लेता है व्रत मौन ।<sup>१</sup>

उमर खय्याम के इस भोगवात् को बच्चन के अतिरिक्त भगवती चरण वर्मा राम कुमार वर्मा अचल सुमन आदि ने भी अपनाया है । खय्याम की भाँति ही भगवती चरण वर्मा भी जीवन की कटता विपाद तथा क्षणिकता<sup>२</sup> से भयभीत हो अपनी प्रयत्नी से कहते हैं—

पीने दे पीने दे यौवन की मदिरा का प्याला,  
मत्त याद दिलाना कल की कल है कल आने वाला ।  
है आज उमरों का युग तेरी मादक मधुगाला ।  
पीने दे जी भर रूपसि अपने पराग की हाला ।<sup>३</sup>

खय्याम<sup>४</sup> की तरह जीवन और जगत की परिवर्तनशीलता तथा अस्थिरता ही उनके भोगवात् का आधार है—

१ बच्चन हलाहल प ६९

2 Ah my Beloved fill the Cup that clears  
To-day of past Regrets and future Fears—  
To-morrow ?—Why Tomorrow I may  
Myself with Yesterdays Seven Thousand Years  
Rubaiyat Omar Khayyam 20

३ कभी उत्थान कभी है पतन ।  
वासनाओं का यह ससार  
भयानक भ्रम का है च घन  
और इच्छाओं का मण्डल  
गादि में अन्त हस्त है हस्त  
एष अनियंत्रित हाहावार  
इसी को कहते हैं जीवन ।

अमृतलाल नागर आज के लोकप्रिय हिन्दी-कवि भगवती चरण वर्मा  
प० स०, पृ० ११४

४ भगवती चरण वर्मा मधुकण प० २५

5 Lo some we loved the loveliest and best  
That Time and Fate of all their Vintage drest,

जीवन-मृत्ति की लहर-उहर मिटने का बनना यहाँ प्रिये ।  
 नयोग शणिक । फिर क्या जान हम कहीं और तुम कहीं प्रिये ?  
 पत्र भर तो साथ-साथ यह लें कुद्द गन लें बुद्ध अना कद लें ।  
 जग के उपवन की यह मधु-री सुपमा का गरस बमत प्रिय ।  
 दा सीसा म बस जाम और य सीमें बनें अनल प्रिय ।  
 मुरझाना है आशा विल लें हम तुम जी भर मुल कर दिन ते ।<sup>१</sup>

मय और मयमाने की विस्मृति का आस्वाभा ह मगूर बिना है—

मधु छत्रक रहा था उर में मैं था मल का दीवाना  
 अलमायी सी असी में था झून रहा ममाना  
 पागल सा चल रहा था विस्मृति म मैं मनमाना ।  
 हर रग उमग से पूरित हर राग यहाँ मस्ताना ।<sup>२</sup>

कवि की समस्त म जिज्ञासी सीमित है प्रम-वर घागा है सब बुद्ध माया है  
 अत धमन का मारण ही सोपा है इसी म उग्र को तमागबीनी म काटा  
 तथा जीवन म छत्र कर छानने की उमकी सलाह है—

जिज्ञासी नम्हारी है मोमिन-इतना सब है  
 हमम जो बुद्ध-याग वह मय तो सातष है  
 दास्त । उग्र कटन दो इस तमागबीनी म ।  
 घोला है प्रम-वर इसका तुम मन ठानो  
 कडवा या मीठा-रम तो है छत्रकर छानो  
 धमन का अत नहा जिज्ञा-ज्ञान कच्चा है  
 धमन का मारण ही सोपा है सच्चा है ।<sup>३</sup>

Have drunk their Cup a Round or two before  
 And one by one crept silently to Rest  
 Rubaiyat Omar Khayyam 31

१ अमृतमान नागर आत्र क सोहप्रिय हि-कवि, मगवती चरण बमा

पृ० ६८ ६९

२ मगवती चरण बमा मधुकर, पृ० २७-२८

३ अमृतमान नागर आत्र क सोहप्रिय हि-कवि मगवती चरण बमा

पृ० ३६

और सम्भवतः भ्रमने के मारण' को ही सीधा मान लेने के कारण उहे दगन-मीमासा फुरसत की बकवास सा प्रतीत होती है—

दशन मीमासा—यह फुरसत की बकवास है<sup>१</sup>

शिवमगल सिंह समन के अपने और पराय के खाल को भुलाकर भस्ती का राग अनापने का कारण भी उमर<sup>२</sup> की भाति जीवन की नश्वरता ही है—

जब मिट कर मिल जाना ही है

तब अपना और पराया क्या ?

हम अपने और पराय को मिल एक बनाने वाले हैं

हम बड़ विकट मनवाले हैं ।<sup>३</sup>

जीवन की नश्वरता तथा प्रेम का पराजय<sup>४</sup> के कारण ही वे मधुशाला और मौज के पथगामी बने—

हम मौज भरे गाने गाते

दा दिन इठलाते इतराने,

अपनी नही मधुशाला में

इस पथ आते उस पथ जाने

हम किसका किसका साथ करें सब ही चल देने वाले हैं ।

हम बड़ विकट मनवाले हैं ।<sup>५</sup>

१ आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि भगवती चरण वर्मा पृ० ३८

२ Why spend life in Self worship and essay

All Being and Not being to survey ?

Since Death is ever pressing at your heels

Tis best to drink or dream your life away 183

Otto Rothsfield Omar Khayyam and His Age p 84

३ हिन्दोल पृ० ९७

४ सब है मैंने प्यार न पाया

निज कल्पित ससार न पाया

कौन मनगा प्रन्दा मरा ?

—हिन्दोल, पृ० ११८

५ हिन्दोल पृ० ६६

रामकुमार वर्मा ने भी सयोग-सख को ही मृग की राधा का मनोरम बाल माना है—

सख की राधा का केवल है एक मनोरम बाल  
 याथो प्रयत्ति, बढो यह है प्रेम मिलन की डाल ।<sup>१</sup>

और उसी के बल पर जीवन की न-वरता का सहन का उपक्रम किया है—

‘सो मिलन के बल पर मैं न-वरता’ मुख से सहन करूँगा ।<sup>२</sup>

वस महादेवी वर्मा आत्मानन्द की कवयित्री हैं किन्तु उमर अपवा फारसी कविता के प्रभाव में उड़ी थीं और अपने प्रियतम की प्याला हाता मधुगाला तथा सारी के रूप में स्मरण किया है—

तेरा अपर विचुम्बित प्याला तेरी ही स्मिन् मिश्रित हाता  
 तेरा ही मानस मधुगाला फिर पूछ क्या मर सारी ।  
 दा हो मधुमय विषमय क्या ?<sup>३</sup>

विस्मरण अथवा विमर्जन की भावना उमर के भागवत की विषयता है । महादेवी जी का ध्यान समस्त दुःखा को लीन कर देने वाले इस विमर्जन की ओर भी आकृष्ट हुआ है—

तरो को ल जाओ मसधार  
 दूबकर हो प्रायोग पार  
 विसर्जन हा है कणाधार  
 वहा पहुँचा दया उम पार ।<sup>४</sup>

अन्तर बेचन इतना हा है कि इ-हान उमर के प्रतिकूल मुरा के ध्यान के स्थान पर विपुल बन्ना के प्याले की आकांक्षा अथवा अभिज्ञाया प्रकट हो है—

जावन हे उ-मान तमो म  
 निधिया प्राणों के छान  
 माँग रहा है विपुल बन्ना—  
 के मन प्याले पर प्याले ।<sup>५</sup>

१ कवराजि त्रितीय सरकारण पृ० २०

२ रामकुमार वर्मा, आधुनिक कवि (सम्पन्न गद्य), पृ० २६

३ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) अनुप सरकारण पृ० २६

४ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) अनुप सरकारण, पृ० २३

५ वहा, पृ० २

जहाँ तक सिद्धांत पक्ष का प्रश्न है वराग्य और भोगवाद दोनों का उदगम एक है— ससार को दुःखमय तथा क्षणभंगुर मानना । कोई क्षणभंगुरता का विचार से वरागी हो जाता है कोई क्षण के आनंद में ही सब कुछ भूल जाना चाहता है । कामायनी में प्रसाद जी ने यह दोनों यापार एक ही व्यक्ति ( मन ) में दिखाकर उनके एक ही उदगम की ओर संकेत किया है । जीवन की विपन्नता<sup>१</sup> तथा नराशय एवं जगत की क्षणिकता तथा परिवर्तनशीलता से अग्र और विदुष्य होकर मनु क्षणिक सबभोग की कामना करने लगते हैं—

तुच्छ नहा है अपना सुख भी  
श्रद्धा ! वह भी कुछ है  
दो दिन के इस जीवन का तो  
वही चरम सब कुछ है ।

और इस दुःखपूर्ण जीवन की पहिली का सुलझाने का माग भी वे विस्मृति में ही ढूँढते हैं—

पहेली सा जीवन है व्यस्त  
उसे सजझाने का अभिमान  
बताता है विस्मृति का माग  
चल रहा हूँ बनकर अनजान ।<sup>२</sup>

इसी से कामायनी के प्रथम सर्ग में ही उन्होंने विस्मृति को आ जाने का आमन्त्रण भी दे दिया है—

विस्मृति आ अवसान घर ल  
नीरवते ! बस चुप कर दे  
चतनता चल जा जड़ता से  
आज गूँथ मेरा भर दे ।<sup>३</sup>

१ किंतु जीवन किन्ना निरुपाय । लिया है देख नहीं सदेह  
निरागा है जिसका परिणाम सफ़लता का वह कल्पित गह ।

—कामायनी द्वितीय संस्करण प० ६२

२ वही प० १२८

३ वही प० ५७

४ वही प० १४

किंतु मनु ऐसे जीव हैं जिनका आत्मवात्त में विश्वास है, अतः जब सृष्टि में विशृंखल हो जाने पर उन्होंने यह अनुभव तो किया कि—

मुझ बबल मुझ का वह मयह  
बन्नीभूत हुआ जना  
छायापथ में नव तुषार का  
सघन मिनन होता जिनका ।

स्वयं देव थे हम सब तो फिर  
क्यों न विशृंखल ज्ञानी सृष्टि  
अरे अज्ञानक हूँ अभी मैं  
कहीं आपराधों की सृष्टि ।<sup>१</sup>

किंतु इन आपराधों के कारण उन्होंने आत्मा में विश्वास नहीं रखा । अतः हिमासय की गुहा में स्थान बनाकर तप करने का निश्चय किया—

धी अन्त की गाँ सन्न जा  
विष्कृत गुहा कहीं रणनीप,  
उमम मनु न स्थान बनाया  
गुह्य स्वच्छ और वरणीय

—

मन न तप में जीवन अपना  
किया समपण होकर धीर ।<sup>२</sup>

इस प्रकार हम दंगने हैं कि मनु की भोग वृत्ति एवं तपस दोनों के धूम में जीवन और जगत की सांगमगुरता निहित है ।

स्वर्गगुप्त में उन्होंने जगत की माया का सार कहकर जीवन की छवि रस-मापुरी में पान करने का साधन भी किया है—

धी सो छवि, रस-मापुरी मीचो जावन-ने  
त्री सो मुस मे क्षाय भर यह माया का गल ।  
मिमो रनह मे मन  
घने प्रम-भद तन ।<sup>३</sup>

१ प्रमाण—कामायनी, त्रितीय मांशरण पं० १६-१७

२ वही, पं० ३४-३९

३ प्रमाण, स्वर्गगुप्त, पं० ४८



और खरना म वह प्याला भी पीना चाहते हैं जिसका नशा कभी न उतरे—  
गलबाही दे हाथ बढायो कह दो प्याला भर दे ना ।

चाहता पीना में प्रियतम नशा जिसका उतरे नही ।<sup>१</sup>

अत यह कहा जा सकता है कि प्रसाद क ऊपर चाहे उमर के भोगवाद का प्रभाव न हो किंतु वे फारसी अथवा उदू कविता की सुरा साकी तथा मस्ती की परम्परा से सवधा मुक्त नही है ।

एसा प्रकार हम देखते है कि हिन्दी छायावादी पुग की कविता पर उमर के नियतिवाद तथा भोगवाद का प्रत्यक्ष अथवा प्रच्छन्न रूप म पर्याप्त प्रभाव पडा है । किंतु भारतीय अध्यात्मवादी चिन्ताधारा म भोगवात् के लिए कोई स्थान नही है । अत चार्वाक दशन की भांति ही हिन्दी म इस हालावात् अथवा भोगवात् का तीव्र विरोध हुआ, जिससे यह धारा बहुत दिनों तक टिक न सकी । यहाँ तक कि उसके प्रवक्त बच्चन की विचारधारा म भी आगे चन कर पर्याप्त परिवर्तन हुआ और वे जगत और जीवन को आत्मावादी दृष्टि से देखने लगे । सतरगिनी म उनके इस परिवर्तित दृष्टिकोण का मु दर चयन हुआ है । यथा—

दुनिया यह स्वग—बेलि  
दुनिया यह स्वग—बीज  
अशु—स्वेत्—लोहू से  
जिसको जब सोच सोच  
मनुज बना लेता है  
अमृत फल देता है ।<sup>२</sup>

१ प्रमाण खरना

२ बच्चन, सतरगिनी हमारा सस्करण, १९४८ प० १४३

## छायावादी काव्य में अन्य दार्शनिक विचारधाराएँ

जसा कि पिछले अध्याय में हमने देखा किया है कि जीवनिपत्ति मान पर आधारी १० वा शताब्दी के मास्त्रिक जाग्रण के प्रभाव तथा चागला शताब्दी की सामाजिक राजनीतिक एक आर्थिक विप्लवात्मा के कारण छायावादी कविता पर भारतीय ज्ञान की अतमूत्रक विभिन्न धाराया (जीवनिपत्ति अततवा, ईश्वरसायवा, सर्वात्मवा, बल्य बलनवा) तथा बौद्ध ज्ञान के दुगवा का ही प्रष्ट प्रभाव पडा है किन्तु छायावादी कविता के पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान एक दान के सम्प्रक में आ ज्ञान के कारण उत्तरा श्रुतिया पर उन पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराया का भी पाटा-बल प्रभाव पडा है आ भारतीय दार्शनिक विचारधाराया के मत में आ जाना है। उपाययाम मोहनशर का निरागावा बौद्ध-ज्ञान के दुगवा के अनुसर है अत बौद्ध दर्शन के दुगवा के साय-साय शास्त्रकार के निरागावा ज्ञान का भी छायावादी कविता पर प्रभाव पडा है जिसका माताया विवरण हमने छायावादी काव्य में निरागावा के दर्शन की अभिपत्ति के प्रथम में कर लिया है। जहाँ तक अध्यामवादी विन्तन का प्रश्न है पाश्चात्य आध्यामिक विचारों में ही-य का मत महाराय और रामानुजावाय के मतों में बल के प्रभाव हुआ है अत महार और रामानुज के प्रभावित ज्ञानवादी या ज्ञान धार हाव के दार्शनिक विचारों की ओर जाना स्वाभाविक है।

हाव परम-जय के निरा गू विज्ञान के मानन में और आध्यामिक ज्ञाने मान्य विषय को ज्ञान गू विज्ञान के अभिपत्ति मान मानन में महाराय का मत महाराय है। किन्तु हाव के ज्ञान विज्ञान के प्रश्न माताया।

कवि का कोई आकषण नहीं जान पड़ता। इस विषय में उसका स्पष्ट मत है कि 'हीगल का विचार का निरपेक्ष जो कण-कण को जोड़कर विकसित होता है भारतीय दशन के विचार्यों के लिए हास्यास्पद दार्शनिक तत्ताहट में अधिक गौरव नहीं रखता।

हीगल के दशन में सबसे महत्वपूर्ण विचार विरोधा का समन्वयीकरण है। विरोधा का अस्ती जय है भेद। भेद सत्ता अभेद पर आधित रहता है। भेद गौण है और अभेद के विनयण रूप में ही उसकी सत्ता है। अतः विरोधा भी गौण है। वह केवल साधन रूप है। साध्य है विशिष्टात्तरूप समन्वय।<sup>१</sup> समन्वय विरोधा का विरोधा या निषेधा का निषेधा या भेदविशिष्टाभेद है।<sup>२</sup> केवल भेद या द्वैत और केवल अभेद या अद्वैत दोनों ही कल्पना मान है वास्तविक नहीं। अभेद और भेद दोनों एक दूसरे में घुने मिले हैं।<sup>३</sup> अतः हीगल के मत में तत्त्व भी सत्ता भेद विशिष्ट अभेदरूप या विशिष्टात्तरूप है। इस विषय में हीगल या रामानुजाचार्य में सम्पूर्ण मतव्य है। विशिष्टाद्वैत का अर्थ है द्वैतविशिष्टाद्वैत अर्थात् अनेकता में अनुस्यूत एकता (Unity in difference) या भेद में अन्तर्यामी अभेद। हीगल का विनयन विशिष्टाद्वैतरूप है अर्थात् अनेकता में अनुस्यूत एकता है।<sup>४</sup> विज्ञान का विकासनिक रूप (Triadic) में होना है। ये तीन रूप हैं—प्रथम प्रतिपत्ति और समन्वय। हीगल के इस सप्रसिद्ध सिद्धांत का नाम है द्वैतमूलक समन्वय (Dialectic) जिसे हम भेदविशिष्ट अभेद या मत्प में विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त कह सकते हैं।<sup>५</sup> हीगल के उक्त द्वैतमूलक समन्वय का प्रभाव छायावादी कवियों के सुख दुःख आशा निराशा आदि अन्तर्द्वन्द्व के समन्वयवादी दृष्टिकोण पर माना जा सकता है। छायावाद का कवि उपनिषद् के प्रभाव में अनेकता में अनुस्यूत एकता का समन्वय रहा है अतः हीगल का अनेकता में अनुस्यूत एकता (Unity in difference) का सिद्धान्त भी उसके उक्त विचार को पुष्ट करने में सहायक दशा होगा ऐसा कहा जा सकता है। वणव वेदान्तवाद और शवन्शन की भांति ही हीगल भी जगत को मत्प घोषित करता है अतः छायावादी कवियों की जगत को मत्प मानने की भावना को हीगल के दशन में भी उत्तेजन मिला

१ पन्त उत्तरा प्रथम मस्करण प्रस्तावना पृ० २०

२ डा० चन्द्रधर जर्मा पार्श्वाय दशन प्रथम मस्करण पृ० २१०

वही, पृ० २१०

४ वही पृ० २०२

५ वही पृ० २०२

६ वही पृ० २०३

हो ना कार्य जाग्रदय गती । प्रेम क क्षेत्र म भी छायावाणी कविया ढार हागत क विचारा म अभ्य है । हीगत प्रेम क आध्यात्मिक मोक्ष्य वा उपायम है । बामनामन प्रेम वो यद तद ददित म क्वना ॥ । व म प्रेम का मयन मम था ह ना मातव ज्ञाता का पवित्र उग्रत एव त्रिच जनाता है ।<sup>1</sup> प्रता क प्रेम पथिा का प्रेम मानचातमा का पवित्र एव त्रिच भूमि पर अधिष्ठित करन वाता वागनास्तित प्रेम है ।<sup>2</sup> निगना<sup>3</sup> पत्र<sup>4</sup> ात्ति प्रमम छायावाणी कविया न भा प्रेम का पवित्र आध्यात्मिक स्तर पर ता स्तन किया है । आशावाणी कविया की मनुष्य म ईश्वरत्व की स्थापना क ममान हा हागत नी मातव द म ही ईश्वर की अभिपत्ति का समयत करता है ।<sup>5</sup> किन्तु ळीगत और छाया वाणी कविया क उन विचारा म जा एवना त्रिच पत्नी ह वह विचार जयवा भाव-भाष्य वा दिति म जितनी महत्वपूर्ण है तनी प्रभाव की दिति म न। प्रभाव की दिति म छायावाणी कविया क न्त दार्शनिक विचारा क मुन म भारतीय जगत क प्रभाव का ही स्वीकार करना समीधान गता ।

छायावाी कविया म पल जी का ळीगत वर्णम ता शक्तिवाचक विचारक प्रिय रह है । अन उनक विचारा का तकीयता कृतिया पर जान अनजान प्रभाव पडता जसका स्वाभाविक है । उन पाश्चात्य विचारता म

- 1 No doubt love p sseses a lcity quality in so far as it does not merely ren ain an impulse of sex attraction but emphasizes the bounty of a really rich beautiful and nobl sou  
Hegal The Philorophy of Fine Art, Vol II p 313  
मय पत्र का उद्देश्य नहा है शान्त जवन म शिव रचना  
किन्तु पत्रवता मम मीमा पर जितन जान शा नहा  
प्रता, प्रेम पथिक तनीय म्परण वृ र  
तागत पत्रिमम ऊरुमावति वृ ११ - ११  
प्रति पाठ म व म पुस्तक काम नाति न हा जसजित ।  
मय म्परण प्रम म्परण वृ १ ०
- ४ ही मय र पाठ मानव वा उ म्परण जिति य म्परण ।  
वनी वृ ० १ ६०
- ६ If Cool Sims it is so to be manifested in a corresponding expression that can only be th human form  
Hegal The Philorophy of Fine Art p 290
- ७ शिवम वा ० १ १ म्परण का शिव वा ० १ मय म्परण प्रम म्परण पत्रिमम (-) १ ० ६

पत जी वगसा क सजनात्मक विकासवाद स विशेष प्रभावित ह,<sup>१</sup> अत उनके काय पर उमका बाडा-बहुत प्रभाव भी परिलक्षित होता है। महा पर पत काव्य पर वगसा के सजनात्मक विकासवाद का प्रभाव दिखाता क पूव उसके सजनात्मक विकासवाद) स्वरूप का परिचय प्राप्त कर नना आवश्यक है।

सक्षप म वगसा का सजनात्मक विकासवाद इस प्रकार है—

अपनी सजनात्मक विकासवाद (Creative Evolution) नामक पुस्तक के प्रारम्भ म ही वगसा न लिखा है—

वह अस्तित्व (आत्मा) जिसम हमारा पूण विश्वास है और जिसस हम भली भाँति परिचित ह निस्सन्दह हमारा अपना ही है। गीरा क विषय म हमारे विचार ऊपरी और जमाय हा सक्ते हैं किन्तु अपन विषय म हमारा अनुभव वास्तविक और गम्भीर होता है। जाग आत्मा के स्वरूप वा और स्पष्ट करन हुए वह कहता है—

सब प्रथम मैं अपन का एक स्थिति स दूसरी स्थिति म सचरण करता हुआ पाता हू। मुझ गर्मा गती है अथवा सर्दी में प्रसन्न रहता हू अथवा खिन्न में कुछ करता हू अथवा कुछ नहा करता म जास पाम की घटनाओ पर ध्यान देता हू अथवा किसा अय वस्तु पर विचार करता हू। मवतना भावना च्छटा कल्पना य हैं व परिवर्तन जिनमें मरा अस्तित्व विभक्त है आर जो बारी-बारी उस रगत रहते है। इस प्रकार म जविराम वचता रहता हू।<sup>२</sup>

व्यक्तित्व क विषय म वगसा का मत है—

हमारा व्यक्तित्व निरन्तर अकरित विकसित तथा परिपक्व हाता रहता है। व्यक्तित्व का प्रत्येक क्षण काई न कोई विशपता लिए होना है जो

१ सजनात्मक विकासवाद (Creative Evolution) का सिद्धान्त मुग अधिक समझ म आता है। —वही प० २८२

२ The existence of which we are most assured and which we know best is unquestionably our it own for of every other object we have notions which may be considered external and superficial whereas of ourselves our perception is internal and profound  
Henri Bergson Creative Evolution p 1

३ I find first of all that I pass from state to state I am warm or cold I am merry or sad I work or I do nothing Sensations feelings volitions ideas such are the changes into which my existence is divided and which colour it in turns I change then without ceasing  
Henri Bergson, Creative Evolution p 1

अपनी पूर्व स्थिति से संयुक्त होकर उपस्थित होता है। हम यह भी कह सकते हैं कि वह बल नवीन हो रहा होता प्रयत्न अज्ञात (Unforeseeable) भी होता है। निम्न यह मरी बतलाय स्थिति का जो कष्ट क्षण में एक क्षण पूर्व था और जो किया मर उपर हो रही थी उसी के द्वारा समया जा सकता है। इसका विश्लेषण करने पर मुझे बाढ़ जैसा तब रहा मिलता।<sup>1</sup>

आत्मा के विकास का बगसा न एक अज्ञात प्रारंभ द्वारा हम प्रकार स्पष्ट किया है—

यह एक ताप के गाल की तरह आग बनता है जो एकदम एक टुकड़ा में फटता है जो स्वयं इस प्रकार अत्यंत बड़ा में फटत है ताकि उनमें टुकड़े पुनः उसी तरह पूर्ण और उसी तरह आग भी काफी जल तक फटत जाय।<sup>2</sup> आत्मा का जन्म स्वतः स्फूर्ति शक्ति को बगसा न *Flan Vital* (जिवनात्पव) कहा है। आत्मा का उत्तम गुण हो उसके दर्शन की गति है। मैं जे बगसा द्वारा प्रतिपादित आत्मा के विकास का स्वरूप हम प्रकार है—

आत्मा चलन शक्ति है। वह स्वतः स्फूर्ति विकास-सुत्र और मजबूती है। अपनी प्रगति के साथ ही वह काल (Duration) का मन्त्र बनता है। आत्मा के विकास का प्रयत्न क्षण अपना पिछला इतिहास अपने साथ लाता है। इस पिछले इतिहास की वास्तव्यता में आत्मा का प्रतिक्षण विकास होता रहता है। हम प्रकार विकास-सुत्र आत्मा के काल के क्षण भी भा समान नहीं था। आत्मा का विकास अथवा अज्ञान स्वतः स्फूर्तिमय है अतः उसका प्रेरणा उसी में निहित है। वह किया भी एक क्षण के और प्रवृत्त रहा होता जो उभय पर अथवा अज्ञान प्रतिकूल है। इस प्रकार आत्मा मौलिक रूप में स्वतंत्र है।

भारतीय धारणावाणी दर्शन जो आत्मा के स्वरूप अथवा अज्ञान मानता है बगसा द्वारा प्रतिपादित आत्मा के विकास अथवा मजबूती के स्वरूप का स्थापना नहीं करता। गहरा बगसा के अनुसार आत्मा निश्चित और

1 Thus our personality stoots grows and ripens without ceasing. Each of its moments is something new added to what was before. We may go further it is not only some thing new but something unforeseeable. Doubtless my present state is explained by what was in me and on what was acting on me a moment ago. In analysing it I should find no other elements.

Ibid P 6

2. Henri Bergson *Creative Evolution*, P 103

अचन है और यह दृश्यमान जगत मिथ्या अथवा भ्रम है। पाश्चात्य दार्शनिक स्पिनाजा और हीगन भी आत्मा को कूटस्थ जीव नित्य घोषित करते हैं। परम सत्य बुद्धिगम्य (Real is Rational) मान कर हीगन ने यह सिद्ध किया है कि आत्मा हमारी बुद्धि का परम विकास होने का कारण पूण अन्वितीय जात अलण्ड है।

आत्मा को अचन मानन वात शक्य जादि दार्शनिका का कथन है कि जगत का ज्ञानत्व मिथ्या है—अनस्ता यथाव नही है—

नह नानास्ति किंचन ।

अविद्या आत्मा के सत्य का रूख देती है जिमम परिवर्तन वास्तविक प्रतीत नान लगता है। अविद्या द्वारा उत्पन्न भ्रम के नष्ट होने पर ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। बगसाँ इस मत को स्वीकार नहीं करता। उसने अनुसार उत्तरात्तर बुद्धि स्वतः स्फूर्त विद्यास, सुबदनशीलता भावना एव स्वातन्त्र्य अर्थात् अपनी ही इच्छा द्वारा किसी निश्चिन उद्देश्य की जात प्रगति—ये चतना के मुख्य लक्षण है और इन्ही लक्षणों द्वारा हम चतन का जड स पथक करते हैं। सक्षम म चिर प्रगतिशीलता चतना का स्वभाव है। इस गुण के अभाव म चतना जड म परिवर्तित हो जाती है। बगसाँ के निकट आत्मा की अचलता या पक्ष उनना ही आत्मविराधी हागा जितना यह कहना कि आग ठण्णी है।

विश्वरवि रवीन्द्रनाथ टगोर पर बगसाँ के दर्शन का प्रभाव परितक्षित होता है। बगाली आलाचका (जसे शिशिर कुमार मन्ना) न बनाका की चचना शीपक कविता की गिम्न पत्तिका म बगसाँ के जीवनोत्प्लव (Elan Vital) का प्रादभास दता है—

गुधु धाव गुधु धाव गुधु वग धाव

उद्दाम उधाव—

किर नाहि धाव १

अथान जीवन शक्ति अथवा मत्ता निरन्तर परिवर्तित हाती रहती है। इसी स हम क्षण चारा जात जीवन का गत्यात्मक पात है।

बगसाँ के अनुसार यदि एत लक्षण भी जीवन की गति रुक जाय तो विश्व जन्ता म भर जाना २। उसके उक्त सिद्धांत की प्रतिध्वनि रवीन्द्र की इन पत्तिका म सुनार्क पड जाता है—

यदि तुमि मुन्तर तर

वतानि भर

१ रवीन्द्र नाथ टगोर मन्विता (विश्वभारती प्रवाशन) पठसरवरण, (बगसाँ) प० १८१ ८५

दाडाओ थमकि

तखनि चमकि

उच्छ्रिया उखि विश्व पुज पुज बस्तुर पवने १

रबीन्द्र रबीन्द्र स प्रभावित हाने तथा भारतीय एव पाश्चात्य विचारधाराओ म सामान्य की लातला रखन क कारण छायावादी कवि पन्त पर भी बगमा के सजनात्मक विकासवाट का प्रभाव पडा है अत उनकी स्वणधूनि म मगहीन आशदा मत्युजय जनविकाम जाति कविताओ पर सजनात्मक विकासवाट की रगए स्पष्ट उभर आई है ।<sup>१</sup>

कदि प्रमाट पर पाश्चात्य विचारधारा का बन्त कम प्रभाव है कि भी उनकी—

चिनि का म्बरूप यह नित्य जगत

वह रूप बसता है शन शन

बण विरह मितन भय नत्य निरत

जानामपूण आनन् सनत २

१ रबीन्द्र नाथ ठाकुर सचमिना (विश्वभारती प्रकाशन) पट्ट सम्करण (बगमा) चचना शीपक कविता पृ० ४४६

२ (क) मजनगाव जग विकास  
जट जीवन मनोभाग —

पन्त स्वणधनि प्रथम सम्करण जनविकाम पृ० ६६

(ग) केरन जीव वृद्धि पात है

के परिणत होने जाने है

जीवन गण, जीवन क युग

जीवन की स्थितियाँ

परिपदिन परिपित होकर

नय निहाग काने है ।

पन्त स्वणधनि प्रथम सम्करण आगवा पृ० १

(ग) न नो म छन नामा म नन ने-ा म

पन्त सम्मदन हातर उन मजन वजन हा

धन अनुभव क विजन परात्रय जम मरण

नी जाति माम की पतरा म उमवा तरन ली ।

पन्त स्वणधनि प्रथम सम्करण मत्युजय पृ० १४

नया कामाती निनीद सम्करण व ४



जसी पत्तिया म कुछ आलोचको ने बगसाँ के जीवनोत्पन्नव (आत्मा की स्वत स्फूर्त शक्ति) की छाया देखी है ।<sup>१</sup> किन्तु प्रसाद जी की चित्ति शक्ति की प्रगति शोभता व इस सिद्धान्त पर बगसाँ के सजनात्मक विकासवाद के प्रभाव की अपेक्षा बौद्ध दशन के प्रतीत्यसमत्पाद का प्रभाव मानना ही अधिक उपयुक्त होगा ।\*

जहाँ तक पाश्चात्य भौतिकवादी दशन का प्रश्न है छायावाद की कविता पर उनका प्रभाव नगण्य सा है । छायावाद युग के अन्तिम चरण म मार्क्सवाद का प्रभाव छायावादी कवि पत्र पर अवश्य पडा किन्तु उन्होने भी मार्क्सवाद को उसी रूप म स्वीकार नहीं किया जिस रूप म व पाया जाना है । पत्र जी न मार्क्स व दशन को अपने प्रिय ऊर्ध्व सचरण जयवा भारतीय आत्मवाद की भूमिका म रख कर ही परखा अथवा अपनाया है । उनका स्वयं नापन है—

'आधुनिक भौतिकवाद का विषय ऐतिहासिक (मापक्ष)चेतना है और अध्यात्मक का विषय शाश्वत (निरपक्ष)चेतना । नोना ही एक दूसरे के अध्ययन और ग्रहण करन मे सहायक होते हैं और नान के गर्वांगीण समन्वय के लिए प्रेरणा दत्त है ।<sup>२</sup> (अन ) मैं मार्क्सवादी (आर्थिक चित्ति म बम सतचित्त) जन तत्र तथा भारतीय जीवन दशन को विश्व शान्ति तथा लोक कल्याण व लिए आदर्श मयोग मानता हूँ जमा कि मैं अपनी रचनाआ म भी मकेन कर चका हूँ —

अन्तमु ख अद्भुत पडा था युग-युग मे निस्पृह निष्प्राण  
उम प्रगिल्भित करने जग म लिया साम्य न वस्तु विधान ।  
युगवाणी

परिचय का जीवन-सौष्ठव हा विकसित विश्व तत्र म विनरित  
प्राची के नव आरमान्य म स्वर्ण चित्त भू तमम निराहित । नृत्यानि  
स्वर्ण किरण

१ देविना वीणा (१९१२) मई सन १९४१ डा श्री नारायण विष्णु जोशी का बगसाँ के दार्शनिक विचार

—जीपक पृष्ठ प० ५०५

२ व (प्रसाद) मार्क्स जगत को आनन्दमय देखत व ओर नम चित्तशक्ति व प्रसार का अनुभव करते थ किन्तु बौद्धधम व प्रभाव स ओर वम भी ननरी परिवर्तनशीलता व मानन बाल थ ।

गुनादराय अध्ययन और आस्वा १ ५७ प० २६०

५ पत्र आधुनिक कवि प्रथम सम्मरण पर्यालोचन पृ० २१

एसा कह कर मैं स्वामी विवेकानन्द के सारगमिष्ठ कथन में यूरान का जीवन सौष्टव तथा भारत का जीवन दशान चाहता हूँ। वही ही अन्वय पुनः क अनुसन्ध पुनरावृत्ति कर रहा हूँ ।<sup>१</sup>

इस प्रकार हम दशत हैं कि छायावादी कवि कतिपय पारम्परिक शान्तिव विचारधाराओं से थोड़ा-बहुत प्रभावित अवश्य हुए हैं किन्तु उन्होंने उनका उपयोग अपनी भारतीय दान सम्बन्धी मान्यताओं की पुष्टि में ही किया है ।



१. 'अन्वय' अन्वय अन्वय अन्वय, अन्वय अन्वय ५०-५१-

जमी पत्तियां म कुछ आलोचको न बगसां के जीवनोप्लव (आत्मा की स्वतः स्फूर्त शक्ति) की छाया देखी है।<sup>१</sup> किन्तु प्रसाद जी की चित्ति शक्ति की प्रगतिशीलता के म्म सिद्धान्त पर बगसां के मजनात्मक विवासवाद के प्रभाव की अपेक्षा बौद्ध दशन के प्रतीत्यसमुत्पाद का प्रभाव मानना ही अधिक उपयुक्त होगा।<sup>२</sup>

जहा तक पाश्चात्य भौतिकवादी दशन का प्रश्न है छायावाद की कविता पर उनका प्रभाव नगण्य सा है। छायावाद युग के अन्तिम चरण म माकमवाद का प्रभाव छायावादी कवि पंथ पर अवश्य पटा किन्तु उहोने भी माकमवाद को उसी रूप म स्वीकार नया किया जिस रूप म वह पाया जाना है। पंथ जी ने माकम के दशन को अपने प्रिय ऊध्व मचरण अथवा भारतीय आत्मवाद को भूमिका म रख कर ही परखा अथवा अपनाया है। उनका स्वयं नापन है—

आधुनिक भौतिकवाद का विषय ऐतिहासिक (सापेक्ष) चेतना है और अध्यात्मिक का विषय शाश्वत (निरपेक्ष) चेतना। दोनों ही एक दूसरे के अध्ययन और ग्रन्थ बनने म महायुग होते हैं और ज्ञान के सर्वांगीण मन्त्रय के लिए प्रेरणा दत्त है।<sup>३</sup> (अन) मैं माकमवादी (आधुनिक दृष्टि म बग-मनुलित) जन तत्र तथा भारतीय जीवन दशन को विश्व शान्ति तथा लोक कल्याण के लिए आदर्श मयाग मानता हूँ जमा कि मैं अपनी रचनाया म भी मवेन कर चुता हूँ—

अन्तमू ल अन्त पन्थ था युग-युग म निम्पूह निम्प्राण  
उम प्रतिष्ठित करने जग म निया साम्य ने वस्तु मिधान।  
युगवाणी

परिचय का जीवन-मोक्षहा विवसित विश्व तत्र म विनरित  
प्राची के नव आत्मोत्थ म स्वण श्वित भू तमम निरात्ति। द्यानि  
स्वण किरण

१ रेगिण वीणा (इन्डोर) मर् सन १०४१ ग० श्री नारायण विष्णु जोशी का बगसां के शासनिक विचार

—शोषक उग प० ५ ३

२ व (प्रसाद) मार जगत को आनन्दमय दम्यते थे और उमम चित्तशक्ति के प्रसार का अनुभव करने थे किन्तु बौद्धधम के प्रभाव म और धम भी उनकी परिवर्तनशीलता के मानन वाल थे।

गनाबराय अध्ययन और आम्वा १०५७ प० २६०

३ पन्थ आधुनिक कवि प्रथम मस्करण, पर्यालोचन पृ १

ऐसा कह कर मैं स्वामी विवेकानन्द के सारगर्भित कथन में यूरोप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन दशन चाहता हू की ही अपने युग के अनुरूप पुनरावृत्ति कर रहा हू । <sup>१</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाणी कवि कतिपय पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं से थोड़ा-बहुत प्रभावित अवश्य हुए हैं किन्तु उन्होंने उनका उपयोग अपनी भारतीय दशन सम्बन्धी मायताओं की पुष्टि म ही किया है ।



१ पत्र, उत्तर, प्रथम संस्करण प्रस्तावना प० २१-२२

## छायावादी दर्शन का स्वरूप

विद्वान् जध्यायो के विवचन स स्पष्ट है कि छायावादी का श्रीडागण प्रारम्भ न ही आध्यात्मिक भूमि रही है और उसका पष्ठाधार मुख्यतया भारतीय अद्व तवादी दशन रह है अवश्य ही यत्र-तत्र उसम इतर (पाश्चात्य) अ तवादी दानो का भी समावश हो गया है ।

छायावादी युग की सांस्कृतिक सामाजिक तथा राजनीतिक विचार गरणिया को प्रभावित करन वाने मनीषी विवकानन्द अरविन्द तिनक गांधी टंगार आदि—वर्तिक सत्या की नवीन युग की आवश्यकता के अनुसार व्याख्या करन म मत्तग व । उहोने वदिक वाड मय के अमर सत्यो को जनता के बीच प्रमागित करन का प्रयत्न ही नही प्रत्युत उहे जनता द्वारा सामूहिक रूप म सामाय जीवन म अपना त्रिए जान का आग्रह भी किया । निदान उनक व्यक्तित्व क व्यापक प्रभाव से छायावादी-युग की वाव्यधारा भी विशेष रूप से प्रभावित हुई । स्वामी विवकानन्द मन्मत्ता गांधी और कवीद्र रवीद्र ने ऐहिकता को भी आध्यात्मिक स्तर पर अपनाया था । अत उनके प्रभाव से छायावादी वाव्य धारा भी स्थान से हट कर सूक्ष्म आध्यात्मिक चिन्तन की ओर मुड गई और उसमे स्थान गगत की भावनाए भी सूक्ष्म चरातल पर व्यक्त होने लगी । उक्त युग द्रष्टाओ न मानृतिक और सामाजिक जीवन मे वदों और उपनिषदो के अद्व त पण का ही प्रधानता ती जन उनकी देखा गयी छायावादी की कविता म भी वर्तिक मन्मा— एक मत मव दारिद्र ब्रह्म ईशावास्यमिदं सव अयमस्मि मव अयमात्मा-ब्रह्म अहंब्रह्मास्मि 'तत्त्वमसि आदि की सलकर अभिप्यति होने गी ।

गतरवन्त वप्पववन्तवान् तथा शव दर्शन का आधार भी औपनिष टिक ज्ञान ही है । छायावादी क कविता ने उपनिषदो ने उपनिषदो का गहन अध्ययन

तो किया ही था जन्म से ही वे ब्रह्मण्य एव शब्द सम्प्रदाया के अन्तर्गत निरन्तर । अतः उनके विचारा एव भावनाशा पर विशिष्टाङ्गन द्वैतान्त शब्दादित आदि के आशानिक पक्ष का यथार्थ प्रभाव पडा । अतः शाकर ब्रह्मण्य के प्रभाव से छायावाद के कवि न यति निराशा व धर्मा म मसार को माया अथवा मिथ्या बनाया ता ब्रह्मण्य ब्रह्मान्तवात् तथा शब्द आशान व प्रभाव म उमन सुख व क्षणा म जगत मा सत्य भी धापित किया । उपनिषत् ब्रह्मण्य ब्रह्मान्त तथा शब्द आशान के प्रभाव से ही छायावाद का कवि सगणायामना एव आनन्दवाद का ओर उन्मुख हुआ ।

द्वैत विशिष्टान्त अद्वैत शब्द सिद्धान्त ब्रह्मण्य शब्द यत् नत्र नि बौद्ध और जन आदि जितन सम्प्रदाय भारतवर्ष म स्थापित हुए ह सभी एम विषय पर सहमत ह कि एम जावात्मा म अनन्त शक्ति अव्यक्त भाव म निहित ह चीटी स नगर ऊँचे-ऊँचे सिद्ध पुरुष तक सभी म वह आत्मा विद्यमान है और भूत जा कुछ है वह है कवल प्रकाश के तारतम्य म । ब्रह्मण्य-ब्रह्मण्य तत धार्मिकवत् — विज्ञान जस खना की मन् तोड दना है जीर एक तन का पाना दूमर म बहन नयना है वम ही आत्मा भी आवरण टूटत ही प्रकट न जाती है । सुयोग और उपयुक्त दश-काज मिलत ही यह शक्ति स्वयं का अभिव्यक्त करती है । चाह व्यक्त अवस्था म हो चाह अ रक्त म यह शक्ति प्रत्यक्ष म — ब्रह्मण्य स लन नृप तक समा म मौजूद है ।<sup>१</sup> भारतीय दशनो की उक्त स्थापना व आसारभूत ही छायावाद काय्य म सर्वात्मवादी धारा का प्रस्तुकरण हुआ । यही भारतीय सर्वात्मवात् छायावाद के व्यापक मानवतावात् का आधार बना । यही कारण है कि छायावाद का मानवतावात् पाश्चात्य मानवतावात् की भाँति उपयागितावात् अथवा प्रयाजनवात् तक हा मामित न रह कर आध्यात्मिक मूल्यो का ग्रहण करता है और प्राणिमात्र का नि स्वायं मवा का आदेश देता है ।

सर्वात्मवात् का जा अद्वैतवात् का ही एक रूप है रहस्यवात् म भी घनिष्ट सम्बन्ध है । भारतीय सर्वात्मवात् व रहस्यवात् का स्वरूप की सम्यक् अभिव्यक्ति छायावाद की कविता म प्रवृत्ति रहस्यवात् के रूप म हुई है । सुधा रहस्यवात् भी अन्तवात् अथवा सर्वात्मवात् पर अवलम्बित है । भारतीय साधना का मूली शास्ताशा का मुख्य दन प्रमसाधना है ।<sup>२</sup> मूसी काय्य

१ पानजन यागमूत्र कवल्पपात् ३

२ स्वामी विवेकानन्द स्वधीन भारत ! जय हा !

त्रितीय सस्वरण पृ० ६९ ३०

३ परगुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की मन्त-परम्परा,

प्रथम सस्वरण पृ० ७८

कबीर तथा कबीर रवीन्द्र के माध्यम से अध्यात्मप्रेमी छायावादी कवियों के प्रेमगीता पर सूफियों के प्रेमपरक रहस्यवाद का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। छायावाद के कवियों ने अपनी कृतियाँ पर स्वामी विवेकानन्द के व्यावहारिक दृष्टान्त के प्रभाव को भी मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है अतः उनकी प्रेम भावना स्वामी विवेकानन्द के प्रेमयोग से भाजिमके अनुसार प्रेम ही परमेश्वर है सिद्ध है। अगरेजी के रोमांटिक कवियों ( बडसवय शली आदि ) का रहस्यवाद भी सर्वात्मिकता है। इससे अनिरिक्त काव्यगत ( Poetic ) होने के नाते वह असाम्प्रदायिक और नितांत भावनामय है। छायावादी कवियों की रहस्यभावना का असाम्प्रदायिक एवं भावात्मक रूप देने में अगरेजी के उक्त भावयोगी कवियों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

छायावादी कवियों का एहिक जीवन प्रायः असन्तोषपूर्ण एवं दुखी रहा है अतः जीवनगत निराशा के मस्तर उनमें कुछ मज्जागत हो गया था। किन्तु अपनी इस जीवनगत निराशा अथवा दुःख का भी उठाने प्रायः आध्यात्मिक दुःख की परिधि में ही व्यक्त करने का प्रयास किया है। यम शास्त्रवेदांत भी सत्कार की असारता सिद्ध करता है और गीता में स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य का जन्म अशाश्वत और दुःखा का घर है।<sup>१</sup> किन्तु छायावादी कवियों का बौद्ध दशन से विशेष अनुराग हो जाने के कारण छायावाद के निराशावाद अथवा दुःखवाद पर बौद्ध दशन के सर्वोद्वेग और सब क्षणिकता का ही प्रचुर प्रभाव है। शोपनहार का निराशावाद भी बौद्ध दुःखवाद का ही प्रतिरूप है अतः एक हद तक वह भी छायावाद के निराशावाद को पुष्ट करने में सहायक हुआ है।

उमर खय्याम का जीवन दशन भी निराशावादी है। किन्तु उसकी निराशा का प्रस्तुरण दो विभिन्न धाराओं में हुआ है— (१) पलायनवाद और (२) भोगवाद। छायावाद की पलायन वृत्ति पर उमर खय्याम के पलायनवाद का भी प्रभाव है किन्तु उसकी प्ररक्त शक्ति प्रधानतया उपनिषदा बौद्ध दशन तथा शास्त्रवेदान्त का गम्यमाना माग ही है। लेकिन जन्म तक छायावादी कवियों के जीवनगत भोगवाद का प्रश्न है उसका एकमात्र कारण उमर खय्याम का नागवादी जीवन दशन ही है। यहाँ पर स्मरण रखने का बात यह है कि उमर का भोगवाद अध्यात्मिक विवेक का परिणाम है अतः वह अध्यात्मवादी छायावाद काव्य की मूलधारा का विशिष्ट अंग नहीं है। उसका समकालीन प्रायः छायावाद के निम्न स्तर के कवियों तथा छायावाद युग के अन्तिम चरण में बरकत द्वारा हुआ है जो सर्व अर्थों में छायावादी कवि नहीं है।

१ मामपेत्य पुनर्जन्म दुःखानयमशाश्वतम् ।

उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छायावाद का वास्तविक स्वरूप आध्यात्मिक एव अद्वैतमूलक है और स्वच्छन्दतावादी छायावादी कवि की विचरण भूमि अद्वैतवाद (सर्वात्मवाद) तथा उसकी विभिन्न शाखाएँ विशिष्टाद्वैत द्वैताद्वैत शुद्धाद्वैत शवाद्वैत आदि हैं। छायावादी पद्य न हीगल बगसाँ आदि जैसे कतिपय पाश्चात्य दार्शनिकों के सिद्धांतों के प्रति भी यामोह अथवा सहानुभूति प्रकट की है किन्तु उनका प्रतिष्ठान उहोंने भारतीय दशन की परिधि में ही किया है। अतः छायावादी दशन की स्थापना में उनका कोई पृथक् स्थान नहीं है।

जहाँ तक अनात्मवादी दशन का प्रश्न है छायावाद के निराशावाद अथवा दुःखवाद पर बौद्ध दशन के दुःखवाद का प्रबल प्रभाव है किन्तु इस दुःखवाद का पयवसान भी बहुधा छायावादी कविता में अध्यात्म विषयक आनन्दवाद में ही हुआ है।

छायावादोत्तर काल में भी प्रमुख छायावादी कवियों—पद्य निराला महादेवी का दृष्टिकोण मूलतः आध्यात्मिक ही रहा है। निराला जी की कविता में भक्ति का स्वर उत्तरोत्तर प्रखर होता गया है। पद्य जी भूत (मटर) और आत्मा (स्फिरिट) के समन्वय में सलग्न अवश्य है किन्तु उस समन्वय में भी प्रधानता आत्मा की ही है। वस्तुतः पद्य काव्य में भूत और आत्मा का उक्त समन्वय औपनिषदिक अर्थ पर आधारित श्री अरविन्द दशन की पृष्ठाभूमि में हुआ है। महादेवी वर्मा पूर्ववत् अपन निर्दिष्ट पथ पर दशा के साथ चली जा रही हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावादोत्तर काल में भी प्रमुख छायावादी कवियों का दृष्टिकोण अध्यात्मवादी और अद्वैतमूलक ही है।



# परिशिष्ट

## आधार ग्रन्थों की सूची

संख्या	रचना	लेखक
१	अथ	हामवती
२	अधना १९५०	सूयका त त्रिपाठी निराला
३	अतिमा प्रथम संस्करण	सुमित्रानन्दन प त
४	आधुनिक कवि (१) चतुर्थ संस्करण	महादबी वर्मा
५	आधुनिक कवि (२) प्रथम संस्करण	समिप्रानन्दन प त
६	आधुनिक कवि (३)	रामकमार वर्मा
७	आधुनिक कवि (४) १९४३	गोवानगरण सिंह
८	आँसू दगम संस्करण	जयगकर प्रसाद
९	आज के लोकप्रिय कवि भगवती चरण वर्मा प्रथम सं०	स अमतलाल नागर
१०	उत्तरा प्रथम संस्करण	सुमित्रानन्दन प त
११	उवगी प्रथम संस्करण	रामधारी सिंह दिनकर
१२	एकांत सगीत	बच्चन
१३	कदली वन	नरेन्द्र वर्मा
१४	कानन कुमम पंचम संस्करण	जयगकर प्रसाद
१५	कामायनी त्रितीय संस्करण	जयगकर प्रसाद
१६	कचुरमत्ता १९४२	सूयका त त्रिपाठी निराला
१७	खट्याम की मधुगाना पाँचवाँ सं०	बच्चन
१८	गजन तृतीय संस्करण	सुमित्रानन्दन प त
१९	गीतिका प्रथम सं०	सूयका त त्रिपाठी निराला
२०	ग्राम्या त्रितीय सं०	समिप्रानन्दन प त
२१	चित्ररेखा त्रितीय सं०	रामकुमार वर्मा
२२	जीवन के गान त्रितीय सं०	शिवमगन सिंह सुमन
२३	झंकार त्रितीयावृत्ति	भविनीगरण गण

- २४ क्षरना आठवाँ स०  
 २५ तुलसीदास प्रथम सस्करण  
 २६ दीपशिला प्रथमावृत्ति  
 २७ पंचमी प्रथम सस्करण  
 २८ पलांग वन द्वितीय सस्करण  
 २९ परलव चतुर्थावृत्ति  
 ३० परलविनी, प्रथम सस्करण  
 ३१ परिमल अष्टमावृत्ति  
 ३२ प्रणय गीत  
 ३३ प्रभातफरी  
 ३४ प्रेम पथिक तृतीय सस्करण  
 ३५ प्रवागी क गीत  
 ३६ विहारी रत्नाकर नवीन स० ३  
 ३७ मधुकण  
 ३८ मधुकला पाचवा सस्करण  
 ३९ मधुज्वाल प्रथम सस्करण  
 ४० मधुदाला (१९३६)  
 ४१ मधूलिका  
 ४२ मिट्टी और फूल द्वितीय सस्करण  
 ४३ यामा तृतीय सस्करण  
 ४४ युगवाणी १६२६  
 ४५ रश्मि १९३८  
 ४६ रश्मि व प्रथम सस्करण  
 ४७ रसवती  
 ४८ रूपराशि त्रितीय सस्करण  
 ४९ रूवाइयात उमर शम्साम त्रितीयावृत्ति  
 ५० रेणुका  
 ५१ लहर तृतीय बार  
 ५२ बाणी प्रथम सस्करण  
 ५३ वीणा पथि त्रितीयावृत्ति  
 ५४ सबयिता  
 "यगक" प्रस द  
 सूयकांत त्रिपाठी निराला  
 महादेवी वर्मा  
 गोपालचरण सिंह  
 नरेद्र शर्मा  
 सुमित्रानन्दन पंत  
 सुमित्रानन्दन पंत  
 समयकांत त्रिपाठी निराला  
 डा० देवरात्र  
 नरेद्र शर्मा  
 जयशंकर प्रसाद  
 नरेद्र शर्मा  
 स० जगन्नाथदास रत्नाकर  
 भगवतीचरण वर्मा  
 वचन  
 अनु समिप्रानन्दन पंत  
 उच्चन  
 अश्वल  
 नरेद्र शर्मा  
 महादेवी वर्मा  
 सुमित्रानन्दन पंत  
 महादेवी वर्मा  
 समिप्रानन्दन पंत  
 रामधारी सिंह त्रिनकर  
 रामकुमार वर्मा  
 अनु० मधिनीचरण गुप्त  
 रामधारी सिंह त्रिनकर  
 जयशंकर प्रसाद  
 समिप्रानन्दन पंत  
 समिप्रानन्दन पंत  
 आरसीप्रसाद सिंह

५२	साध्यगीत चतुर्थ सस्करण	महादेवी वर्मा
५६	सतरगिनी दूसरा सस्करण	दच्चन
५७	समपण, प्रथम सस्करण	माखनलाल चतुर्वेदी
५८	समना १९४१	गोपालशरण सिंह
५९	स्वप्न आठवा सस्करण	रामनरेश त्रिपाठी
६०	स्वण किरण प्रथम सस्करण	सुमित्रानन्दन पंत
६१	स्वणधूलि प्रथम सस्करण	सुमित्रानन्दन पंत
६२	हलाहन	दच्चन
६३	हुकार नवम सस्करण	रामधारी सिंह दिनकर
६४	हिमकिरीटिनी तृतीय सस्करण	माखनलाल चतुर्वेदी
६५	हिल्लोम द्वितीय सस्करण	गिवमगत सिंह सुमन
६६	स्कन्दगुप्त (नाटक) सप्तम स	जयगकर प्रसाद
६७	चन्द्रगुप्त (नाटक) बारहवाँ स०	जयगकर प्रसाद

### सहायक ग्रन्थ-सूची

#### संस्कृत

- १ ऋग्वेद
- २ यजुर्वेद
- ३ ऐतरेय आरण्यक
- ४ तत्तिरीय आरण्यक
- ५ अथ्यात्म उपनिषद्
- ६ ईशावास्योपनिषद्
- ७ कठोपनिषद्
- ८ छांदोग्योपनिषद्
- ९ तत्तिरीयोपनिषद्
- १० बृहदारण्यक उपनिषद्
- ११ मुण्डक उपनिषद्
- १२ माण्डूक्य उपनिषद्
- १३ श्वेताश्वतर उपनिषद्
- १४ तुकारहस्यापनिषद्

- १५ ब्रह्मसूत्र
- १६ भगवद्गीता
- १७ महाभारत शान्तिपर्व
- १८ योगवाङ्मणि
- १९ श्रीमद्भागवत
- २० ईश्वर प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, भाग १, भाग २
- २१ तनालोक
- २२ तन्त्रसार
- २३ त्रिपुरारहस्यम्
- २४ नेत्रतन्त्र, भाग १, भाग २
- २५ प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
- २६ बोधसार
- २७ मगेत्र तन्त्र
- २८ शिवदृष्टि
- २९ शिव संहिता
- ३० शिवसूत्र
- ३१ शिवसूत्र विमर्शिनी
- ३२ स्पन्दकारिका
- ३३ ज्ञानाणव

पाली

- १ अगुत्तर निकाय
- २ घम्मपद
- ३ सयुत निकाय
- ४ मज्झिम निकाय

बंगला

- १ षट्शतकपरिचयम्—
- २ सप्तशतिका

कृष्णदास कविराज  
रवीन्द्रनाथ ठाकुर पण्डित सरस्वरण,  
(विश्वभारती प्रकाशन)

## हिंदी

- |    |   |                           |
|----|---|---------------------------|
| १  | अध्ययन और आस्वाद १९५७                                 | बाबू गुलावराय             |
| २  | अष्टधाप और नल्लभ सम्प्रदाय                            | डा० दीनदयालु गुप्त        |
| ३  | आधुनिक कायधारा का सांस्कृतिक<br>स्रोत प्रथम संस्करण   | डा० केशरी नारायण शुक्ल    |
| ४  | आधुनिक साहित्य प्रथम संस्करण                          | आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी |
| ५  | आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य<br>प्रवृत्तियाँ प्रथम बार | डा० नगेन्द्र              |
| ६  | आधुनिक हिंदी काय में निरानावाद<br>प्रथम संस्करण       | डा० शम्भुनाथ पाण्डेय      |
| ७  | आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास<br>भाग २ १९५६               | सरकार तथा दत्त            |
| ८  | उत्तर भारत की संत-परम्परा<br>प्रथम संस्करण            | परशुराम चतुर्वेदी         |
| ९  | कवि प्रसाद की काव्य-भाषना,<br>प्रथम संस्करण           | रामनाथ सुमन               |
| १० | काँग्रेस का इतिहास भाग १                              | पट्टाभि सीतारमया          |
| ११ | 'वामायनी-अनगीर्ण द्वितीय स०                           | रामलाल सिंह               |
| १२ | काव्य बला तथा अय निबंध                                | जयानकर प्रसाद             |
| १३ | काव्य की भूमिका प्रथम संस्करण                         | रामधारी सिंह 'दिनकर'      |
| १४ | काव्य में रहस्यवाद प्रथम संस्करण                      | आचार्य रामचन्द्र गुप्त    |
| १५ | गद्य-पद्य प्रथम संस्करण                               | सुमित्रानन्दन पन्त        |
| १६ | गीता-प्रबंध प्रथम भाग, त्रि० स०                       | श्री अरविन्द              |
| १७ | गीता-रहस्य धारद्वयी संस्करण                           | श्रीकृष्णाय धानपनाथर तिलक |
| १८ | चिन्तिलास २००१  | डा० सम्पूर्णानन्द         |
| १९ | छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य<br>प्रथम बार             | स० धर्मोद्भूत ब्रह्मचारी  |
| २० | नायसी-प्रत्यावर्ती तृतीय संस्करण                      | आचार्य रामचन्द्र शुक्ल    |
| २१ | तमस्वक अथवा सूफीमत १८४५                               | आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय  |
| २२ | ज्ञान-विज्ञान प्रथम संस्करण                           | राहुठ साहूत्यायन          |

२३	दृष्टिकोण	आचार्य विनयमोहन शर्मा
२४	नया हिन्दी का म १९६२	डा० निवकुमार मिश्र
२५	नाय-सम्प्रदाय १९५०	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
२६	पत और डाका गुजन १९५५	केसरी कुमार
२७	पत और पल्लव प्रथमावलि	सुयना त त्रिपाठी निराला'
२८	पत, प्रसाद और मधिलीकरण प्रथम संस्करण	रामधारी सिंह दिनकर
२९	पथ क साथी प्रथम संस्करण	महादेवी वर्मा
३०	पाश्चात्य दंगल प्रथम संस्करण	डा० चन्द्रधर गर्मा
३१	प्रबंध-पथ द्वितीय संस्करण	सुयकांत त्रिपाठी 'निराला
३२	प्राच्य और पाश्चात्य चतुर्थ म०	विवेकानंद
३३	प्रयोग तृतीय संस्करण	विवेकानंद
४	बौद्ध दंगल द्वितीय संस्करण	राहुल सांकृत्यायन
३५	बौद्ध दंगल तथा अन्य भारतीय दंगल प्रथम भाग, प्रथम संस्करण	भरतसिंह उपाध्याय
३६	बौद्ध धर्म दंगल, प्रथम संस्करण	आचार्य नरेंद्रदेव
३७	यह्यसूत्रों म वणव भाष्या का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम सं०	डा० रामकृष्ण आचार्य
३८	भगवद्गीता प्रथम संस्करण	डा० राधाकृष्ण
३९	भारतीय दशन, प्रथम संस्करण	डा० जगन्नि
४०	भारताम नारी चतुर्थ संस्करण	विवेकानंद
४१	मध्यकालीन भारतीय संस्कृति १९२८	मनमोहन उपाध्याय गौरीगकर हीराचंद ओझा
४२	महादेवी वर्मा, दूरभा संस्करण	स० गचाराजी नूट
४३	मरा जावन तथा धर्म तथा म सं०	विवेकानंद
४४	मेरी समर-नीति, द्वितीय संस्करण	विवेकानंद
४५	राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य, प्रथम संस्करण	डा० विजयेन्द्र स्नातक
४६	रसाइयात उमर सम्प्रदाय, त्रितीयावलि	मधिलीकरण गुप्त
४७	विचार और अनुभूति १९४५	डा० नगद

## हिन्दी

- |    |  |                           |
|----|--|---------------------------|
| १  | अध्ययन और आस्वाद, १९५७                                 | बाबू गुलाबराय             |
| २  | अष्टांग और बल्लभ सम्प्रदाय                             | डा० दीनदयालु गुप्त        |
| ३  | आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक<br>स्रोत प्रथम संस्करण  | डा० केसरी नारायण शुक्ल    |
| ४  | आधुनिक साहित्य, प्रथम संस्करण                          | आचार्य नन्दलाले बाजपेयी   |
| ५  | आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य<br>प्रवृत्तियाँ प्रथम बार | डा० नगेन्द्र              |
| ६  | आधुनिक हिन्दी काव्य में निराशावाद<br>प्रथम संस्करण     | डा० शम्भुनाथ पाण्डेय      |
| ७  | आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास<br>भाग २ १०५६                | सरकार तथा दत्त            |
| ८  | उत्तर भारत की मत्त-परम्परा<br>प्रथम संस्करण            | परशुराम चतुर्वेदी         |
| ९  | कवि प्रसाद की काव्य-साधना<br>प्रथम संस्करण             | रामनाथ सुमन               |
| १० | काँग्रेस का इतिहास भाग १                               | पट्टाभि शीतारमया          |
| ११ | 'कामायनी-अनशीलन द्वितीय स०                             | रामनाथ सिंह               |
| १२ | काव्य कला तथा अर्थ निबंध                               | जयशंकर प्रसाद             |
| १३ | काव्य की भूमिका प्रथम संस्करण                          | रामधारी सिंह दिनकर'       |
| १४ | काव्य में रहस्यवाद प्रथम संस्करण                       | आचार्य रामचन्द्र शुक्ल    |
| १५ | गद्य-पद्य प्रथम संस्करण                                | सुमित्रानन्दन पन्त        |
| १६ | गीता-प्रबंध प्रथम भाग वि० स०                           | श्री अरविन्द              |
| १७ | गीता-रहस्य चारणवाँ संस्करण                             | लोकमान्य बालगंगाधर तिलक   |
| १८ | चिन्तिलाम २००१   | डा० सम्पूर्णानन्द         |
| १९ | छायावाद और रहस्यवाद का रहस्य<br>प्रथम बार              | स० धर्मोद्भद्र ब्रह्मचारी |
| २० | जायसी-प्रभावनी तृतीय संस्करण                           | आचार्य रामचन्द्र शुक्ल    |
| २१ | तमबुद्धि अथवा मूर्खीमत १९४५                            | आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय  |
| २२ | ज्ञान-विज्ञान प्रथम संस्करण                            | राहुल सांकृत्यायन         |

२३	दृष्टिकोण	आचार्य विनयमोहन गर्मा
२४	नया हिन्दी का य १९६२	डा० गिवकुमार मिश्र
२५	गाथ-सम्प्रदाय, १९५	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
२६	प त और उनका गु जन १९५०	केसरी कुमार
२७	प त और 'पल्लव' प्रथमावलि	सूयका त त्रिपाठी निराला'
२८	प त, प्रसाद और भविलीकरण प्रथम संस्करण	रामधारी सिंह दिनकर
२९	पथ के साथी प्रथम संस्करण	महादेवी वर्मा
३०	पाश्चात्य दान प्रथम संस्करण	डा० चन्द्रधर गर्मा
३१	प्रब ध-पञ्च त्तीय संस्करण	सूयका त त्रिपाठी 'निराला'
३२	प्राच्य और पाश्चात्य चतुथ सं०	विवेकानन्द
३३	प्रेमयोग ततीय संस्करण	विवेकानन्द
४	बौद्ध णन द्वितीय संस्करण	राहुन साकृत्यायन
३५	बौद्ध दान तथा अय भारतीय दान प्रथम भाग प्रथम संस्करण	भरतसिंह उपाध्याय
३६	बौद्ध धम दान प्रथम संस्करण	आचार्य नरेन्द्र
३७	ब्रह्मसूत्रो मे वणव भाष्या का तुलनात्मक अध्ययन प्रथम सं०	डा० रामकृष्ण आचार्य
३८	भगवद्गीता प्रथम संस्करण	डा० राधाकृष्णन
३९	भारतीय दशन, प्रथम संस्करण	डा० उमंग मिश्र
४०	भारतीय नारी चतुथ संस्करण	विवेकानन्द
४१	मध्यकालीन भारतीय संस्कृति १९२८	महामहोपाध्याय गौरीगकर हीरानन्द बोश
४२	महादेवी वर्मा, दूमरा संस्करण	स गधरानी मुट्टू
४३	मरा जीवन तथा ध्यय तताय स	विवेकानन्द
४४	मरी समर-नीति, त्तीय संस्करण	विवेकानन्द
४५	राधावल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य प्रथम संस्करण	डा० विजयेन्द्र स्नातक
४६	स्वाइयात उमर सम्पाम द्वितीयावलि	भविली शरण गुप्त
४७	दिवार और अनुभूति, १ ४५	डा० नगद



४८	विधिघ प्रसंग, १९५३	विवेकानन्द
४९	यावहारिक जीवन म वेदात् १९५१	विवेकानन्द
५०	शक्तिशायी विचार चतुर्थ सस्करण	विवेकानन्द
५१	शव मत, प्रथम सस्करण १९५५	डा० यदुवगी
५२	संस्कृति के चार अध्याय द्वितीय सस्करण	रामधारी सिंह दिनकर
५३	साहित्य-तरंग १९५६	सदगुरुशरण अवस्थी
५४	सुमित्रानन्दन प त प्रथम सस्करण	स गधीरानी गुटू
५५	सूफीमत-साधना और साहित्य, प्रथम स	रामपूजन तिवारी
५६	स्वाधीन भारत ! जय हो ! द्वितीय स०	विवेकानन्द
५७	हिन्दुत्व	रामदास गौड़
५८	हिन्दी का य म निगुण सम्प्रदाय प्रथम स०	डा बडधवाल
५९	हिन्दी काव्य पर आँग्ल प्रभाव प्रथम स०	डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा
६०	हिन्दी साहित्य का इतिहास सशोधित और परिवर्द्धित सस्करण १९९७	आचार्य रामचन्द्र गुक्ल
६१	हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास प्रथम स०	डा० भगीरथ मिश्र
६२	हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पष्ठभूमि प्रथम बार	विश्वम्भर नाथ उपाध्याय
६३	हिन्दी साहित्य की भूमिका चौथी बार	डा हजारी प्रसाद त्रिवेदी

### पत्र-पत्रिकाएँ

- १ दूट (बागी) कला १ किरण ५
- २ कल्याण (भक्ति अर्थ, गिवांक हिन्दू संस्कृति अंक)
- ३ निपथगा बुद्ध जयन्ती अंक

- ४ नया साहित्य, निराला बक  
 ५ प्रतीक-गरुड प्रतीक-४ हेमन्त  
 ६ बीणा (इंदौर), मई सन १९४१  
 ७ सगम, फरवरी १९४९  
 ८ सरस्वती (१९१८-१९२१)  
 ९ हिंदी नवजीवन पत्रिका

## अंग्रेजी के ग्रन्थ

<i>Sl no</i>	<i>Name of the book</i>	<i>Writer</i>
1	An Advanced History of India	A C Majumdar
2	An Introduction to Indian Philosophy Fifth edition	Chatterji & Dutta
3	Arthur Schopenhauer philosopher of pessimism	Prodorick Copelsto
4	Chambend's Encyclopaedia, Vol VII 1926	
5	Creative Evolution	Henri Bergson
6	Christian Mysticism Sixth edition, 1925	W R Inge
7	Dictionary of Mysticism,	edited by Frank Gaynor
8	Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol VI and Vol IX 1917	edited by James Hastings
9	Encyclopaedia of the Social Sciences Vol VII VIII, 1964	
10	Essays in Criticism, Second Series 1935	Matthew Arnold
11	History of Mediaeval India	Dr Ishwari Prasad
12	India Today and Tomorrow	R Palme Dutt
13	Mysticism 17th Edition 1944	E Underhill
14	Mysticism in English literature 1927	Spurgeon

- 15 Modern pantheism 1813 Emile Saisset
- 16 Pathway to God in Hindi literature  
1959 R D Ranade
- 17 Poets and Mystics E I Watkin E I Watkin
- 18 Romanticism Second edition Aborcrombie
- 19 Speeches and writing of Eminent  
Indians edited by Dr M M  
Bhattacharya
- 20 Studies in Pessimism Schopenhaure By  
Bailey Saunders
- 21 Sri Chaitanya Mahaprahhu 1939 Tridandibhiksu Bhakti  
Pradipa Tirtha
- 22 The Discovery of India Pt Jawahar Lal Nehru
- 23 The English Poetry Gerald Bullett
- 24 The Future Poetry First Edition Sri Aurobindo
- 25 The Golden Treasury Palgrave
- 26 The Life Divine Vol I 1944 Sri Aurobindo
- 27 The Life Divine Vol II Part (2) 1940 Sri Aurobindo
- 28 The Nectar of Grace Omar Khayyam's life and works  
Edited by Swami Govind Tirtha
- 29 The Philosophy of Tagore Dr Radhakrishnan
- 30 The Philosophy of Upanishads Paul Deussen
- 31 The Philosophy of Fine Art Vol II Hegel
- 32 The Philosophy of History Hegel
- 33 The Poetical works of Robert Browning Vol I 1912  
Augustine Birrel
- 34 The Poetical Works of Robert Browning Vol II, 1912  
Augustine Birrel
- 35 The poetical works of P B Shelley Vol III 1357 edited  
by Mrs Shelley
- 36 The Poetical works of Wordsworth, Book second 1933  
edited by Thomas Hutchinson
- 37 The Quatraine of Umar Khayyam edited by E H  
Whinfield



- 15 Modern pantheism 1813 Fmile Saisset
- 16 Pathway to God in Hindi literature  
1959 R D Ranade
- 17 Poets and Mystics E I Watkin E I Watkin
- 18 Romanticism Second edition Aborcrombie
- 19 Speeches and writing of Eminent  
Indians edited by Dr M M  
Bhattacharya
- 20 Studies in Pessimism Schopenhaure By  
Bailey Saunders
- 21 Sri Chaitanya Mahaprahhu 1939 Tridandibhiksu Bhakti  
Pradipa Tirtha
- 22 The Discovery of India Pt Jawahar Lal Nehru
- 23 The English Poetry Gerald Bullett
- 24 The Future Poetry First Edition, Sri Aurobindo
- 25 The Golden Treasury Palgrave
- 26 The Life Divine Vol I 1943 Sri Aurobindo
- 27 The Life Divine Vol II Part (2), 1940 Sri Aurobindo
- 28 The Nectar of Grace Omar Khayyam's life and works  
Edited by Swami Govind Tirtha
- 29 The Philosophy of Tagore Dr Radhakrishnan
- 30 The Philosophy of Upanishads Paul Deussen
- 31 The Philosophy of Fine Art Vol II Hegel
- 32 The Philosophy of History Hegel
- 33 The Poetical works of Robert Browning Vol I 1912  
Augustine Birrel
- 34 The Poetical Works of Robert Browning Vol II, 1912  
Augustine Birrel
- 35 The poetical works of P B Shelley Vol III 1357 edited  
by Mrs Shelley
- 36 The Poetical works of Wordsworth Book second, 1933  
edited by Thomas Hutchinson
- 37 The Quatraine of Umar Khayyam, edited by F H  
Whinfield

- 38 The Story of Philosophy, Cardinal edition 1953 will  
Durant
- 39 The Vocabulary of Philosophy, William Fleming D D
- 40 Umar Khayyam and His Age, edited by Otto Rothfeld
- 41 The Works of Tennyson, 1913 Edited by Hallam
-